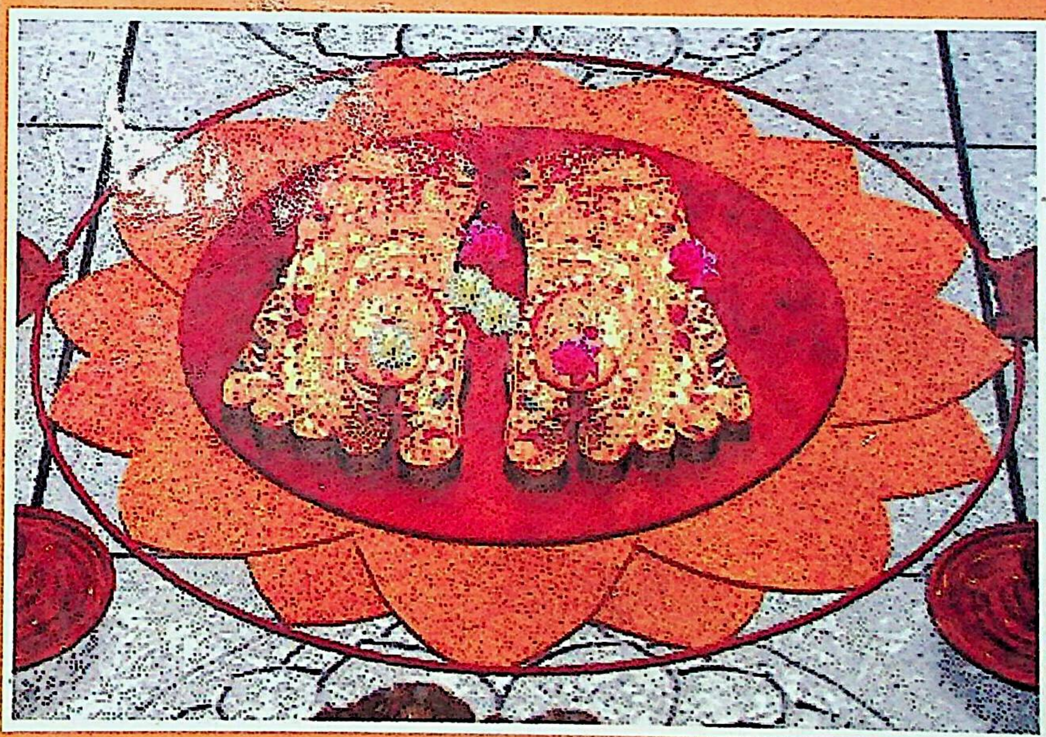
कवितार्किकसिंह-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-
श्रीमद्वेङ्कटनाथवेदान्तदेशिकस्वामिविरचितं

# पादुकासहस्रम्

(हिन्दीव्याख्याविभूषितम्)



सम्पादकाः

जगद्गुरुरामानुजाचार्यश्रीवासुदेवाचार्य-
'विद्याभास्कर' महाराजाः



न्यायशास्त्रश्लाघ्यविधाननैपुणहृत्पात्रविद्यावितीर्णकौतुक-
पण्डितप्रकाण्डाचार्यवर्यश्रीमत् प्रो० वशिष्ठत्रिपाठि-
पूज्यपादानां करकमलयोः सादरम् —

5.1

कमलाकान्त त्रिपाठी
२६.६.२०१०

श्रीमते रामानुजाय नमः  श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः

कवितार्किकसिंह-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-
श्रीमद्वेङ्कटनाथवेदान्तदेशिकस्वामिविरचितं

# श्रीरङ्गनाथपादुकासहस्रम्

*सम्पादकाः*

अनन्तश्रीविभूषितजगद्गुरुरामानुजाचार्यश्रीवासुदेवाचार्य
'विद्याभास्कर' महाराजाः

*व्याख्याकारः*

कृष्णनारायणाचार्यः
(डॉ. कमलाकान्तत्रिपाठी)
अध्यक्षचरः, मीमांसाविभागे
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः
वाराणसी

प्रकाशक
श्रीकोसलेश सदन
कटरा, अयोध्या, जनपद फैजाबाद
(उ.प्र.)-२२४१२३
२०१०

*पुस्तकप्राप्तिस्थान—*
**श्रीकोसलेश सदन**
कटरा, अयोध्या, जनपद फैजाबाद
(उ.प्र.)-२२४१२३







**प्रथमसंस्करण :** मेषसंक्रान्ति हरिद्वारमहाकुम्भ वैशाखी अमावस्या,
वि.सं. २०६७
२००० प्रतियाँ



**मूल्य :** ३००.००



मुद्रक—
**श्रीजी प्रिण्टर्स**
नाटी इमली, वाराणसी
फोन नं. : 0542-2201104, 3257329
ई-मेल : shrijeeprint@gmail.com
shrijeeprint@sify.com

# समर्पण

अशेषश्रीवैष्णवकुलानुगृहीतनित्यवैकुण्ठवासि-श्रीवासुदेवसोमानी एवं अ.सौ. श्रीमंतीकेशरदेवी सोमानी की परमपुण्यस्मृति में प्रकाशित, एवम्—

अखिलभारतीयश्रीवैष्णवकुलकमलदिवाकराशेषवेदवेदाङ्गविद्वद्वरिष्ठगोष्ठीगरिष्ठोभयवेदान्तमार्त्तण्ड, प्रतिवादिवाग्वैदग्ध्योन्मूलनपटीयान्, शब्दशास्त्रावारपारीणकवितावनितापुण्डरीकसौरभ्यवितरणनदीष्णश्रीकोशलेशसदनपीठाधीश्वराशेष यशःपटहप्रणादितदिग्दिगन्तानन्तश्रीसमलङ्कृत विश्वाराध्यजगद्गुरुरामानुजाचार्यवासुदेवाचार्यजी महाराज की स्वर्णजयन्ती एवं 'जगद्गुरु' पदवी के निर्वहण की रजतजयन्ती के शुभ अवसर पर श्रीमज्जगद्गुरुरामानुजाचार्योभयवेदान्तमार्तण्ड-स्वामिवर्यप्रातःस्मरणीयपदप्रवालश्रीमद्रामनारायणाचार्यजी महाराज के करकञ्जों में सादर समर्पित :—

कृष्णनारायणाचार्य
**(डॉ. कमलाकान्त त्रिपाठी)**
*व्याख्याकार*

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥ Ph. No. : 044-27268718



॥ श्रीमद्वरवरमुनये नमः ॥ ॥ श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः ॥

HIS HOLINESS JAGADGURU GADI SWAMI

**SRIMAD P.B. SRINIVASACHARYA SWAMI**

SRI PRATIVADI BHAYANKARMUTT, No. 31/13, Sannidhi Street,
KANCHEEPURAM-631503 (Tamilnadu)

**श्रीकाञ्चीप्रतिवादिभयङ्करमठाधीश्वराः**

**श्रीभगवद्रामानुजसत्सम्प्रदायाचार्याः जगद्गुरुगादीस्वामि-**

**श्रीमच्छ्रीनिवासाचार्यस्वामिनः**

श्रीप्रतिवादिभयंकर मठ, ३१/१३, सन्निधि वीथी,
कांचीपुरम्–६३१५०३ (तमिलनाडु)

Camp : .................. Date : ....................

श्रीवेदान्ताचार्यस्य कवितार्किकसिंहस्य 'अनाघ्रातावद्यं बहुगुणपरीणाहि मनसो, दुहानं सौहार्दं परिचितमिवाथापि गहनम्। पदानां सौभ्रात्रादनिमिषनिषेव्यं श्रवणयोः' इत्यादिप्रशंसाप्रथमलक्ष्यभूतं वाणीविलसितं हि पादुकासहस्रम्। दयां स्तुवन्नाचार्यः श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणश्रीपाञ्चरात्रदिव्यप्रबन्धगूढार्थगर्भितं श्रीवेङ्कटेश-भगवतो वैभवं यथा प्राचीकशत्, तथैव पादुकां स्तुवन् भगवतो रङ्गनाथस्य महिमानं प्रकटीचकार। 'प्रशस्तिस्सा राज्ञो यदपि च पुरीकोशकथनं' इति कविपन्थाः।

महदिदं प्रमोदस्थानं यत् एतादृशपरमगभीरस्तोत्रस्य, विद्याभास्करोपाधि-भूषितस्य अयोध्याकोसलेशसदनाध्यक्षस्य जगद्गुरुरामानुजाचार्यवासुदेवाचार्यस्य सत्प्रेरणया तच्छिष्येण कृष्णनारायणरामानुजश्रीवैष्णवदास इति दास्यनामविभूषितेन श्रीमत्कमलाकान्तत्रिपाठिमहाशयेन विरचितहिन्दीव्याख्यासहितस्य प्रकाशनम्। प्रेरकेभ्यः व्याख्याकर्तृभ्यश्च मङ्गलान्याशास्महे।

इति

प्र. गादि. श्रीनिवासाचार्यः

प्र.गादि. श्रीनिवासाचार्यः

Sri :

Srimathe Ramanujaya Nama :



# SRI VANAMAMALAL MUTT

## NANGUNERI-627 108

Srimath Paramahamsa Jagadguru
Sri Kaliyan Vanamamalai Ramanuja Jeer Swami

E.mail : varamangai 2001@yahoo.com
Fax : 04635-250636
Ph : o4635-250159 (Personal)
: o4635-250119 (Office)

Place : NANGUNERI

Date : 11-3-10

।।श्रीः।।

।।श्रीमते रामानुजाय नमः।। श्रीमद्वरवरमुनये नमः।।

।।श्रीवानमहाचलमुनिभ्यो नमः।।

## ।। मङ्गलाशासनवार्ता: अभिनन्दनञ्च ।।

अयि भोः विपश्चिदपश्चिमाः, अन्तर्वाण्यग्रेसराः, अस्मदीय सत्सम्प्रदाय-भगवद्रामानुजदर्शन-निकषायमाणधिषणाः महामनीषिणो महानुभावाः श्रीवैष्णवशिखामणयः, विदित्वेमं विषयं भृशं मोमुद्यते मानसमस्माकं यदस्माकं परमाप्तविद्वद्वरेण्यानां श्रीमतां विद्याभास्करवासुदेवाचार्याणां परमान्तरङ्गान्तेवासिवर्यैः श्रीमद्भिः कमलाकान्तत्रिपाठिभिराचार्यवितीर्णश्रीकृष्णनारायणशुभसंज्ञैः वाराणसी-क्षेत्रीयसम्पूर्णानन्दविश्वविद्यालयमीमांसाशास्त्रविभागाध्यक्षैः विद्वद्वरैः, सर्वतन्त्रस्वतन्त्राणां कवितार्किकसिंहानां श्रीवेदान्तदेशिकस्वामिनां श्रीपादुकासहस्रग्रन्थतल्लजस्य भारतराष्ट्रभाषायां हिन्द्यां व्याख्या विरच्यमानास्ति, प्रकाशनञ्च नीयेतातिशीघ्रमिति।

प्रियतमा आत्मबान्धवाः, श्रीपादुकासहस्रस्तुतिमतल्लिका-मल्लिकोद्यानवनस्य परमानुभाव्यसुगन्धप्रसारणस्य दिक्षु विदिक्षु सर्वास्वपि समीचीनव्याख्याद्वारा विशिष्य हिन्दीभाषाव्याख्यया

नातिसुलभः प्रयत्नोऽयमेतेषां प्राचार्यवराणां श्रीकृष्णनारायणविदुषां परमप्रशस्यो बोभवीत्विति हार्दं वयमाशास्महे।।

## हिन्दी में सम्मति

प्रियों व मान्यों, आगे हम कतिपय शब्द हिन्दी में भी लिखना चाहते हैं, क्योंकि हिन्दीव्याख्याकार व उनकी हिन्दीव्याख्या के प्रति लिखने का यह जो सन्दर्भ पाया है, उस कारण से। श्रीवेदान्तदेशिक स्वामीजी के अनुत्तम और अतुल्य पाण्डित्यप्रकर्ष को तो सभी विद्वन्मणि श्रीवैष्णव लोग ही नहीं समग्र पण्डितप्रकाण्डबृन्द खूब जानता है। उनके प्रारम्भकालिक श्रीहयग्रीवस्तोत्र में—'मनोगतं पश्यति यस्सदा त्वां मनीषिणां मानसराजहंसम्। स्वयं पुरोभावविवाद-भाजः किङ्कुर्वते तस्य गिरो यथार्हम्'—इति श्लोकभावस्य, "अपि क्षणार्धं कलयन्ति ये त्वामाप्लावयन्तं विशदैर्मयूखैः। वाचां प्रवाहैः अनिवारितैस्ते मन्दाकिनीं मन्दयितुं क्षमन्ते।" इति श्लोकभावस्य च त एव आचार्यवर्या लक्ष्यभूता व्यराजन्त। अविदितस्वपाण्डितीमहिम्नो जनानवबोधयितुं, स्वस्मिन् श्रीहयवदनपरब्रह्मणस्सकलविद्याधिदैवत-दिव्यानुग्रहपरिपूर्णपात्रताञ्च प्रकटयितुम्—फलश्रुतिपद्ये 'वागर्थसिद्धि-हेतोः पठत हयग्रीवसंस्तुतिं भक्त्या। **कवितार्किककेसरिणा** वेङ्कटनाथेन विरचितामेताम्।।" इति स्वप्रशंसां स्वयमेवाकुर्वन्। प्रियतम आत्मबन्धुओं, हिन्दी में कुछ लिखने की इच्छा प्रकट करते हुए इस रामानुजदास की लेखनी से यादृच्छिक रूप से गैर्वाणी में लिखने का प्रयत्न बन गया। इसे आप मणिप्रवालसंयोग के रूप में स्वीकार करें। अब हिन्दी में ही आगे चलते हैं।

प्रियों, यद्यपि 'श्रीपादुकासहस्र' एक श्रेष्ठ स्तोत्रग्रन्थ है, तथापि श्रीवेदान्तदेशिकस्वामी का 'यादवाभ्युदय' के जैसे एक काव्य भी है। यह श्रीदेशिकस्वामी की अपार आशुकवित्वशक्ति की कीर्तिपताका के रूप में जाज्वल्यमान है, क्योंकि स्पर्धा में परिपूर्ण विजय स्वामी ने एकमात्र रात्रि के अवकाश में इस कृति की रचना से प्राप्त की थी। उपलक्षणमर्यादा से हम इस 'पादुकासहस्र' काव्य में

श्रीवेदान्तदेशिकाचार्य स्वामी जी के विस्तारकवित्व, मधुरकवित्व, चित्रकवित्व की शक्तियों की भी खूब झाँकियाँ पाते हैं। चतुष्कवित्वसामर्थ्ययुक्त श्रीपरकालदिव्यसूरिसाम्य का अनुभव कर के अत्यन्त आनन्दित होते हैं। प्रियतमो, जैसे इतिहास-पुराण काव्यों में काण्ड-पर्व-अध्यायादि विभागों में विभक्तता दिखायी पड़ती है, वैसे इस 'पादुकासहस्र' में 'पद्धति' नामों से विभजन दृष्टिगोचर है। 'प्रस्तावपद्धति' से लेकर 'फलपद्धति' तक बत्तीस (३२) विभाग हैं। इस 'पद्धति' नाम को सुनकर हमारे हृदय के अन्दर यह प्रतीति पैदा होती है कि पद्धति-माने-पथ-या मार्ग, बाकी कवियों के कृति-रचना-तरीके से श्रीदेशिकाचार्यस्वामी का ढंग विलक्षण रूप से भिन्न है, यह 'मुरारे स्तृरीयः पन्थाः' वचन की याद दिलाता है। 'अनर्घराघव' नाटकरत्नरचयिता श्रीमुरारि महाकवि के बारे में यह विद्वज्जनोक्ति प्रचलित है। 'अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरतामापातालनिमग्नपीवरतनुः जानाति मन्थाचलः' श्रीमुरारि का पद्यांश है। आत्मीय रचनाप्रणाली काव्यगाम्भीर्यमर्मस्पर्शी जो है उसी को सूक्ष्मरूप से प्रगट किया है। (श्रीवेदान्तदेशिकस्वामिनां प्रप्रथमायां प्रस्तावपद्धत्यां) श्रीवेदान्तदेशिकस्वामिवर्य की प्रप्रथम'प्रस्ताव पद्धति' में प्रारम्भिक मङ्गलाचरण श्लोक—

'सन्तः श्रीरङ्गपृथ्वीशचरणत्राणशेखराः।
जयन्ति भुवनत्राणपदपङ्कजरेणवः।।'

भगवत्कृपा से भागवतकृपा का उत्कर्ष प्रकाशित करता हुआ, हमारे श्रीवैष्णवसम्प्रदाय का सिद्धान्त दिखाता है। सद्यः द्वितीय पद्य में —'भरताय परं नमोऽस्तु तस्मै प्रथमोदाहरणाय भक्तिभाजाम्। यदुपज्ञमशेषतः पृथिव्यां प्रथितो राघवपादुकाप्रभावः।।'— भगवद्दिव्यपादुकाप्रभाव को सारे जग के प्रति सम्बोधन करने वाले, अत्युत्कृष्ट भगवत्पारतन्त्र्य महागुण के श्रेष्ठ निधान कैकयीपुत्र भरत को कृतज्ञतापूर्वक प्रणाम समर्पित किया है। यह श्री वेदान्त देशिकस्वामी के ही अत्यद्भुत 'रघुवीर गद्य' का—'प्रणतभरत-

मुकुटतटसुघटितपादुकार्याभिषेकनिर्वर्तितसर्वलोकयोगक्षेम' वचन का स्मरण कराता है। महाशयों, अन्तरवगाह्यभावाभिबोधन यदि हम सम्प्राप्त करतें हैं, तब स्वामी वेदान्तदेशिक जी के भगवद्रामानुजसिद्धान्तनिर्धारकत्व के प्रभाव का पूर्णानुभव कर सकते हैं। प्रियों, अन्तिम फल-पद्धति में ग्रन्थनिगमन—'जयति यतिराज-सूक्तिः जयति मुकुन्दस्य पादुकायुगली। तदुभयधनाः त्रिवेदी—मवन्ध्ययन्तो जयन्ति भुवि सन्तः॥' परम माङ्गलिक रूप में करके काव्यसमापन किया है आचार्यवर्य ने। इस श्लोक को पढ़कर हमारे मन में ऐसा विचार उठता है कि सदियों बाद कोई त्रिवेदी/त्रिपाठी/तिवारी जनसाधारण भाषा में माने—हिन्दी में व्याख्या रच के अपने को धन्य बनाकर सज्जन-समुदाय को भाग्यशाली बनाकर लोकोपकार करने वाला है—भविष्यवाणी निकली है। इसके फलस्वरूप अब/अधुना यह श्रीवेदान्तदेशिकस्वामी का दीर्घदर्शीवचन हमारे श्रीकृष्णनारायण अपरनामधेय **श्री कमलाकान्त त्रिपाठी** द्वारा फलेग्रहि सम्पन्न हो रहा है। हमने स्थालीपुलाकन्याय के अनुसार ग्रन्थप्रभाव दिखाने वाले एकाध उद्धरण दिये हैं। वाचक महानुभाव लोग इनसे प्रेरणा पाकर यदि सव्याख्य 'श्रीपादुकासहस्र' का अध्ययन करें तो वे भगवद्—भागवताचार्य के प्रसाद के परिपूर्ण लक्ष्य बन कर निश्चप्रच विराजेंगे। हमने अब तक व्याख्याग्रन्थ की मुद्रणपूर्वीय प्रति नहीं देखी है। तथापि मुद्रणकैंकर्य को यथाशीघ्र सम्पन्न करने की अभिलाषा जो प्रकट की है हमारे परमाप्त सुहृद्वर श्रीविद्याभास्कर वासुदेवाचार्य स्वामी ने उसकी पूर्ति करने का अपना कर्तव्य निभाने के वास्ते यथामति व यथाशक्ति यह वार्ता लिखी है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख-भाग्भवेत्॥' शुभमेव भूयात् सर्वदा सर्वथा सर्वत्र॥

श्रीरामानुजन

**(श्रीकलियन् वानमामलै रामानुज जीयर स्वामी)**

श्रीमते रामानुजाय नमः  श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः

**अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु रामानुजाचार्य वेदान्तमार्तण्ड यतीन्द्र-स्वामिरामनारायणाचार्यकृपापात्र जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी वासुदेवाचार्य जी महाराज 'विद्याभास्कर'**

**अध्यक्ष**

**कोसलेश सदन धर्मादाय (ट्रस्ट)**

## ।। प्रसादप्रसूनम् ।।

**प्रतिक्षणोत्पन्नकवीन्द्रसंस्तुतिः सुरक्षितस्थावरजङ्गमस्थितिः।**
**अशेषशेषैकगतिर्मतौ च मे चकास्तु नारायणपादयोर्द्युतिः।।**

**लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यमाम्।**
**अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्।।**

लोके तावत् सकलपरमर्षिसमादरणीयापौरुषेयपदकदम्बकरूपा निगमास्तदेकमूलाः स्वर्गादिप्रयोजनकालौकिकोपायताप्रतिपादनपराः स्मृत्याचारपरम्परा यंदधिगमनाय यदद्भुतप्रभाप्रसाराय यदन्तरूर्क्-समुज्जृम्भणाय यदुद्दामदृष्टिविवर्धनाय प्रवर्तन्ते यत्कृते चाग्निष्टोमोक्थ्यषोडश्यतिरात्राप्तोर्यामात्यग्निष्टोमवाजपेयाश्वमेधाहीनसत्रात्मानो महायागा इज्यन्ते गाणपतपाशुपतपञ्चरात्राद्यागमोदिताः सदाचाराश्च गृह्यन्ते प्रहीयन्ते चानादिमायावशोन्मिषितकदाचारास्तदाचरणापादि-तदुरितभियाऽनुष्ठीयन्ते वा शुद्धिविधायिनः प्रायश्चित्तप्रकारास्तत्सर्वं संपरिगृह्य प्रादुर्भूतानां कवितार्किकसिंहश्रीमन्निगमान्तदेशिक-वेङ्कटनाथार्यमहास्वामिनामन्तर्मानसविराजमानश्रीमद्भगवत्तत्परिच्छदरति-विशेषपरिणामभूतं **श्रीमद्भगवत्पादुकासहस्राभिधं** श्रीनारायणवक्षः-स्थलविभ्राजमानकौस्तुभाख्यमहामणिसध्रीचीनं विश्वविश्रुतं काव्यमधिगम्य मोमुद्यते सहृदयो लोकः।

लोकातीतवर्णननिपुणस्य कवेस्तत्कृतिचर्वणपरायणस्य सहृदयस्य चोभयोरपि प्रयासो लोकं भव्यालोकं विधत्ते। एतदेव कविसहृदयाख्यं

वस्तु कारणनिरपेक्षापूर्वपदार्थाविष्कारकत्वेन निजरसनिर्झरमहिम्ना ग्रावप्रख्यस्य जगतः सारवत्तासंपादकत्वेन सारस्वततत्त्वरूपतया व्यपदिश्यत आचार्यैः। शक्तिनिपुणताव्युत्पत्तिसमुपेतस्य सत्कवेर्यत् सचमत्काररचनानिष्पादकत्वं दरीदृश्यते तत् सहृदयतोन्मेषं विनैवेति नैतत् संभावयितुं शक्यते। कविरपि लोकोत्तरवर्णनाकर्णनकाले सहृदयो भवत्येव, अथवा तत्सहृदयताया एवैष प्रभावो यदसौ तथाविधं काव्यसंपत्संभारं प्रस्तौति। दृश्यते सर्वमेतत् प्राचेतसमहर्षिव्यास-महाकविकालिदासप्रभृतिषु रसस्यन्दिसूक्तिविधायिषु महापुरुषेषु। के च ते सहृदया यद्बलेन सत्काव्यप्रसारस्तत्तत्त्वोद्भावनञ्च भवतीत्य-पेक्षायामभिनवगुप्तपादाचार्या आहुः 'येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते हृदयसंवादभाजः सहृदयाः।' इति।

एवम्भूतसहृदयतोद्भावने श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासादिसच्छास्त्र-प्रतिपादितधर्मानुष्ठानमधर्माद् व्यावृत्तिर्भगवति पुरुषोत्तमे निरुपमा रतिरेव च कारणमित्यहं मन्ये। सहृदयतां विना नास्ति सत्काव्यप्रसर इति प्रागेव निवेदितत्वात् काव्यं प्रत्यपि तदेव कारणमिति ममाध्यवसायः।

मुनौ प्राचेतसे महर्षौ व्यासे तथा कालिदासभारविभवभूतिमाघ-श्रीहर्षप्रभृतिषु महाकविषु यदस्ति रमणीयकाव्यनिदानभूतं तत्सर्वं दृश्यते श्रीमद्भगवत्पादुकासहस्रप्रभृतिलोकोत्तरकाव्यविधायिनि श्रीमद्वेङ्कटनाथार्यनिगमान्तदेशिकस्वामिपदप्रवाले।

**योऽर्थो हृदयसंवादी तस्य भावो रसोद्भवः।**
**शरीरं व्याप्यते तेन शुष्कं काष्ठमिवाग्निना।।**

इत्यभियुक्तोक्तदिशा सरसतापादनसमर्थहृदयसंवाद्यर्थप्रकाशक-शब्दमयत्वमेव काव्यत्वमिति पादुकास्तुतिरूपप्रकृतकाव्यविधायिनाऽ-स्मदाचार्येणापि ध्वनितम्—

श्रीमते रामानुजाय नमः  श्रीवादिभीकरमहागुरवे नमः

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु रामानुजाचार्य वेदान्तमार्तण्ड यतीन्द्र-स्वामिरामनारायणाचार्यकृपापात्र जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी वासुदेवाचार्य जी महाराज 'विद्याभास्कर'
अध्यक्ष
कोसलेश सदन धर्मादाय (ट्रस्ट)

## ।। प्रसादप्रसूनम् ।।

प्रतिक्षणोत्पन्नकवीन्द्रसंस्तुतिः सुरक्षितस्थावरजङ्गमस्थितिः।
अशेषशेषैकगतिर्मतौ च मे चकास्तु नारायणपादयोर्द्युतिः।।

लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्।।

लोके तावत् सकलपरमर्षिसमादरणीयापौरुषेयपदकदम्बकरूपा निगमास्तदेकमूलाः स्वर्गादिप्रयोजनकालौकिकोपायताप्रतिपादनपराः स्मृत्याचारपरम्परा यदधिगमनाय यदद्भुतप्रभाप्रसाराय यदन्तरूर्क्-समुज्जृम्भणाय यदुद्दामदृष्टिविवर्धनाय प्रवर्तन्ते यत्कृते चाग्निष्टोमोक्थ्यषोडश्यतिरात्राप्तोर्यामात्यग्निष्टोमवाजपेयाश्वमेधाहीनसत्रात्मानो महायागा इज्यन्ते गाणपतपाशुपतपञ्चरात्राद्यागमोदिताः सदाचाराश्च गृह्यन्ते प्रहीयन्ते चानादिमायावशोन्मिषितकदाचारास्तदाचरणापादि-तदुरितभियाऽनुष्ठीयन्ते वा शुद्धिविधायिनः प्रायश्चित्तप्रकारास्तत्सर्वं संपरिगृह्य प्रादुर्भूतानां कवितार्किकसिंहश्रीमन्निगमान्तदेशिक-वेङ्कटनाथार्यमहास्वामिनामन्तर्मानसविराजमानश्रीमद्भगवत्तत्परिच्छदरति-विशेषपरिणामभूतं **श्रीमद्भगवत्पादुकासहस्राभिधं** श्रीनारायणवक्षः-स्थलविभ्राजमानकौस्तुभाख्यमहामणिसध्रीचीनं विश्वविश्रुतं काव्यमधिगम्य मोमुद्यते सहृदयो लोकः।

लोकातीतवर्णननिपुणस्य कवेस्तत्कृतिचर्वणपरायणस्य सहृदयस्य चोभयोरपि प्रयासो लोकं भव्यालोकं विधत्ते। एतदेव कविसहृदयाख्यं

वस्तु कारणनिरपेक्षापूर्वपदार्थाविष्कारकत्वेन निजरसनिर्झरमहिम्ना ग्रावप्रख्यस्य जगतः सारवत्तासंपादकत्वेन सारस्वततत्त्वरूपतया व्यपदिश्यत आचार्यैः। शक्तिनिपुणताव्युत्पत्तिसमुपेतस्य सत्कवेर्यत् सचमत्काररचनानिष्पादकत्वं दरीदृश्यते तत् सहृदयतोन्मेषं विनैवेति नैतत् संभावयितुं शक्यते। कविरपि लोकोत्तरवर्णनाकर्णनकाले सहृदयो भवत्येव, अथवा तत्सहृदयताया एवैष प्रभावो यदसौ तथाविधं काव्यसंपत्संभारं प्रस्तौति। दृश्यते सर्वमेतत् प्राचेतसमहर्षिव्यास-महाकविकालिदासप्रभृतिषु रसस्यन्दिसूक्तिविधायिषु महापुरुषेषु। के च ते सहृदया यद्बलेन सत्काव्यप्रसारस्तत्तत्त्वोद्भावनञ्च भवतीत्य-पेक्षायामभिनवगुप्तपादाचार्या आहुः 'येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते हृदयसंवादभाजः सहृदयाः।' इति।

एवम्भूतसहृदयतोद्भावने श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासादिसच्छास्त्र-प्रतिपादितधर्मानुष्ठानमधर्माद् व्यावृत्तिर्भगवति पुरुषोत्तमे निरुपमा रतिरेव च कारणमित्यहं मन्ये। सहृदयतां विना नास्ति सत्काव्यप्रसर इति प्रागेव निवेदितत्वात् काव्यं प्रत्यपि तदेव कारणमिति ममाध्यवसायः।

मुनौ प्राचेतसे महर्षौ व्यासे तथा कालिदासभारविभवभूतिमाघ-श्रीहर्षप्रभृतिषु महाकविषु यदस्ति रमणीयकाव्यनिदानभूतं तत्सर्वं दृश्यते श्रीमद्भगवत्पादुकासहस्रप्रभृतिलोकोत्तरकाव्यविधायिनि श्रीमद्वेङ्कटनाथार्यनिगमान्तदेशिकस्वामिपदप्रवाले।

**योऽर्थो हृदयसंवादी तस्य भावो रसोद्भवः।**
**शरीरं व्याप्यते तेन शुष्कं काष्ठमिवाग्निना।।**

इत्यभियुक्तोक्तदिशा सरसतापादनसमर्थहृदयसंवाद्यर्थप्रकाशक-शब्दमयत्वमेव काव्यत्वमिति पादुकास्तुतिरूपप्रकृतकाव्यविधायिनाऽ-स्मदाचार्येणापि ध्वनितम्—

**निरुन्मादो यद् वा निरवधिसुधानिर्झरमुचो।**

**वचोभङ्गीरेता न कथमनुरुन्धे सहृदयः।।'** इति।

अत्र 'निरवधिसुधानिर्झरमुचो वचोभङ्गीरित्यनेन रसभरित-सन्दर्भरीतेः काव्यत्वमिति काव्यलक्षणमेव निगदितं तैर्यदुपेतं काव्यं काव्यतत्त्वज्ञः सहृदयः परिगृह्णाति। एवञ्च काव्यमार्गे श्रीमद्वेदान्तदेशिकस्वामिपादा ध्वनिकारोद्भावितमेव पन्थानं जगृहुरिति तदीयसकलकाव्यपर्यालोचनेन निश्चीयते। रसरूपतयाऽनश्वरीं प्रतिष्ठामाप्तः सहृदयश्लाघ्यो ध्वन्यमान एवार्थो रामणीयक-संभारसंभिन्नः प्राणभूतस्तिष्ठति यत्र ललितोचितसन्निवेशमनोहरा शब्दार्थयुगली शरीरभूता। अत्र ललितशब्देन गुणालङ्कारपरिग्रह-स्तथोचितशब्देन महाकवीनां रसविषयकौचित्यसंपादनसंरम्भदर्शनाद् रसपरिग्रहश्च द्योत्यते। रसश्च स एव निगदितो यः शब्दसमर्पितैर्हृदय-संवादसुन्दरैर्विभावानुभावव्यभिचारिभिः समुदिताया अनादि-वासनात्मतया प्रागेव निविष्टाया रत्यादिवासनाया अनुरागेणानुरञ्जितेन सुकुमारतरेण स्वसंविदानन्दचर्वणात्मकध्वननव्यापारेण रसनीयो भवति।

अस्मिँश्च पादुकासहस्रे काव्ये पूर्णतया रसभावादिपरिपाको दृश्यते। चमत्कारसारस्यैव काव्यत्वेन चमत्कारस्य च रसालङ्कारान्यतरायत्तत्वेनालङ्काराणां महत्त्वं नापलपितुं शक्यं कविवर्त्मनि। अतएव प्रकृतमहाकविरपि शब्दविच्छित्तिं परिपुष्णन्नेव यथायथमलङ्कारान् योजयति। एवञ्चास्मिन् काव्ये प्रायः सर्वेऽपि काव्यप्रकाराः प्रतिभान्ति। किं बहुना? अस्यैवैकस्य महाभागवतकवितार्किकसिंहस्य काव्यराशिं संगृह्य नैके प्रबन्धग्रन्थाः प्रकाशादिसध्रीचीनाः सम्पादयितुं शक्यन्ते सूरिभिरित्यत्र नास्ति संशय-लेशः। अस्त्येवास्माकं योजना यदस्यैव महाकवेरुदाहरणतया रचनाः संगृह्य महनीयप्रबन्धग्रन्थसम्पादनं भवेद् यदवलम्बनेनास्मत्संप्रदाय-दीक्षिता युवानो व्युत्पत्तिभाजो भवेयुरिति।

श्रीमद्रङ्गनाथभगवत्पादुकामेवाधिकृत्य प्रवृत्तमेतत् काव्यरत्नमिति वर्णनासौकर्याय द्वात्रिंशत्संख्याकाः पद्धतय उद्भावितास्तैः। तत्र प्रस्तावसमाख्याप्रभावपद्धतीरधिकृत्याद्यो भागश्चकास्ति। एवमेव समर्पणप्रतिप्रस्थानाधिकारपरिग्रहाभिषेकनिर्यातनापद्धतिपर्यन्तो द्वितीयः, वैतालिकशृङ्गारसञ्चारपुष्पपरागनादावसानस्तृतीयः, रत्नसामान्यबहुरत्न-पद्मरागमुक्तामरकतेन्द्रनीलबिम्बप्रतिबिम्बकाञ्चनशेषद्वन्द्वसन्निवेशयन्त्रि-कारेखान्तश्चतुर्थः, सुभाषितप्रकीर्णचित्रात्मकः पञ्चमस्तथोपसंहारभूत-निर्वेदफलपद्धतिरूपःषष्ठ इत्याहत्य षोढा विभागः पुनः सम्पद्यते। अपवर्गसाधनतया श्रीमद्भगवत्तत्त्वपुनःपुनरनुसन्धानात्मिका प्रीत्यति-शयरूपा भक्तिरेव श्रुति-स्मृतिप्रभृतिभिः शास्त्रैरवबोधितेति भगवत्स्तुतिमनादृत्य कथमिह कविसहृदयचक्रचूडामणे स्तच्चरण-त्राणस्तुतौ प्रवृत्तिर्जातेति शङ्कायामिदमेवोत्तरं समापतति स्वामिनः प्रियवस्तुनि प्रेमातिशयः स्वामिनमधिकं प्रीणातीति। अथवा पादुकास्तुतिद्वारा श्रीमद्भगवन्माहात्म्यख्यापनमेव संपद्यते तेन च तत्प्रीत्या सकलपुरुषार्थसिद्धिः। सर्वथा सप्रयोजनमेवैतत् काव्यरत्नम्।

भावप्रधानरचनाबाहुल्येऽपि यथायथं प्रतिभाप्रकर्षबलेनालङ्कार-गुम्फनमस्मिन् काव्ये सर्वत्रैव दृश्यते विशेषेणोत्प्रेक्षाच्छटा कालिदासकाव्येष्विवोपमाच्छटा। यथा नादपद्धतौ—

**स्वदते किमिहैव रङ्गनाथो मयि तिष्ठन् यदि वा पदे परस्मिन्।**
**इति पृच्छसि नूनमस्मान् मधुरैस्त्वं मणिपादुके! निनादैः।।**

अत्र श्रीरङ्गायतनं पादुका वैकुण्ठाख्यं पदं वा भगवते रोचत इति पादुका पृच्छतीव स्वैर्निनादैर्भातीत्युत्प्रेक्षा स्पष्टं प्रतीयते। ततश्च पादुकायामागमव्याभिमुख्यकरणेनायत्नसेव्यत्वादादरातिशयात्मकमुत्तररूपं वस्तु व्यज्यते, ततश्च श्रीरङ्गवैकुण्ठापेक्षया व्यतिरेकालङ्कारध्वनिः।

यथा वा—

**दनुतनयनिहन्तु जैत्रयात्रानुकूले**
**शरदुपगमकाले सह्यजामापतन्ति।**

श्रुतिमधुरमुदारं शिक्षितुं ते निनादं
परिहृतनिजवासाः पादुके! राजहंसाः।।

अत्रापि शरदागमनकाले कावेर्यां हंसागमनं पादुकाकलरवाभ्यासार्थमित्युद्भावनादुत्प्रेक्षैव। तेन च हंसरवापेक्षया पादुकानादस्योत्कर्षरूपो व्यतिरेक इत्यलङ्कारेणालङ्कारध्वनिः।

नादपद्धत्यामेव—

भोगाय देवि! भवती मणिपादरक्षे!
पद्मासहायमधिरोप्य भुजङ्गतल्पे।
विश्वस्य गुप्तिमधिकृत्य विहारहीना
वाचंयमा किमपि चिन्तयतीव कार्यम्।।

अत्राप्युत्प्रेक्षालङ्कारेण पादुकायाः श्रीभगवदपेक्षयापि वृस्तृतो जगद्रक्षाभारः प्रतीयत इति तत्प्रभावातिशरूपं वस्तु व्यज्यमानं पादुकाविषयककविनिष्ठरत्याख्यभावमुपस्करोतीत्युत्तमोत्तमकाव्योदाहरणमेतत् संपद्यते।

अनन्तरश्लोकेऽपि—

नित्यप्रबोधसुभगे पुरुषे परस्मिन्
निद्रामुपेयुषि तदेकविहारशीला।
मञ्जुस्वनं विजहती मणिपादुके! त्वं
संवेशमिच्छति परं चरणान्तिकस्था।।

इत्यत्रोत्प्रेक्षाविरोधाभासालङ्कारयोः संसृष्टिस्तथा विशेषणमहिम्ना पत्नीत्वव्यञ्जनात् समासोक्तिरित्यलङ्कारत्रयेणालोकसाधारणात्मकत्वं पादुकाया व्यज्यते। कविप्रौढोक्तिसिद्धव्यञ्जकत्वमत्र निभालनीयम्। एवमन्यान्यपि प्राधान्येन ध्वनिविषयाण्युदाहरणान्यत्र काव्ये सन्ति। तथा च प्रतिप्रस्थानपद्धतौ—

दशग्रीवस्तम्बेरमदलनदुर्दान्तहृदये
विहारस्वाच्छन्द्याद् विशति रघुसिंहे वनभुवम्।

**स्ववात्सल्यक्रोडीकृतभरतशावेव भवती**
**निराबाधां पादावनि! न विजहौ कोशलगुहाम्।।**

अत्र पादुकासिंहीत्वस्याकथनेनैकदेशविवर्तिरूपकमस्त्येव। रघुसिंहस्य वनभूप्रवेशे क्षत्रियोचितस्य विहारस्वाच्छन्द्यस्य हेतुत्वात् पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमपि भासते। तृतीयपादे स्ववात्सल्यक्रोडीकृत-भरतशावेवेत्युप्रेक्षा विराजत एव, अन्यथा कथमिव भगवदेकपरायणा पादुका कोसलगुहां न विजह्यात्। अत्र स्वभक्तान् प्रति पादुकाया सर्वविधरक्षापरत्वं ध्वन्यत इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः।

श्लेषविच्छित्तिमूला अत्र काव्ये शताधिकाः श्लोकाः सन्ति लोकोत्तरचमत्कारविधायिनोऽर्थगाम्भीर्यबहुलाश्च। तथा च मौक्तिकपद्धतौ—

**समाश्रितानामनघां विशुद्धिं त्रासव्यपायं च वितन्वती त्वम्।**
**सायुज्यमापादयसि स्वकीयैर्मुक्ताफलैर्माधवपादुके! नः।।**

अत्र पादुकान्यस्तमुक्ताफलैस्तथा फलरहितैराप्तकामैर्मुक्तपुरुषैः साम्यापादनरूप उपमाध्वनिः श्लेषभित्त्यैव चकास्ति। नूनमेतादृक्-काव्यनिर्माणकौशलं वेदान्तदेशिकस्वामिन एव लोकोत्तरप्रतिभाधनिनः। कुत्रचित्तु बहूनामलङ्काराणां साङ्कर्यं प्रतीयते। तथा हि काञ्चनपद्धतौ—

**कनकमपि तृणं ये मन्वते वीतरागा-**
**स्तृणमपि कनकं ते जानते त्वत्प्रकाशैः।**
**मधुरिपुपदरक्षे! यत्त्वदर्थोपनीतान्**
**परिणमयसि हैमान् देवि! दूर्वाङ्कुरादीन्।।**

अत्र काव्यलिङ्गभ्रमविषमव्याघातादीनामलङ्काराणां साङ्कर्यम्।

अपि च भूतभावने शिवेऽस्य सहृदयकवेर्विशेषतः प्रीतिः प्रतीयते यत् तद्विषयका बहवः श्लोका अस्मिन् काव्ये चकासति। तथा च बहुरत्नपद्धतौ—

बध्नासि रङ्गपतिविभ्रमपादुके! त्वं
मायाकिरातमुकुटे नवबर्हमालाम्।
आकृष्टवासवधनुःशकलैर्मणीना-
मन्योन्यसंघटितकर्बुरितैर्मयूखैः।।

अत्र पादुका महेन्द्रचापसदृशवर्णैर्मायाकिरातस्य शिरसि नवबर्हमालां योजयतीत्युत्प्रेक्षैवातिशयोक्तिगर्भिता। अत्रैव पद्धतौ पञ्चविंशश्लोके पादुकाद्वारा पार्वतीपरमेश्वरयोरेकस्याकारस्यापादनं यदस्ति तन्नूनमेव सहृदयमनांस्यावर्जयति। तथा हि तत्रत्यः श्लोकः—

अन्योन्यबन्धुरहरिन्मणिपद्मरागा
रङ्गेश्वरस्य चरणावनि! राजसे त्वम्।
आत्मोपमानविभवाच्चरितार्थयन्ती
शैलात्मजागिरिशयोरिव मूर्तिमेकाम्।।

अस्यामेव पद्धतावयं श्लोको विशेषतो निभालनीयोऽस्ति—

रङ्गाधिराजपदरक्षिणि! बिभ्रतस्त्वां
गङ्गातरङ्गविमले गिरिशस्य मौलौ।
संवर्धयन्ति महसा तव पद्मरागाः
शैलात्मजाचरणयावकपङ्कलक्ष्मीम्।। इति।

मौक्तिकपद्धतावपि शिवमधिकृत्य बहूनि पद्यानि चकासति। तथा हि—

ये भजन्ति भवतीं तवैव ते मौक्तिकद्युतिविकल्पगङ्गया।
वर्धयन्ति मधुवैरिपादुके! मौलिचन्द्रशकलस्य चन्द्रिकाम्।।

अत्र पर्यायोक्तमलङ्कारः। एवं दशमः श्लोकोऽपि विराजते। अत्रैव पद्धतौ—

कपर्दे कस्यापि क्षितिधरपदत्रायिणि! तथा
मुहुर्गङ्गामन्यां क्षरति तव मुक्तामणिमहः।

मुधारम्भः कुम्भस्थलमनुकलं सिञ्चति यथा
निरालम्बो लम्बोदरकलभशुण्डालचुलकः।।

अत्र द्वितीयपादेऽतिशयोक्तिस्तदुत्थापितश्च भ्रान्तिमानलङ्कारः। भगवाञ्छिवः सदैव श्रीरङ्गनाथपादुकां शिरसा वहतीति वस्तु व्यज्यमानं पादुकायां कवे रतिं पुष्णातीति सहृदया विभावयन्तु। हृद्गतभावाभिव्यञ्जनक्षमां शब्दसंयोजनात्मिकां संघटनामपि न विस्मरति महाकविः। दुर्लभमिदं सामरस्यमस्मिन् काव्ये दृश्यते। दिङ्मात्रमुदाह्रियते—

विलासैः क्रीडन्तो निखिलजनचेतांसि विविधा
विहारास्ते रङ्गक्षितिरमणपादावनि! मुहुः।
विगाहन्तामन्तर्मम विलुठदन्तर्मणिशिला-
खलात्कारव्याजक्षरदमृतधाराधमनयः।।

अत्र रचनानुप्राणितः कविनिष्ठपादुकाविषयको भावः प्राधान्येन व्यज्यते।

श्रुतिश्रेणीस्थेयश्रुतिसुभगशिञ्जामुखरितां
भजेम त्वां पद्मारमणचरणत्रायिणि! परम्।
न मुद्रानिद्राणद्रविणकणविश्राणनदशा-
विशालाहङ्कारं कमपि घनहुङ्कारपरुषम्।।

अत्र हेतुरलङ्कारः। क्षुद्रसेवाऽभावेन कार्येण सह पादुकासेवारूपस्य कारणस्य प्रतिपादनात्। यथा धनिकानां हुङ्कारे पारुष्यं तथैव तदभिव्यञ्जनक्षमा परुषाक्षरा संघटनाऽपि दीर्घसमासा समुज्जृम्भते। अत्रैव महाकवे र्व्यक्तित्वमपि द्योत्यते यत्सम्पादनाय सकलशास्त्र-समुद्योगः। एतादृगवस्थ एव जनः सर्वविधभौतिकविषयपराङ्मुखः श्रीमद्भगवत्सेवायामधिकारीति प्रतीयते।

कालिदासवत् सरसा पदावली ध्वनिव्यञ्जनक्षममर्थयोजनञ्च भारविवद् भावगाम्भीर्यं माघवद् वर्णनाचातुरी श्रीहर्षवच्छास्त्रीय-सारगुम्फिता बह्वर्थप्रकाशिका नैरन्तर्यनिरवधिप्रसरा नूतनोत्प्रेक्षणक्षमता भवभूतिवद्रसस्यन्दिनी शिखरिणी विराजमाना काव्यचमत्कारदिशाऽपि पादुकासहस्रे सकलविपश्चित्सहृदयानां मनःसु सुतरामद्भुतरसं सञ्चारयति। महाकविरयं भक्त्यतिरेकं समुद्भासयन् दृश्यते। निभालनीयस्तावदयं श्लोकः—

**अहीनात्मा रङ्गक्षितिरमणपादावनि! सदा।**
**सतामित्थं त्राणात् प्रथितनिजसत्त्रत्वविभवा।**
**अविद्यायामिन्याः स्पृशसि पुनरेकाहपदवीं**
**क्रतूनामाराध्या क्रतुरपि च सर्वस्त्वमसि नः।।**

अत्र अहीनः श्रेष्ठ अहीनां सर्पाणामिनस्य स्वामिनः शेषस्य आत्मा स्वरूपं शरीरं यस्याः सा, सत्पुरुषरक्षासम्पादनात् प्रथितःस्वकीयसत्त्राणत्वविभवो यया सा, अविद्यात्मकरात्रेरद्वितीय-दिवसभङ्गीयुता पादुका क्रतुभिर्यागैराराध्यापि क्रतुरूपैवेति श्लेषानुप्राणितेन विरोधालङ्कारेण लोकोत्तरप्रभावं पादुकायाः कविः प्रख्यापयति। कथं क्रतुस्वरूपा पादुकेति श्लेषेणैव समाधीयते— अहीनः 'अह्नः खः क्रतौ' इति पाणिनीयस्मृत्या गणयागः स्वरूपं यस्याः सा, प्रथितः स्वस्य सत्त्रयागस्य विभवो यया सा, एकाहः साद्यस्क्रापरनामधेयज्योतिष्टोमविकारभूतो यागस्तस्य पदवीं मार्गं स्पृशति पादुका एवञ्च तस्याः क्रत्वात्मकत्वमप्ययत्नसिद्धं भवति। रत्यात्मको भावस्तु प्राधान्येन स्फुरति। एवं बहवः श्लोका अत्र काव्ये सन्ति ये विदुषां मनांस्यावर्जयन्ति।

श्रीमद्वेदान्तदेशिकस्वामिनां सकलकाव्यालोकनेन कोऽप्यनुमातुं-शक्नोति यदेभिः स्वस्मात् प्राक्तना सर्वेऽपि काव्यप्रबन्धाः-पठितास्तथापि महाकविकालिदास एवैतेषां काव्याध्वनि

परमादर्शभूतस्तिष्ठति यतस्तस्य काव्यस्य छायाऽत्र काव्ये क्वचिद् दृश्यते। तथा हि अयं श्लोकः—

**रम्यालोका ललितगमना पद्मरागाधरोष्ठी**
**मध्ये क्षामा मणिवलयिनी मौक्तिकव्यक्तहासा।**
**श्यामा नित्यं हरितमणिभिः शार्ङ्गिणः पादरक्षे!**
**मन्ये धातुर्भवसि महिलानिर्मितौ मातृका त्वम्।।**

(प्रकीर्णपद्धतौ, ६८)

अत्र—

**तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी**
**मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।**
**क्षोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां**
**या तत्र स्याद् युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।।**

इत्यस्य मेघदूतपद्यस्य छाया दृश्यते। अत्र को हेतुरित्यपेक्षायां महाकविकालिदासं प्रति श्रद्धातिशय एवैतेषामित्युत्तरमायाति। अन्यथा सत्यप्यपारकाव्यविभवे कथमिव तदीयच्छायां गृह्णीयुरेत इति। तच्छायासत्त्वेऽपि ध्वनेः समाश्रयणात् श्लेषभित्त्या वा सर्वथा नूत्नत्वमापादयन्तः पादुकास्तुतिकाराः स्वस्य महाकवितल्लज्जत्वं प्रथन्त एवेति सुधियः प्रमाणम्।

अस्मिन् काव्ये सन्ति तथाविधानि परःशतानि पद्यानि यानि सकलशास्त्रतत्त्वसमालोचनमन्तरेण नैव लब्धप्रसराणि।

**प्रत्यङ्मयस्य हविषः प्रणवेन देवि!**
**प्रक्षेपणाय परमार्थविदां मुनीनाम्।**
**प्राज्यां मुकुन्दचरणावनि! पद्मरागैः**
**पर्यायपावकशिखां भवतीं प्रतीमः।।**

अद्भुतः प्रयासोऽयं श्रीवेदान्तदेशिकस्वामिनाम्। यथेन्द्राद्युद्देशेन मन्त्राभिधानपुरःसरं त्यक्तस्य हविषः प्रतिपत्त्यर्थत्वेन वह्नौ प्रक्षेपो भवति तथैवौङ्कारमन्त्रेण परमात्मशेषतया न्यस्तभरस्य प्रत्यगात्मनोऽपि तत्त्वेन प्रक्षेपणाय पद्मरागवती पादुका आहवनीयाग्नित्वेनोद्भाव्यते। द्वन्द्वपद्धतौ श्रीनारायणचरणकमलयोः समासक्तयोः पादुकयोः समागमस्योद्भावनं परापरविद्यात्मत्वेन यदस्ति तच्छास्त्रीयदृष्टिं विना न संभवति। अस्मन्नये भगवान् श्रीपुरुषोत्तम एव शेषित्वेन स्वीक्रियते। तदेव भगवतः शेषित्वं निगमा 'एकमेवाद्वितीयं नेह नानास्ति किञ्चन इत्यादिना द्रढयन्ति। एवञ्च जीवानां गौरवं भगवच्छेषत्वाधिक्य-संपादनेनैव सम्भवति यत्राहङ्कारादिकस्य नास्ति संश्लेषः। एतद्गभीरवस्तु विलोकयितुं समाख्यापद्धतौ सप्तमः श्लोको विराजते—

**शय्यात्मना मधुरिपोरसि शेषभूता**
**पादाश्रयेण च पुनर्द्विगुणीकृतं तत्।**
**भूयोऽपि भागवतशेषतया तदेव**
**व्यङ्क्तुं पदावनि! शठारिपदं बिभर्षि।।** इति।

भागवतशेषत्वमन्तरेण भगवच्छेषत्वस्य संभावनैव नास्ति। भागवतशेषत्वमेव द्योतयितुं पादुका शठकोपपदं बिभर्ति। परमभागवतो हि श्रीशठकोपसूरिः। सम्प्रदाये दासानुदास इति समख्यैतन्मूलैवेति विभावयामि। सर्वथा लोकोत्तरप्रतिभाप्रकर्षवशोन्मिषिता अत्र सर्व एव श्लोकाः सन्ति। तदवलोकनेन स्वामिवर्यदेशिकपादानां मस्तके श्रीमतो भगवतः करकञ्जनिपतनमभूत् आहोस्वित् ध्रुवस्य वदन इव तदीयवदनाम्बुरुहे पाञ्चजन्यस्पर्शः समजनि किं वा वाग्देवता ब्रह्माणं त्यक्त्वा तद्वदनमधिरूढेति निश्चेतुं विमूढमिव मम चेतो भवति। कथमन्यथैतादृक्काव्यप्रसरो भवेत्। सौभाग्यमस्ति सहृदयसमाजस्य यदेतादृक् काव्यरत्नं भुवि चकास्ति।

अनुपमस्याप्यस्य काव्यग्रन्थस्य दक्षिणे यथा प्रचारो न तथोत्तरदेशे। श्रीश्रीनिवाससूरिविहितया संस्कृतटीकया सह दाक्षिणात्यभाषायां भावार्थप्रकाशोन्मुखा व्याख्या:सन्ति:। उत्तरदेशेऽपि हिन्दीव्याख्यासंवलितस्यास्य काव्यरत्नस्य प्रकाशनं भवेदिति सकलसहृदयभक्ततल्लजानां गूढतमोऽभिलाष आसीत्। परमेशकृपया श्रीरङ्गरामानुजाचार्यसत्प्रेरणया च मदीयमानसे मनोरथानोकहः प्रावर्धत विराजतामयमप्रतिमः काव्यग्रन्थो हिन्दीव्याख्यासंवलित इति। अस्मदशेषकृपाभाजनश्रीमद्भगवच्छेषभूतः कृष्णनारायणाचार्या-परनामधेयश्रीकमलाकान्तत्रिपाठिमहाशयो मन्नियोगं विपुलतरप्रसाद-पिण्डमिव सादरमङ्गीकृत्य व्याख्यां विधातुं प्रारभत। सर्वोऽपि भारोऽस्यैवोपरि न परिपतेदिति सम्पादनभरमहं स्वीकृतवान्। इदानीं सर्वभूषाविभूषितविग्रहः कमनीयो वर इव कन्यापितुः प्राङ्गणं पादुकासहस्राभिधानः काव्यग्रन्थोऽयं सहृदयभक्तशिरोमणिमहार्घ-मणिनिकरं सस्पृहं विशतीति मदीये चेतसि विपुलतमं प्रमोदझरं निश्च्योतति। ममैव किम्, सकलस्यैव लोकस्य मुदावह एवैतत्—काव्यसमुन्मेषः। प्रातःस्मरणीयपदपङ्कजश्रीकाञ्चीप्रतिवादिभयङ्कर-मठाधीश्वरश्रीमद्रामानुजसत्संप्रदायाचार्यजगद्गुरुगादिस्वामिश्रीमच्छ्रीनिवासा-चार्यस्वामिपादानां शुभाशंसनं पीयूषवर्षणमिवास्मान् प्रपन्नजनान् प्रीणाति। श्रीमद्रामानुजसम्प्रदायमेरुभूतस्वामिपादपदपङ्कजयोः सर्वतोभावं प्रणिपत्य कृतकृत्यमिवात्मानमनुभवामि। अतः परं श्रीवानमामलैमठ-नानुगुनेरीस्थितश्रीकलियन्वानमामलैरामानुजतोताद्रिजीयरस्वामिपादानां मङ्गलाशासनवार्ताऽभिनन्दमपि प्राप्तमिति वत्से धेनोरिव तदीयवात्सल्यततिरस्मासु सुधां क्षरन्ती हर्षनिर्भरमानसानस्मान् करोति। श्रीमत्तोताद्रिस्वामिपदप्रवालयो भूयोभूयः साष्टाङ्गप्रणतयोऽस्माकं समुल्लसन्तु। उद्योगभूमिकां श्रीरामानुजसम्प्रदायधुराञ्च वहतो **वैष्णवतल्लजस्य श्रीवासुदेवसोमानीमहोदस्या**त्मजो निजपितुरेवादर्श-मुपसंगृह्णन् विराजमानो विलोक्यते श्रीरङ्गनाथ**सोमानीमहोदयः**। अस्य

पादुकासहस्राभिधानस्य काव्यरत्नस्य प्रकाशनभरं स्वीकृत्यासौ नूनमेवाखिलब्रह्माण्डनायकस्य श्रीमन्नारायणस्य भगवतोऽशेषकृपा-भाजनतामुपैति। सर्वप्रकारं तदीयकुलं सहस्रशाखीभवत् पादुकाप्रासात् प्रवर्धतामिति भगवन्तं प्रार्थये। अन्ये च श्रीभाष्यकारश्रीमद्भगव-द्रामानुजसम्प्रदायसमृद्धिं विदधानाः प्रेष्ठतमा जगद्गुरवः प्रपत्तिपरायणाः साधवश्च सन्ति तान् प्रत्यपि पूर्णतः कृतज्ञोऽस्ति। सर्वेषामेव मनसि सभाषाव्याख्यपादुकासहस्राख्यसत्काव्याविर्भावं प्रति कौतुकं सकौतुकं विराजत इति सर्व एवात्मनि कृतकृत्यतामनुभवन्तः श्रीमद्भगवन्नाराय-णप्रसत्तिं प्राप्नुवन्त्विति

**बद्धहरिपादयुगलं युगलं तपनीयपादुके! युवयोः।**
**मोचयति संश्रितानां पुण्यापुण्यमयशृङ्खलायुगलम्।।**

इति सूक्तिं संस्मरन्।

श्रीभगवतश्चरणयोरेवात्मानं विनिवेद्य विरमामि।

भवदीय एव

[signature]

।।विजयते श्रीबालकृष्णप्रभुः।।

।।श्री यदुनाथमहाप्रभुः प्रसीदतुतमाम्।।

**अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरुश्रीमद्विष्णुस्वामिवल्लभाचार्य-महाप्रभुसंप्रदायवैष्णवाचार्यमोटामन्दिरगादीपतिसोमयाजी षष्ठपीठाधीश्वर गो. श्रीवल्लभरायजी महाराजश्री-सूरत**

# शुभाशंसनम्

कवितार्किकसिंहश्रीवेदान्तदेशिकस्वामिप्रणीतः पादुकासहस्रनामकः छन्दोबद्धो ग्रन्थो निरतिशयचमत्कारपूर्णो वरीवर्ति। तदयं ग्रन्थो न केवलं काव्यात्मकः किन्तु वेदवेदान्ततत्त्वप्रकाशको भक्तिरसाप्लावितश्च।

श्रीभगवदवतारचरित्रेषु पादुकामाहात्म्यं वाल्मीकिरामायणादिषु स्फुटतरं समुपलभ्यते। यद्यपि साक्षाद्भगवदनुपस्थितौ तत्प्रतिनिधित्वेन पादुकाप्रदानं भक्तेभ्यो भगवतैव कृतमित्यापाततः प्रतिभाति तथापि सूक्ष्मेक्षिकया विचारे क्रियमाणे भक्तानां निरतिशयस्नेहाधिक्येन तत्र भगवदभेदबुद्धेरतिप्रबलत्वाद् भक्तवत्सलो भगवान् भक्तमनोरथपूर्तये साक्षादेवाविर्भवति स्वानुभावञ्चानुभावयतीति भक्तानां स्वानुभवसिद्धः सिद्धान्तः। तथा च भक्तिरहितात्मनां पादत्राणादिरूपत्वेन भवतु पादुकाबुद्धिः श्रद्धावतां वा भगवत्प्रतिनिधित्वेन बुद्धिः परन्तु भक्तिपूर्णान्तःकरणवतां कृते तु साक्षाद्भगवद्रूपत्वमेव। तेषां तद्रूपेणैव सर्वोऽपि व्यवहारो भगवतोऽपि तथा भक्तोद्धारार्थं स्वानुभवानुभावनेन भक्तकृतार्थीकरणचरित्रं भक्तैरनुभूयते।

अत एव पादुकां सेवमानानां भक्तानां तत्र भक्तिमार्गानुसारेण नानाविधोपचारादिरूपः सर्वोऽपि व्यवहारः संगच्छते। अन्यथा पादुकानां चरणसम्बन्धप्राधान्येन चरणोचितोपचार एव संगतो भवेत्, न तु तत्र ललाटोचिततिलकाद्युपचारा मस्तकोचितकिरीटाद्युपचाराः कण्ठोचितहार-

मालाद्युपचारा नानाविधभोगसमर्पणादर्शविलोकनादिविविधभक्ति-मार्गीयोपचाराः संगच्छेरन्।

पादुकासु भक्तिमार्गीयभाववतां साक्षाद्भगवद्बुद्धिरेव स्थिरीभूता तिष्ठति, अत एव श्रीभरतस्य साक्षाच्छ्रीरामवदेव सर्वोऽपि व्यवहारो राज्यसंचालनादिरूपोऽपि।

अत्र विचारकाणामेकः प्रश्नो भवितुमर्हति यत् तत्र यदि साक्षाच्छ्रीरामबुद्धिः श्रीभरतस्यासीत् तदा किमर्थं श्रीरामप्रतीक्षादिकम्? तत्र पादुकानां श्रीरामाभेदेन सेवनेऽपि तत्प्रतीक्षादिना न तत्र साक्षाद्रामरूपत्वं न वा तत्र रामाभेदबुद्धिरिति समाधानं वक्तुं शक्यम्। पादुकानां श्रीरामाभिन्नत्वेऽपि तत्र तदभेदबुद्धेश्चापि विद्यमानत्वेऽपि विरहविकलानां भक्तानां बहिःप्राकट्यमेवाभिलषितम्। एषैव भावना सर्वत्र विरहव्याकुलानां तच्चरित्रेषु समनुभूयते। यथा व्रजसीमन्तिनीनां स्वप्रियतमविरहावस्थायां हृदये प्रियतमानुभवेऽपि भगवतः बहिःप्राकट्यमेवाभिलषितम्। अत एव—'सखे दर्शय सन्निधिमित्यादिवचांसि संगच्छन्ते। एवमेव श्रीभरतविषयेऽपि ज्ञेयम्।

'यस्य देवे परा भक्ति र्यथा देवे तथा गुराविति श्वेताश्वतरोक्तदिशा गुरुपादुकासु साक्षाद्गुर्वभेदबुद्धिर्गुरुबुद्धिरपि भक्तैर्विधीयते।

तदयं महान् प्रमोदविषयो यत् पादुकासहस्रनामग्रन्थ-स्यास्मत्सुहृद्वर्यैः श्रीमज्जगद्गुरुरामानुजाचार्यैः श्रीकोसलेशसदन-पीठाधीश्वरैः श्रीमद्वासुदेवाचार्य 'विद्याभास्कर'स्वामिभिः संपादितस्य तथा तच्छिश्यश्रीकृष्णनारायणाचार्योपनामश्रीकमलाकान्तत्रिपाठि-महोदयेन विहितहिन्दीव्याख्यया विभूषितस्य प्रकाशनं परमलोकोपकारकं भविष्यतीति शुभम्—

गो० श्रीवल्लभशास्त्री

# पादुकासहस्रपारायणफलम्

कवित्वप्रौढिकाङ्क्षायां पाठ्या प्रस्तावपद्धतिः ।
सूरिसूक्तिरसास्वादं समाख्यापद्धतिर्दिशेत् ।।१।।

प्रभावपद्धतिः सेव्या प्रभुत्वोन्नतिवाञ्छने ।
अपवादपरीहारः स्यात् समर्पणपद्धतिः ।।२।।

प्रेप्सितं लम्भयेत् पुंसः प्रतिप्रस्थानपद्धतिः ।
अपेक्षितेऽधिकारी स्यात् अधिकारपरिग्रहात् ।।३।।

सुभिक्षमभिषेकात् स्यात् दानं निर्यातनाफलम् ।
वन्दिशृङ्गारतो भोगी सञ्चाराद् यात्रिके सुखम् ।।४।।

पुष्पात् पुष्पार्चनं शक्यं परागादपरागता ।
वादव्याख्यानसंगीतदाक्ष्यदा नादपद्धतिः ।।५।।

रत्नस्वर्णादिलिप्सूनां रत्नपद्धतयः शुभाः ।
पुत्रादिलाभो बिम्बात् स्यात् शेषात् श्रीकान्तशेषता ।।६।।

विवाहो द्वन्द्वपद्धत्या सन्निवेशात् सुरूपता ।
यन्त्रिका भूषणं दद्यात् रेखा लेखनकौशलम् ।।७।।

फलं सर्वं प्रकीर्णात् स्यात् चित्रात् स्यात्तु विलक्षणः ।
वैराग्यभाक् स्याद् निर्वेदाद् मुक्तिभाक् फलपद्धतेः ।।८।।

श्रीपादुकासहस्रस्य नित्यं पारायणे रताः ।
सर्वसम्पत्समृद्धाः स्युर्गुरुश्रीशप्रसादतः ।।९।।

श्रीरङ्गनाथश्रीदिव्यपादुकाभ्यां नमो नमः ।
वेदान्तदेशिकश्रीमत्पादुकाभ्यां नमो नमः ।।१०।।





# ‘पादुकासाहस्त्री’

## श्रीवैष्णवधर्मसंस्थापन का प्रयत्न

**विशिष्टाद्वैतदर्शन**—वैदिक दार्शनिक विचारधाराओं का केन्द्रबिन्दु **ब्रह्म** है। सामाजिक, आर्थिक जीवन एवं व्यवहार का केन्द्रबिन्दु **धर्म** है। कुलधर्म जातिधर्म राष्ट्रधर्म एवं विश्वधर्म का परमवैज्ञानिक विवेचन स्मृतियों पुराणों रामायणों एवं महाभारत में विस्तार से परमाप्त मन्त्रद्रष्टा महर्षियों द्वारा किया गया है। प्रवृत्तिमार्ग की जीवनयात्रा को वेदैकवेद्य ब्रह्मानन्दमहासमुद्र के तरङ्गरूप में परिणत करने में ही मानव की सफलता है, एतदर्थ वर्ण एवं आश्रम धर्मों का विधान है। ‘धर्म अर्थ काम’ मोक्ष नामक पुरुषार्थ हैं। **अर्थ काम एवं मोक्ष का मूल धर्म है। धर्म ही त्रिगुणात्मक पञ्चतत्त्वात्मक चराचर चातुर्वर्ण्य का मूल आधार है। ‘धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा’। जैसे अविद्या की विद्या द्वारा अज्ञान की ज्ञान द्वारा, निवृत्ति होती है वैसे ही अधर्म की, पाप की निवृत्ति धर्म द्वारा हो जाती है–‘धर्मेण पापमपनुदति’।**

द्विविध कर्म, प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों ही का चरमपर्यवसान भगवत्प्रीतिहेतुक है। काम्यनिषिद्धकर्मवर्जनपुरःसर नित्यनैमित्तिक कर्मानुष्ठान भगवच्चरणपङ्कजसमर्पण की मानसिकता से सम्पादित करने से भगवत्कृपा होने पर परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है। **‘आत्मदर्शन’ ही परमपुरुषार्थ है। ‘अयं तु परमो धर्मो यद् योगेनात्मदर्शनम्’।**

उपनिषद् अनादि अपौरुषेय शब्दराशि है। उसमें श्रवण मनन एवं निदिध्यासन को आत्मदर्शन का अव्यर्थ राजमार्ग घोषित किया गया है। आद्यशङ्कराचार्य का दर्शन निर्विशेषब्रह्मवाद के रूप में प्रतिष्ठित है। विशिष्टाद्वैत दर्शन में शंकराचार्य के ‘जगन्मिथ्यात्व’ का खण्डन करते हुए, जीवन में कर्म के महत्व का प्रतिपादित किया

गया है। इस दर्शन में जगत् को वास्तविक, वर्णाश्रमधर्म को अनिवार्य और भक्ति को मोक्ष का साधन माना जाता है। 'तत्त्वमीमांसा' में यह दर्शन भी अद्वैतवादी है। तदनुसार 'संसार में कोई भी तत्त्व निर्विशेष नहीं है। ब्रह्म भी 'जीव एवं जगत्' अर्थात् भोक्तृ-भोग्य विशिष्ट होने से सविशेष है। श्रुति भी कहती है— 'पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्'। सम्पूर्ण वक्तव्य सविशेषविषयक ही होते हैं। यदि ब्रह्म को निर्विशेष या निर्गुण माना जाय तो श्रुति के वाक्य उसका ज्ञान नहीं दे सकेंगे। ब्रह्म या ईश्वर की सत्ता प्रत्यक्ष एवं अनुमान से असिद्ध है। ब्रह्मविषयक ज्ञान श्रुति से ही सम्भव है। निर्विकल्पक प्रत्यक्ष का विषय भी 'निर्विशेष' नहीं होता। निर्बीजसमाधिजन्य निर्विकल्पकज्ञान भी सविशेष ही होता है र्निविशेष नहीं। किन्तु यह सविशेष ज्ञान भी शब्द से कथित नहीं हो सकता। निर्विशेषाद्वैतवादी 'आत्मा को ज्ञानाभिन्न, ज्ञानस्वरूप मानते हैं। किन्तु विशिष्टाद्वैतदर्शन में 'आत्मा' ज्ञाता है, वह धर्मभूतज्ञान से सहचरित रहता है। आत्मा स्वतः तो 'अणु' है किन्तु तद्धर्मभूत ज्ञान विभु है। मनोदशाएँ ज्ञान, सुख, दुःख आदि धर्मभूत ज्ञान के विकार या परिणाम हैं।

भक्तिमार्गीय औपनिषद दार्शनिक सम्प्रदायों में विशिष्टाद्वैतदर्शन ही 'मौलिक' तथा स्वोत्तरभावी भक्तिसम्प्रदायों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसे ही 'श्रीसम्प्रदाय' भी कहते हैं। स्वयं आद्य ज.गु. श्री रामानुजाचार्य अपने दर्शन को 'बोधायनवृत्ति' पर अवलम्बित घोषित करते हैं। उनके कथनानुसार यह दर्शन द्रमिड़, टंक गुहदेव और नम्मालवार की परम्परा का परिषोषक है। वस्तुतः यह सम्प्रदाय 'त्रिंशल्लक्षणवान् भागवतदर्शन तथा अन्यवैष्णवपरम्पराओं को निगमागमसम्मत आधार, तथा दर्शन की वैज्ञानिक भूमिका प्रदान करता है।

निर्विशेषाद्वैतवाद के युग की आवश्यकता के अननुरूप होने के कारण इस्लाम की एकेश्वरवादी एवं बौद्धों के वर्णजातिधर्मनिरपेक्ष

नास्तिवाद के आर्थिक एवं राजनीतिक दमनों दबाओं एवं बर्बर हिंसा को रोकने के लिए सगुण-साकार प्रेमानन्दसुधामहार्णव ही तत्कालीन युगसापेक्ष आवश्यकता थी और भारतवर्ष में बौद्धों एवं इस्लाम के संयुक्त षडयन्त्र को 'शास्त्र' एवं शस्त्र के प्रयोगों से कुण्ठित कर के वैष्णव सन्तों ने वर्णजाति-धर्ममूलक ब्राह्मणादिचाण्डालान्त 'मूल भारतीय मानव समुदाय' के त्रिवर्ग की 'दर्शन दुर्ग' तथा 'धर्म के शस्त्र' से भारत माता की रक्षा की, वह भारत की आर्थिक एवं राजनीतिक परम्परा के भगीरथरथखातावच्छिन्नप्रवाह के शैत्य पावनत्व एवं माधुर्य की प्रतिष्ठा के रक्तरंजित इतिहास में 'सूर्य एवं चन्द्र' के तुल्य अजर एवं अमर है।

'वैष्णवदर्शन एवं आचार' की प्रतिष्ठा से नास्तिकता एवं वर्णाश्रमियों की हिंसा का उग्रवेग स्तम्भित हो गया। दक्षिण में भगवान् रामानुजाचार्य एवं उत्तर में भगवान् रामानन्दाचार्य, पंजाब में गुरुतेगबहादुर सिंह, गुरुगोविन्दसिंह उनके दो अवयस्क पुत्रों जोरावर एवं निहाल सिंह, बन्दाबैरागी आदि के धर्मान्तरणविरोधी बलिदान, बुन्देलखण्ड में प्राणनाथ, छत्रसाल, उत्तरप्रदेश एवं बिहार में तुलसी, सूर, राजस्थान में मीरा, सन्त रविदास आदि की भगवत्सेवा एवं राष्ट्र सेवा से 'भारती' के चीरहरण का प्रयत्न विफल हुआ। भारत का 'ब्राह्मणादि चाण्डालान्त मानव' इन महापुरुषों को प्रातः स्मरणीय मानता तथा स्वीकार करता है। हमारी, रोटी बेटी एवं ईमान की रक्षा में इन महापुरुषों के बलिदान को कभी भी विस्मृत करना घोर कृतघ्नता ही होगी।

वैष्णव राष्ट्र एवं विश्व को भगवान् का शरीर मानता है। जीव भगवान् के शेष हैं। भगवान् ही शेषी हैं। प्राणीमात्र में भगवद्दृष्टि ही वैष्णवता है। परोपकार आस्तिकता, सर्वप्राणिसद्भाव के साथ ही धर्मग्लानि एवं अधर्माभ्युत्थाननिवृत्तिपूर्वक आगमोक्त त्रिंशल्लक्षणवान् सामान्य मानवधर्म को प्राणीमात्र में स्थापित करना श्रीवैष्णव का प्रमुख कर्त्तव्य है। श्रीराम एवं श्रीकृष्ण ब्राह्मणादि चाण्डालान्त जन-

जन के अन्तःकरण में प्रतिष्ठित हैं। ये दोनों ही शब्द ब्रह्मवाचक होते हुए भी दशरथापत्यत्वविशिष्टकौशल्यास्तनन्धय एवं यशोदास्तनन्धय में रूढ़ भी है। ब्रह्म के ये दोनों ही नाम वेदोक्त हैं। इनका रूप लीला धामादि पुराणेतिहास में वर्णित हैं। वाल्मीकि एवं व्यास ने इनके आविर्भाव, लीलाओं तिरोभावादि का सनातन यथार्थ, पुरासत्य एवं ऐतिहासिक सत्य के रूप में वर्णन किया है।

**चरणपादुका का महत्त्व**

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक श्रीराम की उपासना अनादिश्रुति स्मृतिसिद्ध है। सनातन ब्रह्म के श्रीराम रूप में अवतरित होने पर उनकी लीलाओं एवं धाम का भी दिव्यावतरण शास्त्रसिद्ध है। उनके माता-पिता, वाहन, सखा, जन्म-भूमि सरयू आदि वेदोक्त एवं नित्य हैं। स्थूलदृष्टि से अनभिव्यक्त इन वेदोक्त तत्त्वों की दिव्यता का भान सन्तों महात्माओं को समय-समय पर होता ही रहता है।

श्रीमद्भागवत में क्रमिकध्यान की प्रक्रिया का रमणीय निरूपण है—

**सञ्चिन्तयेद् भगवतश्चरणारविन्दम्।**
**वज्रांकुशध्वजसुदर्शनलाञ्छनाढ्यम्।।**

श्रीराघवेन्द्र के वज्रांकुशध्वजसुदर्शनलाञ्छनाढ्य चरणारविन्द बड़े-बड़े योगीन्द्र मुनीन्द्र अमलात्मा विमलात्मा परमहंसों, अब्भक्ष वायुभक्ष, दन्तोलूखली, स्थण्डिलेशय विपिनविहरणपञ्चाननों सन्तों योगियों एवं महात्माओं की युगयुगान्तर कल्पकल्पान्तर के यमनियमासनप्राणायामध्यानधारणादियोग से निगृहीतान्तःकरण पटल पर बड़ी कठिनता से जन्मजन्मान्तर के अनन्तानन्तपुण्यपुञ्जों के उदय के फलस्वरूप निमेषमात्र के लिए ही प्रतिभासित हो सकता है। भगवच्चरणपङ्कज ही अनादिवासनाजन्य कुंण्ठाओं से सर्वथा विनिमुक्त है। वहीं से भागरथी प्रस्फुटित होकर ब्रह्मात्मैक्यादि ज्ञानविज्ञान के अधिष्ठाता देवाधिदेव भगवान् भूतभावनविश्वनाथ के कपर्द में विहार

करती हैं। वहीं से 'शूद्र' योनि की सृष्टि है। हमारे सूरि शठकोप उसी चरणारविन्दसौरभ्य के एक कण हैं। भगवच्चरणपङ्कज की नित्यसहचरी पादुका भी भगवदभिन्नस्वरूपा अत एव दिव्यातिदिव्य है। शुकदेवजी कहते हैं—

'ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपांगमोक्षकामास्तपः समचरन् भगवत्प्रपन्नाः 'सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय तत्पादपंकजमलं भजतेऽनुरक्ता। अतः भगवच्चरणपादुका के भगवत्कृपामयी भरतसमाराधिता होने के कारण ही हमारे कविदार्शनिकसार्वभौम विशिष्टाद्वैतदर्शन के अशेषवाचस्पतिप्रतिम श्रीमद्'वेंकटनाथ' वेदान्तदेशिक ने 'भगवच्चरणपादुका' को अपना सर्वस्व स्वीकार करते हुए भगवान् की चरणपादुका के आधिदैविक दिव्यस्वरूप का तात्त्विक साक्षात्कार करके भागवतोत्तम जीवों के परमकल्याण की वैष्णवोचित मंगलकामना से 'पादुकासाहत्री' नामक भगवद्भावभावित 'भागवतरसप्रधान' काव्यग्रन्थ की रचना की है।

आपने भगवान् श्री राघवेन्द्र की चरणारविन्दपादुका को श्रीवैष्णवसर्वस्व मानकर दिव्य एक सहस्र लघु एवं अलघु वृत्तों में रमणीय वर्णन किया है। 'भागवत रस' प्रधान इस रचना से श्रीवैष्णवों के अन्तःकरण में श्रीराम के प्रति सर्वस्वार्पण की प्रगाढ़ प्रेमभावना सुदृढ़ होगी इसमें संशय नहीं है। भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष की कविताओं की प्रतिस्पर्धिनी वेदान्तदेशिक की काव्यभारती का रसास्वादन सहृदय श्रीवैष्णवों को **रामारमणलम्पट** बनाने में पूर्ण समर्थ है। यह काव्य अप्राकृरसप्रधान काव्यों में उत्तमोत्तम तथा श्रीराम के प्रति अन्यथा भावों के तमस्तोमनिवृत्ति में प्रचण्डमार्त्तण्ड के समान प्रकाशस्तम्भ बने ऐसी ही श्रीवैष्णवसर्वस्वसंजीवनी भगवती विदेहतनया से प्रार्थना है।

गोविन्दाचार्यश्रीरामानुजवैष्णवदास

डॉ० गिरीश दत्त पाण्डेय

**(डॉ. गिरीशदत्तपाण्डेय)**

# श्रीमद्भगवत्पादुकासहस्रकार का संक्षिप्त परिचय

अनेक विपश्चिदभिलषणीय काव्य-नाटक-स्तोत्र-शास्त्रीयप्रकरण ग्रन्थों और रहस्यग्रन्थों के रचनाकार कवितार्किकसिंह श्रीमद्वेदान्तदेशिकस्वामीजी का आविर्भाव काञ्ची में श्रीवेङ्कटतीर्थोत्सव के दिन तेरहवीं शताब्दी में हुआ था। इनके जनक कूटस्थ विश्वामित्रगोत्रीय श्रीअनन्तसोमयाजी थे जिनके पुत्र पुण्डरीकाक्षयज्वा थे। इनके पुत्र अनन्तसोमयाजी वेदान्तदेशिकस्वामीजी के पिता थे और इनकी माता का नाम 'तोतारम्बा' था। जैसा कि कहा है—

**पिता यस्यानन्तसूरिः पुण्डरीकाक्षयज्वनः।**
**पौत्रो यस्तनयस्तोतारम्बायास्तस्य मङ्गलम्।।**

यथासमय इन्होंने अपने पिताश्री से उपनीत होकर अपने मामा आत्रेय रामानुजाचार्य से बीस वर्षों के भीतर ही साङ्ग वेदों के साथ काव्य-नाटक-अलङ्कारशास्त्र और सारे दर्शनों का अध्ययन कर लिया था। जैसा कि कहा है—

**रामानुजार्यादात्रेयाद् मातुलात् सकलाः कलाः।**
**अवाप विंशत्यब्दे यस्तस्मै प्राज्ञाय मङ्गलम्।।**

विशिष्टाद्वैत के संस्थापक श्रीभाष्यकार श्रीमद्भगवद्रामानुजाचार्य से इनके मामा अन्य थे। स्वामीजी के विषय में यह प्रसिद्ध है कि अपने मामाजी के साथ छः वर्ष की अवस्था में उनके गुरु श्रीवरदाचार्य के विद्यालय में श्रीभाष्य का प्रवचन सुनने गये थे जहाँ पर इन्होंने एक विस्मृत प्रकरण का स्मरण करा दिया था। प्रसन्न श्रीवरदाचार्य ने इन्हें इस रूप में आशीर्वाद दिया था—

**प्रतिष्ठापितवेदान्तः प्रतिक्षिप्तबहिर्मतः।**
**भूयास्त्रैविद्यमानस्त्वं भूरिकल्याणभाजनम्।।**

इन्हें अहीन्द्रनगर में भगवान् हयग्रीव की कृपा प्राप्त हुई जिससे ये विरोधियों के मत के विदलन में निपुण हो गये। वहीं पर इनके द्वारा देवनायकपञ्चाशत्, गोपालविंशति आदि ग्रन्थों की रचना हुई। वहाँ से लौटते हुए ये गोपपुर में 'देहलीशस्तुति और सच्चरित्ररक्षा ग्रन्थों की रचना किये। एक समय वेङ्कटाद्रि में जाकर ये 'श्रीनिवास' भगवान् की अर्चना 'दयाशतक' के द्वारा किये तथा पुरुषोत्तम से लेकर वदरिकाश्रम तक दिव्यदेशों में भगवद्विग्रहों का दर्शन करते हुए विचरण करते रहे। पश्चात् काञ्ची में आकर ग्रन्थों का प्रवचन करने लगे। वहीं पर ब्रह्मोत्सव में अन्यान्य मतावलम्बियों को परास्त करके अपने मत को प्रतिष्ठापित किये। श्रीरङ्ग में भी इन्होंने शास्त्रार्थ में विपक्षियों को हराया। इसी समय इन्हें 'वेदान्ताचार्य' की उपाधि प्रदान की गयी। यही शास्त्रार्थ 'शतदूषणीग्रन्थ' के रूप में परिष्कृत हुआ जिसमें शाङ्कर मत का खण्डन है। कुछ समय बाद ये पुनः अहीन्द्रनगर चले गये और वहाँ भी विपक्षियों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। यह शास्त्रार्थ 'परमतभङ्ग' नाम के ग्रन्थ में परिणत हुआ। वहाँ के राजा के द्वारा इन्हें 'कवितार्किकसिंह' की उपाधि प्राप्त हुई। वहाँ से ये पुनः काञ्ची आ गये। राजसम्मान प्राप्त करने के लिए इनको विजनगर के राजा का पत्र प्राप्त हुआ जिसे इन्होंने अस्वीकार कर दिया तथा पाँच श्लोकों में 'वैराग्यपञ्चक' की रचना की। यह यद्भुत श्लोकपञ्चक राजा के लिए उत्तर था। पश्चात् ये यादवाचल में पधारे जहाँ पर श्रीरामानुजाचार्य श्रीभाष्यकार का स्मारक है। 'यतिराजसप्तति' की रचना वहीं हुई। श्रीरङ्ग में पुनः इनका विवादकों से शास्त्रार्थ हुआ, ऐसा सुनने को मिलता है। वहाँ भी इन्हें विजयश्री प्राप्त हुई। संकल्पसूर्योदय की रचना इसी समय हुई।

इनको प्राप्त 'कवितार्किकसिंह' की उपाधि का पता जब डिण्डिम सार्वभौम को चला तो वे पहले विवाद की मुद्रा में आ गये किन्तु उत्तर सुनकर बाद में वे विनयपूर्वक स्वामी जी के शिष्य

बन गये। स्वामीजी को वहीं 'श्रीविष्णुघण्टा' की उपाधि प्रदान की गयी। विष्णुघण्टा के अवतार के रूप में स्वामीजी प्रसिद्ध हैं। १३२९ ईसवीय तक ये विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त का प्रचार करते हुए श्रीरङ्ग में ही रहे।

मलिककाफूर ने १३३६ ई. में उधर आक्रमण किया था। उसके सैनिकों ने श्रीरङ्गमन्दिर को भी लूटा था। मन्दिर के प्रधान-अधिकारी श्रीसुदर्शनसूरि ने श्रीभाष्य और श्रुतप्रकाशिका व्याख्या को रक्षार्थ स्वामीजी के करकमलों में समर्पित कर दिया था। दोनों ग्रन्थों की रक्षा के लिए स्वामी श्रीवेदान्तदेशिकजी यादवाचल में आ गये। सुना जाता है कि स्वामीजी ने उक्त दोनों ग्रन्थों की रक्षा में बहुत कष्ट झेला था।

विजयनगर की राजसभा में विद्यारण्य और अक्षोभ्य नाम के दो महान् पण्डित थे। दोनों में विवाद जब हुआ तब वेदान्तदेशिक स्वामीजी को निर्णायक की भूमिका दी गयी थी। इनका निर्णय कुछ इस प्रकार सुना जाता है—

**असिना तत्त्वमसिना परजीवप्रभेदिना।**
**विद्यारण्यमहारण्यमक्षोभ्यमुनिरच्छिनत्।।**

महाभागवतों की लीला अपरम्पार है जिसे पूर्णतः लिखना सम्भव नहीं। अनेक ग्रन्थों का निर्माण करके और श्रीमद्भगवान् में सब कुछ न्यास करके स्वामीजी १३६९ ई. में वैकुण्ठधाम में प्रस्थान किये।

### श्रीवेदान्तदेशिकस्वामीजी के ग्रन्थ

इन्होंने अनेक शास्त्रों में अनेक ग्रन्थों की रचना की है। मीमांसापादुका और सेश्वरमीमांसा, ये दो मीमांसा के ग्रन्थ हैं। वेदान्त में—१. तत्त्वमुक्ताकलाप, २. सर्वार्थसिद्धि (कलापव्याख्या), ३. शतदूषणी, ४. तत्त्वटीका, ५. न्यायपरिशुद्धि, ६. न्यायसिद्धाञ्जन, ७. परमतभङ्ग, ८. अधिकरणसारावली, ९. अधिकरण-

दर्पण, १०. चकारसमर्थन, ११. इशावास्योपनिषद्भाष्य, १२. गीतार्थसंग्रहरक्षा और १३. तात्पर्यचन्द्रिका (गीताभाष्य की टीका) आदि ग्रन्थ हैं। काव्य में—१. यादवाभ्युदय, २. हंससन्देश, ३. सुभाषितनीवी और ४. पादुकासहस्र तथा नाटक में संकल्पसूर्योदय है। धर्मशास्त्र में भी १. यज्ञोपवीतप्रतिष्ठा, २. आराधनक्रम, ३. सच्चरित्ररक्षा, ४. श्रीपाञ्चरात्ररक्षा, ५. निक्षेपरक्षा, वैश्वदेवकारिका आदि ग्रन्थ हैं। वैद्यकशास्त्र में १. रसभौभामृत और वृक्षभौमामृत ग्रन्थ हैं। शिल्पशास्त्र में 'शिल्पार्थसार' ग्रन्थ है तथा ज्योतिषशास्त्र में भी भूगोलनिर्णय ग्रन्थ इनका है। स्वामीजी ने बहुत से स्तोत्रों की भी रचना की है जिनमें—१. हयग्रीवस्तोत्र, २. दयाशतक, ३. वरदराजपञ्चाशत्, ४. अच्युतशतक, ५. देवनायकपञ्चाशत्, ६. अभीतिस्तव, ७. गरुडपञ्चाशत्, ८. श्रीस्तुति, ९. भूस्तुति, १०. रघुवीरगद्य और ११. गोदास्तुति आदि अनेक स्तोत्र उपलब्ध होते हैं। रहस्यग्रन्थों की रचनायें भी इनकी हैं। द्रविडभाषा में भी इनके साहित्य मिलते हैं।

इनका व्यक्तित्व इतना विशाल था कि हम जैसों के द्वारा उसका गुम्फन सम्भव नहीं। ऐसे महापुरुष के विषय में सोचकर या इनकी रचनाओं में अपनी दृष्टि गड़ा कर हम अपने पूरे जीवन को कृतार्थ समझते हैं। 'श्रीमद्भगवत्पादुकासहस्र' काव्यरत्न के ऊपर जो कुछ श्रम मुझे करने को मिला वह मुझे कृतकृत्य ही करता है। यह सब पूज्यपाद जगद्गुरुश्रीरामानुजाचार्यश्रीकोशलेशपीठाधीश्वर-श्रीस्वामीजी महाराज की महती कृपा मेरे ऊपर है कि मुझ जैसे प्रमादी से उन्होंने श्लाघनीय कार्य करवा लिया। सम्पादन और भूमिका का भार लेकर उन्होंने मुझ पर भूयान् उपकार किया है। काञ्चीप्रतिवादिभयङ्कर पीठ के अधीश्वर श्रीमद्भगवद्रामानुज-सत्सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरुगादीस्वामी प्रातःस्मरणीय श्रीमत् श्रीनिवासाचार्य स्वामिपदप्रवालों का जो आशीर्वाद प्राप्त हुआ है वह

मुझे बहुत कुछ करने की प्रेरणा देता है। उनके चरणकमलों में मेरी साष्टाङ्गप्रणति है। तोताद्रिपीठ के जगद्गुरुरामानुजाचार्य श्रीमत् कलियन् वानमामलैजीयरस्वामीजी ने हृदय से जो आशीर्वाद दिया है वह मुझे अन्तिम अवस्था तक प्रफुल्लित करता रहेगा। निश्चय ही इन महापुरुषों के आशीर्वाद से मेरा जीवन सफल हुआ है। हम कृतकृत्य हैं निगमान्तदेशिक स्वामीजी के पादुकासहस्र को प्राप्त करके। सकल प्रपन्नसमुदाय इसका लाभ लेकर अपने जीवन को धन्य बनाये, ऐसी श्रीभगवान् से कामना है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में **श्रीरङ्गनाथसोमानीजी** का पूरा योगदान है। श्रीमद्रामानुजसम्प्रदाय में दीक्षित आप जगद्गुरुरामानुजाचार्य कोशलेशसदनपीठाधीश्वर श्रीवासुदेवाचार्यविद्याभास्करजी महाराज के विशेष कृपाभाजन हैं। सम्प्रदाय की हर समस्याओं के समाधान में जैसे आपके पिता श्रीवासुदेव सोमानीजी ने तत्परता दिखायी है वैसे ही आराध्य जगद्गुरुओं और गुरुभूत अपने पिता से सारे संस्कारों को आत्मसात् करके अपने अन्यान्य कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए श्रीरङ्गनाथसोमानीजी भी धर्मपथ में अग्रेसर रहते हैं। श्रीमद्भगवद्भागवतों की सेवा में परायण श्रीरङ्गनाथसोमानीजी के ऊपर श्रीरङ्गनाथपादुका की अशेषकृपा प्राप्त होती रहे और सोमानीवंश अपनी सनातनमर्यादा को लेकर चलता हुआ पूरे राष्ट्र को सुरभित करे, ऐसी भगवान् से प्रार्थना है। जगद्गुरुश्रीस्वामीजी के शिष्यों में अग्रगण्य श्रीगोविन्दाचार्य (गिरीशदत्त पाण्डेयजी) की इस महनीय कार्य में अपूर्व भूमिका रही है। इसके लिए उन्हें शतशः धन्यवाद है। अन्त में श्रीजी प्रिण्टर्स के अधिष्ठाता श्री अनूप कुमार नागर जी को भूरिशः धन्यवाद दूँगा जिन्होंने पूरी तत्परता से इस ग्रन्थ को अद्भुत रूप दिया है।

कमलाकान्त त्रिपाठी

**सुधा व्याख्याकार**

## श्रीवासुदेवसोमानी 'जीवनवृत्त'

मौलासर (डीडवाना जनपद) के सोमानीवंश की चार पीढ़ियों से सामाजिक सत्पात्रता और धार्मिक आस्थाओं की कीर्तिपताका एक स्थायी शिखर पर विराजमान है। सोमानीवंश के जहाँ अनेक पुरुष अपने विषय में प्रतिष्ठित एवम् समादृत हुए हैं वहाँ श्रीवासुदेवसोमानी जी की अक्षय्य कीर्ति कुछ विशिष्ट दिक्प्रान्तभागों में इतनी प्रसिद्ध हुई कि उसे प्राप्त करने का अभिलाष हर उदात्त पुरुषों में अङ्कुरित होता रहेगा।

इस वंश का इतिहास पिछली तीन पीढ़ियों से इतना व्यापक हो चला है कि उसका उल्लेख आवश्यक नहीं है। श्रीवासुदेवसोमानी ने श्रीओंङ्कारमल सोमानीजी के पुत्ररत्न के रूप में सन् १९१९ में १८ नवम्बर में जन्म लिया। आपके पितामह का नाम श्रीलक्ष्मीनारायणसोमानी था। आप का जन्मस्थान 'मौलासर' ग्राम यद्यपि अपने अंचलविशेष का एक बड़ा ग्राम है किन्तु यथार्थतः इसकी धार्मिक आस्थाओं का एक निराला कीर्तिध्वज फहराता रहा है। यही कारण है कि जन्मकाल से ही श्रीवासुदेवसोमानीजी को शुभ वैदिक संस्कारों की प्राप्ति हुई। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने ग्राम में ही रही तथा बाद में सन् १९३५-३६ में आपने कलकत्ता के माहेश्वरी विद्यालय में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। यह वही काल रहा जब पूरे भारत में

मुझे बहुत कुछ करने की प्रेरणा देता है। उनके चरणकमलों में मेरी साष्टाङ्गप्रणति है। तोताद्रिपीठ के जगद्गुरुरामानुजाचार्य श्रीमत् कलियन् वानमामलैजीयरस्वामीजी ने हृदय से जो आशीर्वाद दिया है वह मुझे अन्तिम अवस्था तक प्रफुल्लित करता रहेगा। निश्चय ही इन महापुरुषों के आशीर्वाद से मेरा जीवन सफल हुआ है। हम कृतकृत्य हैं निगमान्तदेशिक स्वामीजी के पादुकासहस्र को प्राप्त करके। सकल प्रपन्नसमुदाय इसका लाभ लेकर अपने जीवन को धन्य बनाये, ऐसी श्रीभगवान् से कामना है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में **श्रीरङ्गनाथसोमानीजी** का पूरा योगदान है। श्रीमद्रामानुजसम्प्रदाय में दीक्षित आप जगद्गुरुरामानुजाचार्य कोशलेशसदनपीठाधीश्वर श्रीवासुदेवाचार्यविद्याभास्करजी महाराज के विशेष कृपाभाजन हैं। सम्प्रदाय की हर समस्याओं के समाधान में जैसे आपके पिता श्रीवासुदेव सोमानीजी ने तत्परता दिखायी है वैसे ही आराध्य जगद्गुरुओं और गुरुभूत अपने पिता से सारे संस्कारों को आत्मसात् करके अपने अन्यान्य कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए श्रीरङ्गनाथसोमानीजी भी धर्मपथ में अग्रेसर रहते हैं। श्रीमद्भगवद्भागवतों की सेवा में परायण श्रीरङ्गनाथसोमानीजी के ऊपर श्रीरङ्गनाथपादुका की अशेषकृपा प्राप्त होती रहे और सोमानीवंश अपनी सनातनमर्यादा को लेकर चलता हुआ पूरे राष्ट्र को सुरभित करे, ऐसी भगवान् से प्रार्थना है। जगद्गुरुश्रीस्वामीजी के शिष्यों में अग्रगण्य श्रीगोविन्दाचार्य (गिरीशदत्त पाण्डेयजी) की इस महनीय कार्य में अपूर्व भूमिका रही है। इसके लिए उन्हें शतशः धन्यवाद है। अन्त में श्रीजी प्रिण्टर्स के अधिष्ठाता श्री अनूप कुमार नागर जी को भूरिशः धन्यवाद दूँगा जिन्होंने पूरी तत्परता से इस ग्रन्थ को अद्भुत रूप दिया है।

कमलाकान्त त्रिपाठी

**सुधा व्याख्याकार**

# श्रीवासुदेवसोमानी 'जीवनवृत्त'

मौलासर (डीडवाना जनपद) के सोमानीवंश की चार पीढ़ियों से सामाजिक सत्पात्रता और धार्मिक आस्थाओं की कीर्तिपताका एक स्थायी शिखर पर विराजमान है। सोमानीवंश के जहाँ अनेक पुरुष अपने विषय में प्रतिष्ठित एवम् समादृत हुए हैं वहाँ श्रीवासुदेवसोमानी जी की अक्षय्य कीर्ति कुछ विशिष्ट दिक्प्रान्तभागों में इतनी प्रसिद्ध हुई कि उसे प्राप्त करने का अभिलाष हर उदात्त पुरुषों में अङ्कुरित होता रहेगा।

इस वंश का इतिहास पिछली तीन पीढ़ियों से इतना व्यापक हो चला है कि उसका उल्लेख आवश्यक नहीं है। श्रीवासुदेवसोमानी ने श्रीओंङ्कारमल सोमानीजी के पुत्ररत्न के रूप में सन् १९१९ में १८ नवम्बर में जन्म लिया। आपके पितामह का नाम श्रीलक्ष्मीनारायणसोमानी था। आप का जन्मस्थान 'मौलासर' ग्राम यद्यपि अपने अंचलविशेष का एक बड़ा ग्राम है किन्तु यथार्थतः इसकी धार्मिक आस्थाओं का एक निराला कीर्तिध्वज फहराता रहा है। यही कारण है कि जन्मकाल से ही श्रीवासुदेवसोमानीजी को शुभ वैदिक संस्कारों की प्राप्ति हुई। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने ग्राम में ही रही तथा बाद में सन् १९३५-३६ में आपने कलकत्ता के माहेश्वरी विद्यालय में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। यह वही काल रहा जब पूरे भारत में

असहयोग-आन्दोलन, नमक-सत्याग्रह, वैदेशिक वस्त्रों की होली का अभियान अपने उत्कर्ष पर था। उसी वर्ष से भारतीय वस्त्रोद्योग में वैदशिक वस्त्रों का आयात घटने लगा था और स्वदेशी माल की तैय्यारी में देश की मिलों का उत्पादन एक नये स्वाभिमान को प्राप्त हो रहा था। आपने इन मार्मिक क्षणों में मुम्बई पहुँच कर केवल १८ वर्षों की आयु में 'श्रीनिवासकाटन मिल' के विक्रीविभाग का इन्चार्जभार सम्भाल लिया था। तब तक सोमानीवंश ने इस मिल को खरीद लिया था। पश्चात् यह ग्रुप 'बागड़-सोमानी' ग्रुप के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'फाजिलभाई करीमभाई के मिल को सोमानीग्रुप ने ग्रहण करके भगवान् वेङ्कटेश के नाम से 'श्रीनिवासमिल' नाम दिया ताकि नूतन श्री का विस्तार हो सके। सोमानीपरिवार के करकञ्जों में आते ही वह मिल उल्लेखनीय कृतित्व प्रस्तुत करने लगी।

श्रीवासुदेवसोमानी जी का जीवन जितना ऋजु और सौम्य था उतना ही औद्योगिक क्षेत्रों में भी था। लगभग बन्द हो चली इस मिल में आपने ऐसा प्राणसंचार किया कि मिल-उद्योग के इतिहास में आपके लिए निश्चित रूप से एक नामस्थान स्थायी महत्त्व का रह जाता है। इसी तरह सोमानीवंश ने १९४३-४४ में कैम्बे विजयलक्ष्मी मिल खरीदी जिसके विक्रय की व्यवस्था का भार आपके हाथों में ही आया। अपने पूर्वानुभवों से आपने इस मिल की आर्थिक भित्तियों को दृढ़ करते हुए विक्रयव्यवस्था को आदर्शमय ही नहीं बनाया बल्कि उसमें युगनीतियों के घिसे-पिटेपन का त्याग करते हुए परिष्कृतरूप में नयी नीतियों का भी

प्रचलन किया ताकि मिल के विक्रीव्यवसाय के प्रति गहरा विश्वास व्यापारीजगत् में प्रतिपादित हो। इस मिल का नाम 'शुभलक्ष्मी' रखा गया था। उस समय भी श्रीवासुदेवसोमानीजी विक्रीविभाग के अधिकारी बनाये गये। सन् १९५३ में सोमानीवंश ने मधुसूदनमिल को ग्रहण करके औद्योगिकजगत् में एक चिनौती ही स्वीकार की। इस प्रकार श्रीवासुदेव सोमानी जी ने उक्त तीनों मिलों के सफल संचालन के प्रारम्भिक दौर में सशक्त योगदान दिया।

सन् १९५७ में आपकी कार्यक्षमता को प्रमाणित करने के लिए एक नूतन निकष की प्राप्ति हुई। जब राजस्थान के कोटा में एक बस्ती का निर्माण सरकारी स्तर पर किया जा रहा था तभी सोमानीवंश के हाथ में श्रीगोपाल-इण्डस्ट्रीज की स्थापना की गयी जिसमें आपका सबल हाथ बराबर सक्रिय रहा। आपकी रूई और वस्त्रव्यापार की बुनियादी नीतियों के सन्दर्भ में की गयीं भविष्यवाणियाँ प्रायः सच साबित हुईं। सन् १९३६ से ५७-५८ तक, ३२-३३ वर्षों के इस निर्बाधक्रम में श्रीवासुदेवसोमानीजी का जो उच्चस्तरीय योगदान वस्त्रोद्योग के सफल संचालन के एक परिपार्श्व को परिपुष्ट करने के लिए हुआ है वह मुम्बई के वस्त्रोद्योग में एक उत्कृष्ट परिच्छेद माना जाता है।

विदेशी वस्त्रों के सौ वर्ष पुराने वस्त्रव्यवसाय के स्थान पर स्वदेशी वस्त्र का ताल-मेल बैठाना और सन् १९३० से १९४७ तक अंग्रेजीसरकार के द्वारा प्रचारित विघ्नों का भी नीतिपुरःसर समाहार करना और भारत के स्वतन्त्र हो जाने के बाद राष्ट्रीय सम्मान के समानान्तर भारतीय वस्त्रोद्योग के सम्मान का देश-

विदेशों में प्रसारण करना, इत्यादि कार्यों में जो अग्रणी व्यक्ति हैं उनमें श्रीवासुदेवसोमानीजी का समादृत स्थान है। अपनी इसी उदात्त क्षमता के आधार पर आपको व्यापारिकसंघों में उच्च प्रतिष्ठा के साथ ग्रहण किया गया था। 'ईष्ट इण्डिया कॉटन एसोसिएशन' में आप डाइरेक्टर भी रहे तथा बुलियन एक्सचेंज में 'वाइस प्रेसिडेंट' पद को सुशोभित करते रहे। इसी तरह अन्यान्य भारों का निर्वाह करते हुए श्रीवासुदेवसोमानीजी ने सन् ५७-५८ के आस-पास 'श्रीनिवास' का पूर्ण भार भी ग्रहण किया। आप वस्त्रोद्योग के अतिरिक्त अन्य कतिपय उद्योगों की कम्पनियों में भी डाइरेक्टर मान्य किये गये थे जिनमें 'आसाम हार्डबोर्ड', 'सायट्रिक इण्डिया', 'प्रीमियर कैबल', 'कृष्णाविहारी टी कम्पनी लिमिटेड' आदि प्रमुख हैं।

## धार्मिक व्यक्तित्व

**श्रीवासुदेवसोमानीजी** को अत्यन्त समृद्धभाव से एक विशिष्ट शैली की धार्मिक परम्परा पैतृक विरासत में मिली थी क्योंकि आप अपने पिता श्रीओङ्कारमलजी के ज्येष्ठ पुत्र रहे। इसीलिए मुम्बई में उल्लेखनीय उद्योगपति के रूप में सक्रिय भूमिका का निर्वाह करते हुए निज व्यक्तिगत जीवन में **श्रीरामानुजसम्प्रदाय** की भक्ति को कुछ नवीन पीठिकाओं से समाहृत किया है। चारों पुरुषार्थों में धर्म को ही प्रमुख स्थान देकर आपने जैमिनिमत को ही परिपुष्ट किया है। प्रतिवर्ष तीर्थ-यात्राओं को करते हुए बड़े-बड़े धार्मिक अनुष्ठानों का सम्पादन भी करते रहे। आपने अपने

निजी प्रयासों से कुछ बृहद् धार्मिक आयोजनों का सफलतापूर्वक निर्वाह किया था। मुम्बई के **श्रीवेङ्कटेश्वरदेवस्थान** और **'नारायण बाड़ी'** के ट्रस्टी भी आप मान्य किये गये थे। पूरे भारतवर्ष में यह तथ्य स्थापित हो चुका है कि **श्रीरामानुजसम्प्रदाय** की प्रबलभावधाराओं का प्रवर्तन सोमानी परिवार ने अपने करकञ्जों से ही किया है। सोमानी परिवार का सम्बन्ध विशेषतः दक्षिण में **काञ्चीप्रतिवादिभयङ्करगादिस्थान** से है तथापि उसकी दृष्टि राष्ट्रीय स्तर पर ही रही है। वृन्दावन में **श्रीरामानुजीयदेवस्थान** की विशालता के समकक्ष उत्तर भारत, पंजाब, बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा में कोई देवस्थान नहीं है जिसमें श्रीवासुदेव सोमानी जी 'ट्रस्टी' पद को विभूषित किये थे तथा उसकी परम्परावादी व्यवस्था में एवम् सुचारु जनसेवा की प्रणाली में अनेक नये अध्यायों के क्रम का प्रवर्तन किये थे। आपने अपने पिताजी की स्मृति में **'रङ्गनिवास'** नामक अतिथिगृह का निर्माण भी करवाया था। आपने रामायण के प्रवचनों के क्षेत्र में अभूतपूर्व और अश्रुत परिकल्पनाओं को जन्म भी दिया। सर्वप्रथम सन् १९५५ में आपने मुम्बई में रामायण की एक ऐसी योजना को चरितार्थ कर दिया था जिसकी चर्चा उस समय पूरे भारत में हुई थी तथा सन् १९५९ में अयोध्या में **त्रिदण्डीस्वामीजी** की उपस्थिति में नवरात्रों में **श्रीरामनारायणाचार्यजी** द्वारा वाल्मीकि रामायण का अनुष्ठान हुआ जिसका सर्वत्र स्वागत हुआ। सन् १९७० में आपने मुम्बई में वाल्मीकिरामायण के १०८ प्रवचनों का आयोजन सम्पन्न करवाया। इन सबसे आपकी रामायण के प्रति निविड आस्था का अनुमान होता है।

सन् १९६८ में आपने मौलासर में दो विशिष्ट आयोजन किये तथा अपने पिताश्री की स्मृति में एक **विश्रामगृह** की स्थापना करायी और अपनी सुकन्या कु. ऊषा के नाम से प्राथमिक विद्यालय का उद्घाटन कराया जहाँ श्रीमद्भागवतकथा और श्रीलक्ष्मीनारायणयज्ञ भी सुसम्पन्न हुआ।

श्रीवासुदेवजी ने संस्कृतविद्या के प्रचार-प्रसार में भी नियमितपरिपूर्ण सहयोग भी प्रदान किया था। वाराणसी में श्रीरामानुजसंस्कृतमहाविद्यालय, वृन्दावन में श्रीरङ्गलक्ष्मी महाविद्यालय, प्रयाग में श्रीरामदेशिक, अयोध्या में श्रीत्रिदण्डिदेव संस्कृत महाविद्यालय, पितृस्थान मौलासर में श्रीसत्यनारायण संस्कृत महाविद्यालय आदि अनेकों महाविद्यालयों में आपका संरक्षण नियमतः पहुँचता रहा है। श्रीवासुदेव सोमानी जी के जीवन की विशिष्टता इतनी गौरवशाली रहा है जिसका पूर्णतः उल्लेख करन्रा दुःशक है। धर्म के विकास में आप निरन्तर जागरूक रहे हैं।

आपका शुभ विवाह रतनगढ़ में लाहोटी वंश में श्रीहरिबख्शजी लोहाटी की सुकन्या श्रीमती केसरदेवी के साथ सन् १९३६ में हुआ था। इस समय रतनगढ़ का यह लाहोटीवंश अपनी सुदक्ष धनाढ्यस्थिति के कारण 'बीकानेर बैंक' कहलाता था। श्रीमती केसरदेवी जी ने अपने पति के धार्मिक जीवन में नियमतः यथाशास्त्र पूरा हाथ बटाया है। आपकी यात्राओं में वे सदा साथ रहती थीं।

श्रीवासुदेवसोमानी जी का **जगद्गुरुरामानुजाचार्य वेदान्त-मार्तण्डश्रीरामनारायणाचार्यजी** के साथ जैसी घनिष्ठता थी वैसी ही घनिष्ठता इस समय उनके सुयोग्य तनय **श्रीरङ्गनाथसोमानी** जी की **जगद्गुरुरामानुजाचार्य स्वामी वासुदेवाचार्य 'विद्याभास्कर' जी महाराज** के साथ है। **श्रीरङ्गनाथसोमानीजी** अपने पिताजी की कीर्तिपताका का वैसे ही वितान कर रहे हैं। आपकी सुकन्यायें विमला और कान्ता पूर्णतः विदुषी और धार्मिक क्रियाकलापों में अग्रसर हैं। आपका कुलवृक्ष श्रीमद्भगवन्नारायण की कृपाकल्प-पादपलता से प्रत्येक दृष्टि से उन्नत एवम् प्राशस्त्यसमन्वित है। वह उत्तरोत्तर बढ़ता रहे, ऐसी प्रभु से कामना भी सभी की है।

कमलाकान्त त्रिपाठी

# विषय-सूची

●

# व्याख्याकारीयमङ्गलाचरणम्

आभ्यन्तरे गतवतीन्तु वसुन्धरायाः
सीतां विलोक्य किल यो भृशमारुरोद।
तां वै विहाय चरमां पदवीञ्च नैच्छत्
तं रामचन्द्रमहमत्र मुदा स्मरामि।।१।।

चित्ते न यस्य ययुरल्पतरावकाशं
श्रोणीभरालसविमुग्धगतास्तरुण्यः।
यो जानकीं हृदि निधाय ततान धर्मं
तं रामचन्द्रमहमत्र मुदा स्मरामि।।२।।

यद्भक्तिभूतिविततिस्फुरदभ्रमाला-
वर्षत्सुधाभिरचलद्युतयो भजन्तः।
श्रीभारतर्द्धिगुणगौरवमापुरार्या
रामानुजं तमिह सादरमानतोऽस्मि।।३।।

यद्भारतीमिह विलोक्य वयं समर्थाः
सारस्वतञ्नु विभुवेदनभोऽनुमातुम्।
विद्यानुरूपविभवाय बुधाय तस्मै
श्रीवेङ्कटेशकवये रवये नमोऽस्तु।।४।।

अन्येऽपि ये परमभागवतप्रधाना-
स्तोताद्रिपीठनिधिभूतयतीन्द्रमुख्याः।
काञ्चीमठैकगुरुगादिपदाधिरूढा-
स्तानाप्तमान्यपुरुषान् सततं नमामि।।५।।

अन्तःस्फुरत्परमतत्त्वततप्रकाश-
प्रोत्सारिताखिलखलत्प्रसरद्विकल्याः।
लोके त्रिदण्डिपदवाच्यतया प्रसिद्धाः
सिद्धास्तपःसु खलु ते यतयो जयन्ति।।६।।

योऽवाप्य रामानुजतन्त्रपद्धतिं
शेषिण्यहो शेषमलञ्चकार।
अनन्तविद्याविभवोन्नतं तं
श्रीरामनारायणमाश्रयामः।।७।।

नारायणाङ्घ्रिपदपङ्कजरेणुदिग्ध-
सुस्मेरमानसवगाहनशुद्धसत्त्वाः।
भूलोकमात्ममहसैव विभासयन्तः
श्रीवासुदेवगुरवःप्रभवो जयन्तु।।८।।

तेषां विकुण्ठपदपद्मनताननानां
निःश्रेयसप्रवणचोदनयैव तृप्तः।
श्रीरङ्गनाथभगवच्चरणत्रकाव्य-
व्याख्यां सुधामहमहो समुदं करोमि।।९।।





SHRI BHAGAWAN JI



**NAMMAZHWAR—SRIRANGAM**

वन्दे तद्रङ्गनाथस्य मान्यं पादुकयोर्युगम्।
उन्नतानामवनतिर्नतानां यत्र चोन्नतिः।।



**SRI RAMA PAADAM, MELKOTE**

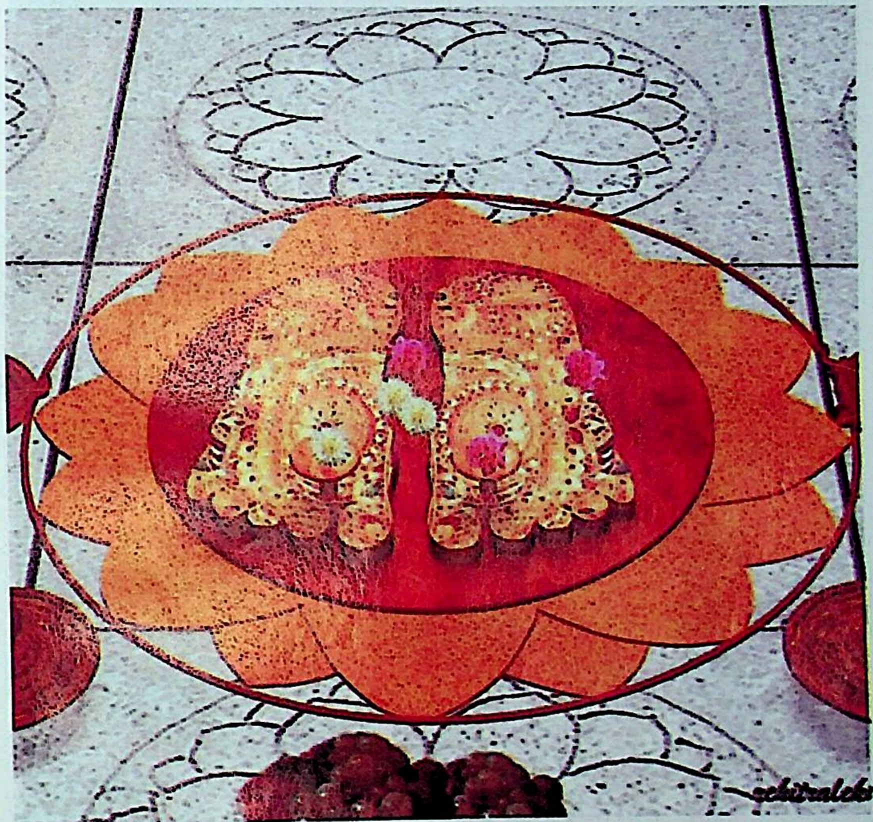
प्रशस्ते रामपादाभ्यां पादुके पर्युपास्महे।
आनृशंस्यं ययोरासीदाश्रितेष्वनवग्रहम्।।

अधीष्टे पादुका सा मे यस्याः साकेतवासिभिः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यामन्वमीयत वैभवम्।।



**THE LORD ENJOYS THE PAADUKAS**

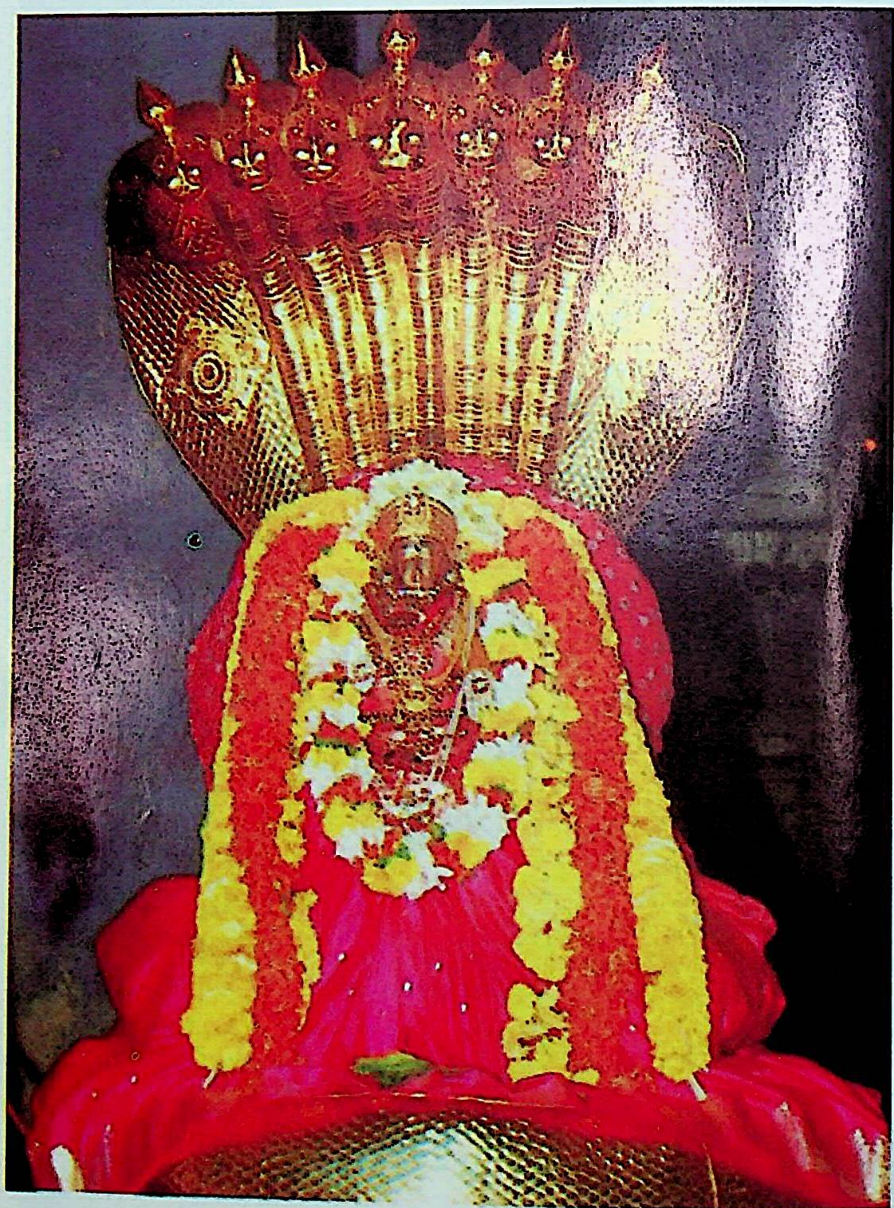
शौरेः शृङ्गारचेष्टानां प्रसूतिं पादुकां भजे।
यामेष भुङ्क्ते शुद्धान्तात् पूर्वं पश्चादपि प्रभुः।।



**PAADUKA ADORNED WITH GEMS**

श्रुतीनां भूषणानां ते शङ्के रङ्गेन्द्रपादुके।
मिथः संघर्षसंजातं रजः किमपि शिञ्जितम्।।

उदर्चिषस्ते रङ्गेन्द्रपादावनि! बहिर्मणीन्।
अन्तर्मणिरवं श्रुत्वा मन्ये रोमाञ्चिताकृतीन्।।



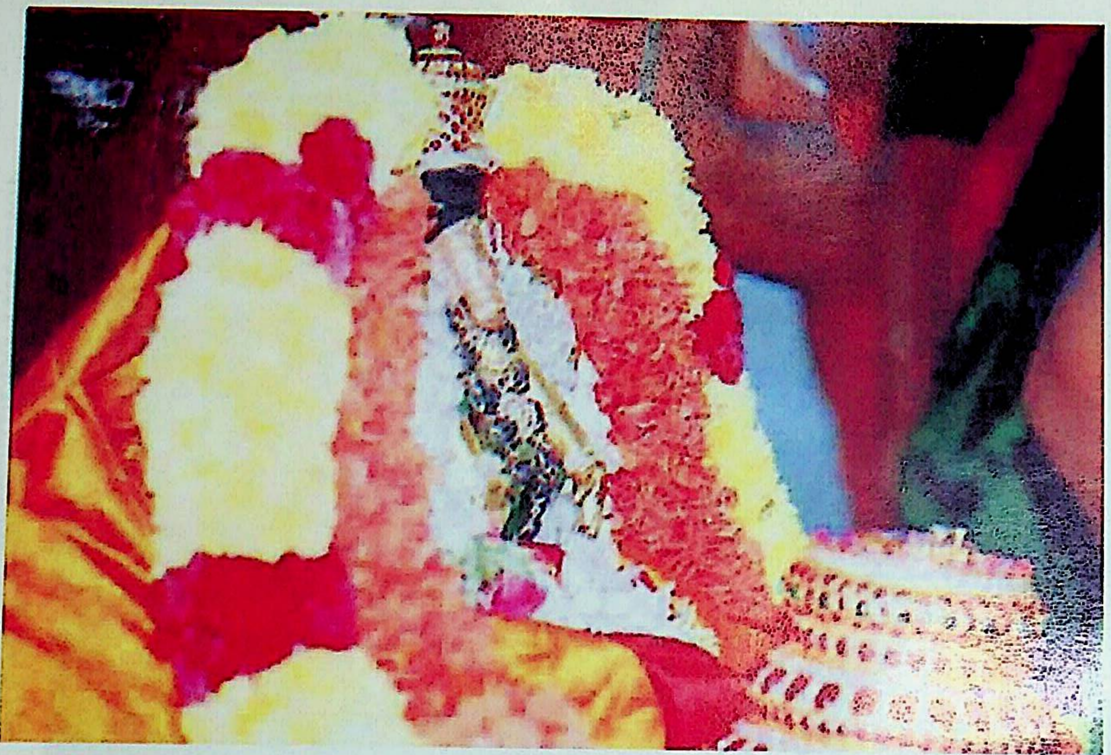
**PAADUKA IS MAHALAKSHMI**

वन्दे गारुत्मतीं वृत्त्या मणिस्तोमैश्च पादुकाम्।
यया नित्यं तुलस्येव हरितत्त्वं प्रकाश्यते।।



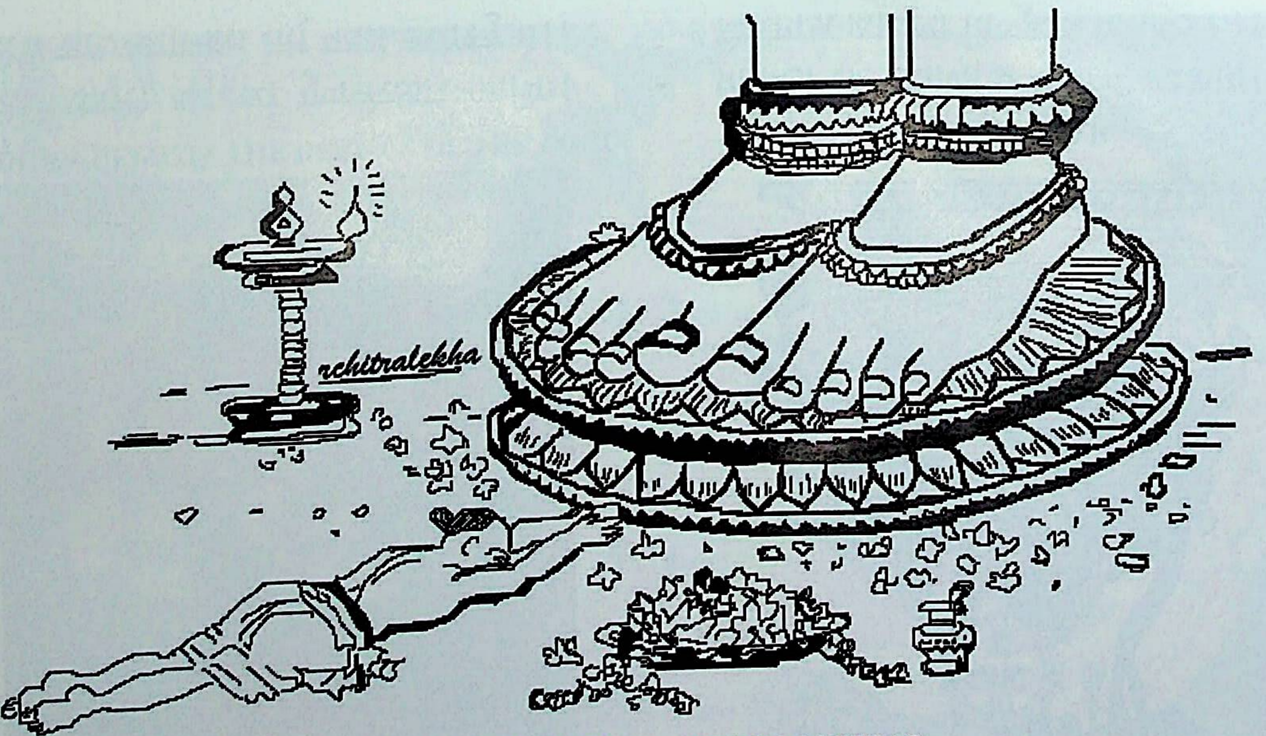
**PAADUKA RESEMBLES THULASI**

हरिणा हरिनीलैश्च प्रतियत्नवतीं सदा।
अयत्नलभ्यनिर्वाणामाश्रये मणिपादुकाम्।।



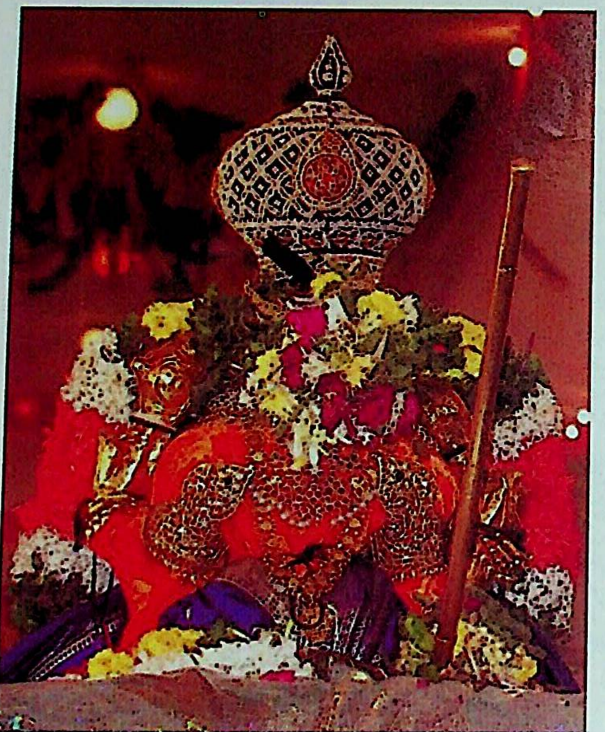
**PAADUKA OBTAINS ITS ORNAMENTATION FROM THE LORD**

शौरेः शुद्धान्तनारीणां विहारमणिदर्पणम्। प्रसत्तेरिव संस्थानं पदत्राणमुपास्महे।।
कल्याणप्रकृतिं वन्दे भजन्तीं काञ्चनश्रियम्। पदार्हां पादुकां शौरेः पद एव निवेशिताम्।।



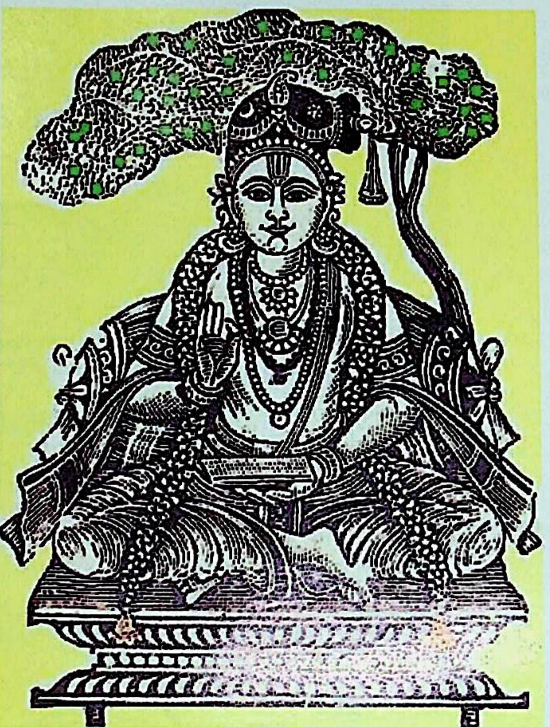

**I PAY OBEISANCE TO THE PAADUKAS**

सृष्टां भूमावनन्तेन नित्यं शेषसमाधिना। अहं संभावयामि त्वामात्मानमिव पादुके।।
प्रपद्ये पादुकारूपं प्रणवस्य कलाद्वयम्। ओतं मितमिदं यस्मिन्ननन्तस्यापि तत्पदम्।।



**PAADUKA DEPICTS THE BEAUTY OF THE LORD**

विधौ प्रवृत्ते यद्द्रव्यं गुणसंस्कारनामभिः।
श्रेयःसाधनमाम्नातं तत् पदत्रं तथास्तु मे।।



**NAMMAZHWAR**

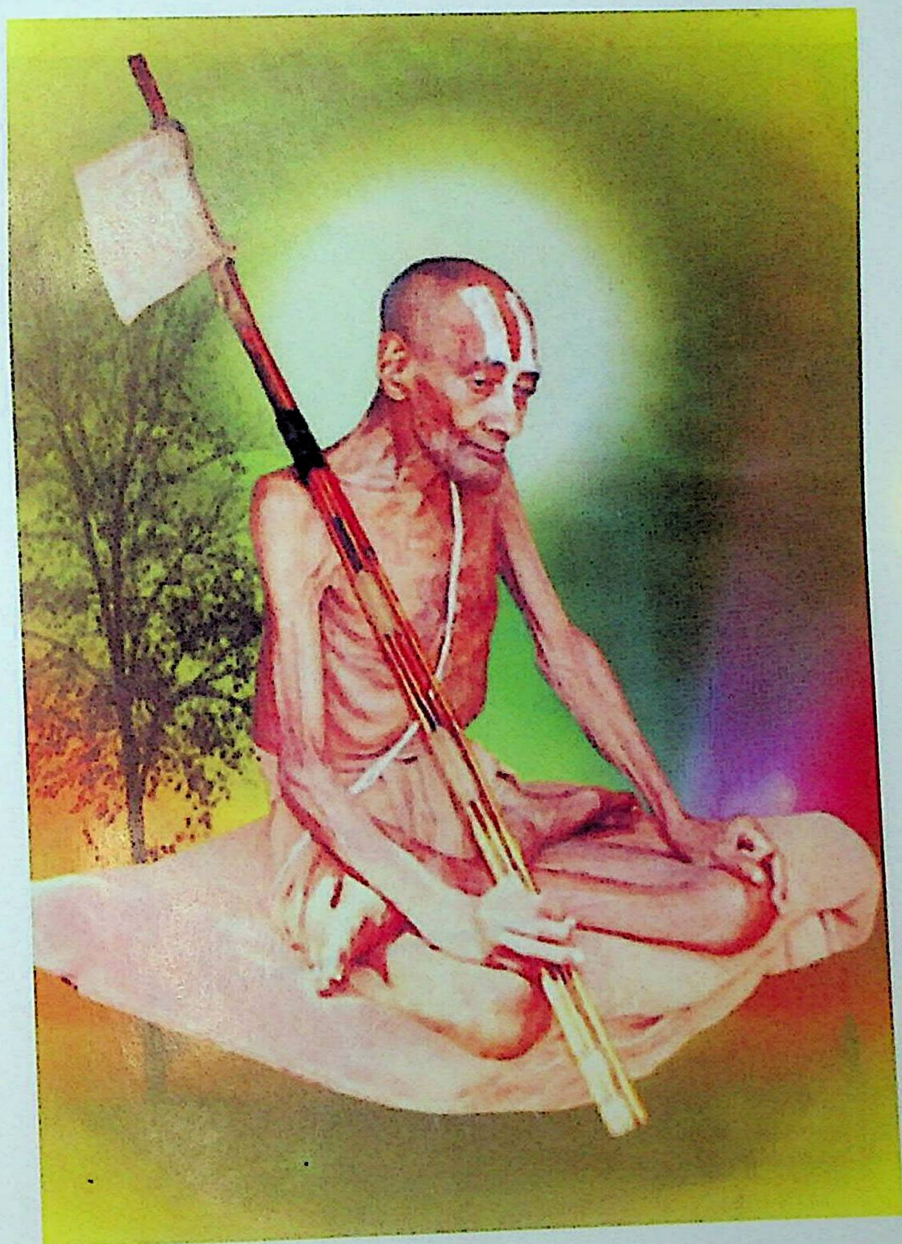
प्रतिष्ठां सर्वचित्राणा [illegible]म्।
विचित्रजगदाधारो विष्णुर्यत्र प्रतिष्ठितः।।



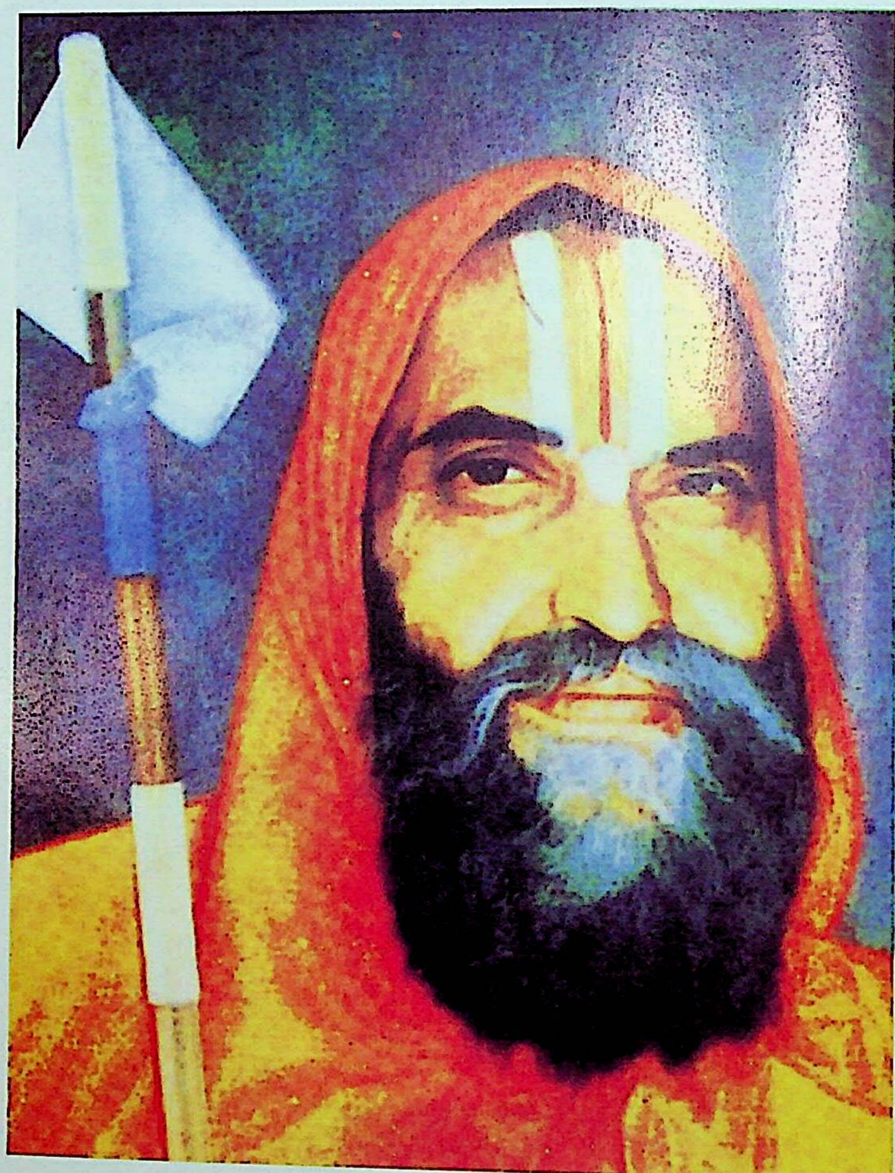
श्री भाष्यकार जगद्गुरु भगवद्रामानुजाचार्य



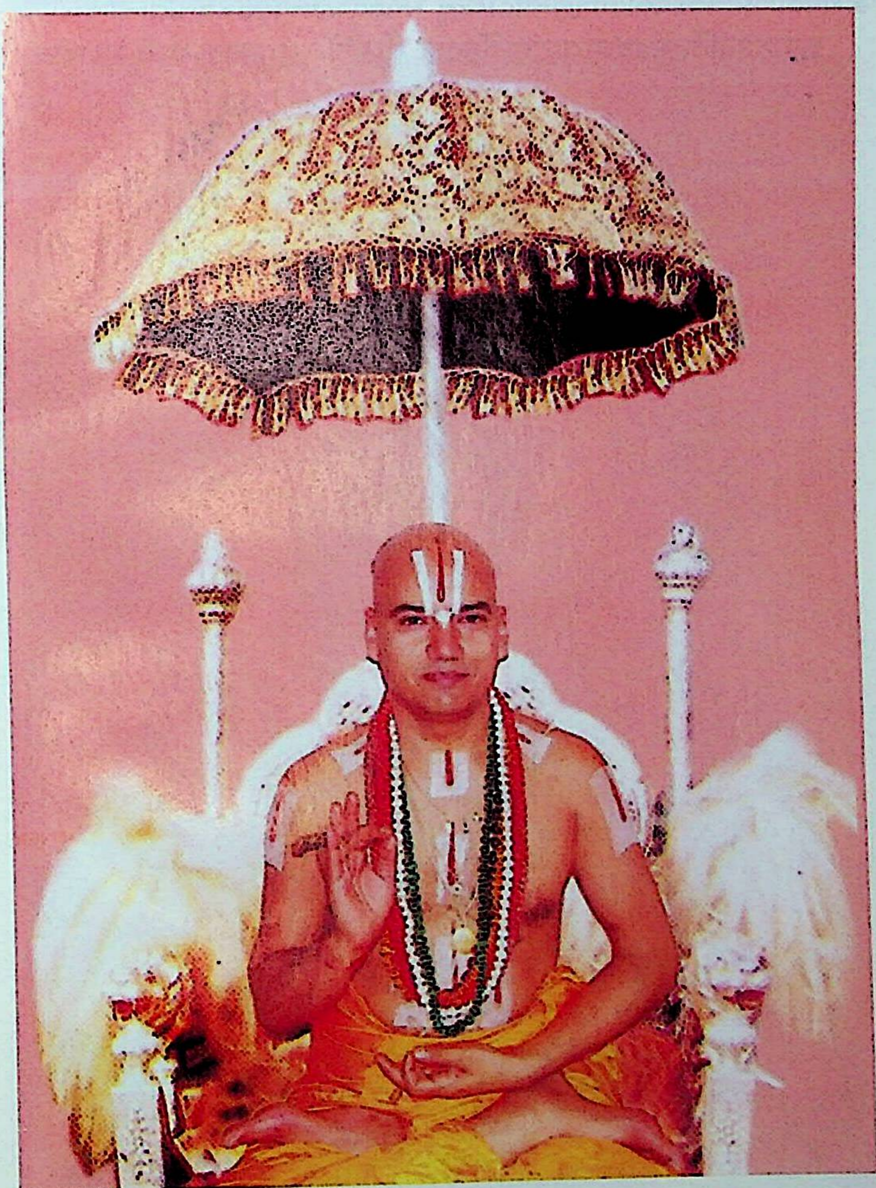
**"AYINDHAI DESIKAN"**



श्री जगदाचार्य श्रीमद्विष्वक्सेनाचार्य,
श्रीत्रिदण्डिस्वामीजी महाराज

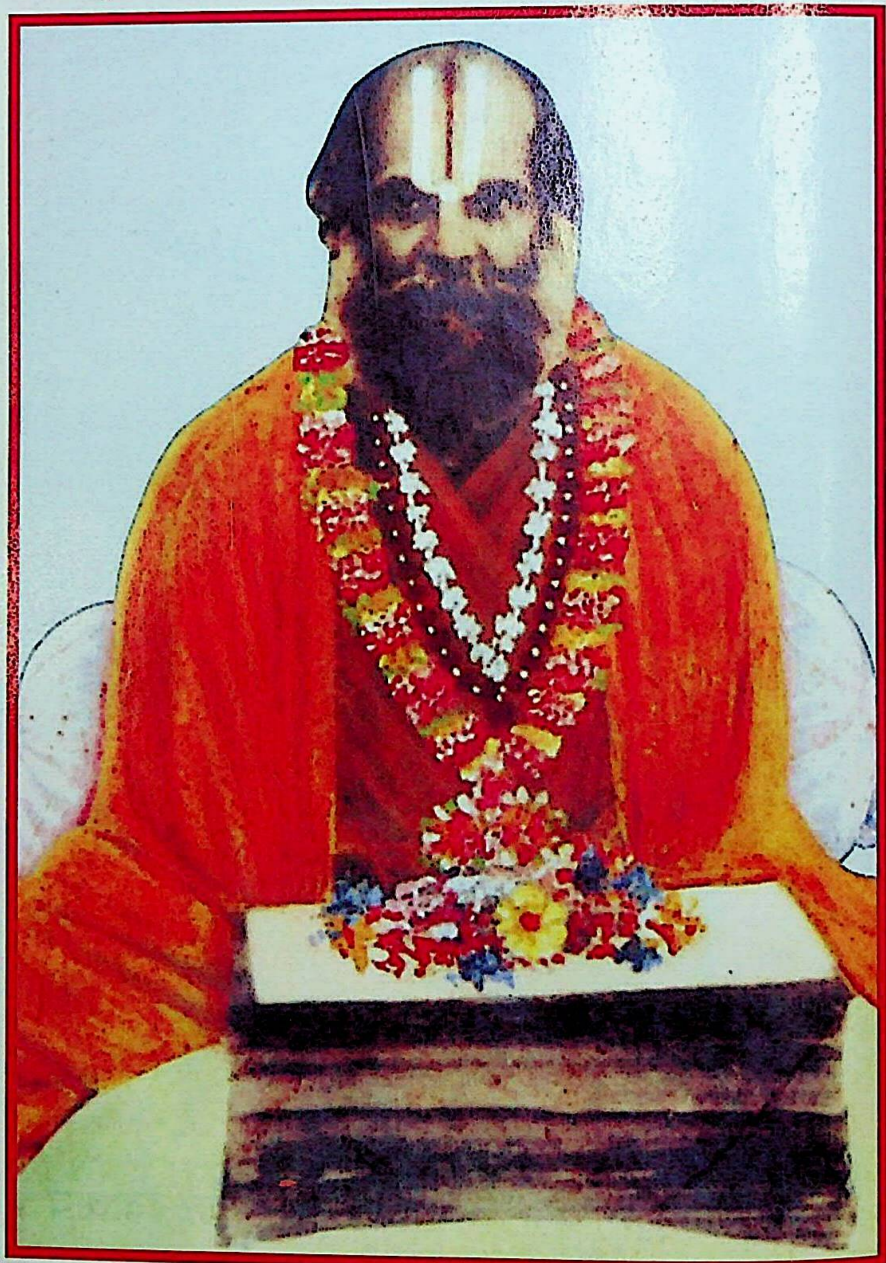


श्रीमद् जगद्गुरु रामानुजाचार्य त्रिदण्डी स्वामी
श्री रामनारायणाचार्य जी महाराज



श्री जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी श्रीवासुदेवाचार्य 'विद्याभास्कर' जी महाराज

अनन्तश्रीविभूषितजगद्गुरुरामानुजाचार्य शब्दशास्त्रार्णवमन्दराचलायमान अशेषवादिप्रतिवादिवाक्कीलनपटीयान् भगवद्भजनामृतनवनीतान्तःकरणधर्म-सम्राट्प्रवर्तितमहाधर्मयुद्धपार्ष्णिग्राह श्रीश्रीदेवनायकाचार्यजी महाराज



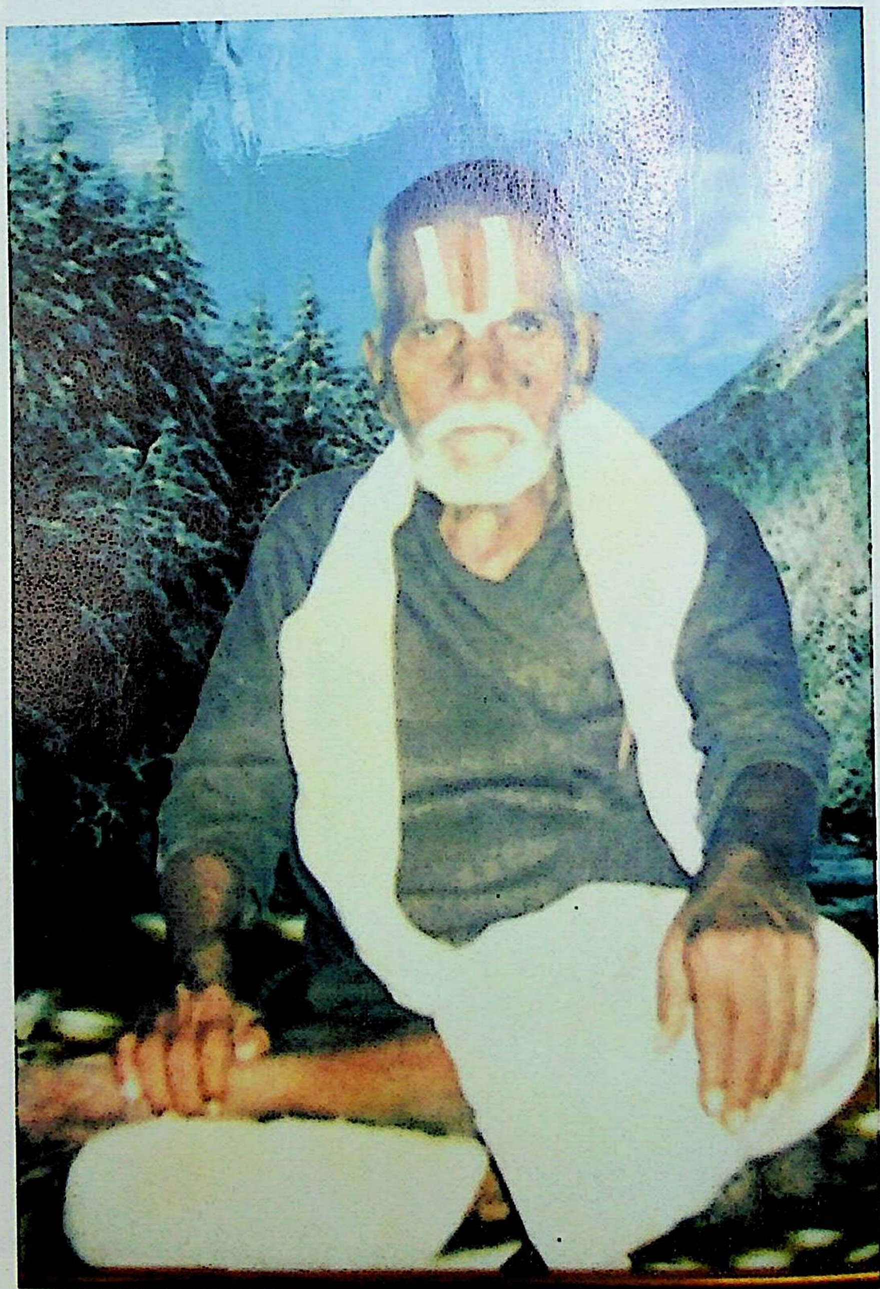
जयन्ति निर्मलस्वान्तशिष्यव्रातसुसेविताः।
श्रीदेवनायकाचार्यचरणाम्भोरुहश्रियः।।

## महावैयाकरणशास्त्रार्थमहारथी पं.प्र. श्रीपूर्णचन्द्राचार्यजीमहाराज



अत्यायतव्याकरणातिशायिपाण्डित्यपूर्णान् बुधपूर्णचन्द्रान्।
काश्यामुदीतान् नवपूर्णचन्द्रानाचार्यवर्यान् सततं नमामः।।

## सर्वतन्त्रस्वतन्त्रविद्यावाचस्पति पं.प्र. आचार्यरामवदनशुक्लमहोदय
## (श्रीरामकृष्णाचार्यजीमहाराज)



शास्त्रज्ञपण्डितसमाजसदाग्रगण्यान् विद्याम्बुधींश्च परमेश्वरदत्तचित्तान्।
वन्दामहे विमलविप्रकुलावतंसाचार्यरामवदनाभिधशुक्लपादान्॥



श्रीशिवगोविन्दत्रिपाठी रामानुजवैष्णवदासः
व्याख्याकारस्य पितामहः



श्रीरङ्गनाथ सोमानी जी के पिताश्री
श्रीवासुदेव सोमानी जी



श्रीरङ्गनाथ सोमानी जी की माताश्री
श्रीमतीकेसरदेवी सोमानी जी

।।श्रीः।।

।।श्रीमते निगमान्तगुरवे नमः।।

श्रीमान् वेङ्कटनाथार्यः कवितार्किककेसरी।
वेदान्ताचार्यवर्यो मे सन्निधत्तां सदा हृदि।।

*।।श्रीरङ्गनाथदिव्यमणिपादुकाभ्यां नमः।।*

# अथ श्रीरङ्गनाथपादुकासहस्रम्

## श्रीमद्वेङ्कटनाथाचार्यप्रणीत पादुकासहस्र की व्याख्या

## प्रथमा प्रस्तावपद्धतिः

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र कवितार्किककेसरी वेदान्ताचार्यवर्य श्रीमान् वेङ्कटनाथार्य 'वेदान्तदेशिकस्वामिवर्य' ने परमभागवतों के द्वारा अनुमत श्रीमद्भगवत्पादुका की स्तुति में 'पादुकासहस्र' नामक महनीय और सहृदयहृदयश्लाघनीय काव्य की रचना की है। इस 'प्रथमपद्धति' में सर्वप्रथम माङ्गल्याविष्करण के लिए पादुका-प्रभावभावितमानस परमभागवतों की ही स्तुति करते हैं—

सन्तः श्रीरङ्गपृथ्वीशचरणत्राणशेखराः।
जयन्ति भुवनत्राणपदपङ्कजरेणवः॥१॥

श्रीरङ्गक्षेत्र के स्वामी की पादुका जिनके मस्तक में अलङ्कार हो ऐसे महाभागवत सत्पुरुष पृथ्वी पर सर्वोत्कृष्ट हैं। उन भक्त पुरुषों के चरणकमलों में विद्यमान धूलि अर्थात् परागकण भुवन की रक्षा में समर्थ हैं। भुवनत्राणसाधनानि पदपङ्कजरेणवो येषान्ते, ऐसा

बहुव्रीहिसमास है। पूर्वार्ध में 'चरणत्राण' शब्द पादुका में रूढ़ है, अतः उत्तरार्ध में आये 'त्राण' शब्द से पुनरुक्ति की आशङ्का नहीं की जा सकती। यद्यपि इस काव्य में सर्वत्र पादुका का ही प्रभाव प्रतिपादित है तथा इस पद्य में भी पादुका के लोकोत्तर सामर्थ्य से ही भागवत पुरुषों की दिव्यता कही गयी है तथा यहाँ परमभागवत सत्पुरुषों की दिव्यता का निरुपण ही प्रधान वाक्यार्थ है जिसमें पादुका का प्रभावातिशय उपस्कारकतया अङ्ग है। एवञ्च महापुरुषों के प्रति जो कवि का प्रेम है उसी में पादुकाप्रेम अङ्ग है, अतः गुणीभूतव्यङ्ग्य (मध्यमकाव्य) की आशङ्का नहीं की जा सकती। यहाँ उत्तम काव्यता ही है। गुणीभूतव्यङ्ग्य वहाँ स्वीकार किया जाता है, जहाँ प्रधानवाक्यार्थ की अपेक्षा अङ्गभूत वाक्यार्थ में चमत्कार का आधिक्य हो। जैसे—

अयं स रशनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दनः।
नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीविविस्रंशनःकरः।।

यहाँ पर प्रधान वाक्यार्थ करुण रस की अपेक्षा अङ्गवाक्यार्थ शृङ्गार में ही चमत्कार अधिक है, अतः यहाँ गुणीभूतव्यङ्ग्यता है। एवञ्च यहाँ श्रीश्रीनिवाससूरि का विपरीततया प्रेयोऽलङ्काररूप गुणीभूतव्यङ्ग्यत्व का साधन नातीव रुचिकर है। केवल अङ्गता को लेकर गुणीभूतव्यङ्ग्यत्व स्वीकार करने पर ध्वनिकाव्य निरवकाश होने लगेगा।।१।।

अब श्रीभगवान् की पादुका के प्रभाव के प्रथम पात्र भरत की स्तुति करते हैं—

**भरताय परं नमोऽस्तु तस्मै प्रथमोदाहरणाय भक्तिभाजाम्।**
**यदुपज्ञमशेषतः पृथिव्यां प्रथितो राघवपादुकाप्रभावः।।२।।**

पादुका के भक्तों में प्रथम दृष्टान्त उस भरत को ही नमस्कार है जिसमें श्रीरामचन्द्र की पादुका का पूरा प्रभाव इस पृथ्वी पर सबसे पहले देखा गया और सर्वत्र विख्यात भी हुआ। यहाँ भी

भरतविषयक रति की ही प्रधानरूप से अभिव्यक्ति है, अतः भावध्वनि है॥२॥

श्रीमद्भगवत्पादुका के रूप में अवतीर्ण श्रीशठकोप मुनि का सेवन करते हैं—

**वर्णस्तोमैर्बकुलसुमनोवासनामुद्वहन्ती-**
**माम्नायानां प्रकृतिमपरां संहितां दृष्टवन्तम्।**
**पादे नित्यं प्रणिहितधियं पादुके रङ्गभर्तु-**
**स्त्वन्नामानं मुनिमिह भजे त्वामहं स्तोतुकामः॥३॥**

श्रीरङ्गक्षेत्र के स्वामी की हे पादुके! यहाँ मैं तुम्हारी स्तुति की कामना करता हूँ, अतः तुम्हारे नाम में ही स्थित अर्थात् तेरे नाम वाले तथा श्रीरङ्गस्वामी के चरणों में अपनी बुद्धि अर्पित करने वाले श्रीशठकोप मुनि का सेवन करता हूँ अर्थात् उनकी शरण में हूँ। वे श्रीशठकोप मुनि अक्षरों के समूह से बकुल के पुष्पों की सुगन्ध को धारण करने वाली वेदों की अन्य भङ्गिमाओं के रूप में अवस्थित संहिता अर्थात् द्रविडवेद को प्रकट किये हैं। अभिप्राय यही है कि श्रीशठकोप मुनि ने जिस द्रविडवेदसन्दर्भ को प्रकट किया है वह अपौरुषेय वेदों की अन्य भङ्गिमाओं को स्वयं में आत्मसात् किया है। श्रीशठकोप मुनि को पादुका और बकुलाभरण के रूप में जाना जाता है॥३॥

आदि कवि प्राचेतस (वाल्मीकि) से पादुका की स्तुति के लिए ही दिव्य वाणी की कामना करते हैं—

**दिव्यस्थानात्त्वमिव जगतीं पादुके गाहमाना**
**पादन्यासं प्रथममनया भारती यत्र चक्रे।**
**योगक्षेमं सकलजगतां त्वय्यधीनं स जानन्**
**वाचं दिव्यां दिशतु वसुधाश्रोत्रजन्मा मुनिर्मे॥४॥**

वसुधाश्रोत्रजन्मा मुनिर्मे दिव्यां वाचं दिशतु अर्थात् वसुधा = पृथ्वी के कानों से जिनकी उत्पत्ति हुई है ऐसे श्रीवाल्मीकि मुनि हमें दिव्य अर्थात् संस्कृत वाणी प्रदान करें। वल्मीक पृथ्वी के श्रोत्र कहे गये हैं। वहाँ से उत्पन्न होने के कारण 'वाल्मीकि' यह नाम प्रसिद्ध हुआ है।

आदितः तीनों चरणों से आदिकवि का ही निरूपण है। हे भगवान् की पादुके! सरस्वती देवी तुम्हारे समान ही जब अपने दिव्य स्थान से इस पृथ्वी पर आने को हुई तो सर्वप्रथम जिनमें अपने चरणों को रखा और जो यह जानते हैं कि सारे संसार का योग-क्षेम तुम्हारे ही अधीन है ऐसे वाल्मीकि। अलब्ध लाभ को योग और उसकी रक्षा को क्षेम कहते हैं। ब्रह्म की प्रसन्नता से सरस्वती का आगमन वाल्मीकि में हुआ, यह रामायण में प्रसिद्ध है तथा इक्ष्वाकु की प्रार्थना से पादुका का ब्रह्मलोक से पृथ्वी पर आगमन श्रीरङ्गमाहात्म्य में प्रसिद्ध है।।४।।

स्वयं के द्वारा की जाने वाली पादुका की स्तुति के औचित्य का प्रतिपादन करते हैं—

**नीचेऽपि हन्त मम मूर्धनि निर्विशेषं**
**तुङ्गेऽपि यन्निविशते निगमोत्तमाङ्गे।**
**प्राचेतसप्रभृतिभिः प्रथमोपगीतं**
**स्तोष्यामि रङ्गपतिपादुकयोर्युगं तत्।।५।।**

वाल्मीकि आदि महर्षियों के द्वारा सर्वप्रथम जिस पादुका की स्तुति की गयी है उस श्रीरङ्गपति नारायण की दोनों पादुकाओं की मैं स्तुति करूँगा। वह पादुका वेदों के उन्नत मस्तक अर्थात् उपनिषद् भाग में जैसे निविष्ट होती है वैसे ही वह मुझ जैसे पुरुष के नीच मस्तक पर भी निविष्ट होती है। इस प्रकार पादुका निर्दुष्ट है, अतः उसकी स्तुति की जा सकती है। यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार और

वसन्ततिलका छन्द है। उच्च-नीच दोनों मस्तकों में समानभाव से निवेश रूप एक धर्म के योग से तुल्ययोगिता अलङ्कार भी है।।५।।

अब अपनी उक्ति का वाल्मीकि आदि की उक्तियों से साम्यगुण का ख्यापन करते हैं—

**धत्ते मुकुन्दमणिपादुकयोर्निवेशाद्**
**वल्मीकसंभवगिरां समतां ममोक्तिः।**
**गङ्गाप्रवाहपतितस्य कियानिव स्या-**
**द्रथ्योदकस्य यमुनासलिलाद्विशेषः।।६।।**

भगवान् मुकुन्द की मणिनिर्मित पादुकाओं में संनिविष्ट होने के कारण मेरी वाणी वाल्मीकि आदि महाकवियों की वाणी से समता को धारण करती है, यह उसका गुण ही है। क्योंकि गङ्गा के प्रवाह में गिरा हुआ रथ्या (राजमार्ग) का जल यमुना के जल से कितना भिन्न हो सकता है। अर्थात् गङ्गा में गिरा यमुना का जल जैसे गङ्गा ही हो जाता है वैसे राजमार्ग का जल भी। यहाँ दृष्टान्त अलङ्कार है।।६।।

श्रीभगवान् की पादुका के प्रति निर्मित निजकाव्य सज्जनों के द्वारा ग्राह्य होगा, ऐसा कहते हैं—

**विज्ञापयामि किमपि प्रतिपन्नभीतिः**
**प्रागेव रङ्गपतिविभ्रमपादुके त्वाम्।**
**वक्तुं क्षमाः सदसती विगताभ्यसूयाः**
**सन्तः स्पृशन्तु सदयैर्हृदयैः स्तुतिं ते।।७।।**

हे श्रीरङ्गपति के विभ्रम अर्थात् विलास में सेवित पादुके! भय से ग्रस्त मैं पहले ही तुमसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। सत्-असत् अर्थात् गुण और दोष के विवेचन में समर्थ सत्पुरुष असूया से दूर होते हुए मेरी इस तुम्हारी स्तुति का अपने दयालु हृदयों

से स्पर्श करें। सत्पुरुष इस स्तुति को ग्रहण करें, यह अभिप्राय है।।७।।

**अश्रद्दधानमपि नन्वधुना स्वकीये**
**स्तोत्रे नियोजयसि मां मणिपादुके त्वम्।**
**देवः प्रमाणमिह रङ्गपतिस्तथात्वे**
**तस्यैव देवि पदपङ्कजयोर्यथा त्वम्।।८।।**

हे मणिपादुके! तुम इस समय अपने विषय में विहित इस स्तुति में मुझे लगा रही हो जो श्रद्धालु भी नहीं है। तुम्हारी इस प्रेरणा में देव रङ्गनाथ ही प्रमाण हैं। वैसे ही जैसे तुम उनके चरणकमलों में प्रमाण अर्थात् परिच्छेद हो। उपमा, श्लेष अलङ्कार।।८।।

**यदाधारं विश्वं गतिरपि च यस्तस्य परमा**
**तमप्येका धत्से दिशि वरगतिं तस्य रुचिराम्।**
**कथं सा कंसारेर्द्रुहिणहरदुर्बोधमहिमा**
**कवीनां क्षुद्राणां त्वमसि मणिपादु स्तुतिपदम्।।९।।**

हे कंसारि अर्थात् कंस के शत्रु श्रीरङ्गनाथ की मणिपादुके! यह संसार जिसके अधीन होकर चलता है और जो परमात्मा उस विश्व के परम प्राप्य भी होते हैं, ऐसे भगवान् को एकमात्र तुम ही धारण करती हो। जो विश्व को धारण करे उसे तुम धारण करती हो, इससे पादुका का लोकोत्तर प्रभाव ध्वनित होता है। हे पादुके! तुम श्रीरङ्गनाथजी की रुचिर गति अर्थात् संचार को भी देती हो। अर्थात् तुम्हारे कारण ही भगवान् की गति मनोहर हो जाती है। इस प्रकार से तो यही प्रतीत होता है कि तुम्हारा महत्त्व ब्रह्मा और शिव के लिए भी दुर्बोध है। क्षुद्र कवियों की स्तुति का विषय तुम कैसे हो सकती हो? यहाँ अर्थापत्ति अलङ्कार है।।९।।

**श्रुतिप्रज्ञासंपन्महितमहिमानः कति कति**
**स्तुवन्ति त्वां सन्तः श्रुतिकुहरकण्डूहरगिरः।**

**अहं त्वल्पस्तद्वद् यदिह बहु जल्पामि तदपि**
**त्वदायत्तं रङ्गक्षितिरमणपादावनि! विदुः॥१०॥**

हे रङ्गक्षेत्र के स्वामी के चरणों की रक्षा में तत्पर पादुके! जिनकी महिमा वेदों और प्रज्ञा (प्रतिभा एवं स्वाभाविक विवेक) की समृद्धि से पूजित है और जिनकी वाणी कर्णविवरों में विद्यमान खुजली का अपहरण करती है या वेदों की गुत्थियों को सुलझाती है, ऐसे कितने सत्पुरुष तुम्हारी स्तुति करते हैं। इतिहास-पुराणादि की रचना करने वाले उन्हीं सत्पुरुषों के समान ही ही मैं अल्पज्ञ होकर भी यहाँ बहुत कुछ कहूँगा।यह मेरा प्रजल्पन भी तुम्हारे ही अधीन है, ऐसा सभी जानते ही हैं॥१०॥

**यदेष स्तौमि त्वां त्रियुगचरणत्रायिणि! ततो**
**महिम्नः का हानिस्तव मम तु संपन्निरवधिः।**
**शुना लीढा कामं भवतु सुरसिन्धुर्भगवती**
**तदेषा किंभूता स तु सपदि संतापरहितः॥११॥**

हे त्रियुगचरणत्रायिणि! अर्थात् ज्ञानशक्ति आदि छः प्रकार के ऐश्वर्यों से समन्वित भगवान् की चरणपादुके! अत्यल्प विवेक से सम्पन्न होता हुआ भी मैं जो आप की स्तुति कर रहा हूँ उससे भला आपकी महिमा की क्या हानि हो सकती है? अर्थात् आपकी महिमवृद्धि होगी ही। इससे मेरी भी सम्पत्ति निःसीम हो जायेगी। भगवती गङ्गा को यदि कुत्ता चाट ले तो क्या वे दूषित होंगी? कदापि नहीं। निश्चय ही वह कुत्ता ही गाङ्ग स्पर्श से कृतकृत्य होकर सन्तापशून्य हो जायेगा। यहाँ दृष्टान्त अलङ्कार है॥११॥

**मितप्रेक्षालाभक्षणपरिणमत्पञ्चषपदा**
**मदुक्तिस्त्वय्येषा महितकविसंरम्भविषये।**
**न कस्येयं हास्या हरिचरणधात्रि क्षितितले**
**मुहुर्वात्याधूते मुखपवनविस्फूर्जितमिव॥१२॥**

हे हरि के चरणों को धारण करने वाली पादुके! अत्यन्त पूजित वाल्मीकि आदि कवियों का उद्योग जिसके गुणगान में होता है ऐसी तुम्हारे विषय में यह मेरी स्तुतिरूप वाणी अल्प प्रेक्षा अर्थात् प्रज्ञा के लाभ के समय पाँच छः पदों (सुबन्त-तिङन्त) में ही परिणत होकर इस भूतल में किसके लिए हास्यास्पद नहीं होगी? अर्थात् सबकी हँसी का पात्र होगी। वारम्वार पवनसमुदाय (बवण्डर) से कम्पित वृक्ष आदि के विषय में मुख से निकली वायु के समान ही मेरी वाणी की दशा होगी। यहाँ उपमा का ही विशेष चमत्कार परिलक्षित है।।१२।।

**निःसंदेहनिजापकर्षविषयोत्कर्षोऽपि हर्षोदय-**
**प्रत्यूहक्रमभक्तिवैभवभवद्वैयात्यवाचालितः।**
**रङ्गाधीशपदत्रवर्णनकृतारम्भैर्निगुम्फैर्गिरां**
**नर्मास्वादिषु वेङ्कटेश्वरकविर्नासीरमासीदंति।।१३।।**

जिनका अपना अपकर्ष और जिनकी स्तुति के विषय पादुका का उत्कर्ष निश्चित है और जो हर्ष के उदय (उत्पत्ति) से तथा विघ्नक्रम वाले भक्ति वैभव से अर्थात् पादुका के प्रति होने वाली प्रीति की अभिवृद्धि से जायमान धृष्टता से वाचाल हो गये हैं ऐसे वेङ्कटेश्वरनामक कवि अपनी उन वाणियों के उपगुम्फनों से, जिनमें भगवान् श्रीरङ्गस्वामी की पादुकाओं का वर्णन हो, खेलरसिकों में अग्रगण्य हो गये हैं।।१३।।

काव्य की ग्राह्यता को लेकर पादुका के प्रति सरस कथन की प्रार्थना करते हैं—

**रङ्गक्ष्मापतिरत्नपादु भवतीं तुष्टूषतो मे जवा-**
**ज्जृम्भन्तां भवदीयशिञ्जितसुधासंदोहसंदेहदाः।**
**श्लाघाघूर्णितचन्द्रशेखरजटाजङ्गालगङ्गापय-**
**स्त्रासादेशविशृङ्खलप्रसरणोत्सिक्ताः स्वयं सूक्तयः।।१४।।**

हे श्रीरङ्गनाथ की रत्ननिर्मित पादुके! आपकी स्तुति में तत्पर मेरी सूक्तियाँ (शोभन वचन) आपके अलङ्करण में पिरोये गये भीतरी मणियों की ध्वनियों और अमृतसमूह के सन्देह को खण्डित करने वाली होती हुईं, अथवा शिञ्जानरव और अमृत के सन्देह को उत्पन्न करती हुईं तथा प्रशंसा में मस्तक घुमाने वाले चन्द्रशेखर भगवान् शिव की जटाओं में प्रवाहमयी गङ्गा के जल को त्रास (संताप) देने में गर्वीली हुईं विना प्रयास के ही वेगतः उत्पन्न हों! तात्पर्य यही है कि यहाँ कवि की यही प्रार्थना है कि पादुका की स्तुति में ऐसी सूक्तियाँ आविर्भूत हों जो शिञ्जानरव और अमृत में सन्देह पैदा कर दें अथवा अतीव साम्य के कारण सन्देह को दूर कर दें तथा उसमें स्वच्छता (प्रसादगुण) इतनी हो कि शङ्कर की जटाओं में विद्यमान गङ्गा के जल में भी त्रास उत्पन्न हो जाय। उपमा, व्यतिरेक आदि अलङ्कारों की यहाँ छटा है॥१४॥

**हिमवदचलसेतुमध्यभाजां भरताभ्यर्थितपादुकावतंसः।**
**अतपोधनधर्मतः कवीनामखिलेष्वस्मि मनोरथेष्वबाह्यः॥१५॥**

अतपोधनधर्मतः, यहाँ प्रथमा के अर्थ में 'तसि' प्रत्यय है। तप ही जिनका धन है ऐसे वाल्मीकि आदि मुनियों का धर्म जिसके पास न हो तथा जिसके मस्तक के अलङ्कार पादुका की प्रार्थना भरत किये हों ऐसा मैं वेदान्तदेशिक उन कवियों के मनोरथों में बाह्य नहीं हूँ जो हिमालय और अचलसेतु (रामसेतु) के बीच की भूमि का सेवन करते हैं। तात्पर्य यही है कि पादुका के भक्तों में सकल प्रबन्धों के निर्माण की शक्ति आ जाती है। यहाँ 'अतपोधनधर्मतः' में 'तपो धर्मो यस्य स तपोधर्मा, तस्य भावस्तपोधर्मता, न विद्यते तपोधर्मता धनं यस्य स अतपोधनधर्मतः' यह समास सम्भव नहीं है। ऐसा मानने पर 'अतपोधर्मताधनः' यह रूप होने लगेगा। अतः पूर्वोक्त अर्थ ही ठीक है॥१५॥

स्तुति की शक्ति न होने पर भी श्रीभगवत्कृपानुरूप फल मिलेगा ही, ऐसा कहते हैं—

**अनिदंप्रथमस्य शब्दराशेरपदं रङ्गधुरीणपादुके त्वाम्।**
**गतभीतिरभिष्टुवन्विमोहात्परिहासेन विनोदयामि नाथम्॥१६॥**

हे श्रीरङ्गधुरन्धर की पादुके! अनादि अपौरुषेय शब्दसमुदायरूप वेद के द्वारा भी जिसका प्रतिपादन शक्य नहीं है ऐसी तुम्हारी स्तुति अज्ञानत: निर्भय होकर करता हुआ मैं परिहास के द्वारा श्रीरङ्गनाथ का मनोविनोद करता हूँ। किसी तरह से उनका कालक्षेपण करता हूँ, यह अभिप्राय है॥१६॥

**वृत्तिभिर्बहुविधाभिराश्रिता वेङ्कटेश्वरकवे: सरस्वती।**
**अद्य रङ्गपतिरत्नपादुके नर्तकीव भवतीं निषेवताम्॥१७॥**

हे श्रीरङ्गपति की रत्नमयी पादुके! वेङ्कटेश्वर कवि की नाना प्रकार की उपनागरिका आदि या कैशिकी आदि काव्यशास्त्रों में प्रसिद्ध वृत्तियों से संसेवित सरस्वती आज नर्तकी के समान तुम्हारी सेवा करे। यहाँ उपमालङ्कार और रथोद्धता छन्द है॥१७॥

**अपारकरुणाम्बुधेस्तव खलु प्रसादादहं**
**विधातुमपि शक्नुयां शतसहस्रिकां संहिताम्।**
**तथापि हरिपादुके तव गुणौघलेशस्थिते-**
**रुदाहृतिरियं भवेदिति मितापि युक्ता स्तुति:॥१८॥**

हे श्रीहरि की पादुके! असीम दया के सागर आप की कृपा से ही मैं शतगुणित सहस्रों की संख्या में श्लोकविततिरूपसंहिता का निर्माण करने में समर्थ हूँ तथापि यह पादुकासहस्र नामक संहिता (ग्रन्थ) तुम्हारे गुणसमुदाय की अल्पता की स्थिति का उदाहरण मात्र है। इस प्रकार यह मेरी संहिता सहस्रसंख्या से परिच्छिन्न होती हुई भी युक्तिसंगत है। तुम्हारी पूरी कृपा से अनन्त संहितायें बन सकती हैं। यह मेरा काव्य तुम्हारी अल्प कृपा का विलासमात्र है, यह अभिप्राय है। यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार और पृथ्वी छन्द है॥१८॥

अब श्रीभगवत्पादुका से अपने मन और वाणी की सावधानता की प्रार्थना करते हैं—

**अनुकृतनिजनादां सूक्तिमापादयन्ती**
**मनसि वचसि च त्वं सावधाना मम स्याः।**
**निशमयति यथासौ निद्रया दूरमुक्तः**
**परिषदि सह लक्ष्म्या पादुके रङ्गनाथः॥१९॥**

हे हरिपादुके! अपनी भीतरी मणियों के निनादों का अनुकरण करने वाली अर्थात् स्वयं में पिरोयी गयीं मणियों के शिञ्जानरव के समान रमणीय सूक्ति का आपादान करती हुई तुम मेरे मन और वाणी में सावधान हो जाओ! जिससे श्रीरङ्गनाथ जी निद्रा से दूरतःदूर होकर लक्ष्मी के साथ सभा में श्रवण कर सकें। मालिनीछन्द॥१९॥

**त्वयि विहिता स्तुतिरेषा पदरक्षिणि भवति रङ्गनाथपदे।**
**तदुपरि कृता सपर्या नमतामिव नाकिनां शिरसि॥२०॥**

हे श्रीभगवान् के चरणों की रक्षा करने वाली पादुके! तुम्हारे विषय में की गयी यह स्तुति श्रीरङ्गनाथ के चरण में की गयी स्तुति ही होगी। कैसे? भगवान् श्रीनारायण के चरणों में की गयी सपर्या (पूजा) उनके चरणों में ही नतमस्तक देवताओं के मस्तक में जैसे होती है। शेष और शेषी में किसी एक की पूजा भी दोनों की ही पूजा होती है। श्रीभगवान् की चरणपूजा शिव के मस्तक में अर्जुन के द्वारा देखी गयी थी। इस प्रकार पादुकापूजा भगवच्चरणपूजा ही मानी जायेगी। उपमालङ्कार और आर्याछन्द॥२०॥

●

# अथ द्वितीय समाख्यापद्धतिः

**वन्दे विष्णुपदासक्तं तमृषिं पादुकां च ताम्।**
**यथार्थशठजित्संज्ञा मच्चित्तविजयाद्ययोः॥१॥**

मैं वेङ्कटेश्वर कवि श्रीविष्णु के चरणों में अनुरागयुक्त श्रीशठकोपमुनि तथा उन चरणों में ही संसक्त उस पादुका की स्तुति करता हूँ जिन दोनों की शठजित् = शठ अर्थात् गुरु का अप्रिय करने वालों को अभिभूत करने वाली यथार्थ संज्ञा मेरे शठ चित्त को अभिभूत (तिरस्कृत) करने के कारण ही है। पादुका और श्रीशठकोप मुनि, दोनों का नाम शठजित् है क्योंकि दोनों ही कवि की शठता को अभिभूत करते हैं। यहाँ पादुका को ही प्राकरणिक मानने पर श्लेषानुप्राणित दीपक अलङ्कार होगा।। दोनों के प्राकरणिक होने पर तुल्ययोगिता॥१॥

**द्रविडोपनिषन्निवेशशून्यानपि लक्ष्मीरमणाय रोचयिष्यन्।**
**ध्रुवमाविशति स्म पादुकात्मा शठकोपः स्वयमेव माननीयः॥२॥**

द्रविडोपनिषत् अर्थात् द्रविडभाषा में उपनिबद्ध रहस्यमय अर्थों को प्रकाशित करने वाले ज्ञान में निवेशशून्य = अध्ययन और अर्थप्रकाशक ज्ञान से शून्य लोगों को भी श्रीलक्ष्मीपति नारायण में प्रीति बढ़ाने वाले माननीय श्रीशठकोप मुनि स्वयं ही पादुका के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। यहाँ श्रीशठकोप मुनि की पादुका के अवतार के रूप में सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥२॥

**नियतं मणिपादुके दधानः स मुनिस्ते शठकोप इत्यभिख्याम्।**
**त्वदुपाश्रितपादजातवंशप्रतिपत्त्यै परमाततान रूपम्॥३॥**

हे भगवान् की मणिपादुके! वे 'शठकोप' नामक मुनि तुम्हारा ही 'शठकोप' नाम धारण करते हुए तुम्हारे द्वारा ही सेवित भगवान् के चरणारविन्दों में उत्पन्न शूद्रों के वंश की प्रतिपत्ति अर्थात् ज्ञान के लिए वकुल की मालाओं से सुशोभित दिव्य विग्रह (शरीर) को स्वीकार किये हैं। 'पद्भ्यां शूद्रो अजायत', इस श्रुति से 'शूद्र' जाति का लाभ होता है। इस प्रकार श्रीशठकोप मुनि और पादुका, दोनों का ही भगवान् के चरणकमलों से सम्बन्ध द्योतित किया गया है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥३॥

**मुनिना मणिपादुके त्वया च प्रथिताभ्यां शठकोपसंज्ञयैव।**
**द्वितयं सकलोपजीव्यमासीत्प्रथमेन श्रुतिरन्यतस्तदर्थः॥४॥**

हे श्रीहरि की मणिपादुके! 'शठकोप', इस नाम से ही प्रसिद्ध वकुलाभरण मुनि और तुम्हारे द्वारा श्रुति और उसका अर्थ सारे वर्णों के द्वारा उपजीव्य- अर्थात् ग्राह्य हो गया। श्रुति की शूद्राध्ययन-योग्यता द्रविड भाषा में परिणत होने के कारण है। यहाँ यथासंख्य अलङ्कार है। क्रमिक अन्वय होने के कारण ही। श्रीरङ्गनाथजी सभी के लिए ग्राह्य हुए, यह श्रीशठकोप मुनि और पादुका का ही प्रभाव है॥४॥

**आकर्ण्य कर्णामृतमात्मवन्तो गाथासहस्रे शठकोपसूरेः।**
**मञ्जुप्रणादां मणिपादुके त्वां तदेकनामानमनुस्मरन्ति॥५॥**

हे मणिपादुके! आत्मवान् पुरुष 'शठकोप' नामकविद्वान् के कानों में अमृत जैसे लगने वाले गाथासहस्र को सुनकर मनोहर नाद करने वाली तुमको उन्हीं की संज्ञा के रूप में जानते हैं। यहाँ मञ्जुल ध्वनि के सादृश्य से पादुका के 'शठकोप' नाम का स्मरण होने से 'स्मृति' नामक अलङ्कार है॥५॥

**स सप्तपर्वव्यवधानतुङ्गां शेषत्वकाष्ठामभजन्मुरारेः।**
**तस्यापि नामोद्वहनात्त्वयासौ लघूकृतोऽभूच्छठकोपसूरिः॥६॥**

जो शठकोप सूरि सात प्रस्तावों के व्यवधानों से उन्नत दासत्व के उत्कर्ष को प्राप्त किये थे उनका भी नाम स्वीकार कर लेने के कारण हे पादुके! तुम उनको भी दासता में लघु कर दी हो। श्री शठकोप सूरि के नाम को ग्रहण कर लेने के कारण पादुका उनसे भी अधिक दास हो गयी है, यह तात्पर्य है। यहाँ उत्तरोत्तर उत्कर्ष के कारण 'सार' नामक अलङ्कार है॥६॥

**शय्यात्मना मधुरिपोरसि शेषभूता**
**पादाश्रयेण च पुनर्द्विगुणीकृतं तत्।**
**भूयोऽपि भागवतशेषतया तदेव**
**व्यक्तुं पदावनि शठारिपदं बिभर्षि॥७॥**

हे पदावनि! अर्थात् भगवान् के चरणों की रक्षा करने वाली पादुके! तुम शयनीय के रूप में मुरारि की शेषभूत = दासभूत हो ही, पुनः उनके चरणों का वरण कर लेने के कारण उस दासता को दूनी कर दी हो। पुनः तुम परम भागवत की शेषता के कारण 'शठारि', इस पद को धारण करती हो। तात्पर्य है कि पादुका भगवान् के दास श्रीशठकोप की संज्ञा को धारण कर ली है। ऐसा दासत्व की पराकाष्ठा को प्राप्त करने के लिए ही है। इसीलिए संप्रदाय में 'दासानुदास' के रूप में परिचय देने की परम्परा दिखायी देती है॥७॥

**पद्येन देवि शठकोपमुनिस्तवासी-**
**त्तस्यापि नामवहनान्मणिपादुके त्वम्।**
**शेषीबभूव युवयोरपि शेषशायी**
**शेषं तु शेषमपि शेषपदे स्थितं वः॥८॥**

हे देवि! पादुके! श्रीशठकोप मुनि अपने पद्य (पादुका-गाथा) से पहले तुम्हारे दास हो गये थे। उनके नाम का वहन करके तुम उनका भी दास हो गयी हो। शेषशय्या पर शयन करने वाले

भगवान् श्रीनारायण तुम दोनों के दास हो गये (शेषीभूत)। शेषत्व यहाँ पर उपकारकत्व है। तुम सभी के शेष-स्थान में आ जाने से शेष सारा संसार भी शेष (दास) के रूप में विराजमान हो गया है। पारस्परिक उपकार के कारण यहाँ अन्योन्यालङ्कार है॥८॥

नाम की एकता के कारण श्रीशठकोप मुनि और पादुका का अभेद स्थापित करते हैं—

**विन्ध्यस्तम्भादभिहतगतेर्विष्वगाचान्तसिन्धोः**
**कुम्भीसूनोरसुरकवलग्रासिनः स्वैरभाषा।**
**नित्यं जाता शठरिपुतनोर्निष्पतन्ती मुखात्ते**
**प्राचीनानां श्रुतिपरिषदां पादुके पूर्वगण्या॥९॥**

हे पादुके! 'विन्ध्य' नामक पर्वत के द्वारा अवरोध पैदा करने से जिनकी गति अवरुद्ध हो गयी थी और जो सकल सागर का ही आचमन कर गये थे तथा जो 'वातापि' नामक असुर को अपना ग्रास बना लिये थे ऐसे कुम्भोद्भवं महामुनि अगस्त्य की स्वैर भाषा (स्वच्छन्द वाणी द्रविड भाषा, द्रविड भाषा सर्वप्रथम अगस्त्य से ही दृष्ट हुई थी) श्रीशठकोप के शरीर को धारण करने वाली तुम्हारे मुख से निकलती हुई प्राचीन श्रुतिगोष्ठियों में अग्रगण्य हो गयी॥९॥

**शठकोप इति समाख्या तव रङ्गधुरीणपादुके! युक्ता।**
**सूते सहस्रमेवं सूक्तीः स्वयमेव यन्मया भवती॥१०॥**

हे श्रीरङ्गनाथ की पादुके! तुम्हारी 'शठकोप', यह समाख्या अनुरूप ही है। समाख्या यौगिक शब्द को कहते हैं। शठेषु कोपो यस्य स शठकोपः। इसीलिए कि मुझे माध्यम बना कर आप स्वयं ही हजारों पद्यों की रचना करती हो। शठकोप हजारों की संख्या में गाथाओं के प्रणेता हैं, अतः पादुका की शठकोप संज्ञा युक्तिसंगत ही है, यह अभिप्राय है॥१०॥

●

# अथ तृतीय प्रभावपद्धतिः

इस पद्धति में पादुका की अपार शक्ति को आगे करके स्तुति की गयी है—

**वन्दे तद्रङ्गनाथस्य मान्यं पादुकयोर्युगम्।**
**उन्नतानामवनतिर्नतानां यत्र चोन्नतिः॥१॥**

श्रीरङ्गनाथ जी के सर्वतोमान्य पादुकायुगल की मैं स्तुति करता हूँ जहाँ उन्नतों की अवनति और प्रणत लोगों की उन्नति होती है। तात्पर्य यह है कि जो पादुका के प्रति नम्र नहीं होते वे हीन से हीनतम हो जाते हैं तथा जो उसके प्रति विनम्र होते हैं उनका उत्कर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता है॥१॥

**निःशेषमम्बरतलं खलु पत्रिका स्यात्**
**सप्तार्णवी यदि समेत्य मषीभवित्री।**
**वक्ता सहस्रवदनः पुरुषः स्वयं चे-**
**ल्लिखयेत रङ्गपतिपादुकयोः प्रभावः॥२॥**

श्रीरङ्गपति की दोनों पादुकाओं के प्रभाव अर्थात् शक्ति को लिपिबद्ध करना कोई आसान कार्य नहीं है। यदि सकल आकाशतल लिपिकरण के लिए आधारभूत तालपत्र हो जाय और सातों समुद्र मिलकर मषी अर्थात् लेखन का साधन अञ्जन (स्याही) हो जाँय और सहस्र शीर्ष वाले पुरुष स्वयं आकर लिखें तभी पादुका के प्रभाव को लिखा जा सकता है। अन्यथा लिखना सम्भव नहीं है। असम्भावित सम्भावना होने से सम्भावना अलङ्कार है। कुछ आचार्य इसे अतिशयोक्ति के प्रभेद के रूप में ही स्वीकार कर लेते हैं॥२॥

वेदोपबृंहणकुतूहलिना निबद्धं
विश्वम्भराश्रुतिभवेन महर्षिणा यत्।
व्यासेन यच्च मधुसूदनपादरक्षे
द्वे चक्षुषी त्वदनुभावमवेक्षितुं नः॥३॥

हे मधुसूदन भगवान् श्रीनारायण की पादुके! वेदों के विस्तार में परम कौतूहल वाले विश्वम्भरा अर्थात् पृथ्वी पर उसके कान (वल्मीक) से पैदा होने वाले महर्षि वाल्मीकि जिस रामायण को ग्रन्थ के रूप में बनाया था और महर्षि वेदव्यास ने जिस महाभारत का गुम्फन किया था वे दोनों रामायण और महाभारत ग्रन्थ तुम्हारे व्यापक प्रभाव को देखने के लिए मेरी आँखें हैं। तात्पर्य यही है कि श्रीमद्भगवत्पादुका के प्रभाव में रामायण और महाभारत ही प्रमाण हैं। यहाँ कवि के नयनों में परिणत महाभारत और रामायण का दर्शनक्रिया से अन्वय का कथन होने से परिणामालङ्कार है॥३॥

प्रत्यक्षयन्ति परिशुद्धधियो यथाव-
द्रामायणे रघुपुरन्दरपादरक्षे।
शश्वत्प्रपञ्चितमिदम्परयैव वृत्त्या
संक्षेपविस्तरदशासु तवानुभावम्॥४॥

हे रघुकुल के इन्द्र भगवान् श्रीरामचन्द्र की पादुके! परिशुद्धा धीर्येषान्ते परिशुद्धधियः, अर्थात् अत्यन्त निर्मल बुद्धिवाले पुरुष श्रीमद्रामायण में संक्षेप और विस्तार की दशाओं में शक्ति-लक्षण और व्यञ्जन तीनों वृत्तियों से प्रपञ्चित (प्रतिपादित) तेरे लोकोत्तर प्रभाव का निरन्तर प्रत्यक्ष रूप से यथार्थ अनुभव करते हैं। यहाँ भाविक अलङ्कार है॥४॥

अल्पश्रुतैरपि जनैरनुमीयसे त्वं
रङ्गेशपादु नियतं निगमोपगीता।

**सारं तदर्थमुपबृंहयितुं प्रणीतं**
**रामायणं तव महिम्नि यतः प्रमाणम्॥५॥**

हे श्रीरङ्गपति की पादुके! तुम्हारा उपगान (वर्णन) वेद भी किये हैं, जिसका अनुमान निश्चित रूप से अल्पशास्त्रज्ञान वाले पुरुष भी करते हैं। अल्पं श्रुतं येषान्ते अल्पश्रुताः। जिनका श्रुत अर्थात् शास्त्रज्ञान अनल्प (व्यापक) है ऐसे वाल्मीकि-व्यास आदि महर्षि तो तेरे विषय में विद्यमान श्रुतियों का साक्षात्कार ही करते हैं। उस साक्षात्कार के कारण का ही कथन बाद के दो चरणों से करते हैं। उस पादुकाविषयकश्रुति के अर्थ के उपबृहंण (विस्तार) के लिए ही साररूप में प्रस्तुत रामायण ग्रन्थ तुम्हारी महिमा में प्रमाण है। रामायण के रूप में वेदार्थ का ही विस्तार हुआ है जिससे पादुकाविषयक व्याख्येय मूलभूत श्रुति का अनुमान होता है। इस प्रकार यहाँ अनुमानालङ्कार है॥५॥

**तिष्ठन्तु श्रुतयस्ततोऽपि महितं जागर्ति तत्पादुके**
**तत्तादृक्प्रथनाय तावकगुणग्रामाय रामायणम्।**
**यस्यासीदरविन्दसंभववधूमञ्जीरशिञ्जारव-**
**स्पर्धादुर्धरपादबद्धफणितिर्वल्मीकजन्मा कविः॥६॥**

स्मृतियों का प्रामाण्य मूलभूत श्रुतियों के उपस्थापन में ही आचार्यों ने स्वीकार किया है। यहाँ कविश्रेष्ठ का यही कहना है कि श्रुतियों का अन्वेषण न करने पर भी पादुका के प्रभाव के विषय में विश्वास रामायण से ही सिद्ध है। हे पादुके! वेद अपनी जगह विराजमान रहें। हम तुम्हारे प्रभाव के ज्ञान के लिए उनका आदर नहीं करते क्योंकि वेदों से अभ्यर्हित (पूजित) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण स्वरूपतः तथा प्रकारतः अपरिच्छेद्य (इयत्ताशून्य) तेरे प्रभाव के ख्यापन को और तुम्हारे गुणों के समुदाय को प्रकाशित करने के लिए सदैव जागता रहता है।

वह रामायण श्रुतियों से भी अभ्यर्हित है, इसके कारण को ही अन्तिम दो पादों से कहा गया है—जिस रामायण के रचयिता वे वाल्मीकि मुनि थे जिनकी सूक्तियाँ अरविन्द (कमल) से उत्पन्न ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती के नूपुरों के शिञ्जान-ध्वनियों से स्पर्धा (होड़) करने के लिए दुर्धर (गुरु) पादों में गुम्फित हैं। तात्पर्य यही है कि आदि कवि की सूक्तियाँ वेदों की अपेक्षा अधिक सुस्पष्ट होने से सरस्वती के नूपुरों की ध्वनियों की तरह रमणीय हैं। अत एव अभ्यर्हित हैं।।६।।

**भक्तिप्रह्वपुरप्रभञ्जनजटावाटीसनीडस्फुर-**
**च्चूडारग्वधवासनापरिमलस्त्याने स्तुमः पादुके।**
**रङ्गक्षोणिभृदङ्घ्रिपद्मयुगलीपूर्णप्रपत्तेः फलं**
**निश्चिन्वन्ति विपश्चितः शमधना नित्यं यदुत्तंसनम्।।७।।**

भक्तिभाव में विनम्र पुरप्रभञ्जन अर्थात् त्रिपुर को विध्वस्त करने में बलवान् वायु (यहाँ प्रभञ्जन का भग्न करने वाले', ऐसा यौगिक अर्थ मानेंगे तो अवाचकत्व दोष प्रसक्त होगा, अतः 'वायु' अर्थ ही उचित है। फलतः त्रिपुरारि 'शिव' अर्थ ही निकलेगा) भगवान् शिव की जटापङ्क्ति के पास प्रकाशमान शिखास्थित राजवृक्षपुष्पों की वासना के परिमलों से घनी उन भगवान् की पादुकाओं की स्तुति करता हूँ जिन पादुकाओं को विपश्चित् (विद्वान्) अपने मस्तक का भूषण बनाकर नित्य ही श्रीरङ्गनाथजी के दोनों चरणकमलों में पूर्ण प्रपत्ति (शरणागति) के फल के रूप में स्वीकार करते हैं। वे विद्वान् शमधन हैं अर्थात् अन्तरिन्द्रिय का निग्रह ही उनका धन है।।७।।

**मातर्माधवपादुके तव गुणान् कः स्तोतुमस्तोकधीः**
**कोटीरेषु यदर्पणप्रणयिनां सेवाक्षणे स्वर्गिणाम्।**
**अन्योन्यं क्षिपतामहंप्रथमिकासंमर्दकोलाहलं**
**विष्वक्सेनविहारवेत्रलतिकाकम्पश्चिरात्लुम्पति।।८।।**

हे मातः! श्रीमाधव की पादुके! तुम्हारे असीमित प्रभावादि गुणों की स्तुति करने के लिए दीर्घ बुद्धि वाला कौन पुरुष हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं हो सकता। सेवा के समय या उत्सव में अपने मुकुटों में जिस पादुका के समर्पण में इच्छा रखने वाले तथा परस्पर क्षेपण करने वाले स्वर्गनिवासी देवताओं का 'मैं पहले-मैं पहले', इस प्रकार के घने कोलाहल को भगवान् के सेनापति (विष्वक्सेन) की लीलायष्टिका (छड़ी) का कम्पन बहुत पहले से निरस्त करता आ रहा है। तात्पर्य यह है कि देवताओं में जब पादुका को अपने मस्तक में लगाने की होड़ होती है तो सेनापति अपनी भुजाओं को ऊपर करके केवल छड़ी हिलाते हैं क्योंकि वैष्णवों पर प्रहार करना उचित नहीं है।।८।।

**योषिद्भूतदृषन्त्यपोढशकटस्थेमानि वैमानिक-**
**स्रोतस्विन्युपलम्भनानि भसितोदञ्चत्परीक्षिन्ति च।**
**दूत्यादिष्वपि दुर्वचांसि पदयोः कृत्यानि मत्वेव यद्**
**धत्ते तत्प्रणयं तदेव चरणत्राणं वृणे रङ्गिणः।।९।।**

यहाँ योषिद्भूतदृषन्ति, इत्यादि प्रथमान्त पद 'कृत्यानि' के विशेषण हैं। श्रीभगवान् का जो चरणत्राण अर्थात् पादुका श्रीभगवान् के चरणों के कृत्यों को समझ कर उन चरणों में ही प्रीति धारण करती है मैं श्रीरङ्गनाथजी की उसी पादुका का वरण करता हूँ। चरणों के वे कृत्य कैसे हैं? योषिद्भूतदृषन्ति अर्थात् जिन कृत्यों से शिला स्त्री (अहल्या) बना दी गयी हो, शकटासुर की स्थिरता ध्वस्त कर दी गयी हो, विमान से चलने वाले देवताओं को गङ्गा की प्राप्ति कराने वाले, भस्म में परीक्षित के निष्क्रमण से सम्बन्धित तथा दूतकर्म आदि में दुर्वच अर्थात् वाणी के अविषय। ऐसे हैं श्रीमद्भगवच्चरणों के कृत्य जिनसे प्रभावित होकर पादुका चरणों में ही प्रीति रखती है। कवि बुद्धिमान् हैं जो पादुका में ही प्रीति रखते हैं।।९।।

वन्दे तन्मधुकैटभारिपदयोर्मित्रं पदत्रद्वयं
यत्तद्भक्तिभरानतेन शिरसा यत्र क्वचिद्बिभ्रति।
द्वित्रब्रह्मविनाडिकावधिपदव्यत्यासशङ्काभर-
त्रासोत्कम्पदशाविसंस्थुलधृतिस्त्रैविष्टपानां गणः॥१०॥

मैं मधुकैटक के शत्रु श्रीरङ्गनाथजी के चरणों में मित्र बनीं दोनों पादुकाओं की वन्दना करता हूँ। उन पादुकाओं का इतना व्यापक प्रभाव है कि जब कोई भी पुरुष उनको भक्ति की अतिशयता से विनम्र हुए अपने मस्तक से धारण कर लेता है तब ब्रह्मा के दो तीन नाड़ी (रात-दिन के साठवें भाग) की अवधि वाले इद्रादिपदों के अन्यथाभाव की आशङ्का की अधिकता के कारण उत्पन्न हुए भय और कम्पन की अनेक प्रकारों वाली अवस्था से शिथिल धैर्य वाला देवताओं का समुदाय हो जाता है। ब्रह्मा के एक ही दिन में बहुत से इन्द्रादि देवताओं का नाश हो जाता है जिससे वे आशङ्का के मारे भय से काँपने लगते हैं कि कहीं भगवान् हमारा पद उनको न दे दें जो पादुकाओं को अपने मस्तक से लगाते हैं, यह अभिप्राय है। यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥१०॥

पद्माकान्तपदान्तरङ्गविभवोद्रिक्तं पदत्रं भजे
यद्भक्त्या नमतां त्रिविष्टपसदां चूडापदेष्वर्पितम्।
नित्यापीतनखेन्दुदीधितिसुधासंदोहमुच्चैर्वम-
त्यन्तर्नूनममान्तमन्तिकलगच्छेषापटच्छद्मना॥११॥

कवितार्किक चक्रवर्ती इस श्लोक से यही कहना चाहते हैं कि देवगण अपने पदों से च्युत होने के भय से स्वयं ही पादुका का अनुग्रह चाहते हैं और उसे भक्तिपूर्वक प्रमाण करते हैं। पदमा = लक्ष्मी के कान्त भगवान् नारायण के चरणों में अत्यन्त शेषभूत वैभव (स्वर्ण-मणि आदि संपत्ति) से उत्कृष्ट हुई पादुका का मैं सेवन करता हूँ जो पादुका भक्तिपूर्वक प्रणाम करने वाले त्रिविष्टप अर्थात् स्वर्ग में रहने वाले देवों के मस्तकों में समर्पित हुई समीप में

सुशोभित शेषापट (मस्तक में लपेटा जाने वाला कपड़ा) के बहाने भीतर न सामने वाले नित्य चारों ओर से पीतवर्ण नखरूपी चन्द्रमा के किरण रूपी अमृत के समुदाय का वमन (उद्गरण) करती है। यहाँ उत्प्रेक्षा और अपह्नुति-रूपक अलङ्कार हैं। पादुका देवताओं को भगवान् के चरणों में विद्यमान नखचन्द्र-सुधा को समर्पित करती है, जिससे अपना सौभाग्य समझते हुए देवता आनन्दित होते हैं, यह अभिप्राय है॥११॥

**तद्विष्णोः परमं पदत्रयुगलं त्रय्यन्तपर्यन्तगं**
**चिन्तातीतविभूतिकं वितरतु श्रेयांसि भूयांसि नः।**
**यद्विक्रान्तिदशासमुत्थितपदप्रस्पन्दिपाथस्विनी-**
**सख्येनेव सदानतस्य तनुते मौलौ स्थितिं शूलिनः॥१२॥**

वेदत्रयी का अन्त अर्थात् वेदान्त के पर्यन्त (परमतात्पर्य) को प्राप्त कर लेने वाली तथा चिन्तन से ऊपर विभूति = ऐश्वर्य हो जिनका ऐसी श्रीविष्णु की दोनों पादुकायें हमें अत्यधिक कल्याण का वितरण करें। कैसी हैं भगवान् की दोनों पादुकायें? इसके उत्तर में ही अग्रिम दोनों पाद हैं। जो पादुकायें त्रिविक्रम-अवतार के समय उनके ऊपर प्रक्षिप्त चरण से निकलने वाली पाथस्विनी = गङ्गा की मानो मित्रता से विनम्र हुए भगवान् शिव की मौलि = मस्तक पर विराजमान रहती हैं। गङ्गा के साथ मित्रता करके पादुका भी उनके मस्तक पर विद्यमान रहती है, ऐसी उद्भावना होने से उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है॥१२॥

**अम्बुन्यम्बुनिधेरनन्यगतिभिर्मीनैः कियद् गम्यते**
**क्लेशेनापि कियद् व्यलङ्घि रभसोत्तुङ्गैः प्लवङ्गेश्वरैः।**
**विज्ञाता कियती पुनः क्षितिभृता मन्थेन गम्भीरता**
**किं तैः केशवपादुकागुणमहाम्भोधेस्तटस्था वयम्॥१३॥**

अम्बुनिधि = समुद्र के जल में अनन्य गति वाले मत्स्य कितनी दूर जाते हैं? न विद्यते समुद्रात् अन्या गतिर्येषान्ते मीनाः, अर्थात् समुद्र में रहने वाली मछलियों के लिए समुद्र से अन्य कोई स्थान नहीं हो सकता तो भी उस जल में वे समुद्र की थाह पाने में असमर्थ हैं। वह समुद्र इतना अगाध है कि अत्यधिक क्लेश करके भी हनुमान् आदि प्लवङ्गेश्वर = वानराधिपति उसके कितने अंश का लङ्घन करते हैं? अर्थात् यत्किञ्चित् अंश का ही लङ्घन करते हैं। इस समुद्र की गम्भीरता = अगाधता का कितना ज्ञान 'मन्दर' पर्वत को है? अर्थात् वह भी पूरी अगाधता समझने में असमर्थ है। ये सभी वृथा ही उद्यम किये हैं, यह तात्पर्य है। इसी प्रकार हम लोग भी श्रीनारायण की पादुकाओं के गुण रूपी महासागर की पूरी स्तुति में उदासीन ही हैं। यहाँ लेशालङ्कार है॥१३॥

**पदकमलरजोभिर्वासिते रङ्गभर्तुः**
**परिचितनिगमान्ते पादुके धारयन्तः।**
**अविदितपरिपाकं चन्द्रमुत्तंसयन्ते**
**परिणतभुवनं तत् पद्ममध्यासते वा॥१४॥**

श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों के परागों से सुवासित तथा जिनमें प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव से वेदान्त का समन्वय है, ऐसी पादुकाओं को धारण करते हुए बहुत से पुरुष उस चन्द्र को अपने मस्तक से धारण करते हैं जिसका परिपाक = वृद्धि-क्षयरूप परिणाम अज्ञात है। अर्थात् चन्द्रमा की एक कला को धारण करने वाले रुद्र हो जाते हैं। रुद्र के द्वारा धृत चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय का किसी को परिज्ञान नहीं है क्योंकि वह एक ही कला में अवस्थित रहता है। अपि च, पादुका को धारण करने वाले पुरुष उस भगवान् के नाभिकमल को अपना निवास बना लेते हैं जिससे सारे भुवन प्रकट होते हैं। पादुका के ही प्रभाव से ब्रह्मत्व और शिवत्व की प्राप्ति

होती है, यह अभिप्राय है। यहाँ विकल्पालङ्कार से संसृष्ट पर्यायोक्त अलङ्कार है॥१४॥

**सकृदपि भुवनेऽस्मिञ्शार्ङ्गिणः पादुके त्वां**
**मनुजमनुवहन्तं देहबन्धव्यपाये।**
**उपचरति यथार्हं देववर्गस्त्वदीयः**
**स तु नियमितभृत्यो जोषमास्ते कृतान्तः॥१५॥**

हे शार्ङ्गधन्वा प्रभु की पादुके! जो मनुष्य एकबार भी तुमको अपने मस्तक से धारण करता है उसके शरीरबन्ध के अन्तकाल में तुम्हारे देवगण यथाधिकार उसकी सेवा में तत्पर हो जाते हैं। कृतान्त = यमराज तो नियमित सेवक बन कर मौन ही रहते हैं। तात्पर्य यही है कि पादुका के साथ सम्बन्ध बना लेने वाले लोग यम के वश में नहीं होते। भक्ति या प्रपत्ति के निष्पादन के साथ पादुका का मस्तक से धारण करना मोक्ष का हेतु है, यह भाव है। इस तरह श्रुति-स्मृति आदि से किसी भी प्रकार के विरोध की सम्भावना नहीं है। 'वह मनुष्य मुक्त हो जाता' इस वस्तु का प्रकारान्तर से कथन होने से पर्यायोक्त अलङ्कार है॥१५॥

**पदसरसिजमेतत् पादुके रङ्गभर्तुः**
**प्रतिनिधिपदवीं ते गाहते स्वेन भूम्ना।**
**तदिदमपरथा चेत्तिष्ठतस्तस्य नित्यं**
**कमिव च विदितार्थास्त्वां भजन्ते महान्तः॥१६॥**

पूर्वश्लोक से अन्य की अपेक्षा से पादुका का उत्कर्ष बताया गया है। यहाँ भगवान् की अपेक्षा से भी उसका उत्कर्ष कहा जा रहा है। मुख्य का अलाभ होता है तो प्रतिनिधि से कार्य होता है। जैसे ज्योतिष्टोम यज्ञ में मुख्य द्रव्य सोम के न मिलने पर पूतीका से उसका अनुष्ठान होता है। देवता-अग्नि-मन्त्र और क्रिया (याग आदि) का प्रतिनिधि नहीं होता, ऐसा 'न देवताग्निशब्दक्रियम्' इस

सूत्र से जैमिनि का सिद्धान्तपक्ष है। यहाँ कवि का यही कहना है कि निःश्रेयस के लिए मुख्य उपास्य पादुका ही है। उसका अलाभ होने पर श्रीभगवच्चरण की सेवा होती है। हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी का यह चरणकमल अपने माहात्म्य से तुम्हारे प्रतिनिधि के मार्ग का अनुसरण करता है। यदि ऐसा नहीं होता तो उन चरणकमलों के होते हुए भी वास्तविकता को समझने वाले महापुरुष तुम्हारा ही भजन क्यों करते?॥१६॥

**श्रुतिशिरसि निगूढं कर्मणां चोदितानां**
**त्वदवधि विनिवेशं नाधिगन्तुं क्षमाणाम्।**
**परिहसति मुरारेः पादुके बालिशानां**
**पशुवधपरिशेषान् पण्डितो नामयज्ञान्॥१७॥**

हे श्रीमुरमथन की पादुके! जो बालिश = अज्ञानी वेदबोधित यागादि कर्मों को वेदान्त में निगूढ़ तुम्हारी सीमा तक समर्पण को समझने में असमर्थ हैं उनके उन यज्ञाभासों का पण्डित परिहास करता है जिनमें पशुओं का वध ही परिशेष है। यज्ञों के माध्यम से अन्तर्यामी श्रीनारायण का ही समाराधन होता है जो पादुका के प्रति भक्त्यतिशय में परिणत होता है। इस तथ्य को न समझने वाले ही पशुयागों में विशेष प्रीति रखते हैं। इसी अभिप्राय से पण्डितजन का उनके प्रति परिहास है जो वास्तविक तात्पर्य से अनभिज्ञ हैं॥१७॥

**जनयितुमलमर्घ्यं दैत्यजित्पादरक्षे**
**नमति महति देवे नाकसिन्धोर्विशीर्णाः।**
**मुहुरहिपतिचूडामौलिरत्नाभिघातात्**
**परिणतलघिमानः पाथसामूर्मयस्ते॥१८॥**

हे दैत्यों के ऊपर विजय प्राप्त करने वाले श्रीनारायण की पादुके! महादेव शिव जब तुम्हारे प्रति प्रणत होते हैं तब बार-बार

वासुकि (अहिपति) के मस्तक में विद्यमान चूडामणि के अभिघात से लघुता में परिणत गङ्गाजी के जलों की छिन्न-भिन्न तरङ्गें तेरे अर्घ्य (पूजायोग्यता) के उत्पादन में समर्थ होती हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१८॥

**पदसरसिजयोस्त्वं पादुके रङ्गभर्तु-**
**र्मनसि मुनिजनानां मौलिभागे श्रुतीनाम्।**
**वचसि च सुकवीनां वर्तसे नित्यमेका**
**तदिदमवगतं ते शाश्वतं वैश्वरूप्यम्॥१९॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! भगवान् के चरणकमलों में एकमात्र तुम ही आराधना में लगी रहती हो तथा तुम ही मुनियों के मानस-पटल में ध्येयरूप से रहती हो एवं वेदों के शिरोभाग (वेदान्त) में प्रतिपाद्यरूप से समासक्त हो और सुकवियों की वाणी में भी नित्य रूप से एकमात्र तुम ही विराजमान हो। इस प्रकार तुम्हारी विश्वरूपता शाश्वतरूप से प्रकट है। यहाँ एक ही पादुका का अनेक आधारों में वर्णन होने के कारण विशेषालङ्कार है। 'विशेषः सोऽपि यद्येकं वस्त्वनेकत्र वर्ण्यते' यह उसका लक्षण है॥१९॥

**परिसरविनतानां मूर्ध्नि दुर्वर्णपङ्क्ति**
**परिणमयसि शौरेः पादुके त्वं सुवर्णम्।**
**कुहकजनविदूरे सत्पथे लब्धवृत्तेः**
**क्व नु खलु विदितस्ते कोऽप्यसौ धातुवादः॥२०॥**

हे शौरि श्रीमुरमथन की पादुके! समीप देश में प्रणाम करने वालों के मस्तक पर विद्यमान दरिद्रतासूचक दुष्ट अक्षरों की पङ्क्ति को तुम शोभन अक्षरों (सौभाग्यपरक) में परिणत कर देती हो। प्रकारान्तर से दुष्ट वर्णपङ्क्ति को सुवर्ण (धातु) में परिणत कर देती हो। अत्यन्त दूर सन्मार्ग में प्राप्त स्थिति वाली तुम्हारी यह धातुवादिता कहाँ ज्ञात हुई है? रजत को सुवर्ण में बदलना विरोध

है जिसका समाधान अक्षरपरक व्याख्या से हो जाता है। इस प्रकार यहाँ विरोधाभास अलङ्कार है॥२०॥

**बलिमथनविहाराद् वर्धमानस्य विष्णो-**
**रखिलमतिपतद्भिर्विक्रमैरप्यमेयः।**
**अवधिमनधिगच्छन् पापराशिर्मदीयः**
**समजनि पदरक्षे सावधिस्त्वन्महिम्ना॥२१॥**

हे चरणरक्षिके पादुके! महान् बली की निग्रहक्रीडा की अपेक्षा से वृद्धि को प्राप्त होने वाले त्रिविक्रम भगवान् वामन के सकल वस्तुसमुदाय का अतिक्रमण करके गमन करने वाले पादविक्षेपों से अपरिच्छेद्य (असीमित) अत एव अवधि अर्थात् नाश को न प्राप्त करता हुआ मेरा पापसमुदाय तुम्हारे ही प्रभाव से परिच्छिन्न हो गया है। नष्ट हो गया है, यह अभिप्राय है। श्रीरङ्गनाथजी के चरणों की अपेक्षा पादुका के प्रभाव की अधिकता की प्रतीति होने से व्यतिरेकालङ्कार है, ऐसा कुछ आचार्यों का मत है। भगवान् के चरणों से भी अपरिच्छिन्न बलवान् शत्रु पापराशि में पादुका के प्रभाव का वर्णन होने से प्रत्यनीक-अलङ्कार कुछ आचार्य मानते हैं॥२१॥

**तटभुवि यमुनायास्तस्थुषी यन्निवेशाद्**
**वहति निगमशाखावैभवं नीपशाखा।**
**पदकमलयुगं तत् पादुके रङ्गभर्तु-**
**स्त्वयि भजति विभूतिं पश्य शाखानुशाखम्॥२२॥**

हे पादुके! यमुना के तटीय प्रान्त में स्थित कदम्ब वृक्ष की शाखा जिस श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों के निवेश से निगम अर्थात् ऋग्वेद आदि की शाखा के वैभव को धारण करती है उस श्रीरङ्गनाथजी का पदसरोज तुम्हारे आश्रय में आकर शाखानुशाखा की विभूति को धारण करता है। 'शाखा' शब्द 'चरण' अर्थ का बोधक है, अतः 'अनुशाखा' पद से भगवान् के चरणों की अङ्गुलियों

का कथन है तथा च ऋग्वेदादिशाखा प्रश्न-अनुवाक आदि प्रभेदों से संपृक्त श्रुतिवैभव भगवच्चरणों में पादुका के प्रभावातिशय का फल है, यह अभिप्राय है। उत्तरोत्तर उत्कर्ष के कथन से यहाँ 'सार' अलङ्कार है।।२२।।

**शिरसि विनिहितायां भक्तिनम्रैर्भवत्यां**
**सपदि तनुभृतस्तामुन्नतिं प्राप्नुवन्ति।**
**मधुरिपुपदरक्षे यद्वशेनैव तेषा-**
**मनितरसुलभं तद्धाम हस्तापचेयम्।।२३।।**

हे मुरमथन की पादुके! शरीरधारी लोग जब तुझे भक्ति से नम्र अपने मस्तक पर धारण करते हैं तब वे शीघ्र ही उस उन्नति अर्थात् उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं जिसके बल से उनके लिए वह कैवल्यधाम हाथों से ही प्राप्य हो जाता है जो अन्यों के लिए सुलभ नहीं है। तात्पर्य यही है कि जिनका पादुका से सम्बन्ध हो जाता है उनके लिए भगवान् और उनका धाम सुलभ हो जाता है।।२३।।

**सकृदपि भुवनेऽस्मिञ्शार्ङ्गिणः पादुके त्वा-**
**मुपनिषदनुकल्पैरुत्तमाङ्गैर्दधानाः।**
**नरकमिव महान्तो नाकमुल्लङ्घयन्तः**
**परिषदि निविशन्ते प्राक्तनानां गुरूणाम्।।२४।।**

हे 'शार्ङ्ग' नामक धनुष को धारण करने वाले श्रीनारायण की पादुके! इस भुवन में तुमको उपनिषदों के अनुकल्पों अर्थात् प्रथम कल्प से कुछ न्यून उनके समान उत्तमाङ्गों (मस्तक) से एक बार भी धारण करने वाले महानुभाव स्वर्ग का तिरस्कार नरक की तरह करते हुए प्राचीन गुरुओं (आचार्यों) की सभा में प्रवेश कर जाते हैं अर्थात् मुक्त हो जाते हैं। यहाँ मुक्ति का ही पर्यायतः कथन से पर्यायोक्त अलङ्कार है।।२४।।

शमदमगुणदान्तोदन्तवैदेशिकानां
शरणमशरणानां मादृशां माधवस्य।
पदकमलमिदं ते पादुके रक्ष्यमासी-
दनुदयनिधनानामागमानां निधानम्॥२५॥

हे पादुके! शम = मनोनिग्रह, दम = बाह्येन्द्रिय-निग्रह, गुण = श्रद्धा-तितिक्षा आदि, दान्ता = भक्ति, इन सभी के उदन्त अर्थात् वृत्तान्त से दूर रहने वाले अशरण (जिनका अन्य कोई रक्षक न हो) हम जैसे लोगों के रक्षक तथा अनादि और अनन्त वेदों के निधान जो माधव के पदकमल हैं वे भी तेरे द्वारा रक्षणीय होते हैं। अहो, धन्य है भगवति! तेरा प्रभाव। यहाँ भी सार-अलङ्कार है॥२५॥

परिचितपदपद्मां पादुके रङ्गिणस्त्वां
त्रिभुवनमहनीयां सादरं धारयन्तः।
निजशिरसि निलीनं देवि मन्दारमाल्यं
निगमपरिमलैस्ते वासयन्तीव देवाः॥२६॥

हे देवि! पादुके! भगवान् के चरणकमलों में नित्य संश्लिष्ट रहने वाली और तीनों लोकों में पूज्य तुमको भक्तिभाव से धारण करते हुए देवगण अपने मस्तक में विद्यमान मन्दार के माल्य को मानो वेदप्रतिपाद्य सारे गन्धों से सुवासित करते हैं। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२६॥

कनकसरिदनूपे कल्पवृक्षस्य भूम्णोः
पदकिसलयलग्ना पादुके मञ्जरी त्वम्।
परिणतिमधुराणां या फलानां सवित्री
वहसि निगमवृन्दैः संपदं षट्पदानाम्॥२७॥

हे पादुके! यहाँ कनकनदी अर्थात् कावेरी के अनूप (जलप्राय देश) से रङ्गनगर का प्रतिपादन है तथा 'कल्पवृक्ष' शब्द से अभेदरूप

से श्रीरङ्गनाथजी का प्रतिपादन है। रङ्गनगर में भूष्णु अर्थात् निरन्तर बढ़ने वाले कल्पवृक्ष के पदपल्लवों में संलग्न तुम मञ्जरी हो जो पक जाने से मधुर फलों को उत्पन्न करती हो तथा वेदसमूहों से भ्रमरों की समृद्धि का विस्तार करती हो। यहाँ रूपक और अतिशयोक्ति का सङ्करालङ्कार है॥२७॥

**परिकलयसि चेन्मां पद्मवासानिषेव्ये**
**पदकमलयुगे त्वं पादुके रङ्गभर्तुः।**
**अविदितनिगमानां नूनमस्मादृशाना-**
**मघटितघटिनी ते शक्तिराविष्कृता स्यात्॥२८॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! कमल में निवास करने वाली लक्ष्मी से सेवनीय श्रीरङ्गनाथजी के दोनों चरणकमलों में यदि तुम मुझे परिचारक के रूप में लगा देती हो तो निश्चय ही वेदों को न जानने वाले हम जैसे पुरुषों के प्रति अघटित घटना का सम्पादन करने वाली तेरी अद्भुत शक्ति प्रकट होगी॥२८॥

**श्रुतिशतशिरश्चूडापीडे निपीडयितुं क्षमे**
**दुरितसरितामोघानेतानमोघविसर्पिणः।**
**क्रमपरिणमद्वेधःश्रेणीशिखामणिघट्टना-**
**मसृणिततले रङ्गक्षोणीभृतो मणिपादुके॥२९॥**

शत अर्थात् अनेक संख्याओं में विद्यमान वेदों के मस्तकों (उपनिषद्) में प्रतिपाद्य के रूप में शिखा के समान विराजमान श्रीरङ्गनाथजी शिरोलङ्कार हों जिनके ऐसी और क्रमशः परिणत होने वाले ब्रह्माओं की पङ्क्ति की चूडामणियों के संघर्षण से चिकने तल वाली श्रीरङ्गनाथजी की दोनों पादुकायें ही अनवरुद्ध होकर फैलने वाले पापों की नदियों के प्रवाहों को पीडित करने में समर्थ हैं॥२९॥

**जगज्जननरक्षणक्षपणसङ्गिनो रङ्गिणः**
**पवित्रतममाद्रियै भगवतः पदत्रद्वयम्।**

शिवत्वकरणक्षमत्रिदिवसिन्धुसंबन्धिनं
प्रधाव्य चरणं निजं प्रणिदधाति यत्र प्रभुः॥३०॥

संसार की उत्पत्ति, स्थिति और संहार में संकल्पवान् भगवान् श्रीरङ्गनाथजी की अत्यन्त पावन पादुकाओं को ही मैं आदर से स्वीकार करता हूँ। इसीलिए कि उन पादुकाओं में प्रभु अपना चरण रखते हैं। क्या करके? प्रधाव्य=प्रक्षालित करके। वे चरण भी शिवत्व प्रदान करने में समर्थ त्रिपथगा गङ्गा से सम्बन्ध रखते हैं, अत एव परम पावन हैं, पृथ्वी छन्द है॥३०॥

यदध्वरभुजां शिरः पदयुगं च रङ्गेशितु-
र्दृढं घटयितुं क्षमं भवति शेषशेषित्वतः।
शिरस्त्रमिदमस्तु मे दुरितसिन्धुमुष्टिन्धयं
कदध्वविहतिक्षमं किमपि तत्पदत्रद्वयम्॥३१॥

जो पादुकायुगल देवताओं के मस्तक को और श्रीरङ्गनाथजी के चरणयुगल को सेव्यसेवकभाव से सुदृढतया नियोजन में समर्थ होता है तथा पापों के सागर का भी नाशक है वह कोई लोकोत्तर पादुकायुगल मेरे कुत्सितमार्ग के निवारण में समर्थ होकर मेरे लिए शिरस्त्राण हो जाय। पगड़ी की तरह सदा मेरे मस्तक में लगा रहे, यह अभिप्राय है॥३१॥

समुत्क्षिपति चेतसि स्थिरनिवेशिता तावकी
मुकुन्दमणिपादुके मुहुरुपासनावासना।
उदर्कपरिकर्कशानुपरिपर्वणा खर्विता-
ननर्थशतगर्भितानमरशम्भलीविभ्रमान्॥३२॥

हे मुकुन्द की मणिपादुके! मन में दृढ़रूप से निवेशित तुम्हारी उपासना की वासना (संस्कार) देवों की कुट्टनियों अर्थात् अप्सराओं के विलासों को उन्मूलित (परिसमाप्त) कर देती है, यह अन्वयार्थ है। वे अप्सराओं के विलास उदर्क अर्थात् उत्तरफल के कारण

परिकर्कश (अति-असह्य) तथा उत्तरोत्तर तारतम्य से ह्रस्व बना दिये गये हैं और अध:पात आदि के भयप्रभृति अनर्थों से परिपूर्ण हैं। पादुका के भक्तों की बुद्धि निन्दित स्वर्गादि भोगों में नहीं होती, यह तात्पर्य है। पादुका की वासना का अन्य विषयों की वासना के विच्छेदरूप कार्य के साथ साहित्य का वर्णन होने से यहाँ 'हेतु' अलङ्कार है॥३२॥

**विगाहन्ते रङ्गक्षितिपतिपदत्रायिणि सकृद्**
**वहन्तस्त्वामन्तर्विनिहितकुचेलव्यतिकरा:।**
**मदोद्दामस्तम्बेरमकरटनिर्यन्मदझरी-**
**परीवाहप्रेङ्खद्भ्रमरमुखरामङ्गणभुवम्॥३३॥**

हे श्रीरङ्गपति के चरणों की रक्षा में तत्पर पादुके! अपने गुप्त स्थानों में कुत्सित कपड़ों को लपेटे हुए दरिद्र लोग भी (अन्तर्विनिहितकुचेलव्यतिकरा: अर्थात् आभ्यन्तर गुप्त स्थानों में कुचेल से ही जिनका सम्बन्ध है ऐसे दरिद्र) एक बार भी यदि तुमको अपने मस्तक से धारण कर लेते हैं तो वे ऐसी प्राङ्गणभूमि में प्रवेश करते हैं जहाँ मद से मतवाले हाथियों के गण्डस्थलों (गाल) से निकलने वाली मदजल की झड़ी (प्रवाह) में प्रवाह रूप से प्रसर्पण करने वाले भ्रमरों का शब्द गुञ्जायमान रहता है। जैसे कुचेलमुनि सुदामा को श्रीकृष्ण ने गजान्त ऐश्वर्य प्रदान किया था वैसे ही उनकी पादुका भी वैसा ही ऐश्वर्य प्रदान करती है, यह अभिप्राय है॥३३॥

**अधिदैवतमापतत्सु कल्पेष्वधिकारं भजतां पितामहानाम्।**
**अभिरक्षतु रङ्गभर्तुरेषा करुणा काञ्चनपादुकामयी न:॥३४॥**

आने वाले कल्पों अर्थात् ब्रह्मा की आयु तक परिच्छिन्न कालों में अधिकार (स्वामित्व) प्राप्त कर लेने वाले पितामहों (ब्रह्मा) की अधिदैवत अर्थात् अधिष्ठात्री स्वर्णनिर्मितपादुका के रूप में प्रभु की साक्षात् करुणा (दया) हम लोगों की रक्षा करे। यहाँ भगवान् के

चरणों की रक्षा के लिए निर्मित पादुका का रक्षण के रूप में वर्णन होने से परिणामालङ्कार है।।३४।।

**ध्रुवमिन्द्रियनागशृङ्खला वा निरयद्वारनिवारणार्गला वा।**
**अनयापपदाधिरोहणी वा मम रङ्गेशविहारपादुके त्वम्।।३५।।**

हे श्रीरङ्गनाथजी की लीलापादुके! तुम मेरी इन्द्रिय रूप दुर्वार हाथियों को जकड़ने के लिए शृङ्खला (जञ्जीर) हो या नरक द्वार के निवारणार्थ अर्गला (प्रतिरोधक काष्ठ) हो या परमपद की अधिरोहणी हो। सर्वथा संसारबन्धन के विच्छेदन में तत्पर उक्त कोटियों में ही कोई एक हो, यह अभिप्राय है। कोटियों का निर्धारण न होने से सन्देहालङ्कार है।।३५।।

**शरणागतसार्थवाहशीलां श्रुतिसीमन्तपदप्रसादनार्हाम्।**
**अधिरङ्गमुपास्महे मुरारेर्महनीयां तपनीयपादुके त्वाम्।।३६।।**

हे श्रीमुरमथन भगवान् की स्वर्णपादुके! शरणागतों के समुदाय के वहन के स्वभाव वाली, श्रुतियों के सीमन्त स्थान अर्थात् उपनिषदों के परिष्कार के योग्य पूजनीय तुम्हारी हम रङ्गविमान (श्रीरङ्गम्) में उपासना करते हैं।।३६।।

**इह ये भवतीं भजन्ति भक्त्या कृतिनः केशवपादुके नियुक्ताः।**
**कथयाम्ब तिरोहितं तृतीयं नयनं त्रीणि मुखानि वा किमेषाम्।।३७।।**

हे मातः! केशव की पादुके! भक्ति से नियुक्त होकर जो पुण्यात्मा यहाँ पर तुम्हारा भजन करते हैं उनके लिए क्या तृतीय नयन या तीन मुख तिरोहित होते हैं? इसका उत्तर तुम्हीं दो। निश्चय ही वे रुद्र या ब्रह्मा हो जाते हैं, यह अभिप्राय है'। यहाँ पर्यायोक्त से संकीर्ण सन्देहालङ्कार है। श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए ही जो लोग कर्म करते हैं उनको ब्रह्मादिपदों की प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्मपुराण में प्रतिपादन है—

ब्रह्मरुद्रेन्द्रवह्नीन्दुदिवाकरमनुग्रहा:।
तच्छक्त्या विष्ठिता:सन्तो मोदन्ते दिवि देवता:॥३७॥

**मधुवैरिपरिग्रहेषु नित्यं क्षमया त्वं मणिपादुके समेता।**
**तदपि क्षमसे न किं परेषां त्रिदशाधीश्वरशेखरे निवेशम्॥३८॥**

हे मणिपादुके! तुम श्रीमुरमथन भगवान् के परिग्रहों अर्थात् परिबर्हों में क्षमा अर्थात् क्षान्ति और भूमि से युक्त रहती हो तथापि देवताओं के अधीश्वर इन्द्रादि के मुकुट आदि मस्तकभूषणों में चामर आदि के निक्षेप को सहन क्यों नहीं करती? चामर आदि का वन्दकों के शिर पर निवेश नहीं है, यह प्रसिद्ध है जिस का उल्लेख पादुका के असहन के रूप में है॥३८॥

**द्वितयं प्रतियन्ति रङ्गभर्तुः कतिचित्काञ्चनपादुके शरण्यम्।**
**अभयान्वितमग्रिमं करं वा भवतीशेखरितं पदाम्बुजं वा॥३९॥**

हे श्रीभगवान् की सुवर्णपादुके! दुर्लभ पुण्यप्रकर्ष से संपृक्त कुछ पुरुष ही श्रीरङ्गनाथजी से सम्बन्धित दो ही वस्तुओं को शरण्य (रक्षकत्व) के रूप में स्वीकार करते हैं जिनमें प्रथम भगवान् का वह हाथ है जो अभयमुद्रा से युक्त है और दूसरा उनका ही चरणकमल है जिसे आप अपने मस्तक में भूषण के रूप में स्वीकार की हैं। भगवान् की शरण में चला गया पुरुष भगवान् के करपल्लव और पदकमल से अतिरिक्त किसी तीसरी वस्तु को नहीं चाहता, यह अभिप्राय है। तुल्यबल का विरोध होने से यहाँ 'विकल्प' अलङ्कार है॥३९॥

**भरताश्वसनेषु पादशब्दं वसुधाश्रोत्रसमुद्भवो मुनीन्द्रः।**
**पठति त्वयि पादुके ततस्त्वं नियतं रामपदादभिन्नभूमा॥४०॥**

हे पादुके! पृथ्वी के कान कहे जाने वाले वल्मीक से उत्पन्न हुए वाल्मीकि मुनि भरत के आश्वासनों में तुम्हारे विषय में 'पाद' शब्द का प्रयोग करते हैं, अर्थात् भगवान् की पादुका का स्पर्श

न कहकर भगवान् के चरणों का स्पर्श कहते हैं। तात्पर्य यह है कि पादुका में भगवान् के पादों का अभेदाध्यवसान करते हैं। इस प्रकार से तुम श्रीराम के चरण से अभिन्न माहात्म्य वाली हो जाती हो।।४०।।

**मुकुटेषु निविश्य दिक्पतीनां पदमेव प्रतिपद्य दैत्यहन्तुः।**
**परिरक्षसि पादुके पदं त्वं क्व नु भिद्येत गरीयसां प्रभावः।।४१।।**

हे पादुके! दिशाओं के पति इन्द्र आदि के मुकुटों में स्थित होकर पद अर्थात् स्थान की ही रक्षा तुम करती हो तथा दैत्यों का वध करने वाले श्रीरङ्गनाथजी के पद अर्थात् चरण को प्राप्त करके तुम उनके चरण की ही रक्षा करती हो। दोनों जगह पद की ही रक्षा है। यह ठीक ही है क्योंकि महान् लोगों के प्रभाव (माहात्म्य) में भेद की सम्भावना नहीं रहती। यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है क्योंकि सामान्य से विशेष का समर्थन किया गया है।।४१।।

**जगतामभिरक्षणे त्रयाणामधिकारं मणिपादुके वहत्योः।**
**युवयोः परिकर्मकोटिलग्नं चरणद्वन्द्वमवैमि रङ्गभर्तुः।।४२।।**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी के दोनों चरणों को मैं तीनों जगत् (भूर्भुवः स्वः) की रक्षा में अधिकार (स्वामित्व) को प्राप्त कर लेने वाली तुम दोनों के अलङ्कारस्थानों में स्थित मानता हूँ। जैसे किसी मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय का मुकुट केवल अलङ्कार ही होता है, अन्य उससे कोई कार्य नहीं होता वैसे ही पादुकाओं में स्थित भगवान् के दोनों चरण केवल पादुका के अलङ्कार हैं, उनसे पादुकाओं का कोई कार्य संपादित नहीं होता, यह अभिप्राय है। यहाँ श्रीभगवान् के दोनों चरणों में पादुकाओं के मुकुटत्व की सम्भावना करने से 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है।।४२।।

**पदरक्षिणि वत्सला निकामं रघुवीरस्य पदाम्बुजादपि त्वम्।**
**यदसौ भरतस्त्वयांशवत्त्वान्न पुनस्तादृशमन्वभूद्वियोगम्।।४३।।**

हे भगवान् के चरणों की रक्षा में तत्पर पादुके! श्रीरघुनाथजी के चरणकमल से भी अधिक भक्तों में वात्सल्य रखती हो। ऐसा इसीलिए है कि वे महाभागवत श्रीभरत तुम जैसी भागवत को प्राप्त करके पुन: श्रीरामचन्द्र के वैसे वियोग का अनुभव नहीं किये जै:ा तुम्हारे लाभ के पहले किये थे। यहाँ पर पादुका के लाभ के बाद भरत जी पूर्वदु:ख को भूल कर सुखी हुए थे, इस प्रकार से पादुका में अधिक वात्सल्य के समर्थन से यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।।४३।।

**अभिगम्य मुकुन्दपादुके त्वामपनीतातपवारणै: शिरोभि:।**
**हरितां पतयो दुरापमन्यैरनघच्छायमवाप्नुवन्ति भोगम्।।४४।।**

हे मुकुन्द की पादुके! दिशाओं के पति इन्द्र आदि देवता अपने उन मस्तकों से जिनसे आतपवारण अर्थात् छत्र दूर कर दिया गया है, तुमको प्राप्त करके अन्यों के द्वारा दुष्प्राप उस भोग को प्राप्त करते हैं जो अघच्छाया से रहित है अर्थात् पराभूत न होने वाले प्रताप से संश्लिष्ट है। दिक्पतियों को निरुपाधिक ऐश्वर्य की प्राप्ति पादुका के प्रभाव से हो जाती है, यह अभिप्राय है। विभावना-अलङ्कार।।४४।।

**अपहाय सितासितानुपायानरविन्देक्षणपादुके महान्त:।**
**त्वदनन्यतया भजन्ति वृत्तिं त्वदसाधारणभोगसाभिलाषा:।।४५।।**

हे कमलनयन श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! सित और असित अर्थात् तत्त्वमूलक कर्मज्ञान आदि और सत्त्वगुण से भिन्न रजोगुण-तमोगुण के कारण उत्पन्न काम्य उपायों का त्याग करके महापुरुषगण तुम्हारे समान ही असाधारण भोग (भगवच्चरणसेवा) में साभिलाष होकर तुमसे अभिन्न भाव से ही वृत्ति का सेवन करते हैं। यहाँ यही तात्पर्य है कि जैसे पादुका अनन्य भाव से श्रीभगवान् के चरणों की परिचर्या में लगी रहती है वैसे ही महापुरुष भी सब कुछ त्याग कर भगवच्चरणानुगामी होते हैं।।४५।।

**प्रणमन्ति न वा विधेर्विपाकाद् य इमे रङ्गनरेन्द्रपादुके त्वाम्।**
**उपजातमनुत्तमाङ्गमेषामुभयेषामपि चित्रमुत्तमाङ्गम्॥४६॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! ये दिखायी देने वाले मानव अदृष्ट के परिणामस्वरूप तुमको प्रणाम करते हैं या प्रणाम नहीं करते, इन दोनों का ही उत्तमाङ्ग अनुत्तमाङ्ग हो जाता है। उत्तमाङ्ग मस्तक को कहते हैं। एवञ्च न उत्तमाङ्ग = अनुत्तमाङ्ग अर्थात् जो उत्तमाङ्ग(मस्तक) नहीं है वह उत्तमाङ्ग कैसे होगा? इस प्रकार विरोधाभास प्रतीत हो रहा है जिसका समाधान 'अनुत्तमाङ्ग' के यौगिक अर्थ को लेकर हो जाता है। जो पादुका को प्रणाम करते हैं, उनके पक्ष में 'अनुत्तमाङ्ग' में बहुव्रीहि समास होगा अर्थात् पादुका को प्रणाम कर लेने से मस्तक से उत्तम कोई दूसरा अङ्ग नहीं हो सकता—न विद्यत उत्तममङ्गं यस्मात् तदनुत्तमाङ्गम् तथा जो पादुका को प्रणाम नहीं करते उनका उत्तमाङ्ग अनुत्तमाङ्ग हो जाता है अर्थात् उनका अङ्ग उत्तम नहीं होता, ऐसा तत्पुरुष समास होगा॥४६॥

**तव केशवपादुके प्रभावो मम दुष्कर्म च नन्वनन्तसारे।**
**नियमेन तथापि पश्चिमस्य प्रथमेनैव पराभवं प्रतीमः॥४७॥**

हे केशव की पादुके! तुम्हारी दिव्य शक्ति (प्रभाव) और मेरा दुष्कर्म, ये दोनों अनन्त बल वाले हैं तथापि संख्याक्रम में बाद वाला जो मेरा दुष्कर्म (पाप) है उसका ही पराभव (तिरस्कार, पराजय) प्रथम अर्थात् तेरे प्रभाव के द्वारा ही नियमतः होता है, ऐसा मैं समझता हूँ। दीपक और प्रत्यनीक, अलङ्कार यहाँ हैं॥४७॥

**अस्त्रभूषणतयैव केवलं विश्वमेतदखिलं बिभर्ति यः।**
**अक्लमेन मणिपादुके त्वया सोऽपि शेखरतयैव धार्यते॥४८॥**

हे मणिपादुके! जो श्रीहरि अन्य सहायकों की अपेक्षा के विना ही इस सम्पूर्ण विश्व को आयुध रूप से ही, अलङ्कार रूप से ही धारण करते हैं उस विश्व के आधार श्रीभगवान् को तुम विना क्लेश

(श्रम) के मस्तक में भूषण के रूप से धारण करती हो। पूरा यह प्रपञ्च भगवान् का अस्त्रभूषण है, यह 'विष्णु' पुराण में प्रसिद्ध है। जो विश्व को धारण करे उसको भी पादुका धारण करती है, यह पादुका का प्रभावातिशय द्योतित है। अधिकालङ्कार।।४८।।

**रामपादसहधर्मचारिणीं पादुके सकलपातकच्छिदम्।**
**त्वामशेषजगतामधीश्वरीं भावयामि भरताधिदेवताम्।।४९।।**

हे पादुके! श्रीरामचन्द्रजी के चरणों की सहधर्मचारिणी, सारे पापों का छेदन करने वाली सकल संसार की नियामिका तथा भरत की पूज्या तुमको मैं अपने हृदय में धारण करता हूँ। यहाँ प्राकरणिक पादुका के तीनों विशेषण लक्ष्मी जी में भी घटित होंगे। प्रथम 'रामपादसहधर्मचारिणीम्' इस विशेषण में प्रयुक्त 'पाद' पद प्रशंसार्थक होगा फलतः रामपाद का अर्थ होगा—पूज्यराम, जिनकी सहधर्मचारिणी = पत्नी सीताजी हैं जो लक्ष्मी ही हैं। एवञ्च समासोक्ति अलङ्कार है।।४९।।

**चूडाकपालव्यतिषङ्गदोषं विमोचयिष्यन्निव विष्णुपद्याः।**
**कृतादरः केशवपादरक्षे बिभर्ति बालेन्दुविभूषणस्त्वाम्।।५०।।**

हे केशव के चरणों की रक्षा करने वाली पादुके! बाल इन्दु = चन्द्रमा जिसका भूषण है ऐसे चन्द्रशेखर भगवान् शिव अपने मस्तक में विद्यमान विष्णुपदी = गङ्गा में जो दोष शिखा में स्थित कपाल के संसर्ग से आ गया है उस दोष को मानों दूर करते हुए आदरवान् होकर तुमको धारण करते हैं। भगवान् शिव श्रीमुरमथनकी पादुका को अपने मस्तक से लगाकर रखते हैं, अतः कवि की सम्भावना है कि शिव कपालसंसर्ग से उत्पन्न गङ्गा के दोष को दूर करने के लिए ही पादुका को मस्तक से लगाते हैं। इस प्रकार यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।।५०।।

**त्वयैव नित्यं मणिपादरक्षे राजन्वती सृष्टिरियं प्रजानाम्।**
**स्त्रीराज्यदोषप्रशमाय नूनं निर्दिश्यसे नाथविशेषणेन।।५१।।**

हे मणियों से जटित श्रीभगवत्पादुके! यह प्रजाओं की सृष्टि तुमसे ही नित्य राजन्वती अर्थात् राजा वाली है। तुम ही इस सृष्टि की शोभन राज्ञी हो, यह अभिप्राय है। यदि ऐसी बात है तो स्वतन्त्र पादुका का श्रीरङ्गनाथ विशेषण क्यों है? अर्थात् उसे श्रीरङ्गनाथ की पादुका क्यों कहते? इसका उत्तर कवि ने द्वितीयार्ध से दिया है— यह सृष्टि स्त्री का राज्य है, इस दोष को दूर करने के लिए पादुका 'श्रीरङ्गनाथ', इस विशेषण से निर्दिष्ट होती है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥५१॥

**परस्य पुंसः पदसंनिकर्षे तुल्याधिकारां मणिपादुके! त्वाम्।**
**उत्तंसयन्ति स्वयमुत्तमाङ्गैः शेषासमं शेषगरुत्मदाद्याः॥५२॥**

हे मणिपादुके! शेष-गरुड़ आदि लोग तुमको स्वयं अपने मस्तकों से पगड़ी (शेषा) के समान इसीलिए मस्तकालङ्कार बनाकर धारण करते हैं क्योंकि तुम परम पुरुष भगवान् श्रीनारायण के चरणों के सामीप्य को प्राप्त कर ली हो। अत एव उनके समान ही अधिकार से सम्पन्न हो गयी हो। अधिकार की समानता होने पर भी शेष आदि से भी अधिक प्रभाव वाली पादुका है, यह अभिप्राय है॥५२॥

**बिभर्षि नित्यं मणिपादुके त्वं विश्वम्भरं धाम निजेन भूम्ना।**
**तवानुभावश्चुलुकीकृतोऽयं भक्तैरजस्रं भवतीं दधानैः॥५३॥**

हे मणिपादुके! नित्य ही तुम अपने माहात्म्य से विश्व के आधार श्रीरङ्गनाथरूप तेज (धाम) को धारण करती हो। विश्व के धारक को भी धारण कर लेने वाला यह जो तुम्हारा प्रभाव है उस प्रभाव को भी वे भक्त अपने करकमलों में सीमित कर दिये हैं जो निरन्तर आप को धारण करते हैं। यहाँ आश्रय के आधिक्य का वर्णन होने से 'अधिक' नामक अलङ्कार है॥५३॥

**मुकुन्दपादाम्बुजधारिणि त्वां मोहादनुत्तंसयतां जनानाम्।**
**मूर्ध्नि स्थिता दुर्लिपयो भवन्ति प्रशस्तवर्णावलयस्तदीयाः॥५४॥**

हे मुकुन्द के चरणों को धारण करने वाली पादुके। जो लोग अज्ञानतः तुझे अपने मस्तक का अलङ्कार नहीं बनाते अर्थात् तुझे अपने मस्तक से धारण नहीं करते उनके मस्तक में विद्यमान, ब्रह्मा के द्वारा प्रदत्त श्रेष्ठ वर्णों की पङ्क्तियाँ भी दुरदृष्ट (अशुभ) को सूचित करने वाली लिपियाँ हो जाती हैं। पादुका का जो अतिक्रमण करते हैं उनका शोभन अदृष्ट भी पापादृष्ट के रूप में परिणत हो जाता है, यह अभिप्राय है। 'तद्गुण नामक अलङ्कार यहाँ है क्योंकि अपने गुण को त्याग कर दूसरे के गुण को गृहीत कर लिया गया है॥५४॥

**भूमिः श्रुतीनां भुवनस्य धात्री गुणैरनन्ता विपुला विभूत्या।**
**स्थिरा स्वयं पालयितुं क्षमा नः सर्वंसहा शौरिपदावनि त्वम्॥५५॥**

हे शूरसेन के अपत्य भगवान् श्रीकृष्ण की पादुके! तुम वेदों की भूमि अर्थात् भूमिका हो तथा भुवन को परिपुष्ट करने वाली (धात्री) हो, अपने गुणों से तुम अनन्त हो, विभूति के बल से तुम विपुल अर्थात् अत्यन्त विस्तार वाली हो। तुम स्वयं अपने स्वरूप से अचला हो जो हम लोगों के पालन में समर्थ होकर सारे अपराधों को सहन करने वाली हो गयी हो। यहाँ 'उल्लेख' नामक अलङ्कार है॥५५॥

**स्थैर्यं कुलक्षोणिभृतां विधत्से शेषादयस्त्वां शिरसा वहन्ति।**
**पदप्रसूता परमस्य पुंसः पृथ्वी महिम्ना मणिपादुके! त्वम्॥५६॥**

हे मणिपादुके! तुम कुल अर्थात् मनुवंश में उत्पन्न राजाओं या कुलपर्वतों की स्थिरता का सम्पादन करती हो और शेष (अनन्त) आदि तुमको मस्तक से ग्रहण करते हैं। तुम परम पुरुष श्रीनारायण के पद (चरण) से प्रेरित और उत्पन्न होकर (षू प्रेरणे और षूङ् प्राणिगर्भविमोचने, इन दोनों धातुओं से कर्म में 'क्त' प्रत्यय होने पर प्रसूत बनेगा अतः दोनों अर्थ हैं) अपने माहात्म्य से पृथ्वी हो। 'श्लेष' अलङ्कार। पृथ्वी के साथ सादृश्य की प्रतीति होने से

उपमालङ्कार ध्वनि भी है। तथा च पादुका का प्रभाव ध्वनित होता है। अतः वस्तु ध्वनि भी है॥५६॥

**दैत्याधिपानां बलिनां किरीटा निक्षेपणं ते यदि नाभ्यनन्दन्।**
**रङ्गेशपादावनि रङ्गधाम्नः सोपानतां प्राप्य वहन्त्यमी त्वाम्॥५७॥**

हे श्रीरङ्गपति की पादुके! बलवान् दैत्यपतियों के मुकुट यदि तुम्हारे निक्षेपण (स्वयं में निवेश) को बहुमान प्रदान नहीं करते तो वे श्रीरङ्गधाम की सीढ़ियों में जाकर तुमको धारण करते हैं। तात्पर्य यह है कि श्रीरङ्गनाथजी दैत्यों का शिर काट कर उनके मुकुट आदि को श्रीरङ्गधाम की सीढ़ियों में रखकर पादुका के साथ चलते हैं। एक बार निक्षेप का सहन नहीं करते तो सदैव वहन करना पड़ता है। इस प्रकार अनिष्ट की संप्राप्ति होने से 'विषम' अलङ्कार है॥५७॥

**शेषो गरुत्मान् मणिपादपीठी त्वं चेति पादावनि विश्वमान्याः।**
**तुल्याधिकारा इह किन्तु सन्तस्त्वामेव नित्यं शिरसा वहन्ति॥५८॥**

हे श्रीहरि की चरणरक्षिके! पादुके!शेष, गरुड़, मणिनिर्मित पादपीठिका (पैर रखने के लिए सिंहासन के पास की वेदि) और तुम सभी विंश्ववन्द्य होकर समान अधिकार से सम्पन्न यद्यपि हो तथापि वे साधुजन नित्य तुमको ही मस्तक से धारण करते हैं॥५८॥

**परस्य पुंसः परमं पदं तद्बिभर्षि नित्यं मणिपादरक्षे।**
**अन्यादृशां व्योमसदां पदानि त्वय्यायतन्ते यदिदं न चित्रम्॥५९॥**

हे मणिपादुके! तुम उस परम पुरुष श्रीनारायण के उस लोकोत्तर चरण को नित्य ही धारण करती हो। यदि ऐसी बात है तो अन्यादृक् अर्थात् मूर्ख देवों का स्थान यदि तुम्हारे ही अधीन है तो कोई आश्चर्य नहीं है। अर्थापत्ति अलङ्कार॥५९॥

**पादौ मुरारेः शरणं प्रजानां तयोस्तदेवासि पदावनि त्वम्।**
**शरण्यतायास्त्वमनन्यरक्षा संदृश्यसे विश्रमभूमिरेका॥६०॥**

हे भगवान् की पदरक्षिके! पादुके! श्रीमुरमथन भगवान् के दोनों चरण प्रजाओं के रक्षक हैं तो तुम उन दोनों चरणों की संरक्षिका हो। इस प्रकार से तो तुम एकमात्र अन्य से रक्षित न होती हुई भी शरण्यता = रक्षकत्व की विश्रान्तिभूमि दिखायी देती हो। तुम्हारे लिए अन्य रक्षकों की अपेक्षा नहीं है, यह तात्पर्य है। यहाँ उत्तरोत्तर उत्कर्ष का कथन होने से 'सार' नामक अलङ्कार है।।६०।।

**अन्येषु पद्माकमलासनाद्यैरङ्गेषु रङ्गाधिपतेः श्रितेषु।**
**पादावनि त्वामधिगम्य जातं पदं मुरारेरधिदैवतं नः।।६१।।**

हे श्रीहरि की चरणरक्षिके! अन्य अर्थात् चरणों से अन्य जो श्रीरङ्गनाथजी के वक्षःस्थल, नाभि, हाथ आदि अङ्ग हैं उन अङ्गों को जब लक्ष्मी, ब्रह्मा, शङ्ख, चक्र आदि आश्रय के रूप में स्वीकार कर लेते हैं तो भगवान् के चरण तुमको प्राप्त करके हमारे लिए अधिदैवत अर्थात् उपास्य हो जाते हैं।।६१।।

**क्षणं सरोजेक्षणपादुके यः कृतादरः किं कुरुते भवत्याः।**
**अकिंचनस्यापि भवन्ति शीघ्रं भ्रूकिंकरास्तस्य पुरन्दराद्याः।।६२।।**

हे कमलनयन श्रीहरि की पादुके! जो कोई भी आदरभाव से एक क्षण भी आपकी परिचर्या करता है उस अकिञ्चन (नास्ति किञ्चन यस्य सोऽकिञ्चनः) के भी इन्द्र आदि भ्रूकिङ्कर अर्थात् भौहों से ही सूचना प्राप्त कर कार्य करने वाले हो जाते हैं। अकिञ्चन होने के बाद भी इन्द्र आदि किङ्कर (दास) हो जाते हैं, इस कथन से यहाँ विभावना अलङ्कार है। कारण का अभाव होने पर कार्य के कथन को विभावना कहते हैं।।६२।।

**वहन्ति ये माधवपादुके त्वामुह्यन्त एते दिवि निर्विघाताः।**
**हंसेन नित्यं शरदभ्रभासा कैलासगौरेण ककुद्मता वा।।६३।।**

हे श्रीमाधव की पादुके! जो लोग तुमको मस्तक से धारण करते हैं वे अन्तरिक्ष में अवरोध से रहित होकर (निर्विघाताः

'निर्गतःविघातो येभ्यः) अर्थात् निर्विघ्नतया शरत् काल के मेघ की तरह स्वच्छ हंस सेसवारी करते हैं या कैलास पर्वत के समान गौर वर्ण वाले बैल की सवारी करते हैं। ब्रह्मा और रुद्र हो जाते हैं, यह अभिप्राय है। पर्यायोक्त से संकीर्ण विकल्पालङ्कार यहाँ है॥६३॥

**रुद्रं श्रितो देवगणः स रुद्रः पद्मासनं सोऽपि च पद्मनाभम्।**
**स त्वामनन्तो न पुनस्त्वमन्यं क एष पादावनि! ते प्रभावः॥६४॥**

हे पादावनि! अर्थात् श्रीभगवान् की चरणरक्षिके पादुके! देवताओं का समूह शिव के आश्रित है और वे शिव ब्रह्मा के आश्रित हैं तथा ब्रह्मा भी पद्मनाभ श्रीरङ्गनाथजी के आश्रित हैं। वे श्रीरङ्गनाथजी भी तुम्हारे ही आश्रित रहते हैं क्योंकि उनका गमन तुम्हारे विना नहीं होता। तुम एकमात्र ऐसी हो जो किसी के आश्रित नहीं हो। यह तुम्हारा कौन-सा प्रभाव है? मालादीपक अलङ्कार। जैसा कि लक्षण है—'दीपकैकावलीयोगाद् मालादीपकमिष्यते'॥६४॥

**परस्य धाम्नः प्रतिपादनार्हां वदन्ति विद्यां मणिपादुके त्वाम्।**
**यतस्त्वदेवाधिगमे प्रजानां दूरीभवत्युत्तरपूर्वमंहः॥६५॥**

हे मणिपादुके! साधु पुरुष तुझे ही उस परा विद्या के रूप में प्रतिपादित करते हैं जो परब्रह्म परमात्मा के प्रतिपादन में अर्ह अर्थात् योग्य है। ऐसा इसीलिए है कि तुमको प्राप्त कर लेने पर ही प्रजाओं का पूर्वकृत और आगामी पाप दूर होता है। विद्या की प्राप्ति के बाद ही पूर्व और पश्चाद्भावी पापों का सम्पर्काभाव और विनाश होता है, ऐसा श्रीवादरायण ने 'तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोर-श्लेषविनाशौ', इस सूत्र से प्रतिपादित किया है। विद्या के कार्य का यहाँ पादुका में समारोप किया गया है। यहाँ वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥६५॥

**धन्या मुकुन्दस्य पदानुषङ्गाद्वनीयता येन समर्चिता त्वम्।**
**वासस्तदीयो मणिपादरक्षे! लक्ष्म्याऽलकामप्यधरीकरोति॥६६॥**

हे मणिपादुके! मुकुन्द के चरणों के सम्पर्क से तुम धन्य हो गयी हो। धन की इच्छा करने वाले (धनीयता = आत्मनो धनमिच्छता) पुरुष के द्वारा तुम पूजित होती हो तो उस पुरुष का निवास सम्पत्ति की दृष्टि से कुबेर की राजधानी अलका को भी नीचे कर देता है। प्रतीप-अलङ्कार॥६६॥

**पदेन विष्णोः किमुतेतरेषां विसृज्य सङ्गं य उपासते त्वाम्।**
**करोषि तान् किं त्वमपेतकामान् कालेन पादावनि सत्यकामान्॥६७॥**

हे पादुके! जो पुरुष श्रीविष्णु के चरण से सम्बन्ध त्याग कर अर्थात् उनके चरणों के प्रति उदासीनता का भाव रखकर केवल तुम्हारी उपासना करते हैं वे अन्य रुद्र आदि देवताओं से दूर रहकर उपासना करते हैं, इस विषय में कुछ कहना ही नहीं है। इसीलिए इच्छारहित ऐसे लोगों को तुम शरीर के अन्तकाल में क्या सत्यकाम नहीं बनाती? अर्थात् बनाती ही हो। तात्पर्य यह है कि उनका सत्यकामत्व-आप्तकामत्व-आत्माभिरामत्व इत्यादि आठों गुणों के आविर्भाव से मोक्ष हो जाता है। विरोधाभास अलङ्कार॥६७॥

**अभ्यासयोगेन निगृह्यमाणैरन्तर्मुखैरात्मविदो मनोभिः।**
**मातस्त्वया गुप्तपदं प्रभावादन्वेषयन्त्यागमिकं निधानम्॥६८॥**

हे मातः! पादुके! आत्मज्ञानी लोग अभ्यासयोग से निगृहीत अपने अन्तर्मुखी मनों से तुम्हारे द्वारा ही निजशक्ति से गुप्त स्थान वाले, आगम अर्थात् वेद में ही प्रतिपादित होने वाले निधि के समान परमात्मा का अन्वेषण करते हैं। पादुका के निधिरक्षकदेवतात्व की प्रतीति होने से समासोक्ति-अलङ्कार है॥६८॥

**मूर्ध्ना दधानां मणिपादुके त्वामुत्तंसितं वा पुरुषं भवत्या।**
**वदन्ति केचिद् वयमामनामस्त्वामेव साक्षादधिदैवतं नः॥६९॥**

हे मणिपादुके! कुछ पुरुष भगवान् को अपने मस्तक से धारण करने वाली तुमको अधिदैवत बताते हैं तो कुछ तुमसे अलङ्कृत

भगवान् को अधिदैवत (उपास्य) बताते हैं किन्तु हम तो केवल तुम्हें ही अधिदैवत के रूप में स्वीकार करते हैं।।६९।।

**मूर्ध्ना सतामधस्तादुपरि च विष्णोः पदेन संघटिताम्।**
**अदवीयसीं विमुक्तेः पदवीमवयन्ति पादुके भवतीम्।।७०।।**

हे पादुके! सत्पुरुषों के मस्तक से तथा श्रीविष्णु के चरणों से युक्त आपको मोक्ष के मार्ग से अदूर ही सत्पुरुषगण जानते हैं। वह पादुका कहाँ संघठित है? इसके उत्तर में कहते हैं—अधस्तात् उपरि च विष्णोः पदेन, अर्थात् अपने अधःप्रदेश में स्थित सत्पुरुषों के मस्तक से तथा ऊपर श्रीविष्णु के परमपद नामक लोक से घटित है। अर्चिरादिमार्ग की यही स्थिति है जिसके नीचे नक्षत्रों की स्थिति है। अर्चिरादि मार्ग भी मोक्ष का उपाय है। इस प्रकार श्लेष की महिमा से अर्चिरादिमार्ग से तादात्म्य की सम्भावना की गयी है। तथा च स्वरूपोत्प्रेक्षा-अलङ्कार है।।७०।।



## अथ चतुर्थ समर्पणपद्धतिः

इस पद्धति में भरत के लिए समर्पित पादुका के उपयुक्त गुणों को लेकर स्तुति की गयी है। अत एव इस पद्धति का नाम समर्पण-पद्धति है—

**भजामः पादुके याभ्यां भरतस्याग्रजस्तदा।**
**प्रायः प्रतिप्रयाणाय प्रास्थानिकमकल्पयत्॥१॥**

मैं उन पादुकाओं की सेवा करता हूँ जिन पादुकाओं से भरत के अग्रज भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने प्रतिप्रयाण अर्थात् पुनः आगमन के लिए प्रास्थानिक = प्रस्थान प्रयोजन वाले कर्म का उपक्रम किया था। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे कोई प्रस्थान में विलम्ब होने पर खड्ग आदि वस्तु अन्यत्र निकलवा देते हैं वैसे ही श्रीराम पुनः आगमन के लिए भरत के हाथों में अपनी पादुका रख दिये थे॥१॥

**राज्यं विहाय रघुवंशमहीपतीनां**
**पौरांश्च पादरसिकान् पृथिवीं च भक्तान्।**
**त्वामेव हन्त चरणावनि संप्रयास्य-**
**न्नालम्बत प्रथममुत्तरकोशलेन्द्रः॥२॥**

हे भगवान् की चरणरक्षिके! उत्तरकोशलेन्द्र = उत्तर कोशल जनपद के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी रघुकुल के राजाओं के राज्य को, पुर में निवास करने वाले पुरुषों को, चरणों के रसिक भक्तों को तथा अनुरागवती पृथ्वी को त्याग करके प्रस्थान के समय पहले तुम्हारे ही आश्रय को स्वीकार किये थे॥२॥

**प्राप्ते प्रयाणसमये मणिपादरक्षे**
**पौरानवेक्ष्य भवती करुणाप्रलापान्।**
**मञ्जुप्रणादमुखरा विनिवर्तनार्थं**
**रामं पदग्रहणपूर्वमयाचतेव॥३॥**

हे मणिपादुके! वनगमन के समय करुण प्रलाप करने वाले पुरनिवासियों को देख कर तुम रमणीय शिञ्जानरवों से शब्द करती हुई लौटाने के लिए ही भगवान् के चरणों को पकड़ कर मानो उनसे याचना की थी। इसीलिए श्रीराम ने तुमको भरत को दे दिया था। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥३॥

**मत्वा तृणं स भरतो मणिपादरक्षे**
**रामेण तां विरहितां रघुराजधानीम्।**
**त्वामेव सप्रणयमुज्जयिनीमवन्तीं**
**मेने महोदयमयीं मधुरामयोध्याम्॥४॥**

हे मणिपादुके! भरतजी श्रीराम से शून्य उस रघुराजधानी को तृण मानकर अर्थात् उसका तिनके जैसा अनादर करके प्रेम के साथ तुम्हें ही उत्कृष्ट जय वाली तथा रक्षा में तत्पर (अवन्तीम्), अभ्युदय से सम्पन्न, मनोहर अयोध्या समझ लिए थे। यहाँ उज्जयिनी, अवन्ती, मधुरा नामक पुरियों की भी प्रतीति हो रही। इसका अभिप्राय यही है कि श्रीभरतजी पादुका को ही अनेक नगरों के रूप में स्वीकार किये थे॥४॥

**रामात्मनः प्रतिपदं मणिपादरक्षे**
**विश्वम्भरस्य वहनेन परीक्षितां त्वाम्।**
**विश्वस्य देवि वहने विनिवेशयिष्यन्**
**विश्रब्ध एव भरतो भवतीं ययाचे॥५॥**

हे मणिपादुके! विश्व के पालनकर्ता भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को पदे पदे वहन करने के कारण श्रीभरतजी विश्व के वहन में तुमको

लगाते हुए विश्वस्त होकर आप की श्रीराम से याचना किये थे। भगवान् से आपको ले लिये थे, यह तात्पर्य है॥५॥

**भक्त्या परं भवतु तद्भरतस्य साधो-**
**स्तत्प्रार्थनं रघुपतेर्मणिपादरक्षे।**
**केनाशयेन स मुनिः परमार्थदर्शी**
**भद्राय देवि जगतां भवतीमवादीत्॥६॥**

हे देवि! मणिपादुके! सज्जन श्रीभरतजी की श्रीरामचन्द्रजी से तुम्हारे लिए वह प्रसिद्ध प्रार्थना भक्ति के कारण ही है। परमार्थ के द्रष्टा वे वशिष्ठ ऋषि संसार के कल्याण के लिए आपसे किस आशय से वार्ता किये थे? यथार्थदर्शी श्रीवशिष्ठजी की उस वार्ता से ही निश्चित होता है कि तुम स्वतः सबका कल्याण करने वाली हो, यह अभिप्राय है। यहाँ वशिष्ठ के आशय के विषय में प्रश्न से भक्ति के कार्य का निषेध तिरोहित होने से आक्षेप-अलङ्कार है॥६॥

**रामे वनं व्रजति पङ्क्तिरथे प्रसुप्ते**
**राज्यापवादचकिते भरते तदानीम्।**
**आश्वासयेत् क इह कोशलवासिनस्तान्**
**सीतेव चेत्त्वमपि साहसवृत्तिरासीः॥७॥**

हे पादुके! श्रीरामचन्द्रजी के वन में जाने पर तथा दशरथ जी के दीर्घ निद्रा को प्राप्त हो जाने पर एवं उस समय श्रीभरतजी के राज्यापवाद को लेकर भयग्रस्त हो जाने पर कोशलजनपद के निवासियों को कौन आश्वस्त करता यदि तुम सीताजी के समान साहस-प्रधान व्यापार वाली होती? अर्थात् उनको ढाढस बढ़ाने वाला वहाँ कोई नहीं रहता॥७॥

**पादावनि! प्रभवतो जगतां त्रयाणां**
**रामादपि त्वमधिका नियतं प्रभावात्।**

**नो चेत् कथं नु भरतस्य तमेव लिप्सोः**
**प्रत्यायनं परिपणं भवती भवित्री॥८॥**

हे श्रीहरि की चरणपादुके! तीनों लोकों के स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से भी तुम अपने प्रभाव के कारण अधिक हो। उनसे भी तुम्हारा अधिक प्रभाव है, यह अभिप्राय है। यदि ऐसा नहीं होता तो श्रीरामचन्द्रजी को ही चाहने वाले श्रीभरतजी की तुम रामजी के आगमन में विश्वास की कारण बनी मूलधन (परिपण) क्यों होती? सम्भावना से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥८॥

**मन्ये नियुज्य भवतीं मणिपादरक्षे**
**पार्ष्णिग्रहस्य भरतस्य निवारणार्थम्।**
**रत्नाकरं स खलु गोष्पदयन् विजिग्ये**
**रामः क्षणेन रजनीचरराजधानीम्॥९॥**

हे मणिपादुके! वे श्रीरामचन्द्रजी पार्ष्णिग्रह (पार्ष्णिग्रह उसे कहते हैं जो पीछे आकर सेना का नाश आदि करता है। भगवान् वन जाना चाहते हैं तो श्रीभरत जी पीछे से आकर अवरोधक बनते हैं इसलिए कवि ने उनमें पाष्णिग्रहत्व की कल्पना की है।) श्रीभरत को रोकने के लिए ही तुमको नियुक्त करके शीघ्र ही समुद्र को गाय के खुर के समान बनाते हुए क्षण में ही राक्षसों की राजधानी लङ्का पर विजय प्राप्त कर लिए थे, ऐसा मैं समझता हूँ। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है॥९॥

**पादावनि प्रभुतरानपराधवर्गान्**
**सोढुं क्षमा त्वमसि मूर्तिमती क्षमेव।**
**यत्त्वां विहाय निहताः परिपन्थिनस्ते**
**देवेन दाशरथिना दशकण्ठमुख्याः॥१०॥**

हे श्रीहरि की चरणरक्षिके पादुके! अत्यधिक अपराधगणों को सहन करने में समर्थ तुम मूर्तिमती क्षमा ही हो क्योंकि भगवान्

जब तुमको त्याग देते हैं तो तुम्हारा सामीप्य न होने के कारण ही वे रावण आदि उन दुर्मद शत्रुओं को मार देते हैं। यदि पादुका का सन्निधान होता तो रावण आदि का अपराध भी सह्य हो जाता, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१०॥

**वाक्ये गरीयसि पितुर्विहितेऽप्यतृप्त्या**
**मातुर्मनोरथमशेषमवन्ध्ययिष्यन्।**
**मन्ये तदा रघुपतिर्भरतस्य तेने**
**मातस्त्वयैव मणिमौलिनिवेशलक्ष्मीम्॥११॥**

हे मातः पादुके! रघुपति श्रीरामचन्द्रजी ने उस समय अर्थात् चित्रकूट में ठहरने के समय अतीव दीर्घ अपने पिता के वचन का पालन कर देने पर भी अभिलाषा की शान्ति न होने से माता कैकेयी के सारे मनोरथ को सफल बनाते हुए तुमसे ही श्रीभरतजी के रत्नमुकुट में संनिवेश से शोभा का विस्तार किया था। यहाँ पादुका में भरत के मुकुट की सम्भावना से उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है॥११॥

**पादाम्बुजाद् विगलितां परमस्य पुंस-**
**स्त्वामादरेण विनिवेश्य जटाकलापे।**
**अङ्गीचकार भरतो मणिपादरक्षे**
**गङ्गाधिरूढशिरसो गिरिशस्य कान्तिम्॥१२॥**

हे मणिपादुके! श्रीभरत जी परमपुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्र जी के पदकमल से दूर हुई तुमको अपने जटाजाल में आदरपूर्वक लगाकर उस शिव की कान्ति को स्वीकार कर लिए थे जिसके मस्तक में गङ्गाजी आरूढ हो गयी हों। शिव के मस्तक में गङ्गा के समान श्रीभरत के मस्तक में पादुका की शोभा है, यह अभिप्राय है। उपमा-अलङ्कार॥१२॥

**अविकलमधिकर्तुं रक्षणे सप्तलोक्या**
**रघुपतिचरणेन न्यस्तदिव्यानुभावाम्।**

अभजत भरतस्त्वामञ्जसा पादरक्षे
मणिमुकुटनिवेशत्यागधन्येन मूर्ध्ना॥१३॥

हे पादुके! श्रीभरतजी पृथ्वी आदि सातों लोकों की रक्षा में पूर्णतः अधिकार प्राप्त करने के लिए ही श्रीरामचन्द्रजी के चरणों ने स्थापित कर दिया गया है दिव्य प्रभाव जिसका ऐसी तुमको शीघ्र ही अपने उस मस्तक से सेवित करते हैं जो मणिमुकुट के त्याग से धन्य (पुण्य) हो गया है। मुकुट के त्याग रूप वैराग्य से उनका मस्तक धन्य है, ऐसा समझना चाहिये॥१३॥

इयमविकलयोगक्षेमसिद्ध्यै प्रजाना-
मलमिति भरतेन प्रार्थितामादरेण।
रघुपतिरधिरोहन्नभ्यषिञ्चत्स्वयं त्वां
चरणनखमणीनां चन्द्रिकानिर्झरेण॥१४॥

हे पादुके! यह पादुका प्रजाओं के सारे योग और क्षेम (अलब्ध लाभ को योग और उसकी रक्षा को क्षेम कहते हैं) की सिद्धि के लिए समर्थ है, इस प्रकार भरत से आदर से प्रार्थित तुमको श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे ऊपर आरूढ होकर चरणनख रूपी मणियों के चन्द्रिका रूपी निर्झर से स्वयं अभिषिक्त कर दिये थे। भगवान् का यह अधिरोहण पादुका के अभिषेक के लिए है, ऐसी उत्प्रेक्षा है॥१४॥

प्रणयिनि पदपद्मे गाढमाश्लिष्यति त्वां
विधिसुतकथितं तद्वैभवं ते विदन्तः।
अनुदिनमृषयस्त्वामर्चयन्त्यग्न्यगारे
रघुपतिपदरक्षे रामगिर्याश्रमस्थाः॥१५॥

हे श्रीरघुपति की पादुके! तुम्हारे प्रति प्रेम से परिपूरित भगवान् के चरणकमल जब तुम्हारा प्रगाढ आलिङ्गन करते हैं तब वशिष्ठ के द्वारा तुम्हारे वैभव (ऐश्वर्य) को जानने वाले रामगिर्याश्रम

(चित्रकूट) में रहने वाले ऋषि अपनी अग्निहोत्रशाला में नित्य तेरी पूजा करते हैं॥१५॥

**नियतमधिरुरोह त्वामनाधेयशक्तिं**
**निजचरणसरोजे शक्तिमाधातुकामः।**
**स कथमितरथा त्वां न्यस्य रामो विजह्रे**
**दृषदुपचितभूमौ दण्डकारण्यभागे॥१६॥**

हे पादुके! भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने चरणारविन्द में सामर्थ्य लाने के लिए ही स्वतःसिद्ध शक्ति वाली तुम्हारे ऊपर आरूढ हुए थे। यदि ऐसा नहीं होता तो पत्थरों से परिपुष्ट भमि वाले दण्डकारण्य के भाग में तुमको भरत के हवाले करके कैसे विहार कर सकते थे? यहाँ पादुका से भगवान् के चरणों में शक्ति का आधान हुआ है इसीलिए वे वनविहार में समर्थ हुए थे, यह कवि का आशय है। उत्प्रेक्षा के समर्थन से काव्यलिङ्ग अलङ्कार यहाँ है॥१६॥

**रघुपतिपदपद्माद्रत्नपीठे निवेष्टुं**
**भरतशिरसि लग्नां प्रेक्ष्य पादावनि त्वाम्।**
**परिणतपुरुषार्थः पौरवर्गः स्वयं ते**
**विधिमभजत सर्वो बन्दिवैतालिकानाम्॥१७॥**

हे चरणपादुके! श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमल से रत्नसिंहासन पर बैठने के लिए श्रीभरतजी के मस्तक पर तुमको देखकर पुर-निवासियों का सारा वर्ग जिसके धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, ये सारे पुरुषार्थपुष्ट हो गये हैं, स्वयं तुम्हारे बन्दी (स्तुतिपाठक) और वैतालिकों (सोये राजाओं को जगाने वाले) के कृत्य का सम्पादन किये थे॥१७॥

**अनन्यराजन्यनिदेशनिष्ठां चकार पृथ्वीं चतुरर्णवान्ताम्।**
**भ्रातुर्यियासोर्भरतः सदा त्वां मूर्ध्ना वहन् मूर्तिमतीमिवाज्ञाम्॥१८॥**

हे पादुके! श्रीभरतजी गमन की इच्छा वाले अपने भ्राता श्रीरामचन्द्र जी की साक्षात् विग्रहस्वरूप आज्ञा जैसी विराजमान तुमको अपने मस्तक से धारण करते हुए इस पृथिवी को अन्य राजाओं की आज्ञा में न रहने वाली अर्थात् स्व-आज्ञा में ही वशवर्तिनी चारों समुद्रों पर्यन्त बना लिया था। मस्तक से पादुका का वहन पूरी पृथ्वी के शासन का कारण है, यह तथ्य है। इससे काव्यलिङ्ग अलङ्कार द्योतित होता है॥१८॥

**यद्भ्रात्रे भरताय रङ्गपतिना रामत्वमातस्थुषा**
**नित्योपास्यनिजाङ्घ्रिनिष्क्रयतया निश्चित्य विश्राणितम्।**
**योगक्षेमवहं समस्तजगतां यद् गीयते योगिभिः**
**पादत्राणमिदं मितम्पचकथामह्नाय मे निह्नुताम्॥१९॥**

जो पादत्राण अर्थात् पादुकायुगल रामत्व को प्राप्त कर लेने वाले श्रीरङ्गपति के द्वारा श्रीभरत के लिए नित्य पूजनीय अपने चरणों के मूल्य के रूप में निर्णय करके दे दिया गया था और जो योगी वशिष्ठ आदि ऋषियों के द्वारा सारे संसार के योग-क्षेम का वाहक कहा जाता है वह पादुकायुगल मितंपचों (कृपणों) में होने वाली कथा अर्थात् अपकीर्ति को दूर कर दे॥१९॥

**भरतस्येव ममापि प्रशमितविश्वापवाददुर्जाता।**
**शेषेव शिरसि नित्यं विहरतु रघुवीरपादुके भवती॥२०॥**

हे श्रीरघुवीर की पादुके! तुम जैसे भरत के लोकापवाद को दूर करने वाली हुई थी वैसे ही तुम मेरे भी लोकापवाद को दूर करने वाली हो गयी हो। तुम मेरे मस्तक में शेषा अर्थात् उष्णीष (पगड़ी) के समान संलग्न होती हुई विहार करो! उपमा-अलङ्कार॥२०॥

# अथ पञ्चमी प्रतिप्रस्थानपद्धतिः

इस पद्धति में भरतजी के द्वारा गृहीत पादुका के चित्रकूट से लेकर अयोध्याप्रस्थान के काल तक दिखायी देने वाले गुणों के माध्यम से स्तुति की गयी है।

**प्रशस्ते रामपादाभ्यां पादुके पर्युपास्महे।**
**आनृशंस्यं ययोरासीदाश्रितेष्वनवग्रहम्॥१॥**

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरणों की अपेक्षा उन श्रेष्ठ पादुकाओं की हम निरन्तर उपासना करते हैं जिन पादुकाओं की अपने आश्रितों के ऊपर प्रतिबन्ध से रहित मृदुता थी॥१॥

**भृशातुरसहोदरप्रणयखण्डनस्वैरिणा**
**पदेन किमनेन मे वनमिहावनादिच्छता।**
**इतीव परिहाय तन्निववृते स्वयं यत्पुरा**
**पदत्रमिदमाद्रिये धृतजगत्त्रयं रङ्गिणः॥२॥**

जो पदत्र अर्थात् पादुका पहले, अतिदीन सहोदर श्रीभरत के याच्ञाभङ्ग में स्वच्छन्द अवन (रक्षा) को त्याग कर वन की इच्छा करने वाले चरण से मेरा क्या प्रयोजन है, इस हेतु से उस चरण को त्याग कर निवृत्त हो गयी थी उस श्रीरङ्गनाथ की तीनों लोकों को धारण करने वाली पादुका का हम प्रेमपूर्वक भजन करते हैं। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२॥

**दशवदनविनाशं वाञ्छतो यस्य चक्रे**
**दशरथमनघोक्तिं दण्डकारण्ययात्रा।**

स च भरतविमर्दे सत्यसन्धस्त्वयाऽऽसीद्
रघुपतिपदरक्षे राजधानीं प्रयान्त्या॥३॥

हे श्रीरामचन्द्रजी की पादुके! रावण के विनाश को चाहने वाले जिन श्रीरामचन्द्रजी की दण्डकवनयात्रा दशरथ को निष्कल्मष वचन वाला बना दी थी वे श्रीरामचन्द्र भी श्रीभरत के निर्बन्ध में राजधानी अयोध्या की ओर प्रस्थान करने वाली तुम्हारे द्वारा सत्यसन्ध अर्थात् यथार्थ प्रतिज्ञा वाले हो गये थे। तात्पर्य यहाँ यही है कि श्रीराम की सत्यसन्धता की रक्षा पादुका के द्वारा ही हुई थी। अन्यथा उसके भङ्ग होने पर न तो वनयात्रा होती और रावण का वध भी नहीं होता तथा दशरथ का वचन भी बाधित होता॥३॥

अभ्युपेतविनिवृत्तिसाहसा देवि रङ्गपतिरत्नपादुके।
अत्यशेत भवती महीयसा पारतन्त्र्यविभवेन मैथिलीम्॥४॥

हे देवि!श्रीरङ्गपति की पादुके! वन से अयोध्या राज्य की ओर लौटने का साहस स्वीकार कर लेने वाली तुम अपने पारतन्त्र्य के अतिशय से भगवती सीताजी से भी ऊपर उठ गयी हो। सीताजी ने अयोध्या में ही रहने की श्रीराम की आज्ञा नहीं मानीं और वन में गयीं किन्तु पादुका उनकी आज्ञा मानकर लौट आयी, यह अभिप्राय पादुका के अतिशय-प्रतिपादन में है। गुणोत्कर्ष से उपमान का तिरस्कार होने से यहाँ प्रतीप-अलङ्कार है॥४॥

अव्याहतां रघुपतेर्वहतः प्रतिज्ञा-
मंसाधिरोहणरसे विहते धरण्याः।
प्रादान्निवृत्त्य भवती मणिपादरक्षे
स्पर्शं पदेन विगतव्यवधानखेदम्॥५॥

हे मणिपादुके! निर्बाध प्रतिज्ञा का वहन करने वाले श्रीरामचन्द्रजी के अंसों (बाहु का शिखर भाग) में आरूढ होने की पृथ्वी की इच्छा पूरी हो जाने पर भी तुमने उनके चरणों से निवृत्त

होकर श्रीरामचन्द्रजी के चरण से उसका (पृथ्वी का) वह स्पर्श करा दिया था जिसमें व्यवधान का खेद न हो। पादुका की दया से ही निर्बाध पृथ्वी के सुखप्रदान की उत्प्रेक्षा की गयी है॥५॥

**मन्त्राभिषेकविरहाद्व्रजता विशुद्धिं**
**संस्कारवर्जनवशादभिसंस्कृतेन।**
**मूर्ध्ना निनाय भरतो मणिपादुके त्वां**
**रामाज्ञया विनिहितामिव राज्यलक्ष्मीम्॥६॥**

हे मणिपादुके! श्रीमान् भरत मन्त्राभिषेक के अभाव में विशुद्धि को प्राप्त हुए तथा अभ्यङ्ग आदि संस्कारों के परिवर्जन के बल से अतिशयता को प्राप्त हुए अपने मस्तक से तुमको मानो श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से स्थापित राज्यलक्ष्मी को लगाया था। अभिषेक और संस्कार होने से भरतजी का मस्तक श्रीराम की भक्ति के अभाव में अशुद्ध ही रहता, यह भाव है। विभावना और उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है॥६॥

**रक्षार्थमस्य जगतो मणिपादरक्षे**
**रामस्य पादकमलं समये त्यजन्त्योः।**
**किं दुष्करं तव विभूतिपरिग्रहो वा**
**किं वा विदेहदुहितुः कृपणा दशा सा?॥७॥**

हे मणिपादुके! इस लोक की रक्षा के लिए वनगमन के समय श्रीराम के चरणकमलों का त्याग करने वाली पादुका का वैभव-स्वीकाररूप कार्य दुष्कर है या रावण के द्वारा होने वाले हरण के समय उन्हीं श्रीराम के चरणकमलों को त्यागने वाली भगवती जानकी की वह दीन दशा दुष्कर है? कवि का यहाँ यही अभिप्राय है कि वियोग की दशा में सुखानुभव असह्य होता है, फलतः पादुका का विभूतिस्वीकार ही दुष्कर कार्य है। सन्देह-अलङ्कार॥७॥

सीतासखस्य सहसा चरणारविन्दाद्
भक्त्या नते कृतपदा भरतोत्तमाङ्गे।
आरुह्य नागमभितो भवती वितेने
मायूरचामरभरं मणिरश्मिजालैः॥८॥

हे मणिपादुके! सीताजी के सखा श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमल से अलग होकर तुम भक्ति के कारण विनम्र श्रीभरतजी के मस्तक पर विराजमान होकर 'शत्रुञ्जय' नामक गज के ऊपर आरूढ हुई अपने अन्दर जटित मणियों के किरणसमूहों से गज के दोनों ओर स्थित मयूरपिच्छ से निर्मित चामर की गुरुता का विस्तार की थी॥८॥

मूर्ध्ना मुकुन्दपदरक्षिणि बिभ्रतस्त्वा-
माविर्मदस्य रघुवीरमदावलस्य।
आमोदिभिः सपदि दानजलप्रवाहै-
र्लेभे चिराद् वसुमती रुचिरं विलेपम्॥९॥

हे श्रीमुकुन्द के चरणों की रक्षा करने वाली पादुके! तुमको धारण करते हुए, अत एव जिसमें मदजल (हाथी के अङ्गों से निकलने वाला जल) का आविर्भाव हो गया है ऐसे श्रीराम के शत्रुञ्जयनामक हाथी (मदावल) के सुगन्धित मदजलप्रवाहों से शीघ्र ही रमणीय विलेपन (उबटन) को यह भूमि दीर्घकाल तक प्राप्त की थी। अकारणीभूत मदजलों से विलेपनरूप कार्य का वर्णन होने से यहाँ विभावना-अलङ्कार है॥९॥

आशाः प्रसाधयितुमम्ब तदा भवत्यां
दैवादकाण्डशरदीव समुत्थितायाम्।
स्तोकावशेषसलिलाः सहसा बभूवुः
साकेतयौवतविलोचनवारिवाहाः॥१०॥

हे मातः! पादुके! अयोध्या की ओर प्रयाण के समय भाग्यवश दिशाओं (आशाः) को कुमुदकाश आदि से परिष्कृत करने के लिए

असमय में प्राप्त शरद् ऋतु के समुत्थान की तरह जनतृष्णा (आशा) को फलप्राप्ति हो जाने से दूर करने के लिए तुम्हारे समुत्थान में अयोध्या की युवतियों के समुदाय के नयनरूपी मेघ सहसा अल्प अवशिष्ट जल वाले हो गये थे। उस समय अयोध्या की स्त्रियों के आँसू मिट गये थे, यह अभिप्राय है। उपमा-रूपक-अलङ्कार॥१०॥

**अन्तेवसन्नचरमस्य कवेः स योगी**
**वन्यान् प्रगृह्य विविधानुपदाविशेषान्।**
**आतस्थुषीं रघुकुलोचितमौपवाह्यं**
**प्रत्युज्जगाम भवतीं भरतोपनीताम्॥११॥**

हे पादुके! आदि कवि वाल्मीकि मुनि के अन्तेवासी (शिष्य) प्रसिद्ध योगी भरद्वाज ऋषि वन में पैदा होने वाले कन्दमूल-फल आदि नाना प्रकार के उपहारविशेषों को लेकर श्रीभरत के द्वारा लायी गयी तथा रघुकुल के अनुरूप राजवाह्य हाथी पर सवार तुम्हारे पास आये थे। यहाँ पादुका के प्रभाव के उपपादक महापुरुष भरद्वाज के चरित्र का वर्णन होने से 'उदात्त' नामक अलङ्कार है॥११॥

**मातस्त्वदागमनमङ्गलदर्शिनीनां**
**साकेतपक्ष्मलदृशां चटुलाक्षिभृङ्गैः।**
**वातायनानि सहसा शतपत्रितानि**
**जातानि तत्र वदनैर्मणिपादरक्षे॥१२॥**

हे मातः! मणिपादुके! तुम्हारे आगमनरूप कल्याण का दर्शन करने वाली अयोध्या नगरी के दीर्घ नेत्रलोमों वाली रमणियों के चञ्चल नयन रूप भौरों वाले मुखों से वहाँ के वातायन (गवाक्ष, खिड़कियाँ) उत्पन्न कमल वाले हो गये थे। वहाँ खिड़कियों से पादुका को निहारने वाली नारियों के मुखरूपी कमलों से वातायन कमल वाले हो गये थे, यह अभिप्राय है। यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार से संकीर्ण रूपक अलङ्कार है॥१२॥

**साकेतसीम्नि भवती मणिपादरक्षे!**
**माङ्गल्यलाजनिकरैरवकीर्यमाणा।**
**कीर्त्याः स्वयंवरपतेर्भरतस्य काले**
**वैवाहिकी जननि वह्निशिखेव रेजे॥१३॥**

हे जननि! मणिपादुके! अयोध्या की सीमा में अपने प्रवेश के समय माङ्गल्यस्वरूप लाजसमूहों से विखेरी जाती हुई तुम कीर्तिरूपा स्त्री के स्वयम्वर से प्राप्त पति श्रीभरतजी की वैवाहिक अग्निशिखा के समान सुशोभित हो रही थी। यहाँ रत्नमयी पादुका की वैवाहिक अग्निशिखा के रूप में सम्भावना की गयी है। फलतः यहाँ उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है॥१३॥

**छत्रेन्दुमण्डलवती मणिपादुके! त्वं**
**व्याधूतचामरकलापशरप्रसूना।**
**सद्यो बभूविथ समग्रविकासहेतुः**
**साकेतपौरवनितानयनोत्पलानाम्॥१४॥**

हे मणिपादुके! साम्राज्य के द्योतक छत्ररूप चन्द्रबिम्ब वाली तुम चामरसमुदायरूपी काश के फूलों को कँपाती हुई (जिसने चामरकलापरूपी काशकुसुमों को कँपा दिया है) शीघ्र ही अयोध्या नगरी की नारियों के नयननीलकमलों के सम्पूर्ण विकास का कारण हो गयी थी। पादुका के दर्शन से अयोध्या की नारियों को अपार हर्ष हुआ था, यह अभिप्राय है। यहाँ पादुका में शरद्-ऋतु की रूपणा नहीं है तथा छत्र में चन्द्रबिम्ब की रूपणा है। इस प्रकार यहाँ एकदेशविवर्तिरूपक-अलङ्कार है॥१४॥

**प्रैक्षन्त वक्त्रैर्मणिपादरक्षे! शत्रुञ्जयं शैलमिवाधिरूढाम्।**
**रामाभिमानप्रतिपन्नहर्षैरुत्तानितैरुत्तरकोसलास्त्वाम्॥१५॥**

हे मणिपादुके! उत्तरकोसल जनपद के निवासी पर्वत की तरह स्थित 'शत्रुञ्जय' नामक हाथी पर बैठी हुई तुमको श्रीरामजी के

अभेदाध्यवसान अर्थात् उनसे अभिन्नरूप से अपने हर्षोल्फुल्ल तथा ऊपर उठाये हुए मुखों से देखे थे। पूर्वार्ध में उपमा-अलङ्कार है। उत्तर कोसल के निवासी पादुका को श्रीराम ही मान कर अपना मुख ऊपर उठाये उसे देख रहे थे, यह अभिप्राय है।।१५।।

**द्रष्टुं तदा राघवपादरक्षे सीतामिव त्वां विनिवर्तमानाम्।**
**आसन्नयोध्यापुरसुन्दरीणामौत्सुक्यलोलानि विलोचनानि।।१६।।**

हे श्रीराघव की पादुके! अयोध्या नगरी की सुन्दरियों के नेत्र उस समय तुमको साक्षात् जनकनन्दिनी सीता की तरह लौटी हुई देखकर उत्सुकता से चञ्चल हो गये थे। सीतामिव, में उपमा-अलङ्कार तथा इससे अनुजीवित उत्प्रेक्षा भी है।।१६।।

**आस्थाय तत्र स्फुटबिन्दुनादं स्तम्बेरमं तादृशसंनिवेशम्।**
**अदर्शयस्त्वं पुरमध्यभागे पादावनि त्वत्प्रणवाश्रयत्वम्।।१७।।**

हे श्रीरघुपति की चरणरक्षिके! तुम वहाँ अयोध्या के मध्यस्थान में गजशास्त्रप्रसिद्ध शुभ अवयवों के सन्निवेश से युक्त तथा बिन्दुओं (चित्ती) वाले और नाद करने वाले हाथी (स्तम्बेरम) पर आरूढ होकर अपने प्रणवाकार श्रीरङ्गविमान के आश्रयत्व का दर्शन करायी थी। प्रणव के पक्ष में भी विशेषणों की सङ्गति बनती है—व्यक्त हैं बिन्दु = अनुस्वार तथा नाद = अर्धमात्रा के रूप में ओङ्कार (प्रणव) के ऊपर सुना जाने वाला ध्वनि विशेष जिसमें। वह प्रणव भी मातृकाकोश में प्रसिद्ध लिपि रूप संस्थान से विशिष्ट है। स्मृति भी इस विषय है—

**विमानं प्रणवाकारं वेदशृङ्गं महाद्भुतम्।**
**श्रीरङ्गशायी भगवान् प्रणवार्थप्रकाशकः।।**

हाथी जब अपना शुण्डादण्ड टेढ़ा कर लेता है तो प्रणव के समान हो जाता है। श्री भगवान् के प्रणवाश्रित होने से पादुका के भी प्रणवाश्रयत्व की उपपत्ति हो जाती है। श्लेष-अलङ्कार।।१७।।

दशग्रीवस्तम्बेरमदलनदुर्दान्तहृदये
विहारस्वाच्छन्द्याद् विशति रघुसिंहे वनभुवम्।
स्ववात्सल्यक्रोडीकृतभरतशावेव भवती
निराबाधां पादावनि! न विजहौ कोसलगुहाम्॥१८॥

हे पादुके! रावण रूपी हाथी को चीरने में दुर्दान्त मानस वाले श्रीरामचन्द्र रूपी सिंह जब अपनी क्रीडा की स्वतन्त्र इच्छा से वनभूमि में प्रवेश किये थे तब तुम मानो अपने वात्सल्य के कारण भरतरूपी शिशु को अपनी गोद में लेकर बाधा से रहित कोसलरूपी गुहा (कन्दरा) का त्याग नहीं की थी। यहाँ पादुका के सिंहीत्व और कोशल देश के अधर्षणीयत्व की प्रतीति हो रही है। उत्प्रेक्षा और रूपक अलङ्कार की छटा यहाँ दर्शनीय है॥१८॥

कैकेयीवरदानदुर्दिननिरालोकस्य लोकस्य यत्
त्राणार्थं भरतेन भव्यमनसा साकेतमानीयत।
रामत्यागसहैरसह्यविरहं रङ्गक्षितीन्द्रस्य तत्
पादत्राणमनन्यतन्त्रभणितेरापीडमीडीमहि॥१९॥

भव्य मानस वाले श्रीभरतजी के द्वारा कैकेयी के रामनिर्वासनरूप वरदान रूपी दुर्दिन (मेघाच्छन्न दिन) से प्रकाशहीन और दर्शनहीन जन और भुवन की रक्षा के लिए जो श्रीरङ्गनाथजी की पादुका अयोध्या में लायी गयी थी उस पादुका की हम स्तुति करते हैं। कैसी है वह पादुका? कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजी के विरह को सहन कर लेने वाले जनों से असह्य वियोग वाली है। श्रीराम का वियोग सह्य है किन्तु पादुका का वियोग सह्य नहीं, यह अभिप्राय है। इसीलिए शायद पादुका लायी गयी थी, यह उत्प्रेक्षा-अलङ्कार ध्वनि है। पुनः वह पादुका स्वाधीन वेदवाणी का शेखर अर्थात् अलङ्कारभूत है। व्यतिरेकादि अलङ्कार यहाँ है॥१९॥

**समुपस्थिते प्रदोषे सहसा विनिवृत्य चित्रकूटवनात्।**
**अभजत पुनर्जनपदं वत्सं धेनुरिव पादुके भवती॥२०॥**

हे पादुके! जैसे प्रदोष (रात्रिमुख) के उपस्थित होने पर चित्र-विचित्र शिखर वाले वन से लौट कर धेनु (सवत्सा गौः) पुनः अपने बछड़े की सेवा करने लगती है वैसे ही तुम प्रकृष्ट श्रीराम के वनगमन रूप दोष के उपस्थित होने पर चित्रकूट से लौटकर पुनः कोशल जनपद में आ गयी थी। शिलष्टोपमा-अलङ्कार॥२०॥

●

# अथ षष्ठी अधिकारपरिग्रहपद्धतिः

इस पद्धति में कोशल जनपद के अधिकार को प्राप्त कर लेने पर पादुका के सम्भावित गुणों की स्तुति है।

**अधीष्टे पादुका सा मे यस्याः साकेतवासिभिः।**
**अन्वयव्यतिरेकाभ्यामन्वमीयत वैभवम्॥१॥**

वह पादुका मेरी अधीश्वरी है जिसके वैभव का अनुमान साकेत के निवासियों ने अन्वय-व्यतिरेक से किया था। पादुका के चले जाने पर श्रीराम को वन मिला और पादुका के आने पर भरतजी प्रभु हो गये। इस प्रकार से पादुका के वैभव का अनुमान होता है॥१॥

**मोचितस्थिरचरानयत्नतः कोशलाञ्जनपदानुपास्महे।**
**येषु काँश्चन बभूव वत्सरान् दैवतं दनुजवैरिपादुका॥२॥**

अयत्न अर्थात् कर्म-ज्ञान आदि साधनों के अनुष्ठानविषयक प्रयत्न के बिना ही सांसारिक बन्धनों से मोचित (मुक्त कराये गये) चराचर प्राणी हो गये हों जिनमें ऐसे कोसल जनपदों की मैं उपासना करता हूँ तथा जिन जनपदों में कुछ वर्षों तक श्रीरामचन्द्र जी की पादुका भी आराधनीया थी। काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥२॥

**साम्राज्यसंपदिव दासजनोचिता त्वं**
**रामेण सत्यवचसा भरताय दत्ता।**
**स त्वां निवेश्य चरणावनि! भद्रपीठे**
**पृथ्वीं बुभोज बुभुजे च यशोविभूतिम्॥३॥**

हे पादुके! दासजनों केलिए सेवा के योग्य तुम साम्राज्यसम्पदा की तरह सत्यसन्ध श्रीराम के द्वारा श्रीभरत को दे दी गयी थी। वे भरत भी तुमको भद्रपीठ पर स्थापित करके पृथ्वी का पालन किये और कीर्तिविभूति का अनुभव भी किये। 'दासजनोचिता', यह विशेषण साम्राज्यसम्पद् का भी होगा। वह भी दासजनों के उपभोग के योग्य होती है। उपमा और समुच्चय अलङ्कार॥३॥

**भोगाननन्यमनसां मणिपादुके त्वं**
**पुष्णासि हन्त भजतामनुषङ्गसिद्धान्।**
**तेनैव नूनमभवद्भरतस्य साधो-**
**रप्रार्थितं तदिह राज्यमवर्जनीयम्॥४॥**

हे मणिपादुके! जिनका मन तुमसे अन्यत्र नहीं जाता ऐसे भक्तों के आनुषङ्गिक (अन्वाचयशिष्ट) भोगों का तुम परिपोषण करती हो। तुम्हारे इसी फलोपजननसामर्थ्य से साधु श्रीभरतजी को यहाँ अवर्जनीय और अप्रार्थित राज्य की प्राप्ति हुई थी। काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥४॥

**रामप्रयाणजनितं व्यपनीय शोकं**
**रत्नासने स्थितिमती मणिपादरक्षे।**
**पृथ्वीं निजेन यशसा विहितोत्तरीया-**
**मेकातपत्रतिलकां भवती वितेने॥५॥**

हे मणिपादुके! श्रीरामचन्द्र जी के प्रयाण से जायमान शोक का त्याग करके रत्नमय सिंहासन पर स्थित होकर तुमने अपने यश से सम्पादति उत्तरीय (दुशाला) वाली और अद्वितीय छत्ररूप तिलक वाली पृथ्वी को बना दिया था। रूपक अलङ्कार॥५॥

**रामाज्ञया परवती परिगृह्य राज्यं**
**रत्नासनं रघुकुलोचितमाश्रयन्ती।**

**शुद्धां पदावनि पुनर्भवती वितेने**
**स्वातन्त्र्यलेशकलुषां भरतस्य कीर्तिम्॥६॥**

हे पादुके! श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से परवश हुई तुम उनके राज्य को स्वीकार करके रघुवंश के योग्य रत्नमय सिंहासन पर आरूढ हुई स्वतन्त्रतया अर्थात् श्रीराम की आज्ञा के लङ्घन से एक अंश में कलङ्कित भरत की कीर्ति को पुनः शुद्ध कर दी थी॥६॥

**पौलस्त्यवीरवदनस्तबकावसानात्**
**पुष्पाणि दण्डकवनेष्वपचेतुमिच्छोः।**
**रक्षाधुरं धृतवती मणिपादुके! त्वं**
**रामस्य मैथिलसुतासहिते प्रचारे॥७॥**

हे मणिपादुके! रावण के मुखरूपी पुष्पगुच्छ के अन्त को अभिलक्षित करके दण्डकवन में उन पुष्पों के चयन की इच्छा वाले भगवान् श्रीरामचन्द्र के सीतासहित संचरण करने पर राज्य के परिपालन का भार तुमने ढोया था। श्रीरामजी रावण के वध के लिए जब दण्डकारण्य की ओर सीता के साथ प्रस्थान कर दिये थे तब अयोध्याराज्य की रक्षा का भार पादुका पर आ गया था, यह अभिप्राय है। इससे पादुका का प्रभावातिशय द्योतित होता है॥७॥

**पादावनि! प्रचलचामरवृन्दमध्ये**
**भद्रासनास्तरगता भवती विरेजे।**
**आकीर्णदिव्यसलिले कटके सुमेरो-**
**रम्भोजिनीव कलहायितहंसयूथा॥८॥**

हे पादुके! परिचारकों के द्वारा चलाये जाने से चलायमान चामरों के बीच में भद्रासन के ऊपर बिछे क्षौम (आस्तर) पर आश्रित होकर तुम सुमेरु के व्याप्त, दिव्य जल वाले नितम्ब में उस कमलिनी

के समान सुशोभित हुई थी जहाँ हंसों का समुदाय कलहाचरण करता हो।उपमा अलङ्कार॥८॥

**मान्ये रघुद्वहपदे मणिपादुके! त्वां**
**विन्यस्य विग्रहवतीमिव राज्यलक्ष्मीम्।**
**आलोलमक्षवलयी भरतो जटावा-**
**नालम्ब्य चामरमनन्यमनाः सिषेवे॥९॥**

हे मणिपादुके! जपवलय वाले जटाधारी श्रीभरतजी अपने आराध्य श्रीरामचन्द्रजी के स्थान में अर्थात् उनके सिंहासन पर मूर्तिमती राज्यलक्ष्मी की तरह तुम्हें स्थापित करके चामर लिए अनन्य मन वाले होकर तुम्हारी सेवा किये थे। उत्प्रेक्षा और उदात्त अलङ्कारों की संसृष्टि यहाँ आकलनीय है॥९॥

**प्राप्ते दिवं दशरथे भरते विलक्षे**
**पर्याकुलेषु भृशमुत्तरकोसलेषु।**
**त्वं चेदुपेक्षितवती क इवाभविष्यद्-**
**गोपायितुं गुहसखस्य विभोः पदं तत्॥१०॥**

हे पादुके! महाराज दशरथ के स्वर्ग में पधार जाने पर तथा भरत के लज्जित हो जाने पर एवं उत्तर कोशल के निवासियों के बार-बार पर्याकुल हो जाने पर यदि तुम उपेक्षित हो जाती तो निषाद के मित्र श्रीरामचन्द्रजी के स्थान की रक्षा कौन करता? अर्थात् कोई भी नहीं करता। पादुका के समान विपन्नों की रक्षा कोई नहीं कर सकता, यह अभिप्राय है॥१०॥

**भ्रातुर्यदम्ब विरहाद्भरते विषण्णे**
**दाक्षिण्यमाश्रितवती मणिपादुके त्वम्।**
**आसीदशेषजगतां श्रवणामृतं त-**
**द्वाचालकाहलसहं बिरुदं तदा ते॥११॥**

हे अम्ब! पादुके! भाई श्रीरामचन्द्र जी के विरह से खिन्न भरत के विषय में तुम जो दाक्षिण्य (सरलता) को स्वीकार की थी वह सारे संसार के लिए उस समय कानों में अमृत जैसा वाचाल (शब्द करता हुआ) काहल (वाद्यविशेष) के योग्य बिरुद अर्थात् असामान्य उत्कर्ष को प्रकट करने वाला चिह्न हो गया था। तात्पर्य यह है कि पादुका श्रीराम के भक्तों के प्रति आर्जववती है, ऐसा बिरुद हुआ। उदात्त अलङ्कार॥११॥

**राज्यं तदा दशरथादनु रामतः प्राग्**
**बिभ्राणया चरणरक्षिणि वीतशोकम्।**
**तुल्याधिकारभजनेन बभूव धन्यो**
**वंशस्त्वयाम्ब मनुवंशमहीपतीनाम्॥१२॥**

हे अम्ब श्रीराम की चरणरक्षिके! पादुके! उस समय दशरथ के बाद और श्रीरामचन्द्रजी के पहले के अयोध्या राज्य को श्रमशून्य होकर धारण करने वाली तुमसे मनुवंश के राजाओं का वंश तुल्य स्वामित्व को प्राप्त करने से धन्य (कृतार्थ) हो गया था। यहाँ स्वतः सिद्ध मनुवंश के प्रभाव का उत्कर्ष पादुका के सन्निधान से वर्णित होने के कारण 'अनुगुण' नामक अलङ्कार है॥१२॥

**वर्षाणि तानि वृषलो न तपांसि तेपे**
**बालो न कश्चिदपमृत्युवशं जगाम।**
**राज्ये तवाम्ब रघुपुङ्गवपादरक्षे**
**नैवापरं प्रतिविधेयमभूत् प्रसक्तम्॥१३॥**

हे रघुपति की पादुके! तुम्हारे राज्य में उन चौदहों वर्षों तक कोई भी शूद्र तप नहीं किया था और न ही कोई बालक मरा था तथा अन्य कोई भी खण्डनीय कार्य प्रसक्त नहीं हुआ था। श्रीराम के राज्य में शूद्र का तप, बालमरण और लवणासुर आदि का उपद्रव हुआ था किन्तु पादुका के राज्य में कुछ भी नहीं हुआ था, इससे

पादुका अपने अधिकार में श्रीराम से भी उत्कृष्ट थी, यह व्यतिरेक अलङ्कार ध्वनित है॥१३॥

**विश्वं त्वदाश्रितपदाम्बुजसंभवायां**
**यस्यां प्रतिष्ठितमिदं मणिपादरक्षे।**
**आसीदनन्यशरणा समये यथावत्**
**सापि त्वया वसुमती विहितप्रतिष्ठा॥१४॥**

हे मणिपादुके! तुम्हारे आश्रित श्रीराम के चरणों से उत्पन्न जिस पृथ्वी में यह विश्व प्रतिष्ठित हुआ था वह पृथ्वी भी श्रीराम के वनगमनकाल में तुमसे अन्य रक्षक से रहित (अनन्यशरणा) रहकर तुम्हारे द्वारा ही प्रतिष्ठित हुई थी॥१४॥

**प्रायेण रामविरहव्यथिता तदानी-**
**मुत्सङ्गमाश्रितवती तव राज्यलक्ष्मीः।**
**तामेव देवि ननु जीवयितुं जलार्द्रा-**
**मङ्गीचकार भवती भरतोपनीताम्॥१५॥**

हे देवि! पादुके! उस समय राज्यलक्ष्मी श्रीरामचन्द्रजी के विरह से व्यथित होती हुई अनेक हेतुओं से तेरी गोद में आ गयी थी। उसी राज्यलक्ष्मी को, जो जलार्द्र हुई श्रीभरत के द्वारा लायी गयी थी, तुमने स्वीकार कर लिया था। इससे पादुका की परम करुणा व्यक्त होती है। पादुका ने ऐसा उसे पुनः उज्जीवित करने के लिए किया था॥१५॥

**वीरव्रतप्रणयिनि प्रथमे रघूणां**
**प्राप्ते चिराय भरते व्रतमासिधारम्।**
**त्यक्त्वा पदावनि! तदा विविधान् विहारा-**
**नेकासिकाव्रतमपूर्वमवर्तयस्त्वम्॥१६॥**

हे पादुके! रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी के वीरव्रत के प्रति प्रीतिसम्पन्न होने पर तथा श्रीभरत के खड्गधाराव्रत को धारण कर लेने पर अर्थात् जैसे शिक्षा के बल से नट तलवार की धार पर सावधान होकर चलता है वैसे ही दासता के नियम को स्वीकार कर लेने पर तुम अनेकों प्रकारों के विहारों (लीला) को त्याग करके अपूर्व एकासिका व्रत को स्वीकार कर ली थी। एकासिकाव्रत = एकासन-व्रत। यहाँ 'अपूर्व' से अतिशयोक्ति और व्यतिरेकालङ्कार की प्रतीति हो रही है। श्रीराम और भरत अन्यों से अनुष्ठित व्रत को धारण किये थे किन्तु पादुका का व्रत अपूर्व था, यह आधिक्य-वर्णन ही व्यतिरेक है॥१६॥

**काकुत्स्थपादविरहप्रतिपन्नमौनां**
**निस्पन्दतामुपगतां मणिपादरक्षे।**
**आश्वासयन्निव मुहुर्भरतस्तदानीं**
**शीतैरवीजयत चामरमारुतैस्त्वाम्॥१७॥**

हे मणिपादुके! श्रीभरतजी श्रीराम के चरणों के विरह से मौन धारण कर लेने वाली निष्पन्द हुई तुमको उस समय शीतल चामरपवनों से मानो आश्वस्त करते हुए सेवा करते थे। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१७॥

**यत्र क्वचिद्विहरतोऽपि पदारविन्दं**
**रक्ष्यं मया रघुपतेरिति भावयन्त्या।**
**निःशेषमेव सहसा मणिपादरक्षे**
**निष्कण्टकं जगदिदं विदधे भवत्या॥१८॥**

हे मणिपादुके! जहाँ कहीं भी राज्य या वन में विहार करने वाले श्रीरघुनाथजी के चरणारविन्दों की मैं रक्षा करूँगी, ऐसा चिन्तन करती हुई तुम इस सारे संसार को ही निष्कण्टक बना दी थी।

कण्टक का अर्थ शत्रु और काँटा है। दोनों अर्थ यहाँ श्लेष से विवक्षित हैं॥१८॥

**रामं त्वया विरहितं भरतं च तेन**
**त्रातुं पदावनि! तदा यदभूत् प्रतीतम्।**
**रामानुजस्य तव चाम्ब जगत् समस्तं**
**जागर्ति तेन खलु जागरणव्रतेन॥१९॥**

हे मातः! पादुके! वनगमन के समय तुमसे विरहित श्रीराम की और श्रीराम से विरहित (वियुक्त) भरत की रक्षा करने के लिए उस समय (पादुका के अधिकार के समय) रामानुज अर्थात् लक्ष्मणजी की रक्षा करने के लिए उस समय (पादुका के अधिकार के समय) रामानुज अर्थात् लक्ष्मण और तुम्हारा जो जागरणव्रत हुआ था उससे संसार ही निर्बाध रहता है। भाविक अलङ्कार यहाँ है क्योंकि अतीत जगत् के जागरण की इस समय भी अनुभूति कही गयी है॥१९॥

**अन्तःपुरे परिजनैः समयोपयातै-**
**रभ्यर्चिता भवति या विनयोपपन्नैः।**
**सा कोशलेश्वरपदावनि भूपतीनां**
**संघट्टनं मुकुटपङ्क्तिभिरन्वभूस्त्वम्॥२०॥**

हे कोसलेश्वर श्रीराम की पादुके! जो तुम अन्तःपुर में सेवा के समय आये हुए विनम्र परिचारकों से पूजित हुई थी वही तुम राजाओं की मुकुटपङ्क्तियों के संघट्टन अर्थात् संघर्षण की कठोरता का भी अनुभव की थी। परिजनों की सेवा के योग्य सुकुमार शरीर वाली तुम्हें जगत् की रक्षा के लिए मुकुटों के संघट्टन को भी सहना पड़ा था, यह अभिप्राय है। इस प्रकार यहाँ विषमनामक अलङ्कार है॥२०॥

**प्राप्याधिकारमुचितं भुवनस्य गुप्त्यै**
**भद्रासनं भरतवन्दितमाश्रयन्त्या।**

मध्येऽवतीर्णमिव माधवपादरक्षे
मातस्त्वयापि मनुवंशमहीपतीनाम्॥२१॥

हे श्रीमाधव की पादुके! भुवन की रक्षा के लिए ही कोसलदेश के योग्य प्रभुत्व को प्राप्त करके श्रीभरतजी के द्वारा पूजित सिंहासन को स्वीकार करने वाली तुम भी मानो मनुवंश के राजाओं के मध्य में विष्णु की तरह अवतार ले ली थी। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२१॥

राजासने रघुकुलोद्वहपादरक्षे
नीराजनं समभवत् समयोचितं ते।
श्लाघावशेन बहुशः परिघूर्णिताभिः
सामन्तमौलिमणिमङ्गलदीपिकाभिः॥२२॥

हे श्रीरामचन्द्रजी की पादुके! श्लाघा (प्रशंसा) के बल से अनेकों वार घूर्णन करने वाली सामन्तों के मस्तकों में विद्यमान मणियों की मङ्गलदीपिकाओं के द्वारा राजासन पर तुम्हारा समयोचित नीराजन हुआ था। नीराजन =आर्तिक्य (आरती)। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२३॥

पृथ्वीपतीनां युगपत् किरीटाः प्रत्यर्थिनां प्राणितुमर्थिनां च।
प्रापुस्तदा राघवपादरक्षे त्वदीयमास्थानिकभद्रपीठम्॥२३॥

हे रघुश्रेष्ठ की पादुके! प्रत्यर्थी अर्थात् शत्रु राजाओं के और याचक राजाओं के मुकुट एक साथ तुम्हारे अधिकार के समय तुम्हारे ही आस्थान में होने वाले पादपीठ पर आ गये थे। सिंहासन पर बैठ कर जहाँ पैर रखा जाय उसे पादपीठ कहते हैं। यहाँ जीवित रहने के लिए शत्रुराजाओं के तथा प्रणाम करने के कारण याचकों के मुकुट एक साथ पादपीठ पर आ गये थे, अभिप्राय है। सहोक्ति अलङ्कार॥२३॥

प्रणम्य रङ्गेश्वरपादरक्षे दूरोपनीतैरुपदाविशेषैः।
सभाजयन्ति स्म तदा सभायामुच्चैस्तरामुत्तरकोसलास्त्वाम्॥२४॥

हे श्रीरङ्गनाथ की पादुके! उस समय (अधिकार के समय) सभा में उत्तर कोसल जनपद के निवासी अत्यन्त दूरदेश से लाये गये उपहारों से तुम्हारा समान करते थे। उदात्त अलङ्कार॥२४॥

**अपावृतद्वारमयन्त्रिताश्वं रङ्गेशपादावनि! पूर्वमासीत्।**
**त्वया यदृच्छासुखसुप्तपान्थं रामे वनस्थेऽपि पदं रघूणाम्॥२५॥**

हे श्रीरङ्गेश की पादुके! तुम्हारे अधिकार के पूर्व तथा दशरथ के निर्गमन के बाद रघुवंश के राजाओं का पद अर्थात् कोसल जनपद खुले द्वार वाला और अनियन्त्रित घोड़ों वाला था जिसे तुमने श्रीराम के वन में स्थित होने पर भी ऐसा बना दिया था कि वहाँ पथिक लोग स्वच्छन्द होकर सोने लगे थे। पादुका का राज्य होने पर अराजकता समाप्त हो गयी थी, यह अभिप्राय है। दशरथ के मरने के बाद बिगड़े राज्य को पादुका ने पहले जैसा बना दिया था, इस कथन से पूर्वरूप अलङ्कार है॥२५॥

**अनन्यभक्तिर्मणिपादुके त्वामभ्यर्चयन् दाशरथिर्द्वितीयः।**
**विकल्प्यमानः प्रथमेन कीर्त्या वन्द्यः स्वयं व्योमसदां बभूव॥२६॥**

हे मणिपादुके! न विद्यते पादुकां विहाय अन्येषु भक्तिर्यस्य अर्थात् एकमात्र तेरे प्रति दढ़ भक्ति से युक्त द्वितीय दशरथपुत्र (भरत) तुम्हारी पूजा करते हुए अपनी कीर्तिपताका से प्रथम (श्रीराम) से तुलना किये जाते हुए देवताओं के द्वारा स्वयं वन्दनीय हुए थे। श्रीराम के साथ समता और देवों के द्वारा वन्दनीयता में हेतु पादुका-पूजन ही है। एवञ्च, काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥२६॥

**अरण्ययोग्यं पदमस्पृशन्ती रामस्य राज्यार्हपदे निविष्टा।**
**आस्थाननित्यासिकया निरास्थः स्वर्गौकसां स्वैरगतेर्विघातम्॥२७॥**

हे पादुके! वन के योग्य श्रीराम के चरण का स्पर्श न करती हुई राज्य के योग्य पद (सिंहासन) पर स्थित तुम सभा में नित्य रहने के कारण देवताओं के स्वच्छन्द विचरण के अवरोध को दूर

कर दी थी। तात्पर्य यह है कि यदि पादुका राज्य स्वीकार नहीं करती तो श्रीराम जङ्गल में विचरण नहीं करते, फिर राक्षसों का उपद्रव होता तो देवता कैसे स्वच्छन्द विचरण करते॥२७॥

**राजासने चेद्भवती निषण्णा रङ्गेशपादावनि तन्न चित्रम्।**
**यत्राधिरूढाः क्रमशः पुरा त्वामुत्तंसयन्ते रघुसार्वभौमाः॥२८॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! यदि सिंहासन पर तुम आरूढ़ हो गयी तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि पहले उस सिंहासन पर क्रमशः आरूढ होकर रघुवंश में उत्पन्न होने वाले सारे सार्वभौम (पूरी पृथ्वी के) राजा तुमको अपने मस्तकों का भूषण बनाते रहे हैं। सार्वभौम के मस्तक पर सवार तुम्हारे लिए उनके आसन पर बैठना कौन बड़ी बात है, यह अभिप्राय है। अर्थापत्ति-अलङ्कार॥२८॥

**भद्रासनं चेत् परिवृत्तमासीद् देवि! क्षणं दक्षिणतो मुखं ते।**
**कथं भवेत् काञ्चनपादरक्षे! रामस्य रक्षोमृगयाविहारः॥२९॥**

हे देवि! सुवर्णपादुके! यदि तुम्हारा सिंहासन क्षण भर के लिए भी दक्षिण की ओर घूम जाता तो श्रीरामचन्द्रजी का राक्षसरूपी पशुओं में मृगयाविहार कैसे होता? राक्षस भी सुरक्षित हो जाते। फिर तो भगवान् के द्वारा उनका वध असम्भव था, यह अभिप्राय है। सम्भावना-अलङ्कार॥२९॥

**यावत् त्वया राघवपादरक्षे जिगीषिता राक्षसराजधानी।**
**मालेव तावल्लुलिता मदान्धैरुद्यानशाखामृगयूथपैस्ते॥३०॥**

हे श्रीरघुपुङ्गव की पादुके! तुम ज्यों ही राक्षसों की राजधानी लङ्का पर विजय प्राप्त करना चाही तभी मद में अन्धे उद्यान के सुग्रीव आदि वानर वीरों के द्वारा वह लङ्का माला की तरह छिन्न-भिन्न कर डाली गयी। समुच्चय-उपमा-अतिशयोक्ति अलङ्कार॥३०॥

**महीक्षितां राघवपादरक्षे भद्रासनस्थां भवतीं स्पृशन्तः।**
**पूर्वं तथात्वे नियतेऽपि भूयः कल्याणतामानशिरे किरीटाः॥३१॥**

हे श्रीराघव की चरणपादुके! सिंहासन पर विराजमान तुम्हारा स्पर्श करते हुए राजाओं के मुकुट पहले कल्याण के रूप में निश्चित होते हुए भी पुनः कल्याणता को प्राप्त हुए। राजाओं के मुकुट पादुका का स्पर्श करके और शुभ हो गये, यह अभिप्राय है। पहले शुभ इसलिए थे कि सोना शुभ होता है। अनुगुण-अलङ्कार॥३१॥

**अनिच्छतः पाण्डुरमातपत्रं पित्रा वितीर्णं मणिपादरक्षे।**
**आसीत् त्वदर्थं विधृतेन तेनच्छाया समग्रा भरतस्य मौलौ॥३२॥**

हे मणिपादुके! पिता के द्वारा प्रदत्त श्वेत छत्र को भरतजी स्वीकार करना नहीं चाहते थे तथापि वे तुम्हारे लिए अपने मौलि (मस्तक) पर धारण किये थे। इस प्रकार धृत उस छत्र से श्रीभरत की पूरी शोभा थी और धूप का अभाव (छाया) भी था। श्लेष और असङ्गति अलङ्कार॥३२॥

**पादुके! रघुपतौ यदृच्छया प्रस्थिते वनविहारकौतुकात्।**
**आधिराज्यमधिगम्य ते युवामक्षतं वसुमतीमरक्षतम्॥३३॥**

हे पादुके! वन में विहार करने के कौतूहल से जब श्रीरामचन्द्र जी स्वेच्छापूर्वक प्रस्थान कर दिये थे तब तुम दोनों ने साम्राज्य प्राप्त करके पूरी पृथ्वी की रक्षा पूर्णतः की थी। पूर्वरूप अलङ्कार॥३३॥

**रघीवरपदानुषङ्गमात्रात् परिबर्हेषु निवेशिता यदि त्वम्।**
**अधिकारदिने कथं पुनस्ते परिवारास्तव पादुके बभूवुः॥३४॥**

हे पादुके! तुम यदि श्रीरामचन्द्र जी के चरणों के साथ सम्पर्क मात्र से छत्र-चामर आदि उपकरणों (परिबर्ह) के बीच में ही लगा दी गयी हो तो वे सभी उपकरण उस दिन तेरे परिवार क्यों नहीं हो गये जब तुम राज्याधिकार में अधिकृत हो गयी थी? तात्पर्य

यह है कि श्री भगवान् के परिबर्ह ही पादुका के परिबर्ह हैं तो भगवान् के समान हो गयी पादुका अन्य परिबर्हों के तुल्य नहीं होगी॥३४॥

**पुरुषार्थचतुष्टयार्थिनीनां परिषत् ते महिता वसिष्ठमुख्यैः।**
**क्रयविक्रयपत्तनं प्रजानामभवत् काञ्चनपादुके! तदानीम्॥३५॥**

हे सुवर्ण की भगवत्पादुके! तुम्हारे अधिकार के समय वशिष्ठ आदि ऋषियों से पूजित तुम्हारी सभा 'धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष', इन चारों पुरुषार्थों को चाहने वाली प्रजा का क्रय-विक्रय का नगर हो गयी थी। व्यतिरेक-परिणाम अलङ्कार। परिणाम इसीलिए है कि नगर के रूप में परिणत सभा का क्रय-विक्रय से अन्वय है॥३५॥

**मनुजत्वतिरोहितेन शक्ये वपुषैकेन विरोधिनां निरासे।**
**अभजद् भरतादिभेदमीशः स्वयमाराधयितुं पदावनि! त्वाम्॥३६॥**

हे पादुके! मनुष्यत्व को तिरोहित कर देने पर श्रीरङ्गनाथजी एक ही शरीर से विरोधी राक्षसों का वध कर सकते हैं तो वे परमेश्वर भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न के भेद को इसलिए स्वीकार करते हैं कि स्वयं उन शरीरों से तुम्हारी आराधना कर सकें। उत्प्रेक्षा॥३६॥

**मगधाङ्गकलिङ्गवङ्गमुख्यान् विमतान् रन्ध्रगवेषिणः ससैन्यान्।**
**रघुपुङ्गवपादुके! विजिग्ये भरतः शासनमुद्वहन् भवत्याः॥३७॥**

हे श्रीरघुवीर की पादुके! श्रीभरत आपके शासन = आज्ञा का वहन करते हुए मगध-कलिङ्ग-वङ्ग आदि देशों के ससैन्य उन राजाओं को जीत लिए थे जो छिद्रान्वेषी और कोसलदेश के विरोधी थे॥३७॥

**अनितरवहनीयं मन्त्रिमुख्यैर्यदा तत्**
**त्वयि विनिहितमासीत् सूर्यवंशाधिराज्यम्।**
**रघुपतिपदरक्षे रत्नपीठे तदानीं**
**श्रियमिव ददृशुस्त्वां सादरं लोकपालाः॥३८॥**

हे श्रीरघुपति की पादुके! जब अन्यों के द्वारा वहन करने में अशक्य सूर्यवंश का साम्राज्य सुमन्त्र आदि प्रधान अमात्यों के द्वारा तुम्हारे अधीन कर दिया गया तब सारे लोकपाल तुमको सिंहासन में लक्ष्मी के समान सादर देखे थे। यहाँ उपमा अलङ्कार ही वाच्य है। उत्प्रेक्षा व्यङ्ग्य हो सकती है॥३८॥

**परिहृतदण्डकाध्वगमनं पदरक्षणि! तत्**
**परिणतविश्वसंपदुदयं युवयोर्द्वितयम्।**
**रघुपतिभद्रपीठमधिरुह्य तदा विदधे**
**व्यपगतवैरिभूपनिलयं वसुधावलयम्॥३९॥**

हे श्रीरघुनाथजी की पादुके! यहाँ सम्बोधन द्विवचनान्त है। अधिकार के समय दण्डकवन के गमन का त्याग करने वाली तथा विश्वसंपत्ति की वृद्धि करने वाली तुम दोनों ने श्रीराम के रत्नसिंहासन पर आरूढ होकर पूरे भूमण्डल को वैरियों के निवास से शून्य कर दिया था। यहाँ पर वनगमन को स्वीकार करने वाले श्रीरामचन्द्रजी से भी अधिक पादुका की दया ध्वनित हो रही है॥३९॥

**प्राप्तोदया तदानीं किमपि तमस्तन्निराकरोद् भवती।**
**तनुरिव मनुकुलजनुषां प्रसवित्री रत्नपादुके सवितुः॥४०॥**

हे रत्नपादुके! राज्याधिकार के स्वीकार के समय आप वृद्धि (उदय) को प्राप्त हुई दुरित (तम) को वैसे ही दूर कर दी थीं जैसे उदयपर्वत को प्राप्त कर लेने वाली मनुवंश में उत्पन्न राजाओं की उत्पादिका सूर्य की तनु (शरीर) तमोगुण या अन्धकार को दूर कर देती है। यहाँ श्लेषालङ्कार से संकीर्ण उपमा अलङ्कार है॥४०॥

## अथ सप्तमी अभिषेकपद्धतिः

इस पद्धति में राज्याभिषेक को लेकर स्तुति की गयी है—

**पाहि नः पादुके यस्या विधास्यन्नभिषेचनम्।**
**आभिषेचनिकं भाण्डं चक्रे रामः प्रदक्षिणम्॥१॥**

हे पादुके! तुम हम लोगों की रक्षा करो जिसका अभिषेक करते हुए श्रीरामचन्द्रजी ने अभिषेक के काम में आने वाले भाण्ड (उपकरण) की प्रदक्षिणा की थी। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१॥

**राघवस्य चरणौ पदावनि! प्रेक्षितुं त्वदभिषेकमीषतुः।**
**आभिषेचनिकभाण्डसंनिधौ यत्प्रदक्षिणगतिः शनैर्ययौ॥२॥**

हे पादुके! श्रीरामचन्द्रजी के चरण तुम्हारे अभिषेक को देखने के लिए कामना किये थे, ऐसी मैं सम्भावना करता हूँ क्योंकि श्रीराम ही अभिषेक के काम में आने वाले भाण्डों की सन्निधि में प्रदक्षिणा करते हुए धीरे-धीरे गये थे। पूर्वार्ध का उत्तरार्ध से समर्थन होने से वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥२॥

**मूर्धाभिषिक्तैर्नियमेन वाह्यौ विचिन्त्य नूनं रघुनाथपादौ।**
**रत्नासनस्थां मणिपादुके! त्वां रामानुजन्मा भरतोऽभ्यषिञ्चत्॥३॥**

हे मणिपादुके! श्रीराम के अनुज श्रीभरतजी निश्चय ही यह सोचकर सिंहासन पर विराजमान तुम्हारा अभिषेक किये थे कि श्रीरघुनाथ के चरण सदैव मन्त्रपूत तीर्थजलाभिषेक से धारणीय हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३॥

**भ्रातुर्नियोगेऽप्यनिवर्तमानं राज्याभिषेकं च परित्यजन्तम्।**
**रामानुजौ तौ ननु पारतन्त्र्यादुभावुभाभ्यां भवती जिगाय॥४॥**

हे पादुके! अपने भ्राता श्रीरामजी की आज्ञा में न रहने वाले लक्ष्मण और राज्याभिषेक का त्याग करने वाले भरत, इन दोनों को तुम पारतन्त्र्य (पारार्थ्य, शेषत्व, दासत्व) की दृष्टि से जीत ली थी। भगवान् की आज्ञा लक्ष्मण स्वीकार नहीं किये थे; क्योंकि अध्योध्या में वे रुके नहीं। भरत भी राज्यस्वीकार नहीं किये थे। पादुका उनकी आज्ञा में वर्तमान रही। इस प्रकार वह इन दोनों रामानुजों से उत्कृष्ट हुई। काव्यलिङ्ग और व्यतिरेक का सङ्करालङ्कार।।४।।

**निवेश्य रङ्गेश्वरपादरक्षे भद्रासने सादरमभ्यषिञ्चत्।**
**वशी वसिष्ठो मनुवंशजानां महीक्षितां वंशपुरोहितस्त्वाम्।।५।।**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! जितेन्द्रिय (वशी अर्थात् इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाले) और मनुवंश में उत्पन्न राजाओं के वंशपुरोहित श्रीवशिष्ठजी सिंहासन पर तुम्हें बिठा कर तुम्हारा अभिषेक किये थे। महापुरुष वशिष्ठ का चरित यहाँ पादुका के वर्णन का अङ्ग है अतः उदात्तालङ्कार है। पादुका का अतिशयप्राशस्त्य ध्वनि है।।५।।

**कृताभिषेका भवती यथावद् रङ्गेशपादावनि! रत्नपीठे।**
**गङ्गानिपातस्नपितां सुमेरोरधित्यकाभूमिमधश्चकार।।६।।**

हे श्रीरङ्गेश की पादुके! रत्नमय सिंहासन पर अभिषिक्त हुईं आप गङ्गाजी के गिरने से धुली हुई सुमेरु पर्वत की अधित्यकाभूमि को नीचे कर देती हो। पर्वत की ऊर्ध्वभूमि को अधित्यका भूमि कहते हैं। प्रतीप या व्यतिरेक अलङ्कार।।६।।

**वसिष्ठमुख्यैर्विहिताभिषेकां राज्यासने रामनिवेशयोग्ये।**
**तुष्टाव रङ्गेश्वरपादरक्षे प्राचेतसस्त्वां प्रथमः कवीनाम्।।७।।**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! श्रीरामचन्द्रजी के बैठने के योग्य राज्यासन पर तुम्हारा वशिष्ठ आदि ऋषियों ने अभिषेक किया है

तथा कवियों में आदि कवि कहे जाने वाले वाल्मीकि (प्राचेतस) ने तुम्हारी स्तुति की है॥७॥

**रक्षोवधार्थं मणिपादरक्षे! रामात्मनो रङ्गपतेः प्रवासे।**
**रक्षोपकाराद्भवती वितेन राजन्वतीं कोशलराजधानीम्॥८॥**

हे मणिपादुके! श्रीराम के रूप में श्रीरङ्गनाथजी जब राक्षसों के वध के लिए वन में प्रवास किये थे तब आपने रक्षा रूपी उपकार से कोसल की राजधानी अयोध्या को शोभन राजा वाली कर दिया था। अयोध्या को पहले जैसा कर देने से पूर्वरूप अलङ्कार तथा उससे व्यतिरेकालङ्कार ध्वनि है॥८॥

**प्राप्ताभिषेका मणिपादरक्षे प्रतापमुग्रं प्रतिपद्यमाना।**
**शशास पृथ्वीं भवती यथावत् साकेतसिंहासनसार्वभौमी॥९॥**

हे मणिपादुके! साकेत के सिंहासन पर अधिष्ठित होने से सारी पृथ्वी की अधीश्वरी हुई तुम अभिषेक से सम्पन्न हुई तथा उग्र प्रताप (तेज) को प्राप्त करके पृथ्वी को भासित की थी। वह शासन भी तुम्हारा यथावत् था। यहाँ दिग्विजय के विना ही केवल अपने प्रताप से दुष्टों के निग्रह का कथन होने से अन्य सार्वभौमों से आधिक्य प्रतीत हो रहा है। ततश्च व्यतिरेकालङ्कार ध्वनि है॥९॥

**दशाननादीन् मणिपादरक्षे जिगीषतो दाशरथेर्वियोगात्।**
**जातोपतापा त्वयि संप्रयुक्तैस्तीर्थोदकैरुच्छ्वसिता धरित्री॥१०॥**

हे मणिपादुके! दशानन रावण को जीतने की इच्छा वाले श्रीरामचन्द्रजी के वियोग से उत्पन्न व्यथा वाली यह पृथ्वी तुम्हारे लिए प्रयुक्त तीर्थजलों से उच्छ्वसित जैसी थी। विशेषण से वञ्चित नायिका की प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार है॥१०॥

**अध्यासितं मनुमुखैः क्रमशो नरेन्द्रै-**
**रारोप्य देवि भवतीं तपनीयपीठम्।**

**राज्याभिषेकमनघं मणिपादरक्षे**
**रामोचितं तव वशं भरतो वितेने॥११॥**

हे मणिपादुके! वैवस्वत मनु आदि राजाओं से क्रमशः अधिष्ठित स्वर्ण के सिंहासन पर आप को आरोपित के (बैठाकर) श्रीभरतजी ने आप का रामोचित राज्याभिषेक निर्द्वन्द्वभाव से किया था। श्रीराम के लिए करणीय अभिषेक पादुका का हो जाने से असङ्गति अलङ्कार है॥११॥

**स्नेहेन देवि भवतीं विषयेऽभिषिञ्चन्**
**द्विःसप्तसंख्यभुवनोदरदीपरेखाम्।**
**जातं रघूद्वहदिवाकरविप्रयोगा-**
**दन्धन्तमिस्रमहरद्भरतः प्रजानाम्॥१२॥**

हे देवि! पादुके! द्विःसप्त अर्थात् द्विरावृत्त सप्त = चौदहों भुवनों के मध्यावकाश में दीप लेखा हुई तुमको स्नेह=प्रेम और तेल से देश और पात्र (विषय) में अभिसिञ्चित करते हुए श्रीभरतजी श्रीरामरूपी दिवाकर (सूर्य) के वियोग से उत्पन्न हुई प्रजाओं की प्रगाढ तमिस्रा (अन्धकारपटल) को हर लिये थे। रूपक से संकीर्ण परिणाम-अलङ्कार॥१२॥

**हस्तापचेयपुरुषार्थफलप्रसूते-**
**र्मूलं पदावनि मुकुन्दमहीरुहस्त्वम्।**
**छायाविशेषमदिशद् यदसौ प्रजाना-**
**मावर्जितैस्त्वयि शुभैरभिषेकतोयैः॥१३॥**

हे पादुके! तुम हाथों के द्वारा ही चयन करने योग्य धर्म आदि चारों पुरुषार्थों के उत्पादक श्रीमुकुन्दरूप वृक्ष की मूल हो क्योंकि वह मुकुन्दरूपी वृक्ष तुम्हारे लिए प्रयुक्त शुभ अभिषेकीय जलों से प्रजा को छायाविशेष प्रदान किया था॥१३॥

**अह्नाय रामविरहात् परिखिन्नवृत्ते-**
**राश्वासनाय भवती मणिपादरक्षे।**
**तीर्थाभिषेकमपदिश्य वसुंधराया-**
**श्चक्रे तदा समुचितं शिशिरोपचारम्।।१४।।**

हे मणिपादुके! आपने श्रीरामचन्द्रजी के विरह से अतीव खिन्न व्यापार वाली पृथ्वी के आश्वासन के लिए तीर्थाभिषेक के बहाने यथायोग्य शीतल उपचार किया था। अपह्नुति और समासोक्ति अलङ्कार।।१४।।

**मालिन्यमाश्रितवती मणिपादरक्षे**
**पङ्केन केकयसुताकलहोत्थितेन।**
**शुद्धिं परामधिजगाम वसुन्धरेयं**
**त्वत्तः क्षणं निपतितैरभिषेकतोयैः।।१५।।**

हे मणिपादुके! कैकेयी के कलह से उत्पन्न पङ्क अर्थात् पाप और कीचड़ से मलिनता को प्राप्त हुई यह वसुन्धरा (पृथ्वी) क्षण में ही अभिषेक के जलों से तुम्हारे द्वारा ही परम शुद्धि को प्राप्त हुई थी। पादुका ने ही अभिषेक के जलों से मानो पृथ्वी को शुद्ध किया था, यह तात्पर्य है। फलोत्प्रेक्षा ध्वनि है।।१५।।

**आवर्जितं मुनिगणेन जगद्विभूत्यै**
**तोयं पदावनि तदा त्वयि मन्त्रपूतम्।**
**मूलावसेकसलिलं निगमद्रुमाणां**
**शापोदकं च समभूत् क्षणदाचराणाम्।।१६।।**

हे पादुके! ऋषियों का समुदाय तुम्हारे अधिकार के समय संसार की विभूति के लिए तुम्हारे ऊपर मन्त्रों से पवित्र जिस जल को छोड़ा था वह जल वेद रूपी वृक्षों के मूलभाग को सीचने के काम में आया था और वही राक्षसों के लिए शापजल हो गया था।

उसके बाद ही विराध आदि राक्षसों का नाश हुआ था, यह अभिप्राय है। उल्लेखालङ्कार है क्योंकि एक ही जल का बहुधा उल्लेख है॥१६॥

**विप्रोषिते रघुपतौ भवती यथार्हं**
**मान्ये पदे स्थितिमती मनुवंशजानाम्।**
**आत्मन्यथर्वनिपुणैः प्रहितैः प्रजाना-**
**मश्रूण्यपास्यदभिषेकजलप्रवाहैः॥१७॥**

हे पादुके! अयोध्या से जब श्रीरामचन्द्रजी वन में चले गये (विप्रोषित) तब आप मनुवंश के राजाओं के माननीय स्थान में विराजमान हो गयी थीं। उसी समय आपने अथर्ववेदीय प्रयोगों में निपुण वसिष्ठादि के द्वारा प्रयुक्त अभिषेकीय जलप्रवाहों से प्रजाओं के आँसुओं को पोछा था॥१७॥

**प्रायो विशोषितरसा पतिविप्रयोगात्**
**पर्याकुलीकृतसमुद्रपयोधरा गौः।**
**अम्ब! त्वदीयमभिषेकपयः पिबन्ती**
**धेनुर्बभूव जगतां धनधान्यदोग्ध्री॥१८॥**

हे मातः! पादुके! पति श्रीरामचन्द्रजी के विरह से विशेषरूप से शोषित रस (प्रीति और द्रव) वाली तथा जिसके समुद्ररूपी पयोधर (स्तन) क्षुब्ध हो गये हों ऐसी भूमिरूपिणी गाय तुम्हारे अभिषेक-जल को पीती हुई जगत् के लिए धन-धान्य का दोहन करने वाली धेनु (सवत्सा गाय) हो गयी थी। पादुका के अभिषेक से पृथ्वी धनधान्य से समृद्ध हो गयी थी, यह अभिप्राय है। श्लेषानुप्राणित रूपक से संसृष्ट हेतूत्प्रेक्षा॥१८॥

**वृत्ते यथावदभिषेकविधौ बभासे**
**पश्चात् तवाम्ब भरतेन धृतः किरीटः।**

**आकस्मिकस्वकुलविप्लवशान्तिहर्षात्**
**प्राप्तस्त्विषामिव पतिर्मणिपादुके! त्वाम्॥१९॥**

हे मातः! पादुके! पूर्णतः तुम्हारा अभिषेक सम्पन्न हो जाने पर बाद में श्रीभरतजी के द्वारा धारण किया गया मुकुट अकस्मात् होने वाले अपने कुल के उपद्रव की शान्ति के हर्ष से मानो तुमको प्राप्त हुए सूर्य के समान सुशोभित था। उपमा-उत्प्रेक्षा॥१९॥

**मनुवंशपुरोहितेन मन्त्रैरभिमन्त्र्य त्वयि पादुके प्रयुक्तम्।**
**अभिषेकजलं क्षणेन राज्ञां शमयामास समुत्थितान् प्रतापान्॥२०॥**

हे पादुके! मनुकुल के पुरोहित वसिष्ठजी के द्वारा मन्त्रों से अभिमन्त्रित होकर तुम्हारे ऊपर प्रयुक्त हुआ अभिषेक-जल क्षण भर में ही विरोधी राजाओं के उमड़े प्रतापों को शान्त कर दिया था॥२०॥

**पादपादुपहृता रघूद्वहादालवालमिव पीठमाश्रिता।**
**अभ्यषेचि भवती तपोधनैः पारिजातलतिकेव पादुके॥२१॥**

हे पादुके! तपस्या ही जिनका धन है ऐसे ऋषियों के द्वारा पारिजात के वृक्ष के समान स्थित श्रीरामचन्द्रजी के पास से लायी गयी तुम आलवाल (वृक्षमूल का वलय, थाला) के समान स्थित पीठ अर्थात् सिंहासन पर आ विराजी थी और पारिजात की लता के समान अभिषिक्त भी हुई थी। उपमा-अलङ्कार॥२१॥

**अलघुभिरभिषेकव्यापृतैरम्बुभिस्ते**
**दिनकरकुलदैन्यं पादुके क्षालयिष्यन्।**
**स खलु कमलयोनेः सूनुराधत्त मन्त्रे-**
**ष्वधिकनियमयोगां शक्तिमाथर्वणेषु॥२२॥**

हे पादुके! वे प्रसिद्ध ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ अलघु अर्थात् मन्त्र-शक्तियों से सम्पन्न तथा तुम्हारे अभिषेक में संलग्न जलों से सूर्यवंश

की दीनता को प्रक्षालित करते हुए अथर्वा ऋषि के द्वारा दृष्ट मन्त्रों में ब्रह्मचर्योपयोगी नियमों से संपृक्त शक्ति का आधान किये थे। पादुका लोकोत्तर मुनियों के द्वारा भी उपास्य थी, यह अभिप्राय है॥२२॥

**दिनकरकुलजानां देवि! पृथ्वीपतीनां**
**निरुपधिमधिकारं प्राप्नुवत्यां भवत्याम्।**
**अजनिषत समस्ताः पादुके तावकीन-**
**स्नपनसलिलयोगान्निम्नगास्तुङ्गभद्राः॥२३॥**

हे देवि पादुके! जब आप सूर्यवंश के राजाओं के उपाधिशून्य अर्थात् नैसर्गिक अधिकार को प्राप्त कर ली थीं तब सारी नदियाँ तुम्हारे अभिषेक-जल के योग से तुङ्गभद्रा हो गयी थीं। तुङ्गाश्च ता भद्राः, अर्थात् उन्नत और कल्याणकारिणी, इस यौगिक अर्थ से 'तुङ्गभद्रा' नामक नदी की प्रतीति से उत्पन्न विरोध का समाधान हो जाता है। विरोधाभास-अलङ्कार॥२३॥

**तव विधिवदुपात्ते सार्वभौमाभिषेके**
**भरतसमयविद्भिः पादुके मन्त्रिमुख्यैः।**
**तदवधि निजकर्मस्थायिनीनां प्रजानां**
**प्रथमयुगविशेषाः प्रादुरासन् विचित्राः॥२४॥**

हे पादुके! श्रीभरत के समय अर्थात् श्रीभगवत्पादुकाभिषेक-विषयक सङ्केत को समझने वाले उन उन श्रेष्ठ मन्त्रियों के द्वारा तुम्हारा जब सार्वभौम-अभिषेक हो गया था तब अपने अपने वर्णाश्रमोचित नित्य-नैमित्तिक-काम्य कर्मों में संलग्न प्रजाओं की आश्चर्यभूत, सत्ययुग में दिखायी देने वाली भक्ति आदि समृद्धियाँ प्रकट हो गयी थीं। धर्मसमृद्धि का वर्णन होने से उदात्त अलङ्कार है॥२४॥

अवसितरिपुशब्दा नन्वभूस्त्वं तदानीं
रघुपतिपदरक्षे लब्धराज्याभिषेका।
चलितभुजलतानां चामरग्राहिणीनां
मणिवलयनिनादैर्मेदुरान् मन्त्रघोषान्॥२५॥

हे श्रीरघुनाथजी की पादुके! तुम अपने अधिकार के समय राज्याभिषेक से सम्पन्न होकर चञ्चल भुजलताओं वाली चामर डुलाती हुई परिचारिकाओं के मणिमय कङ्कणों की ध्वनियों से घने उन मन्त्रघोषों का अनुभव की थी जो 'शत्रु' शब्दों को शान्त कर दिये थे। समृद्धि वर्णन से यहाँ भी उदात्त अलङ्कार है॥२५॥

समुचितमभिषेकं पादुके प्राप्नुवत्यां
त्वयि विनिपतितानां देवि! तीर्थोदकानाम्।
ध्वनिरनुगतमन्त्रः सीदतां कोसलानां
शमयितुमलमासीत् संकुलानार्तनादान्॥२६॥

हे देवि! पादुके! जब आप का यथायोग्य अभिषेक सम्पन्न हो गया था तब आपके ऊपर गिरे हुए गङ्गा आदि तीर्थों के जलों की मन्त्रानुगत ध्वनि खिन्न हुए कोसल-जनपद के निवासियों के संव्याप्त आर्तनादों को दूर करने में समर्थ हो गये थे॥२६॥

दिविषदनुविधेयं देवि! राज्याभिषेकं
भरत इव यदि त्वं पादुके नान्वमंस्थाः।
कथमिव रघुवीरः कल्पयेदल्पयत्न-
स्त्रिचतुरशरपातैस्तादृशं देवकार्यम्॥२७॥

हे देवि! पादुके! यदि तुम भी देवों के द्वारा अनुमोदनीय राज्याभिषेक को श्रीभरत की तरह स्वीकार नहीं करती तो श्रीरघुनाथ रामचन्द्रजी तीन चार बाणों के सम्पातों से ही वैसा दुर्धर्ष देवकार्य कैसे करते? पादुका यदि राज्य स्वीकार नहीं करती तो श्रीरामचन्द्र जी के द्वारा राज्य की रक्षा और देवकार्य, दोनों का भार वहन

करना पड़ता, फलतः वे कुछ भी न कर पाते, यह अभिप्राय है। सम्भावना-अलङ्कार॥२७॥

**कतिचन पदपद्मस्पर्शसौख्यं त्यजन्ती**
**व्रतमतुलमधास्त्वं वत्सरान् सावधाना।**
**रघुपतिपदरक्षे! राक्षसैस्त्रासितानां**
**रणरणकविमुक्तं येन राज्यं सुराणाम्॥२८॥**

हे श्रीरघुवीर की पादुके! कुछ वर्षों तक ही श्रीभगवान् के चरणकमलों के स्पर्श के सुख का त्याग करती हुई तुम सावधान होकर अतुलनीय व्रत को धारण की थी। उस व्रत के प्रभाव से ही राक्षसों से पीड़ित देवताओं का राज्य भय से विनिर्मुक्त हुआ था। यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार से पादुका के जागरुकत्वरूप महत्त्व की व्यञ्जना होने से उदात्तालङ्कार ध्वनि है। तथा च, अलङ्कार से अलङ्कार ध्वनि हुआ जो कविविषयक पादुकारति का उपस्कारक है॥२८॥

**अथर्वोपज्ञं ते विधिवदभिषेकं विदधतां**
**वसिष्ठादीनामप्युपचितचमत्कारभरया।**
**त्वदास्थान्या रङ्गक्षितिरमणपादावनि! तदा**
**लघीयस्यो जाता रघुपरिषदाहोपुरुषिकाः॥२९॥**

हे रङ्गक्षितिरमणपादावनि! अर्थात् श्रीरङ्गक्षेत्र के रमण = पति श्रीभगवान् की चरणपादुके! तुम्हारे अभिषेक के समय अथर्वा ऋषि के द्वारा प्रथमतया दृष्ट जो राज्याभिषेक कर्म है उसका यथाविधान सम्पादन करने वाले वशिष्ठ आदि ऋषियों के हृदय में भी चमत्कार-समूह को परिपुष्ट करने वाली तुम्हारी परिषत् श्रीराम की आहोपुरुषिका को छोटी बना देती है। 'द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च', इस सूत्र से 'अहोपुरुष' शब्द से तद्धित 'वुञ्' प्रत्यय से 'आहोपुरुषिका' शब्द की निष्पत्ति होती है जिसका अर्थ है—अपने अन्दर होने वाली दर्पादिविषयक सम्भावना! पादुका की परिषत् रघुपतिराजाओं की दर्पादिजनित

सम्भावना को न्यून कर देती है, इस वस्तु से पूर्व राजपरिषदों के तिरस्कारवर्णन से प्रतीप-अलङ्कार है॥२९॥

**अभिषेचयतु स रामः पदेन वा स्पृशतु पादुके भवतीम्।**
**अविशेषितमहिमा त्वं क्व वा विशेषः क्षमासमेतानाम्॥३०॥**

हे पादुके! श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारा अभिषेक करायें या अपने चरणों से स्पर्श करें। तुम्हारे ऊपर कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि तुम्हारी महिमा अविशेषित अर्थात् अविकृत है। इसी का अर्थान्तर-न्यास से समर्थन करते हैं—'क्व वा विशेषःक्षमासमेतानाम्।' अर्थात् जो क्षमा=क्षान्ति से युक्त हैं उनमें कहाँ तारतम्य (विशेष) दिखायी देता है? अर्थात् नहीं दिखायी देता। अर्थान्तर-न्यास-अलङ्कार सामान्य से विशेष (पादुका) का समर्थन करने के कारण है॥३०॥



# अथाष्टमी निर्यातनापद्धतिः

इस पद्धति में श्रीभरतजी के द्वारा किये गये न्यासप्रत्यर्पण को लेकर स्तुति की गयी है—

**अभिषेकोत्सवात् तस्माद्यस्या निर्यातनोत्सवः।**
**अत्यरिच्यत तां वन्दे भव्यां भरतदेवताम्॥१॥**

श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा श्रीभरत के पास धरोहर (न्यास) के रूप में रखी गयी जिस पादुका का निर्यातनोत्सव = न्यास के प्रत्यर्पण का उत्सव उस प्रसिद्ध अभिषेकोत्सव से विशिष्ट था, भरत की उस मङ्गलमयी देवता (पादुका) की मैं वन्दना करता हूँ॥१॥

**उपास्य वर्षाणि चतुर्दश त्वामुत्तारिकामुत्तरकोसलस्थाः।**
**सनन्दनाद्यैरपि दुर्विगाहं सान्तानिकं लोकमवापुरग्र्यम्॥२॥**

हे पादुके! उत्तरकोसल जनपद के निवासीजन चौदह वर्षों तक परमसिद्धि की साधनभूता तुम्हारी आराधना करके उस 'सान्तानिक' नामक श्रेष्ठ लोक को प्राप्त किये थे जिसमें सनन्दन आदि योगियों का भी प्रवेश पाना कठिन है। उदात्त-अलङ्कार॥२॥

**पादावनि! प्रत्ययितो हनूमान् सीतामिव त्वां चिरविप्रयुक्ताम्।**
**प्रणम्य पौलस्त्यरिपोरुदन्तं विज्ञापयामास विनीतवेषः॥३॥**

हे पादुके! प्रत्ययित अर्थात् यथार्थवक्ता तथा विनम्र वेश वाले हनुमान् जी श्रीभगवान् से दीर्घ काल तक वियुक्त तुमको प्रणाम करके वैसे ही तुम्हे रावण के शत्रु श्रीराम का वृत्तान्त सुनाये थे जैसे सीताजी को सुनाये थे। उपमा अलङ्कार॥३॥

**तवाभिषेकान्मणिपादरक्षे! मूले निषेकादिव वृद्धियोगात्।**
**जहुस्तदैव त्रिदशाङ्गनानां प्रम्लानतां पत्रलताङ्कुराणि॥४॥**

हे मणिमयपादुके! वृद्धि के योग से मूलभाग में सेचन के समान तुम्हारे अभिषेक से उसी समय देवताओं की सुन्दरियों की अङ्कुर की तरह स्थित पत्रलतायें अपनी म्लानता को त्याग दी थीं। महिलाओं के भुजाग्र-स्तनयुगल-गालों और गले में कुशल पुरुषों के द्वारा जो अनुलेपन लगाया जाता है वही रेखा के आकार में पत्रलता कहलाता है। उपमा अलङ्कार॥४॥

**सर्वतस्त्वदभिषेकवासरे सम्यगुद्धृतसमस्तकण्टके।**
**राघवस्य विपिनेषु पादुके यत्र कामगमता व्यवस्थिता॥५॥**

हे पादुके! तुम्हारे अभिषेक के दिन में राज्य और जङ्गल हर जगह ठीक से सारे शत्रुओं और काँटों का उद्धरण (निःसारण) हो जाने पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का वनों में अभीष्ट गमन व्यवस्थित हो गया था। 'कामगम' यहाँ कर्म में 'घञ्' प्रत्यय से 'काम' बना है तथा भाव में 'अप्' प्रत्यय से 'गम' बना है। कामः अभीष्टः गमो गमनं यस्य स कामगमः तस्य भावः कामगमता। इसका तात्पर्य अभीष्टगमन से ही है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥५॥

**किं चतुर्दशभिरेव वत्सरैर्नित्यमेव मणिपादुके! युवाम्।**
**पादयोस्त्रिभुवनाधिराजयोर्यौवराज्यमधिगच्छतं स्वयम्॥६॥**

हे मणिपादुके! तुम दोनों चौदह वर्षों में ही स्वयम् ही तीनों भुवनों के सार्वभौम हुए श्रीराम के चरणों के 'यौवराज्य' पद को नित्य ही प्राप्त करें! श्रीरामजी जब सिंहासन पर अधिरूढ होंगे तब पादुकायें पादपीठ पर विराजमान हो जायेंगी। इस प्रकार उनकी युवराजत्वस्थानीयता उपपन्न हो जायेगी, यह अभिप्राय है। आक्षेप अलङ्कार॥६॥

**रामस्य राक्षसवधे त्वरितस्य काले**
**पादावनि! प्रकटयन्निव पार्ष्णिगुप्तिम्।**
**आचित्रकूटमधिगम्य शशंस वार्ता-**
**मव्याहतस्त्वदभिषेकमृदङ्गनादः॥७॥**

हे पादुके! तेरे अभिषेक में अव्याहत अर्थात् अनवरुद्ध मृदङ्गध्वनि दण्डकारण्य में गमन के समय राक्षसों के वध में जल्दीबाजी करने वाले श्रीरामचन्द्रजी की पश्चाद्भाविनी देशरक्षा को प्रकट करता हुआ चित्रकूट पर्वत को व्याप्त करके वृत्तान्त कहता हुआ सा था। पृष्ठदेश की रक्षा में पादुका है, आप निशङ्क होकर गमन करें, ऐसी वार्ता श्रीराम से करता हुआ सा था, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥७॥

**भद्राणि देवि! जगतां प्रतिपादयिष्यन्**
**प्रागेव येन भवतीं भरतोऽभ्यषिञ्चत्।**
**मन्ये कपीश्वरविभीषणयोर्यथावत्**
**संतन्यते स्म तत एव किलाभिषेकः॥८॥**

हे देवि! पादुके! श्रीभरतजी जिस कारण से संसार का कल्याण करते हुए श्रीराम के अभिषेक के पहले ही आपका अभिषेक किये थे उसी कारण से मैं मानता हूँ कि सुग्रीव और विभीषण का अभिषेक भी बढ़ने लगा था। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥८॥

**संभिद्यमानतमसासरयूपनीतैः**
**संवर्द्धितस्तव शुभैरभिषेकतोयैः।**
**मन्ये बभूव जलधिर्मणिपादरक्षे!**
**रामास्त्रपावकशिखाभिरशोषणीयः॥९॥**

हे मणिमयपादुके! परस्पर मिलती हुई तमसा और सरयू से लाये गये तुम्हारे मङ्गलमय अभिषेकजलों से बढ़ा हुआ समुद्र श्रीरामचन्द्रजी के अस्त्र से उत्पन्न अग्नि की ज्वालाओं से नहीं सूखा, ऐसा मैं

मानता हूँ। यदि तुम्हारे अभिषेकजल से बढ़ता नहीं तो निश्चय ही सूख जाता, यह अभिप्राय है। हेतूत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥९॥

**पादावनि! त्वदभिषेचनमङ्गलार्थं**
**भेरीशतं भृशमताड्यत यत् प्रतीतैः।**
**आकर्ण्य तस्य सहसा तुमुलं निनादं**
**लङ्काकपाटनयनानि निमीलितानि॥१०॥**

हे पादुके! तुम्हारे अभिषेक के समय मङ्गल के लिए प्रसन्न या निपुण लोगों ने जो असंख्य भेरीवाद्यों को बजाया था तो उसके घने ध्वान को सुनकर लङ्का ने अपने कपाट रूपी नयनों को मूद लिया था। समासोक्ति और रूपक से संकीर्ण उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१०॥

**तापोद्गमस्त्वदभिषेकजलप्रवाहै-**
**रुत्सारितस्त्वरितमुत्तरकोसलेभ्यः।**
**लेभे चिराय रघुपुङ्गवपादरक्षे!**
**लङ्कावरोधसुदृशां हृदयेषु वासम्॥११॥**

हे श्रीरघुपति की पादुके! तुम्हारे अभिषेक-जलों के प्रवाहों ने उत्तरकोसल जनपद के निवासियों के पास से शीघ्र ही सन्ताप के उद्गम (उदय) को निकाल दिया था। लोगों में जो सन्ताप का उदय था उसे अभिषेकीय जलप्रवाहों ने दूर कर दिया था, यह अभिप्राय है। उसको भी कहीं ठॉव चाहिये तो वह लङ्का में रावण के अन्तःपुर की स्त्रियों के हृदयों में निवास किया। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥११॥

**आवर्जितं विधिविदा मणिपादरक्षे!**
**पद्मासनप्रियसुतेन पुरोहितेन।**
**आसीन्निदानमभिषेकजलं त्वदीयं**
**नक्तञ्चरप्रणयिनीनयनोदकानाम्॥१२॥**

हे मणिमयपादुके! अभिषेक के विधायक शास्त्रों के ज्ञाता तथा ब्रह्मा के मानसपुत्र और सूर्यवंश के पुरोहित वशिष्ठजी के द्वारा तुम्हारे

ऊपर गिराया गया अभिषेक-जल राक्षसों की प्रेयसियों की आँसुओं का आदिकारण हुआ। राक्षसियों के आसुओं का समवायिकारण पादुकाभिषेकीय जल है, ऐसी उत्प्रेक्षा यहाँ की गयी है।।१२।।

**देवि! त्वया स्नपनसंपदि संश्रितायां**
**दग्धे पुरे दशमुखस्य बलीमुखेन।**
**आसीत्ततःप्रभृति विश्वजनप्रतीत-**
**मद्भ्योऽग्निरित्यवितथं वचनं मुनीनाम्।।१३।।**

हे देवि! पादुके! तुम जब अभिषेक (स्नपन) रूपी ऋद्धि को स्वीकार की थी और बलीमुख = श्रीहनुमान् ने जब दशमुख रावण के नगर को जला दिया था तब से ही 'जल से अग्नि उत्पन्न हुआ है', यह यथार्थ मुनियों का वचन सारे लोगों में प्रसिद्ध हुआ था। 'अद्भ्योऽग्निः', इस वचन की योजना पादुका के अभिषेक के जल से उत्पन्न अग्नि से लङ्कादहन में की गयी है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।।१३।।

**आयोध्यकैस्त्वदभिषेकसमिद्धहर्षै-**
**राध्मापिताः श्रुतिसुखं ननु ते तदानीम्।**
**रामस्य राक्षसशिरोलवनेऽप्यशाम्यन्**
**येषां ध्वनिर्विजयशङ्खरवो बभूव।।१४।।**

ननु अर्थात् हे पादुके! यहाँ आमन्त्रण-अर्थ में ननु का प्रयोग है। तुम्हारे अभिषेक के समय अभिषेक से ही प्रबुद्ध (समिद्ध) हर्ष वाले अयोध्यानिवासियों के द्वारा बजाये गये वे शङ्ख कानों में आनन्द प्रदान करने वाले हो गये थे। उनकी वह ध्वनि उस समय भी शान्त नहीं हुई थी जब श्रीरामचन्द्र जी राक्षसों के मस्तकों को काट रहे थे। वही ध्वनि उस समय विजय की शङ्खध्वनि हो गयी थी। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।।१४।।

**प्रथयितुमभिषेकं पादुके! तावकीनं**
**दुरितशमनदक्षे दुन्दुभौ ताड्यमाने।**

**सपदि परिगृहीतं साध्वसं देवि! नूनं**
**दशवदनवधूनां दक्षिणैर्नेत्रकोशैः॥१५॥**

हे देवि पादुके! तुम्हारे अभिषेक को प्रख्यापित करने के लिए जब पापों के शमन में निपुण दुन्दुभि (वाद्यविशेष) को बजाया जाने लगा था तब ही रावण की पत्नियों के दाहिने नयनकोशों ने शीघ्र ही भय को स्वीकार कर लिया था। खड्ग के छादन के वाचक 'कोश' शब्द का यहाँ लक्षणावृत्ति से आँखों की पलकों का बोध कराया गया है। यहाँ रावण की स्त्रियों के भयसूचक दक्षिणनेत्र के स्पन्दन में कारण के रूप में पादुकाभिषेक में बजने वाले दुन्दुभि के शब्द को कहा गया है, अतः हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥१५॥

**रघुपतिपदरक्षे! रत्नपीठे यदा त्वा-**
**मखिलभुवनमान्यामभ्यषिञ्चद्वसिष्ठः।**
**दशमुखमहिषीभिर्देवि! बाष्पायिताभिः**
**स्तनयुगमभिषेक्तुं तत्क्षणादन्वमंस्थाः॥१६॥**

हे श्रीरघुपति की पादुके! सारे भुवनों में माननीय तुमको जब रत्नसिंहासन पर वशिष्ठजी अभिषिक्त किये थे उसी समय आसुओं से परिपूर्ण रावण की रानियों को अपने स्तनों का अभिषेक करने के लिए तुमने अनुमति दी थी। उत्प्रेक्षा और समुच्चय का सङ्कर अलङ्कार॥१६॥

**रामास्त्राणि निमित्तमात्रमिह ते लब्धाभिषेका स्वयं**
**रक्षस्तत् क्षपयाञ्चकार भवती भद्रासनस्थायिनी।**
**यद्वोष्णामतिवेलदर्पदवथुज्वालोष्मलानां तदा**
**निष्पिष्टैः कलधौतशैलशिखरैः कर्पूरचूर्णायितम्॥१७॥**

हे पादुके! राक्षसों के विनाश में तुम्हारे श्रीरामजी के अस्त्र तो काल आदि के समान निमित्त अर्थात् साधारण कारण ही थे। वस्तुतस्तु सिंहासन पर बैठने वाली अभिषिक्त हुई आपने ही उस

रावण का विनाश किया था जिस रावण की निमर्याद (अतिवेल) अर्थात् प्रचण्ड दर्प से उत्पन्न ताप (दवथु) की ज्वाला से गरमायी भुजाओं के समूह से अत्यन्त पिसे गये कैलासपर्वत के शिखर कपूर के चूर्ण जैसे हो गये थे। वैसे वीर रावण के वध को करने वाले श्रीराम के अस्त्र नहीं थे, अपि तु पादुका थी, इस प्रकार अपह्नुति अलङ्कार तथा पादुका के चरित्र में रावण के चरित्र के अङ्ग होने से उदात्त-अलङ्कार एवम् उपमा तो है ही।।१७।।

**श्रुत्वैवं हनुमन्मुखाद्रघुपतेः प्रत्यागतिं तत्क्षणा-**
**दासीदङ्करतानुवर्तनवशादारूढकुम्भस्थलाम्।**
**कालोन्निद्रकदुष्णदानमदिरामाद्यद्द्विरेफध्वनि-**
**श्लाघाचाटुभिरस्तुतेव भवतीं शत्रुञ्जयः कुञ्जरः।।१८।।**

हे पादुके! शत्रुञ्जयनामक हाथी हनुमान्जी के मुख से श्रीरामचन्द्रजी के आगमन को सुन कर उसी क्षण श्रीराम के समीप आते हुए भरत का अनुवर्तन करने के कारण उस गज के कुम्भस्थल (गण्डस्थल) के ऊपर आरुढ हुई आप की मानो स्तुति किया था, यह सम्बन्ध है। किससे स्तुति किया? इस पर कहते हैं—श्रीराम के आगमनकाल में निकलने वाली गरम मदजल (हाथी के शरीर से निकलने वाला जल) रूपी मदिरा से मदमस्त भौरों की गुनगुनाहट रूपी श्लाघार्थ चाटूक्तियों से। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।।१८।।

**प्रत्यागतस्य भवतीमवलोक्य भर्तुः**
**पादारविन्दसविधे भरतोपनीताम्।**
**पूर्वाभिषेकविभवाभ्युचितां सपर्यां**
**मध्ये सतामकृत मैथिलराजकन्या।।१९।।**

हे पादुके! मैथिलराज अर्थात् जनक की कन्या श्रीसीताजी वन से लौटे हुए अपने पति के चरणकमलों के समीप भरतजी के द्वारा लायी गयी तुमको देखकर सत्पुरुषों के बीच ही तुम्हारी पूर्वाभिषेक के वैभव के योग्य सपर्या (पूजा) की थी।।१९।।

**संप्रेक्ष्य मैथिलसुता मणिपादरक्षे!**
**प्रत्युद्गतस्य भवतीं भरतस्य मौलौ।**
**निर्दिश्य सा निभृतमञ्जलिना पुरस्तात्**
**तारादिकाः प्रियसखीरशिषत् प्रणन्तुम्॥२०॥**

हे मणिमयपादुके! जनकनन्दिनी सीताजी श्रीरामचन्द्रजी के पास आये भरतजी के मौलि (मस्तक) पर विराजमान आपको देखकर सुग्रीवादि की पत्नी तारा आदि प्रिय सखियों को अञ्जलि से दिखाकर प्रणाम करने के लिए कही थीं॥२०॥

**तुल्येऽपि देवि! रघुवीरपदाश्रयत्वे**
**पूर्वाभिषेकमधिगम्य गरीयसी त्वम्।**
**तेनैव खल्वभजतां मणिपादरक्षे!**
**रक्षःप्लवङ्गमपती भवतीं स्वमूर्ध्ना॥२१॥**

हे देवि! मणिपादुके! श्रीरामचन्द्रजी के चरणों की आराधना में तुम और विभीषण, सुग्रीव समान ही थे तथापि वे दोनों अपने मस्तक से तुम्हारी पूजा करते थे, क्योंकि तुम्हारा अभिषेक पहले हुआ था। रघुवीरपदाश्रयत्वे', इस पद का आशय यह भी है कि श्रीरामचन्द्र जी का जो स्थान (सिंहासन) है वह तुम्हारा भी है। इस प्रकार से तुम्हारी भगवान् से तुल्यता आती है तथापि पहले तुम्हारा अभिषेक हुआ था, इसलिए तुम श्रेष्ठ हो, अतः वे दोनों तुम्हारी ही सेवा करते थे। श्लेषानुप्राणित काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥२१॥

**निर्वृत्तराक्षसचमूमृगयाविहारो**
**रङ्गेश्वरः स खलु राघववंशगोप्ता।**
**वंशक्रमादुपनतं पदमादधानो**
**मान्यं पुनस्त्वयि पदं निदधे स्वकीयम्॥२२॥**

हे पादुके! रघुवंश के रक्षक अर्थात् रामत्व के रूप में अवतीर्ण श्रीरङ्गनाथजी राक्षसों की सेना के साथ आखेटलीला समाप्त करके

वंशक्रम से प्राप्त हुए पद (स्थान) को स्वीकार करते हुए पुनः अपने पूज्य पद = चरण को तुम्हारे ऊपर स्थापित कर दिये थे। श्लेषोत्थापित पूर्वरूप अलङ्कार॥२२॥

**तत्तादृशोश्चरणयोः प्रणिपत्य भर्तुः**
**पौरास्त्वया विधृतयोः प्रतिपन्नसत्त्वाः।**
**प्राप्ताभिषेकविभवामपि पादुके! त्वा-**
**मानन्दबाष्पसलिलैः पुनरभ्यषिञ्चन्॥२३॥**

हे पादुके! तुम्हारे द्वारा धारण किये गये श्रीरामचन्द्रजी के उन स्वर्गापवर्गप्रदायक लोकोत्तर चरणों में प्रणाम करके पुर में निवास करने वाले जन पूज्यत्व के निश्चय से सम्पन्न होकर अपने आनन्दाश्रुजलों से तुम्हारा पुनः अभिषेक किये थे, यद्यपि अभिषेक का वैभव तुम्हें पहले ही प्राप्त हो गया था। अनुगुण-अलङ्कार॥२३॥

**मातस्त्वयैव समये विषमेऽपि सम्यग्**
**राजन्वतीं वसुमतीमवलोक्य रामः।**
**संजीवनाय भरतस्य समग्रभक्तेः**
**सत्यप्रतिश्रवतयैव चकार राज्यम्॥२४॥**

हे मातः! पादुके! विषम समय में भी तुम्हारे द्वारा इस भूमि को शोभन राजा से युक्त देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने अबाधित प्रतिज्ञा के कारण पूर्ण भक्ति वाले श्रीभरत के संजीवन = प्राणन के लिए ही राज्य किया था॥२४॥

**पादावनि! प्रतिगतस्य पुरीमयोध्यां**
**पौलस्त्यहन्तुरभिषेकजलार्द्रमूर्तेः।**
**अंसे यथार्हमधिवास्य निजैर्यशोभिः**
**कस्तूरिकेव निहिता वसुधा त्वयैव॥२५॥**

हे पादुके! अयोध्या पुरी पुनः लौटे हुए तथा अभिषेक-जल से भीगे हुए, रावण के संहारक श्रीरामचन्द्रजी के कन्धे पर अपने

यशों से अधिवासित इस पृथ्वी को तूने ही कस्तूरी के समान रखा था।।२५।।

याऽसौ चतुर्दशसमाः पतिविप्रयुक्ता
विश्वम्भरा भगवती विधृता भवत्या।
विन्यस्य तां रघुपतेर्भुजशैलशृङ्गे
भूयोऽपि तेन सहितां भवती बभार।।२६।।

हे पादुके! अपने स्वामी से विछुड़ी हुई जिस भगवती वसन्धुरा (पृथ्वी) को आपने चौदह वर्षों तक धारण किया था उसी को श्रीरघुपति के भुजारूपी पर्वत के शिखर पर रखकर आपने ही श्रीरामचन्द्र जी के साथ धारण किया था। पृथ्वी जब भगवान् के ऊपर आश्रित हो गयी तब पादुका भी उनके चरणों में आ गयी। इस प्रकार राम के साथ पृथ्वी को पादुका ने धारण किया था, यह अभिप्राय है।।२६।।

निस्तीर्णदुःखजलधेरनघस्य देवि!
त्वत्संप्रयुक्तरघुनाथपदान्वयेन।
सद्यः सनन्दनमुखैरपि दुर्निरीक्ष्या
साम्राज्यसंपदपरा भरतस्य जज्ञे।।२७।।

हे देवि! पादुके! जिसने दुःखरूपी सागर को पार कर लिया है ऐसे निष्पाप श्रीभरतजी की सनन्दन आदि ऋषियों के द्वारा भी दुर्निरीक्ष्य अर्थात् वैसे ऋषि भी जिसका दर्शन नहीं कर सकते थे ऐसी सार्वभौम (साम्राज्य) की कोई अन्य सम्पत्ति तुम्हारे द्वारा ही अनुष्ठापित श्रीरघुनाथ के स्थान या चरणों के सम्बन्ध से उत्पन्न हुई थी।।२७।।

निर्गत्य देवि! भरताञ्जलिपद्ममध्याद्
भूयः समागतवती पुरुषोत्तमेन।

**पद्मेव भद्रमखिलं मणिपादरक्षे!**
**प्रादुश्चकार भवती जगतां त्रयाणाम्॥२८॥**

हे देवि! मणिपादुके! श्रीभरत के कमल जैसे अञ्जलि के बीच से निकल कर पुनः आप पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से आकर मिल गयीं और लक्ष्मी के समान आपने ही तीनों लोकों के सकल कल्याण को प्रकट किया। दुर्वासा के शाप से लक्ष्मी निलीन हो गयी थीं तथा समुद्रमन्थन के बाद कमल के बीच से निकल कर श्रीविष्णु के वक्षःस्थल में विराजमान हुईं। इस प्रकार लक्ष्मी ने तीनों लोकों के क्षेम को प्रकट किया। लक्ष्मी के साथ पादुका के साम्यवर्णन से उपमा-अलङ्कार॥२८॥

**रघुपतिमधिरोप्य स्वोचिते रत्नपीठे**
**प्रगुणमभजथास्त्वं पादुके! पादपीठम्।**
**तदपि बहुमतिस्ते तादृशी नित्यमासीत्-**
**क्व नु खलु महितानां कल्प्यते तारतम्यम्॥२९॥**

हे पादुके! तुम श्रीरामचन्द्रजी को अपने योग्य रत्नपीठ पर बैठा कर उनके ही प्रगुण पादपीठ पर विराजमान हो गयी थी। तुम्हारा वह पादपीठ पर विराजमान होना भी नित्य भद्रपीठ के ऊपर विराजमान होने जैसा ही प्रशस्त हुआ क्योंकि पूजितों में कहीं भी उत्कर्ष-अपकर्ष का तारतम्य नहीं होता। अर्थान्तरन्यास-अलङ्कार॥२९॥

**अनुवृत्तरामभावः शङ्के निर्विष्टचक्रवर्तिपदाम्।**
**अधुनापि रङ्गनाथः सचमत्कारं पदेन भजति त्वाम्॥३०॥**

हे पादुके! रामभाव में आपन्न होकर श्रीरङ्गनाथजी आज भी अनुवृत्त सार्वभौम पद वाली आपका सेवन (चरण, स्थान) से करते हैं। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥३०॥

# अथ नवमी वैतालिकपद्धतिः

इस पद्धति में वेदान्तों को ही बन्दी और वैतालिक बनाकर श्रीरङ्गनाथजी को सम्बोधित करके स्तुति की गयी है। सारे श्लोक यहाँ पादुका को लेकर ही हैं तथापि सम्बोध्य श्रीरङ्गनाथजी ही हैं। स्तुतिपाठकों को बन्दी और उनका बोध कराने वालों को वैतालिक कहते हैं।

**नमस्ते पादुके! पुंसां संसारार्णवसेतवे।**
**यदारोहस्य वेदान्ता बन्दिवैतालिकाःस्वयम्॥१॥**

हे पादुके! पुरुषों के लिए भवसागर से पार होने के लिए सेतु अर्थात् उपायभूता तुमको नमस्कार है जिसके ऊपर श्रीभगवान् के द्वारा किये जाने वाले आरोहण में स्वयं वेदान्त ही बन्दी और वैतालिक हो गये हैं। वेदान्तों का बन्दि-वैतालिक के रूप में परिणाम होने से परिणाम-अलङ्कार है॥१॥

**उचितमुपचरिष्यन् रङ्गनाथ! प्रभाते**
**विधिशिवसनकाद्यान् बाह्यकक्षानिरुद्धान्।**
**चरणकमलसेवासौख्यसाम्राज्यभाजां**
**प्रथमविहितभागां पादुकामाद्रियेथाः॥२॥**

दो श्लोकों से वेदान्त वैतालिक कहता है कि हे रङ्गनाथजी। आप बाह्यकक्षा अर्थात् प्राङ्गण के बाहरी भागों में निरुद्ध ब्रह्मा, शिव और ब्रह्मा के पुत्र सनक आदि के प्रात:कालिक उपचार के लिए अपने चरणकमलों की सेवा से उत्पन्न आनन्द रूप साम्राज्य को प्राप्त करने वालों के मध्य में जिसका पहला अंश (भाग) कल्पित है ऐसी पादुका को ही स्वीकार करें! उदात्त-अलङ्कार॥२॥

**पद्माजुष्टं भजतु चरणं पादुका लब्धवारा**
**प्रत्यासन्नास्तव परिजनाः प्रातरास्थानयोग्याः।**
**अर्धोन्मेषादधिकसुभगामर्धनिद्रानुषङ्गां**
**नाभीपद्मे तव नयनयोर्नाथ! पश्यन्तु शोभाम्॥३॥**

हे नाथ! लब्धवारा = लब्धक्रमावसरा अर्थात् अपनी वारी आने पर पादुका लक्ष्मी से सेवित आपके चरण की सेवा करे! प्रातरास्थान = प्रभातगोष्ठी के योग्य तथा आपके अत्यन्त समीप में आये आपके ही परिजन आपके नाभिकमल में आपके नयनों की शोभा को देखें। कैसी है वह शोभा? इस पर कहते हैं—थोड़े विकास से अत्यन्त मनोहर तथा अर्धनिद्रा से संबद्ध है॥३॥

**उपनमति मुहूर्तं शेषसिद्धान्तसिद्धं**
**तदिह चरणरक्षा रङ्गनाथ! त्वयैषा।**
**मृदुपदमधिरूढा मञ्जुभिः शिञ्जितैः स्वै-**
**रुपदिशतु जनानामुत्सवारम्भवार्ताम्॥४॥**

इसके बाद छः श्लोकों से बन्दियों की उक्ति है। वे कहते हैं कि हे रङ्गनाथजी! शेष अर्थात् अनन्त के द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्त में उषःकाल का मुहूर्त (शुभकाल) हो गया है। इसलिए श्रीरङ्गक्षेत्र में यह चरणपादुका आपसे सविलास सेवित होती हुई अपने मनोहर शिञ्जानरवों से संसार के उत्सव-प्रारम्भ के वृत्तान्त का उपदेश करे! हे भगवन्। आप जब पादुकारूढ होकर सविलास संचरण करें तब पादुका की ध्वनियों को सुनकर सारे प्राणी आते हैं, यह अभिप्राय है। पादुका की ध्वनियों से सेवा में लगे लोगों के आह्वान की उत्प्रेक्षा है॥४॥

**रङ्गाधीश! मरुद्‌गणस्य मकुटादाम्नायवृन्दस्य वा**
**प्रत्यानीय समर्पिता विधिमुखैर्वारक्रमादागतैः।**
**वाहारोहणसंभृतं श्रमभरं सम्यग्विनेतुं क्षमा**
**लीलासंचरणप्रिया स्पृशतु ते पादाम्बुजं पादुका॥५॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी! अपनी बारी आने पर आये हुए ब्रह्मा आदि परिचारकों के द्वारा मरुद्गण के या मूर्तरूप में विद्यमान वेदसमुदाय के मुकुट से लाकर समर्पित की गयी तथा गरुड आदि वाहनों पर बैठने से उत्पन्न श्रम को दूर करने में सक्षम एवं आपके लीलापूर्वक विचरण में प्रीति रखने वाली पादुका आपके चरणकमल का स्पर्श करे!।।५।।

**वृत्तं क्रमेण बहुधा नियुतं विधीना-**
**मर्धं द्वितीयमिदमङ्कुरितं तवाह्नः।**
**नीलासखीभिरुपनीय निवेश्यमाना**
**मङ्क्तुं प्रभो! त्वरयते मणिपादुका त्वाम्।।६।।**

हे प्रभो श्रीरङ्गनाथ! नियुत अर्थात् लोगों की संख्या में क्रमशः ब्रह्मा के व्यतीत हो जाने वाले काल के बराबर आपके दिन का आधा द्वितीय अर्थात् मध्याह्न के आगे वाला काल उत्पन्न हो गया है। नीलादेवी की सखियों के द्वारा लेकर आपके समीप रखी जाती हुई मणिपादुका आपके स्नान की जल्दीबाजी कर रही है। हजार चतुर्युग ब्रह्मा का एक दिन कहलाता है। उनसे भी अधिक महिमा वाले श्रीभगवान् की आयु तब अनेक लाख ब्रह्मा की आयु के बराबर हो जाती है, ऐसी परिकल्पना करके यह स्तुति है। यद्यपि श्रीभगवान् कालातीत हैं। यहाँ पर मध्याह्न की सेवा उक्त है। उत्प्रेक्षा और सम्बन्धातिशयोक्ति अलङ्कार।।६।।

**दिव्याप्सरोभिरुपदर्शितदीपवर्गे**
**रङ्गाधिराज! सुभगे रजनीमुखेऽस्मिन्।**
**संरक्षिणी चरणयोः सविलासवृत्ति-**
**र्नीराजनासनमसौ नयतु स्वयं त्वाम्।।७।।**

हे श्रीरङ्गाधिराज! दिव्य अर्थात् अप्राकृत अप्सराओं के द्वारा जहाँ दीपक समुदाय दिखाया जा रहा हो ऐसे मनोहर प्रदोष में आपके चरणों की रक्षिका मणिपादुका विलासयुक्त व्यापार वाली

होकर स्वयं आपको आर्तिक्य के आसन तक पहुँचाये! जैसे लोक में पुरन्ध्री नीराजन के लिए वर को पीठ पर बैठाती है वैसे पादुका आर्तिक्यासन पर बैठाती है, यह अभिप्राय है। यह सायङ्काल की सेवा है। समासोक्ति-अलङ्कार॥७॥

**आसनादुचितमासनान्तरं रङ्गनाथ! यदि गन्तुमीहसे।**
**सन्नतेन विधिना समर्पितां सप्रसादमधिरोह पादुकाम्॥८॥**

हे श्रीरङ्गनाथ! यदि आप एक आसन से दूसरे उचित आसन पर जाना चाहते हैं तो विनम्रभाव में स्थित ब्रह्मा के द्वारा समर्पित अपनी मणिपादुका पर सुप्रसन्न होकर आरूढ हों॥८॥

**परिजनवनिताभिः प्रेषितः प्राञ्जलिस्त्वां**
**प्रणमति मदनोऽयं देव! शुद्धान्तदासः।**
**फणिपतिशयनीयं प्रापयित्री सलीलं**
**पदकमलमिदं ते पादुका पर्युपास्ताम्॥९॥**

हे देव! अन्त:पुर की परिचारिकाओं के द्वारा प्रेषित अन्त:पुर में ही विचरण करने वाला यह दास कामदेव हाथ जोड़कर आपको प्रणाम करता है। आपको शेषशय्या पर लीलापूर्वक पहुँचाने वाली यह पादुका आपके इस चरणकमल का सेवन करे! देवियों के साथ रहने का समय हो गया है, इस कथन में काम के प्रणाम का कथन होने से पर्यायोक्त अलङ्कार है॥९॥

**इति निगमबन्दिवचसा समये समये गृहीतसंकेतः।**
**अभिसरति रङ्गनाथः प्रतिपदभोगाय पादुके! भवतीम्॥१०॥**

हे पादुके! इस प्रकार से वेदरूपी बन्दियों की वाणी से समय-समय पर सङ्केत प्राप्त करके प्रत्येक चरणविन्यास में तुम्हारे उपभोग के लिए श्रीरङ्गनाथजी तुम्हारे समीप अभिसरण करते हैं। समासोक्ति-अलङ्कार। इसी से पादुका का प्रेयसीभाव भी ध्वनित होता है॥१०॥

●

# अथ दशमी शृङ्गारपद्धतिः

इस पद्धति में पादुका और श्रीभगवान् के रमणीय व्यापारभेदों को लेकर समासोक्ति के माध्यम से दम्पतीकृत्य के रूपों में स्तुति की गयी है।

**शौरेः शृङ्गारचेष्टानां प्रसूतिं पादुकां भजे।**
**यामेष भुङ्क्ते शुद्धान्तात् पूर्वं पश्चादपि प्रभुः॥१॥**

श्रीशौरि अर्थात् भगवान् श्रीरङ्गनाथजी की शृङ्गारचेष्टाओं को पैदा करने वाली पादुका का मैं भजन करता हूँ जिस पादुका का सेवन श्रीरङ्गनाथजी अन्तःपुर की रानियों के साथ सम्भोग के पहले और बाद में भी करते हैं। पादुका में भगवत्प्रेयसी की प्रतीति होने से समासोक्ति-अलङ्कार है। अनेक नायिकाओं में सामान्यतः प्रीति रखने से यहाँ नायक दक्षिण (उदार) है। नायिका भी स्वीया और स्वाधीनपतिका है॥१॥

**प्रणतत्रिदशेन्द्रमौलिमालामकरन्दार्द्रपरागपङ्किलेन।**
**अनुलिम्पति पादुके! स्वयं त्वामनुरूपेण पदेन रङ्गनाथः॥२॥**

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी प्रणत ब्रह्मा आदि देवताओं के मस्तक में विद्यमान मालाओं के परागों से पङ्किल (पङ्कवाले) अपने अनुरूप = योग्य अनुलेपन में समर्थ चरण से स्वयं तुम्हें अनुलिप्त करते हैं। पुष्पपरागयुक्त चरणों से पादुका में चन्दनानुलेपन करते हैं, यह उत्प्रेक्षा है। नायक के द्वारा नायिका के अनुलेपन की प्रतीति होने से समासोक्ति भी है॥२॥

**अवदातहिमांशुकानुषक्तं पदरक्षे! त्वयि रङ्गिणः कदाचित्।**
**किमपि स्थितमद्वितीयमाल्यं विरलावस्थितमौक्तिकं स्मरामि॥३॥**

हे चरणपादुके! कदाचित् = स्नपन के समय धवल और शीतल वस्त्र से, पक्षान्तर में उपचारहेतु हिमजल से सिक्त वस्त्र से युक्त प्रभु का अद्वितीय माल्य, जिसमें असघन रूप से मौक्तिक विद्यमान हों तथा जो अनिर्वचनीय हो गया हो, उसका मैं स्मरण करता हूँ।।३।।

**असहायगृहीतरङ्गनाथामवरोधाङ्गणसीम्नि पादुके! त्वाम्।**
**सुदृशः स्वयमर्चयन्ति दूरादवतंसोत्पलवासितैरपाङ्गैः।।४।।**

हे पादुके! अवरोध अर्थात् अन्तःपुर के प्राङ्गणसीमा के ऊपर आपने श्रीरङ्गनाथजी को वैसे पकड़ लिया है जैसे द्वितीय नायिका का संश्लेषण उनमें न हो। असहायं यथा स्यात् तथा गृहीतो रङ्गनाथो ययेति विग्रहः। इससे यही ध्वनित किया गया है कि श्रीभगवान् पादुका में नित्यासक्त हैं। इस प्रकार की पादुका का अर्चन सुन्दर नयनों वाली लक्ष्मी आदि देवियाँ कर्ण में भूषण के रूप में विद्यमान कमलों से सुवासित अपने नयनों के प्रान्त भागों से स्वयं करती हैं।।४।।

**निर्विश्यमानमपि नूतनसंनिवेशं**
**कैवल्यकल्पितविभूषणकायकान्तिम्।**
**कालेषु निर्विशसि रङ्गयुवानमेका**
**शृङ्गारनित्यरसिकं मणिपादरक्षे।।५।।**

हे मणिपादुके! एकान्त सेवा के समय या रतिकालों में भी तुम शृङ्गार = रमणीय व्यापार और सम्भोग में नित्य संलग्न उस रङ्गक्षेत्रस्थ तरुण (भगवान्) का अकेली अनुभव करती हो जो उपभुक्त होता हुआ भी नूतन सन्निवेश (मङ्गलमय शरीरावयव) वाला है और जो केवलभाव से ही कल्पित अलङ्कारों वाली शरीरशोभा से सम्पन्न है। यहाँ नायिका रति में आसक्त है। समासोक्ति-अलङ्कार।।५।।

**निद्रायितस्य कमितुर्मणिपादुके! त्वं**
**पर्यङ्किकापरिसरं प्रतिपद्यमाना।**

श्वासानिलप्रचलितेन भजस्यभीक्ष्णं
नाभीसरोजरजसा नवमङ्गरागम्॥६॥

हे मणिपादुके! निद्रा का अनुभव करने वाले उस अपने कान्त श्रीरङ्गनाथजी की शेषशय्या के समीप गयी हुई तुम श्रीभगवान् के मुख से निकलने वाले या शेष के मुख से निकलने वाले पवनों से उत्थित (प्रचलित) श्रीमद्भगवन्नाभिकमल के पराग से नूतन अङ्गराग = अनुलेपन का बार-बार सेवन करती हो। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है क्योंकि यहाँ नाभिकमलपरागों का पतन पादुका के अनुलेपन के रूप में सम्भावित है॥६॥

शयितवति रजन्यां पादुके! रङ्गबन्धौ
चरणकमलपार्श्वे सादरं वर्तसे त्वम्।
फणिपतिशयनीयादुत्थितस्य प्रभाते
प्रथमनयनपातं पावनं प्राप्तुकामा॥७॥

हे पादुके! रात्रि में श्रीरङ्गनाथजी के सो जाने पर तथा प्रातः उनके शेषशय्या (फणिपतिशयनीय) से उठ जाने पर तुम उनके ही परम पावन प्रथम दृष्टिपात की कामना करती हुई सादर उनके चरणों के पास रहती हो। यहाँ पादुका का पतिव्रतानायिकात्व व्यक्त है॥७॥

चरणकमलसङ्गाद्रङ्गनाथस्य नित्यं
निगमपरिमलं त्वं पादुके! निर्वमन्ती।
नियतमतिशयाना वर्तसे सावरोधं
हृदयमधिवसन्तीं मालिकां वैजयन्तीम्॥८॥

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों के सम्पर्क से नित्य ही वेदरूपी सुगन्ध का विस्तार करती हुई तुम लक्ष्मी का आश्रय होने के कारण अन्तःपुर से युक्त भगवान् के हृदय में रहने वाली वैजयन्ती माला से भी ऊपर उठ गयी हो॥८॥

**उपनिषदबलाभिर्नित्यमुत्तंसनीयं**
**किमपि जलधिकन्याहस्तसंवाहनार्हम्।**
**तव तु चरणरक्षे! देवि। लीलारविन्दं**
**चरणसरसिजं तच्चारु चाणूरहन्तुः॥९॥**

हे देवि! चरणपादुके! उपनिषद् रूपी रमणियाँ जिसे नित्य ही अपने मस्तक पर अलङ्कार के रूप में धारण करती हैं अर्थात् वेदान्तों के द्वारा जो लोकोत्तररूप से अनिर्वचनीय विभूति के रूप में प्रतिपादित है और जो जलधितनया श्रीलक्ष्मीजी के हाथों से संवाहन (संमर्दन) के योग्य है, ऐसा श्रीकृष्ण का प्रसिद्ध और चारु चरणकमल तुम्हारे क्रीडा के योग्य कमल हो गया था॥९॥

**अखिलान्तःपुरवारेष्वनेकवारं पदावनि! स्वैरम्।**
**अनुभवति रङ्गनाथो विहारविक्रान्तिसहचरीं भवतीम्॥१०॥**

हे चरणपादुके! सकल अन्तःपुरों (श्री-भूमि-नीला आदि देवियाँ) के भोग के कालों में अनेक बार श्रीरङ्गनाथजी स्वेच्छा से क्रीडा और पराक्रम में सदा साथ रहने वाली आपका ही अनुभव करते हैं॥१०॥



# अथ एकादशी सञ्चारपद्धतिः

इस पद्धति में श्रीभगवान् के लीलासंचारों को अभिलक्षित करके स्तुति की गयी है—

**अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नती कुशकण्टकान्।**
**इति सीतापि यद्वृत्तिमियेष प्रणमामि ताम्॥१॥**

हे आर्यपुत्र! कुश के काँटों को मसलती हुई मैं आपके आगे-आगे चलूँगी, इस प्रकार से सीताजी भी जिस पादुका के कण्टकमर्दन व्यापार की इच्छा करती थीं उस पादुका को मैं प्रणाम करता हूँ। यहाँ सीता से भी अधिक पादुका में कैङ्कर्य का अतिशय ध्वनित है॥१॥

**शरदःशतमम्ब पादुके! स्यां समयाहूतपितामहस्तुतानि।**
**मणिमण्डपिकासु रङ्गभर्तुस्त्वदधीनानि गतागतानि पश्यन्॥२॥**

हे मातः! पादुके! रत्नमण्डपों में उत्सवों के समय आहूत पिताहम ब्रह्माजी के द्वारा की जाने वाली स्तुतियों और तुम्हारे अधीन भगवान् के गमनागमन को देखता हुआ मैं सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहूँ ताकि लीलासंचार की सेवा कर सूकँ॥२॥

**त्वदधीनपरिक्रमो मुकुन्दस्तदधीनस्तव पादुके! विहारः।**
**इतरेतरपारतन्त्र्यमित्थं युवयोः सिद्धमनन्यतन्त्रभूम्नोः॥३॥**

हे पादुके! श्रीमुकुन्द का संचरण तुम्हारे अधीन है और श्रीमुकुन्द के अधीन तुम्हारा विहार है। इस प्रकार अन्य के अधीन न रहने वाली महिमा से मण्डित्त तुम दोनों की परस्पर-परतन्त्रता सिद्ध है।

विरोधाभास और पारस्परिक उपकार के वर्णन से अन्योन्यालङ्कार है।।३।।

**रजसा तमसा च दुष्टसत्त्वे गहने चेतसि मामके मुकुन्दः।**
**उचितं मृगयाविहारमिच्छन् भवतीमादृत पादुके! पदाभ्याम्।।४।।**

हे पुादके! मेरा चित्त रजोगुण और तमोगुण से आक्रान्त दुष्ट सत्त्वगुण वाला है जो धूलि और अन्धकार से युक्त दुष्ट जन्तुओं से आकीर्ण वन ही है। उस चित्तरूपी वन में योग्य मृगया-क्रीडा को चाहने वाले श्रीमुकुन्द अपने चरणों के द्वारा आपका आदर किये थे। श्लेष और रूपक से सङ्कीर्ण गम्य उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।।४।।

**क्षमया जगतामपि त्रयाणामवने देवि! पदावनि त्वयैव।**
**अभिगम्यतमोऽपि संश्रितानामभिगन्ता भवति स्वयं मुकुन्दः।।५।।**

हे देवि! पादुके! श्रीरङ्गनाथजी मुकुन्द (यहाँ मुकन्द से निधिविशेष भी गम्य है) सेवकों के प्राप्य होते हुए भी तीनों लोकों की रक्षा करने में समर्थ तुम्हारे द्वारा ही अभिगन्ता अर्थात् सम्मुखतया प्राप्त होते हैं। भगवान् के सेवक जिस निधि को प्राप्त करना चाहते हैं वे तुम्हारी सेवा करते हैं तो वह निधि स्वयमेव वहाँ उपस्थित हो जाती है, यह वस्तु व्यङ्ग्य है।।५।।

**शिरसा भवतीं दधाति कश्चिद्विधृतः कोऽपि पदस्पृशा भवत्या।**
**उभयोर्मधुवैरिपादरक्षे! त्वदधीनां गतिमामनन्ति सन्तः।।६।।**

हे श्रीमधुमथन की पादुके! कोई अनिवार्य पुण्यों के परिपाक से सम्पन्न पुरुष आपको अपने मस्तक से धारण करता है तथा अपरिमित स्वरूप वाले श्रीरङ्गनाथजी को उनके चरणों का स्पर्श करने वाली तुम मस्तक से धारण करती हो। सन्त पुरुष तो ऐसा कहते हैं कि उन दोनों (भक्त और भगवान्) पुरुषों की गति तुम्हारे अधीन है। भगवान् तुम्हारे विना चलते नहीं और भक्तों के द्वारा भगवान्

की प्राप्ति तुम्हारी सेवा के अधीन है, यह तथ्य है। तुल्ययोगिता अलङ्कार है क्योंकि प्राकरणिकों का ही एक धर्म से सम्बन्ध है।।६।।

**स्पृशतः शिरसा पदेन च त्वां गतिमुद्दिश्य मुकुन्दपादुके! द्वौ।**
**अवरोहति पश्चिमः पदात् स्वादधिरोहत्यनघस्तदेव पूर्वः।।७।।**

हे श्रीमकुन्द की पादुके! भक्त और श्रीभगवान् दोनों क्रमशः अपने प्राप्य और गमन की अपेक्षा से तुम्हारा मस्तक और चरण से स्पर्श करते हैं। यहाँ भक्त मस्तक से और भगवान् चरण से स्पर्श करते हैं, ऐसा विवेक कर लेना चाहिये। इनमें बाद वाले श्रीभगवान् अपने पद (सिंहासन) से उतरते हैं और पहले वाला भक्त निष्कल्मष होकर उसी अपहतपाप्मत्वादि विशेषणों से विशिष्ट परमपद पर आरूढ होता है। यहाँ श्लेष, तुल्ययोगिता, पर्यायोक्त अलङ्कार है।।७।।

**समयेष्वपदिश्य जैत्रयात्रां विविधान्तःपुरवागुराव्यतीतः।**
**नियतं मणिपादुके! भवत्या रमते वर्त्मनि रङ्गसार्वभौमः।।८।।**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गविमान में विद्यमान सारी भूमि के स्वामी भगवान् समय अर्थात् असुरों के ऊपर विजययात्रा के प्रसङ्ग में उस यात्रा की अपेक्षा से ही नाना प्रकार के अन्तःपुररूपी जाल (वागुरा) को पार करके (अन्तःपुर की स्त्रियों का गमन प्रतिबन्धित होने से वागुरा की समानता है) आपके साथ मार्ग में निश्चित रूप से रमण करते हैं।।८।।

**निजसंहननप्रसक्तलास्यं चरति त्वामधिरुह्य रङ्गनाथः।**
**पदरक्षिणि! पावनत्वमास्तां रसिकास्वादमतः परं न विद्मः।।९।।**

हे पादुके! श्रीभगवान् रङ्गनाथ! तुम्हारे ऊपर आरूढ होकर अपने ही श्रीविग्रह में प्रसक्त लास्य = शृङ्गारनाट्य को करते हैं। उन भगवान् के लीलापूर्वक संचरण की पावनता = प्रेक्षकपरिशुद्धिहेतुता अपनी जगह रहे। ततः परम् रसिकों को जो परम आस्वाद प्राप्त

होता है उसे हम नहीं समझ पाते। शिष्टों के लिए नृत्तदर्शन के निषिद्ध होने पर भी पादुका के अधीन भगवान् के नृत्तदर्शन की पावनता आश्चर्यचकित करती है, यह अभिप्राय है॥९॥

**पदयोरनयोः परस्य पुंसस्तदनुग्राह्यविहारपद्धतेर्वा।**
**शिरसो मणिपादुके! श्रुतीनां मनसो वा मम भूषणं त्वमेका॥१०॥**

हे मणिपादुके! एक मात्र तुम ही परम पुरुष श्रीभगवान् के चरणों का और उनके ही चरणों के द्वारा अनुग्राह्य विहारमार्ग का तथा श्रुतियों के मस्तकभाग उपनिषदों का और मेरे मन का अलङ्कार हो। तुल्ययोगिता अलङ्कार॥१०॥

**कृपया मधुवैरिपादरक्षे! कठिने चेतसि मामके विहर्तुम्।**
**मुकुटेषु दिवौकसां विधत्ते भवती रत्नविसंस्थुलेषु योग्याम्॥११॥**

हे श्रीमधुमथन की पादुके! मेरे ममतायुक्त कठिन चित्त में कृपापूर्वक विहार करने के लिए आप देवताओं के रत्नों को धारण करने से विषम हुए मुकुटों पर अभ्यास करती हो। यहाँ पर पादुका का देवमुकुटों पर निवेश कठिन चित्त में निवेश के अयोग्यत्व रूप से उत्प्रेक्षित है। अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥११॥

**चरणद्वयमर्भकस्य शौरेः शरदम्भोरुहचातुरीधुरीणम्।**
**शकटासुरताडनेऽपि गुप्तं तव शक्त्या किल पादुके! तदासीत्॥१२॥**

हे पादुके! बालक के रूप में अवस्थित तथा शूरसेन के वंश में अवतीर्ण श्रीकृष्ण का शरत् काल के कमल के समान अत्यन्त सुकुमार चरणयुगल तुम्हारी ही शक्ति से शकटासुर के ताडन में भी सुगुप्त अर्थात् रक्षित रहा॥१२॥

**उत्तस्थुषो रङ्गशयस्य शेषादास्थानसिंहासनमारुरुक्षोः।**
**मध्येनिशान्तं मणिपादुके! त्वां लीलापदन्याससखीं प्रपद्ये॥१३॥**

हे मणिपादुके! शेषशय्या से उठने वाले और आस्थानसिंहासन (पादपीठ) पर चढ़ने की इच्छा वाले श्रीरङ्गेश की तुम श्रीरङ्गायतन

के मध्य में विलाससंचरण की सखी अर्थात् सहायिका हो। ऐसी महिमा वाली तुम्हारी मैं सेवा करता हूँ॥१३॥

**प्राप्ताधिकाराः पतयःप्रजानामुत्तंसितामुत्तमपादुके! त्वाम्।**
**रङ्गेशितुः स्वैरविहारकाले संयोजयन्त्यङ्घ्रिसरोजयुग्मे॥१४॥**

हे श्रीपुरुषोत्तम की पादुके! आधिपत्य प्राप्त कर लेने वाले प्राणियों के पति कमलासन (ब्रह्मा) आदि तुम्हें पहले अपने मस्तक का अलङ्कार बनाये रखते हैं तथा जब श्रीरङ्गनाथजी स्वेच्छापूर्वक विचरण करने को तत्पर होते हैं तब वे तुम्हें उनके चरणों में स्थापित करते हैं॥१४॥

**त्वयानुबद्धां मणिपादरक्षे! लीलागतिं रङ्गशयस्य पुंसः।**
**निशामयन्तो न पुनर्भजन्ते संसारकान्तारगतागतानि॥१५॥**

हे मणिपादुके! तुम्हारे द्वारा ही सम्पादित श्रीरङ्गनाथजी भगवान् के क्रीडासंचार को देखते हुए प्राणिगण संसार-अटवी में पुनः गमनागमन नहीं करते, अर्थात् मुक्त हो जाते हैं। व्याघात अलङ्कार॥१५॥

**व्यूहानुपूर्वीरुचिरान् विहारान् पदक्रमेण प्रतिपद्यमाना।**
**बिभर्षि नित्यं मणिपादुके! त्वं मुरद्विषो मूर्तिरिव त्रिलोकीम्॥१६॥**

हे मणिपादुके! समूह के रूप में (सोलह हजार रानियों के अनुरञ्जन आदि में) क्रमशः (आनुपूर्वी) अर्थात् रामकृष्णादि-क्रम से या वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्धात्मकव्यूह के क्रम से मनोरम विहारों और लीलाओं का चरणों के क्रम से स्वीकार करती हुई तुम श्रीरङ्गनाथजी की मूर्ति के समान ही तीनों लोकों की रक्षा करती हो। उपमा-अलङ्कार॥१६॥

**पदेषु मन्देषु महत्स्वपि त्वं नीरन्ध्रसंश्लेषवती मुरारेः।**
**प्रत्यायनार्थं किल पादुके! नः स्वाभाविकं दर्शयसि प्रभावम्॥१७॥**

हे मणिपादुके! वामनविक्रमादि-अवतारों में तुम श्रीमुरारि के अल्प और दीर्घ चरणों में निरन्तर सम्बन्ध स्थापित रखती हुई हमारे ऊपर विश्वास कायम रखने के लिए ही अपने स्वाभाविक प्रभाव = सामर्थ्य को प्रकट करती हो। यहाँ उन-उन समयों पर अल्पता की स्वीकृति को प्रभाव के प्रत्यायन (विश्वास फल) के रूप में उद्भावन होने से फलोत्प्रेक्षा है॥१७॥

**कृपाविशेषात् क्षमया समेतां प्रवर्तमानां जगतां विभूत्यै।**
**अवैमि नित्यं मणिपादुके! त्वामाकस्मिकीं रङ्गपतेः प्रसत्तिम्॥१८॥**

हे मणिपादुके! कृपा की अधिकता के कारण भूमि और क्षान्ति (क्षमा) के साथ ही तुमको संसार की विभूति के लिए श्रीरङ्गनाथजी का आकस्मिक प्रसाद मैं समझता हूँ॥१८॥

**उपागतानामुपतापशान्त्यै सुखावगाहां गतिमुद्वहन्तीम्।**
**पश्यामि शौरेः पदवाहिनीं त्वां निम्नेषु तुङ्गेषु च निर्विशेषाम्॥१९॥**

हे पादुके! समीप में आये हुए लोगों की संताप-शान्ति के लिए सुखपूर्वक अवगाहन करने के योग्य गति = संचार और प्राप्य स्वर्गादि को सम्पादित करने वाली तुमको मैं निम्न और उन्नत स्थानों में निर्विशेष अर्थात् समान रूप से विद्यमान श्रीरङ्गनाथजी की पदवाहिनी = पादुका और गङ्गा समझता हूँ। पादुका गङ्गा के समान है, यह उपमा शब्दशक्तिमूलक यहाँ है॥१९॥

**सह प्रयाता सततं प्रयाणे प्राप्तासने संश्रितपादपीठा।**
**अलङ्घनीया सहजेन भूम्ना छायेव शौरेर्मणिपादुके! त्वम्॥२०॥**

हे मणिपादुके! निरन्तर यात्रा में साथ गयी हुई तथा श्रीभगवान् के आसन पर विराजमान हो जाने पर पादपीठ पर आसीन हुई स्वाभाविक पर्याप्त महत्त्व के बल से तुम श्रीकृष्ण की छाया के समान अलङ्घनीय हो। श्लिष्टोपमालङ्कार॥२०॥

**पदस्पृशा रङ्गपतिर्भवत्या विचक्रमे विश्वमिदं क्षणेन।**
**तदस्य मन्ये मणिपादरक्षे! त्वयैव विख्यातमुरुक्रमत्वम्॥२१॥**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी इस संसार के क्रमण को क्षणमात्र में ही कर गये थे क्योंकि उनके चरणों का स्पर्श करने वाली तुम उनके साथ थी। इससे तो मैं यही मानता हूँ कि उनका उरुक्रमत्व तुमसे ही विख्यात हुआ। श्रीभगवान् के 'उरुक्रम', इस नाम में पादुका की भूमिका का उद्‌भावन होने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥२१॥

**संचारयन्ती पदमन्वतिष्ठः सहायकृत्यं मणिपादरक्षे।**
**मातस्त्वमेका मनुवंशगोप्तुर्गोपायतो गौतमधर्मदारान्॥२२॥**

हे मात:! मणिपादुके! तुम ही मुख्य हो और गौतम की पत्नी अहल्या की रक्षा करते हुए मनुवंश के रक्षक श्रीरामचन्द्रजी के चरण को संचालित करती हुई उनकी सहायता की थी। सीतारूप लक्ष्मी के न होने पर यदि पादुका भी भगवान् के पास न रहती तो मिथिलायात्रा में अहल्या की रक्षा कैसे होती?, यह अभिप्राय है। उदात्त-अलङ्कार॥२२॥

**त्वत्तस्त्रिविष्टपचरानसपत्नयिष्य-**
**न्नारुह्य तार्क्ष्यमवरुह्य च तत्क्षणेन।**
**शुद्धान्तभूमिषु पुनर्मणिपादरक्षे!**
**विश्राम्यति त्वयि विहारवशेन शौरिः॥२३॥**

हे मणिपादुके! त्रिविष्टप लोक में विचरण करने वाले देवों को असुरवध से शत्रुविहीन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण (शौरि) तुमसे अलग होकर गरुड पर आरूढ हो जाते हैं तथा तुम्हारे वियोग को सहन न कर पाने के कारण उस समय गरुड से उतर कर अन्त:पुर की भूमियों में, लीलासंचार तुम्हारे अधीन होने के कारण तुम्हारे आश्रय में ही विहार करते हैं। यहाँ यद्यपि गरुड और पादुका दोनों ही श्रीभगवान् के लीलाविहार में हेतु हैं तथापि गरुड के ऊपर आरूढ

होने से संजात श्रम का पादुका में ही अपनोदन वर्णित है। इसीलिए पादुका का महत्त्व अधिक सिद्ध हुआ। व्यतिरेक-अलङ्कार॥२३॥

**विक्रम्य भूमिमखिलां बलिना प्रदिष्टां**
**देवे पदावनि! दिवं परिमातुकामे।**
**आसीदतो दिनकरस्य करोपतापात्**
**संरक्षितुं पदसरोजमुपर्यभूस्त्वम्॥२४॥**

हे पादुके! जब 'बलि' दैत्य के द्वारा प्रदत्त सारी भूमि को चरणप्रक्षेप के द्वारा श्रीभगवान् नारायण वामन के रूप में अतिक्रान्त करना चाहते थे तभी तुम सूर्य के किरणों के ताप से चरणकमलों की रक्षा करने के लिए उन्हीं चरणों के ऊपर हो गयी थी। भगवान् के पैर ऊपर उठ गये थे, फलतः पादुका का ऊपर हो जाना स्वाभाविक है जो रक्षा के रूप में उद्भावित है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२४॥

**त्वत्सङ्गमान्ननु सकृद्विधिसंप्रयुक्ता**
**शुद्धिं परामधिजगाम शिवत्वहेतुम्।**
**रङ्गाधिराजपदरक्षिणि! कीदृशी सा**
**गङ्गा बभूव भवदीयगतागतेन॥२५॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की चरणपादुके! विधि अर्थात् ब्रह्मा के द्वारा संनियोजित गङ्गा एक बार ही शुद्ध हुई किन्तु तुम्हारे संगम से वह शिव के लिए भी शिवत्व = पावनता की कारणभूत अत्यन्त शुद्धि को प्राप्त हुई। वही गङ्गा चित्रकूट में गमनागमन के समय तुम्हारे गमनागमन से कैसी हुई होगी? निश्चय ही वह उस पावनता को प्राप्त हुई होगी जिसका वाणी से निरूपण और मन से उत्प्रेक्षण भी सम्भव नहीं है, यह अभिप्राय है॥२५॥

**वृद्धिं गवां जनयितुं भजता विहारान्**
**कृष्णेन रङ्गरसिकेन कृताश्रयायाः।**

संचारतस्तव तदा मणिपादरक्षे!
वृन्दावनं सपदि नन्दनतुल्यमासीत्॥२६॥

हे मणिपादुके! गायों की वृद्धि करने के लिए लीला करने वाले श्रीकृष्ण के रूप में विद्यमान श्रीरङ्गनाथ भगवान् ने जिसको आश्रय के रूप में स्वीकार किया हो ऐसी तेरे संचार (विहार) से शीघ्र ही वह वृन्दावन भी नन्दनवन के बराबर हो गया था। उत्प्रेक्षा और उपमा का संकरालङ्कार॥२६॥

मातस्त्रयीमयतया चरणप्रमाणे
द्वे विक्रमेषु विविधेषु सहायभूते।
नाथस्य साधुपरिरक्षणकर्मणि त्वं
दुष्कृद्विनाशनदशासु विहङ्गराजः॥२७॥

हे मातः! त्रयी = वेदत्रयी, जिसकी प्रचुरता से (यहाँ तत्प्रकृत वचने मयट् से 'प्राचुर्य' अर्थ में मयट् प्रत्यय है) तात्पर्य यह है कि अत्यधिक वेदप्रतिपाद्य होने से नाथ के संचरण में हेतुभूत और इयत्ताभूत विविध संचारों में एवं पराक्रमों में सहायक जो वस्तुयें हैं वे श्रीरङ्गनाथजी के द्वारा अहल्यादि साधुजनों के रक्षाकार्य में तुम और दुष्टों के विनाशकार्य में पक्षिराज गरुड हैं। पादुका रक्षाकार्य में तथा गरुड विनाशकार्य में सहायक हैं। दीपक से संकीर्ण व्यतिरेकालङ्कार॥२७॥

पादावनि! क्वचन विक्रमणे भुजानां
पञ्चायुधीकररुहैर्भजते विकल्पम्।
नित्यं त्वमेव नियता पदयोर्मुरारे-
स्तेनासि नूनमविकल्पसमाधियोग्या॥२८॥

हे चरणरक्षिके पादुके! तुम कहीं पर भुजाओं के पराक्रम से हिरण्यकशिपु रूप शत्रुओं के वध के समय पञ्चायुध = शङ्ख चक्रादि आयुधसमूह और नखों से पाक्षिकता को स्वीकार करती हो तो कहीं

श्रीमुरारि के चरणों के संचार में नियमतः साथ रहती हो क्योंकि तुम्हारे विना भगवान् का संचार नहीं होता। इस कारण से तुम अविकल्पक समाधि अर्थात् निर्विकल्पक ध्यान के योग्य हो॥२८॥

**अक्षेत्रविद्भिरधिगन्तुमशक्यवृत्ति-**
**र्मातस्त्वया निरवधिर्निधिरप्रमेयः।**
**रथ्यान्तरेषु चरणावनि! रङ्गसङ्गी**
**वात्सल्यनिघ्नमनसा जनसात्कृतोऽसौ॥२९॥**

हे मातः! पादुके। चित्-अचित् पदार्थों के विवेक में मूढ़ तथा खेतों के स्वभाव से अपरिचित लोगों के द्वारा जिसको प्राप्त करना शक्य नहीं है ऐसे परिच्छेदशून्य अनन्त (निरवधिः) और अक्षय तथा अप्रमेय रङ्गविमानवर्ती वे भगवान् निधि के समान पुरुषार्थ हैं जो दया के अधीन मन वाली तुमसे राजमार्ग के मध्य में प्रेक्षक (दर्शन करने वाले) पुरुषों के अधीन कर दिये गये हैं। अक्षेत्रज्ञों के लिए जो भगवान् अगम्य हैं उन्हें पादुका ने गम्य बना दिया है, इस कथन से व्याघात-अलङ्कार है॥२९॥

**संपद्यते समुचितं क्रममाश्रयन्त्या**
**सद्वर्त्मना भगवतोऽपि गतिर्भवत्या।**
**ईष्टे पदावनि! पुनः क इवेतरेषां**
**व्यावर्तनस्य विषमादपथप्रचारात्॥३०॥**

हे पादुके! योग्य चरणविक्षेप और शक्ति को स्वीकार करने वाली आपके द्वारा भगवान् का संचरण और प्राप्यत्व (गति) सन्मार्ग से सम्पन्न हो जाता है। अन्य अर्थात् श्रीभगवान् से अन्य लोगों का विषम अमार्गविहरण से अर्थात् निषिद्ध पदार्थों के अनुष्ठान से व्यावर्तन में तुमसे अतिरिक्त समर्थ कौन हो सकता है। अर्थात् कोई नहीं हो सकता। पादुका का सेवन करने वाले कुमार्गगामी नहीं होते, यह अभिप्राय है। अर्थापत्ति-अलङ्कार॥३०॥

**रङ्गेश्वरेण सह लास्यविशेषभाजो**
**लीलोचितेषु तव रत्नशिलातलेषु।**
**मध्ये स्थितानि कतिचिन्मणिपादरक्षे!**
**सभ्यान् विशेषमनुयोक्तुमिति प्रतीमः॥३१॥**

हे मणिपादुके! लीला के योग्य रत्नमय शिलातलों के ऊपर श्रीरङ्गनाथ भगवान् के साथ लास्यविशेष = शृङ्गारोचित नृत्यविशेष को स्वीकार करने वाली तुम्हारा मध्य में अर्थात् गमन के मध्यकाल में कुछ देर तक ठहर जाना सामाजिक (सभ्य) लोगों से उत्कर्ष पूँछने के लिए ही है, ऐसा मैं समझता हूँ॥३१॥

**नित्यं पदावनि! निवेश्य पदं भवत्यां**
**निष्पन्दकल्पपरिमेयपरिच्छदानि।**
**शृङ्गारशीतलतराणि भवन्ति काले**
**रङ्गेश्वरस्य ललितानि गतागतानि॥३२॥**

हे चरणरक्षिके पादुके! एकान्त सेवा के समय श्रीरङ्गनाथजी के चरण तुझमें निविष्ट हो जाते हैं और निश्चल की तरह स्वल्प छत्र-चामर से युक्त एवम् मनोहर उनके गमनागमन अतीव शृङ्गारोचित शीतल हो जाते हैं। अतीव आनन्ददायक हो जाते हैं, यह अभिप्राय है। यहाँ पादुका के सम्बन्ध से आनन्दोत्कर्ष का कथन होने से अनुगुण नामक अलङ्कार है॥३२॥

**भोगार्चनानि कृतिभिः परिकल्पितानि**
**प्रीत्यैव रङ्गनृपतिः प्रतिपद्यमानः।**
**पश्यत्सु नित्यमितरेषु परिच्छदेषु**
**प्रत्यासनं भजति काञ्चनपादुके! त्वाम्॥३३॥**

हे सुवर्णपादुके! पुण्यात्मा पुरुषों के द्वारा सम्पादित भोगार्थ अर्चनों (पूजन) को स्वीकार करते हुए श्रीरङ्गनाथजी अन्य छत्र-चामर आदि उपकरणों (परिच्छद) के समक्ष नित्य प्रीतिपूर्वक तुम्हारा ही

सेवन करते हैं, क्योंकि तुम सदैव उनके निकट रहती हो। पादुका की शास्त्रसिद्ध निकटता प्रीति के हेतु के रूप में उद्भावित है अतः हेतूत्प्रेक्षा-अलङ्कार है।।३३।।

**अन्तस्तृतीयनयनैः स्वयमुत्तमाङ्गै-**
**राविर्भविष्यदतिरिक्तमुखाम्बुजैर्वा।**
**न्यस्यन्ति रङ्गरसिकस्य विहारकाले**
**वारक्रमेण कृतिनो मणिपादुके! त्वाम्।।३४।।**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी के विहार के समय पुण्यात्मा लोग अपने अन्तर्भूत तृतीय नयन वाले या अतिरिक्त तीन मुखकमलों को प्रकट करने वाले मस्तकों से तुम्हारी वारक्रम से सपर्या करते हैं। यहाँ पर पादुका के समर्पण में क्रमशः अधिकार प्राप्त करने वालों का शित्व और ब्रह्मत्व का क्रमशः कथन होने से विकल्प से संकीर्ण पर्यायोक्त अलङ्कार है।।३४।।

**रङ्गेश्वरे समधिरूढविहङ्गराजे**
**मातङ्गराजविधृतां मणिपादुके! त्वाम्।**
**अन्वासते विधृतचारुसितातपत्राः**
**स्वर्गौकसः सुभगचामरलोलहस्ताः।।३५।।**

हे मणिपादुके! जब श्रीरङ्गनाथजी पक्षिराज गरुड के ऊपर आरूढ हो जाते हैं तब देवगण सुन्दर और स्वच्छ छत्र लेकर तथा शोभन चामर को डुलाने से चञ्चल हाथों वाले होकर गजराज ऐरावत से धारण की जाती हुई तुम्हारा अनुसरण करते हैं। उदात्त अलङ्कार।।३५।।

**विष्णोः पदं गतिवशादपरित्यजन्तीं**
**लोकेषु नित्यविषमेषु समप्रचाराम्।**
**अन्वेतुमर्हति धृतामखिलैः सुरेन्द्रै-**
**र्गङ्गा कथं नु गरुडध्वजपादुके! त्वाम्।।३६।।**

हे श्रीगरुडध्वज की पादुके! भगवती गङ्गा तुम्हारा अनुसरण कैसे कर सकती हैं? अर्थात् वह किसी भी तरह तुम्हारे समान नहीं हो सकतीं। क्योंकि तुम गति के बल से श्रीविष्णु के पद=चरण और आकाश का परित्याग नहीं करती तथा विषम = सुखदुःखों के तात्पर्य वाले जनों और भुवनों में समान संचरण वाली हो एवम् सकल सुरेन्द्रों के द्वारा धारण की जाती हो। गङ्गा पृथ्वी पर गमन से विष्णु के पद का त्याग कर देती हैं और विषम प्रदेशों में कुटिल गति वाली हो जाती हैं तथा उनको केवल शिव ही धारण करते हैं। एवञ्च गङ्गा पादुका के सदृश नहीं हो सकती, यह अभिप्राय है। श्लेष से अनुप्राणित व्यतिरेक अलङ्कार॥३६॥

**भिक्षामपेक्ष्य दनुजेन्द्रगृहं प्रयातु-**
**र्गुप्त्यै गवां विहरतो वहतश्च दूत्यम्।**
**तत्तादृशानि चरणावनि! रङ्गभर्तु-**
**स्त्वत्सङ्गमेन सुभगानि विचेष्टितानि॥३७॥**

हे चरणपादुके! भिक्षा के व्याज से दनुजेन्द्र बली के घर में जाने वाले और गो-भूमि की रक्षा के लिए विचरण करने वाले तथा दूतकर्म का वहन करने वाले श्रीरङ्गनाथजी की वे लोकोत्तर चेष्टायें तुम्हारे समागम से अत्यन्त सुभग (मनोरम) हो जाती हैं। यहाँ भिक्षाटन, गोचारण और पाण्डवदूत्य आदि परम कार्यों की रमणीयता पादुका के सम्बन्ध के अधीन है, इस कथन से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥३७॥

**निर्व्यज्यमाननवताललयप्रथिम्ना**
**निर्यन्त्रणेन निजसंचरणक्रमेण।**
**मृद्नासि रङ्गनृपतेर्मणिपादुके! त्वं**
**दुःखात्मकान् प्रणमतां दुरितप्ररोहान्॥३८॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की मणिपादुके! तुम अपने अप्रतिबन्धित तथा प्रकट होते हुए नूतन ताल और लय के विस्तार वाले संचरण के

क्रम से उनके दुःखदायक पापाङ्कुरों को मसलती रहती हो जो तुम्हें प्रणाम करते हैं। यहाँ नृत्त के अनुरूप पादुका का संचार पापाङ्कुर के मर्दन में उद्भावित है अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥३८॥

**नित्यं य एव जगतो मणिपादरक्षे!**
**सत्तास्थितिप्रयतनेषु परं निदानम्।**
**सोऽपि स्वतन्त्रचरितस्त्वदधीनवृत्तिः**
**का वा कथा तदितरेषु मितम्पचेषु॥३९॥**

हे मणिपादुके! जो भगवान् जगत् की उत्पत्ति, पालन और हिताहित की प्रवृत्ति-निवृत्ति में आदि कारण हैं वे भी अपने अधीन व्यापार वाले होते हुए भी तुम्हारे अधीन गमन-व्यापार वाले होते हैं। ऐसे में ब्रह्मा आदि क्षुद्र देवों के विषय में क्या कहना। जब श्रीरङ्गनाथजी का गमन पादुका के ऊपर आश्रित है तो ब्रह्मा आदि का व्यापार पादुका की कृपा के विना कैसे सम्भव है, यह अभिप्राय है। अर्थापत्ति अलङ्कार यहाँ पर कैमुतिकन्याय के संचार से सिद्ध है॥३९॥

**निर्विष्टनागशयनेन परेण पुंसा**
**न्यस्ते पदे त्वयि पदावनि! लोकहेतोः।**
**स्वर्गौकसां त्वदनुधावनतत्पराणां**
**सद्यः पदानि विपदामपदं भवन्ति॥४०॥**

हे पादुके! नाग अर्थात् शेष की शय्या का अनुभव करने वाले परम पुरुष श्रीरङ्गनाथजी जब लोकप्रयोजन की सिद्धि के लिए तुम्हारे ऊपर अपने चरणों को रखते हैं तभी तुम्हारे पीछे दौड़ने वाले स्वर्गनिवासी देवों के स्थान विपत्ति के अस्थान हो जाते हैं। देवताओं का स्वर्ग उसी समय विपत्ति से रहित हो जाता है, यह अभिप्राय है। समुच्चय-अलङ्कार॥४०॥

**शरदुपगमकाले संत्यजन् योगनिद्रां**
**शरणमुपगतानां त्राणहेतोः प्रयास्यन्।**
**जलधिदुहितुरङ्कान्मन्दमादाय देवि!**
**त्वयि खलु निदधाति स्वं पदं रङ्गनाथः॥४१॥**

हे पादुके! शरद् ऋतु के आगमनकाल में स्वात्मानुभव रूपी योगनिद्रा को त्यागते हुए अभययाचना की इच्छा से समागत देवताओं के शत्रुनिग्रहादि द्वारा रक्षणार्थ प्रयाण करते हुए श्रीरंगनाथ भगवान् अपने चरणों को धीरे से लक्ष्मी की गोद से हटाकर आप के ऊपर ही रखते हैं, अन्यत्र नहीं। इसलिए पादुका लक्ष्मी के ही समान भगवत्प्रिया है, यह अर्थ व्यक्त होता है॥४१॥

**स्पृशसि पदसरोजं पादुके! निर्विघातं**
**प्रविशसि च समस्तां देवि! शुद्धान्तकक्ष्याम्।**
**अपरमपि मुरारेः पूर्वमाभीरकन्या-**
**स्वभिसरणविधीनामग्रिमा साक्षिणी त्वम्॥४२॥**

हे पादुके! तुम श्रीकृष्ण के पदकमल का स्पर्श निर्विघ्नतया करती हो और सारे अन्तःपुर के प्रदेशकोष्ठों में प्रवेश करती हो तथा गोपों की कन्याओं के अभिरसरण की विधियों अर्थात् रतिकार्यहेतु संचारकृत्यों में तुम ही पहली साक्षात् द्रष्ट्री हो। इससे श्रीभगवान् में अन्तरङ्गसहचरीत्व पादुका का प्रकट हो रहा है॥४२॥

**प्रतिभवनमनन्ये पादुके! त्वत्प्रभावाद्**
**विविधवपुषि देवे विभ्रमद्यूतकाले।**
**अभिलषितसपत्नीगेहयात्राविघातं**
**ग्लहयति रहसि त्वां षोडशस्त्रीसहस्रम्॥४३॥**

भगवान् श्रीकृष्ण को सोलह हजार रानियाँ थीं जिनके साथ भगवान् अलग-अलग घरों में नाना प्रकार के शरीर को धारण करके रहते थे। सारी रानियों को यही भ्रम होता था कि भगवान् केवल

उन्हीं के साथ रहते हैं। इसी अर्थ के द्योतन के लिए श्लोक में 'अनन्ये', यह पद आया है। हे पादुके! तुम्हारे ही प्रभाव से प्रत्येक गृहों में उन उन स्त्रियों के द्वारा अन्य गृह और अन्य पत्नी के सम्बन्ध से शून्य जैसे प्रतीत होने वाले नाना रूप को जब भगवान् श्रीकृष्ण स्वीकार कर लेते हैं तब खेल के लिए द्यूतक्रीड़ा के समय सोलह हजार स्त्रियाँ अन्य पत्नियों के गृह में भगवान् की यात्रा के प्रतिबन्ध (अवरोध) को चाहती हैं अत: एकान्त में तुम्हें (पादुका) ही दाव पर लगा देती हैं। उनकी यही धारणा है कि ऐसा करने पर भगवान् अपनी यात्रा स्थगित कर देंगे। व्याज से इष्टसिद्धि चाहने से यहाँ पर्यायोक्त अलङ्कार है।।४३।।

**तटभुवि यमुनायाश्छन्नवृत्ते मुकुन्दे**
**मुहुरधिगमहेतोर्मुह्यतां यौवनानाम्।**
**शमयितुमलमासीच्छङ्खचक्रादिचिह्ना**
**प्रतिपदविचिकित्सां पादुके! पद्धतिस्ते।।४४।।**

हे पादुके! यमुना के तीरप्रदेश में भगवान् श्रीकृष्ण जब स्वयं को छुपा लेते हैं तब शंख, चक्र आदि चिह्नों से युक्त तुम्हारी पद्धति के (मार्ग) दर्शनार्थ वार-वार अनुरागसम्पन्न युवतियों का समुदाय पदे पदे संशय को दूर करने में समर्थ होता है। यहाँ अन्तर्हित भगवान् का अनुमान शंख-चक्रादि से चिह्नित मार्ग करा देता है, यह अभिप्राय है। अनुमान अलङ्कार।।४४।।

**अधिगतबहुशाखान् मञ्जुवाचः शुकादीन्**
**सरसिजनिलयायाः प्रीतये संग्रहीतुम्।**
**प्रकटितगुणजालं पादुके रङ्गबन्धो-**
**रुपनिषदटवीषु क्रीडितं त्वत्सनाथम्।।४५।।**

हे पादुके! वृक्षों के अवयवों को प्राप्त कर लेने वाले तथा मधुर वाणी बोलने वाले शुक-सारिका आदि पक्षियों को, पक्षान्तर

में-वेदों की बहुत सी शाखाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले शुकदेव आदि विद्वानों को लक्ष्मी की प्रीति के लिए स्वीकार करने हेतु श्रीरङ्गनाथजी की उपनिषद् रूपी वनवीथियों में वह क्रीडा तुम्हारे साथ ही होती है जिसमें ज्ञान-शक्ति आदि कल्याणगुणों का समुदाय फैला रहता है, पक्षान्तर में—प्रत्यञ्चाओं (धनुष की डोरी) का जाल विछा रहता है। श्लेषरूपकालङ्कार।।४५।।

**मुनिपरिषदि गीतं गौतमीरक्षणं ते**
**मुहुरनुकलयन्तो मञ्जुवाचः शकुन्ताः।**
**उषसि निजकुलायादुत्थिता दण्डकेषु**
**स्वयमपि पदरक्षे! स्वैरमाम्रेडयन्ति।।४६।।**

हे चरणरक्षिके! मुनियों की सभा में तुम्हारे द्वारा होने वाली गौतम की पत्नी अहल्या की रक्षा के गान का पुनःपुनः अनुवाद करने वाले, मनोहरवाणी बोलने वाले शुक आदि पक्षी दण्डकारण्य में उषःकाल (प्रातः) में अपने घोसलों से उठकर स्वयम् ही यथेच्छ उसी गान का आवर्तन करते हैं। वर्तमान निर्देश से भूत अर्थ के साक्षात्कार का वर्णन होने से भाविक-अलङ्कार है।।४६।।

**यमनियमविशुद्धैर्यं न पश्यन्ति चित्तैः**
**श्रुतिषु चुलुकमात्रं दृश्यते यस्य भूमा।**
**सुलभनिखिलभावं मांसदृष्टेर्जनस्य**
**स्वयमुपहरसि त्वं पादुके! तं पुमांसम्।।४७।।**

हे पादुके! ब्रह्मचर्य-सत्य-अहिंसा-अस्तेय-अपरिग्रह रूप पाँचों यमों से तथा स्वाध्याय-शौच-सन्तोष-तप-मनःप्रणिधान रूप पाँचों नियमों से विशुद्ध हुए चित्तों के द्वारा योगी जिस पुरुष (परमात्मा) को प्राप्त नहीं कर पाते तथा श्रुतियों में भी जिसका महत्त्व थोड़ा ही दिखायी देता है ऐसे सुलभ सारी विभूतियों वाले पुरुष को तुम

स्वयम् चर्म-चक्षु के लिए भी सुलभ करा देती हो। पादुका के भक्त श्रीभगवान् को प्राप्त कर लेते हैं, यह अभिप्राय है।।४७।।

**निधिमिव निरपायं त्वामनादृत्य मोहा-**
**दहमिव मम दोषं भावयन् क्षुद्रमर्थम्।**
**मयि सति करुणायाः पूर्णपात्रे त्वया किं**
**परमुपगमनीयः पादुके! रङ्गनाथः।।४८।।**

हे पादुके! अक्षय निधि के समान स्थित तुम्हारा अनादर करके अविवेक के कारण त्याज्य सांसारिक सुख का अनुभव करने वाले मेरे ही जैसे मेरे दुर्गुण का अनुभव करने वाले श्रीरङ्गनाथजी को क्या तुम दया के पूर्ण पात्र मेरा अनादर करके दूसरे पुरुष के पास पहुँचा दोगी? ऐसा नहीं होना चाहिये। आक्षेप-अलङ्कार।।४८।।

**कमपि कनकसिन्धोः सैकते संचरन्तं**
**कलशजलधिकन्यामेदिनीदत्तहस्तम्।**
**अनिशमनुभवेयं पादुके! त्वय्यधीनं**
**सुचरितपरिपाकं सूरिभिः सेवनीयम्।।४९।।**

हे पादुके! कनकसिन्धु (कावेरीनदी) के तट पर विचरण करने वाले तथा क्षीरसागर की कन्या लक्ष्मी और पृथ्वी का हाथ थामने वाले एवम् विद्वानों के द्वारा वन्दनीय तथा तुम्हारे अधीन रहने वाले और पुण्य के फल के रूप में स्थित श्रीरङ्गनाथजी का मैं निरन्तर भजन करूँ। पर्यायोक्त-अलङ्कार।।४९।।

**परिसरमुपयाता पादुके! पश्य मातः!**
**करणविलयखेदात् कान्दिशीके विवेके।**
**पुरुषमुपनयन्ती पुण्डरीकाक्षमग्रे**
**पुनरुदरनिवासक्लेशविच्छेदनं नः।।५०।।**

हे मातः पादुके! चक्षुः आदि करणों (इन्द्रिय) के विलय से उत्पन्न होने वाले खेद के कारण विवेक के भयद्रुत हो जाने पर

अर्थात् भयभीत होकर भाग जाने पर, तात्पर्य यह है कि अन्त समय आने पर तथा पुनः जननी के उदर (पेट) में निवास करने से उत्पन्न हुए क्लेश को समाप्त कर देने वाले श्रीपुण्डरीकाक्ष भगवान् रङ्गनाथजी को हमारे समीप लाती हुई हमारे ही सामने हमें देखो।।५०।।

**सा मे भूयात् सपदि भवती पादुके! तापशान्त्यै**
**यामारूढो दिवमिव शुभैः सेव्यमानो मरुद्भिः।**
**सौदामिन्या सह कमलया सह्यजावृद्धिहेतुः**
**काले काले चरति करुणावर्षुकः कृष्णमेघः।।५१।।**

हे पादुके! आप शीघ्र ही मेरे सन्ताप का शमन करें! आकाश के समान ही आप पर आरूढ़ हुए और शुभ मरुद्गणों के द्वारा सेवित होते हुए दया की वर्षा करने वाले श्रीकृष्णरूपी मेघ लक्ष्मीरूपी सौदामिनी (बिजली) के साथ समय-समय पर विचरण करते रहें। श्लेषरूपक-अलङ्कार।।५१।।

**सत्याल्लोकात् सकलमहितात् स्थानतो वा रघूणां**
**शङ्के मातः समधिकगुणं सैकतं सह्यजायाः।**
**पूर्वं पूर्वं चिरपरिचितं पादुके! यत्त्यजन्त्या**
**नीतो नाथस्तदिदमितरन्नीयते न त्वयासौ।।५२।।**

हे मातः! पादुके! श्रीरङ्गक्षेत्ररूप कावेरी का तट सर्वपूजित सत्यलोक से अधिक गुण वाला होता हुआ रघुकुल के राजाओं के स्थान (अयोध्या) के समान है, ऐसी मेरी मान्यता है। क्योंकि चिरपरिचित पूर्व-पूर्व ब्रह्मलोक-अयोध्यारूप स्थान का त्याग करने वाली तुम जब श्रीरङ्गनाथजी को कावेरी के तट पर ले जाती हो तब वे तुम्हारे द्वारा दूसरे स्थान पर नहीं लाये जाते। वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार।।५२।।

अग्रे देवि! त्वयि सुमनसामग्रिमैरन्तरङ्गै-
र्विन्यस्तायां विनयगरिमावर्जितादुत्तमाङ्गात्।
दत्ते पादं दरमुकुलितं त्वत्प्रभावातिशङ्की
देवः श्रीमान् दनुजमथनो जैत्रयात्रास्वनन्यः॥५३॥

हे देवि! देवों में श्रेष्ठ अन्तरङ्ग परिजनों के द्वारा विनय की गुरुता से झुके हुए मस्तक से जब तुम भगवान् के आगे विजययात्रा में स्थापित कर दी जाती हो तब दैत्यों का संहार करने वाले एकाकी भगवान् श्रीरङ्गनाथजी तुम्हारे माहात्म्य से शङ्कालु हुए अपने चरण को तुम्हारे ऊपर थोड़ा संकुचित करके रखते हैं। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥५३॥

पौरोदन्तान् परिकलयितुं पादुके! संचरिष्णो-
र्व्यक्ताव्यक्ता वशिकविशिखावर्तिनी रङ्गभर्तुः।
वेलानीतश्रुतिपरिमलैर्व्यक्तिमभ्येति काल्ये
विन्यासैस्ते विबुधपरिषन्मौलिविन्यासदृश्यैः॥५४॥

हे पादुके! नागरिकों के वृत्तान्तों को जानने के लिए संचरण (विहार) करने वाले श्रीरङ्गनाथजी की व्यक्त और अव्यक्त तथा जितेन्द्रियों की रथ्यारूपी वर्तिनी (एकपदी) प्रत्यूष (प्रातः) में वेलातीत श्रुतिरूपी सौरभ से सम्पन्न तथा विद्वानों की परिषत् के मस्तकों के विन्यास से दृश्य होते हुए पदविन्यासों से जायमान चिह्नों से सुस्पष्ट हो जाती है। श्रुतिसिद्ध शङ्ख-चक्र आदि के चिह्नों से तथा मार्ग में पादुकारेखा के संनिवेशों से तथा देवताओं के मस्तकविन्यासों से भगवान् के रात्रिविहार का लोग अनुमान करते हैं, यह अभिप्राय है। अनुमान-अलङ्कार॥५४॥

आसंस्काराद्द्विजपरिषदा नित्यमभ्यस्यमाना
श्रेयोहेतुः शिरसि जगतः स्थायिनी स्वेन भूम्ना।

६ रङ्गाधीशे स्वयमुदयिनि क्षेप्तुमन्धं तमिस्रं
गायत्रीव त्रिचतुरपदा गण्यसे पादुके! त्वम्॥५५॥

हे पादुके! ताप आदि पाँचों संस्कारों से लेकर, पक्षान्तर में उपनयन आदि संस्कारों से लेकर द्विजसमुदाय के द्वारा नित्य जिसका अभ्यास (आवर्तन) किया जाता है। पञ्चसंस्कारों के बाद ही यागाङ्गत्वेन पादुकासमर्पण का अभ्यास होने से पूर्वोक्त कथन समझना चाहिये। तथा कल्याण का हेतु, अपने माहात्म्य से संसार के मस्तक पर विराजमान, पक्षान्तर में 'उत्तमे शिखरे देवि', इस मन्त्रलिङ्ग से उन्नतभाग में स्थित होकर ध्येय गायत्री के समान तुम अन्धतामिस्र (अविवेक का मूल पाप और गाढान्धकार) को दूर करने के लिए श्रीरङ्गनाथजी के स्वयं प्रकट होने पर तीन या चार पदों वाली होकर परिगणित होती हो। श्लेष से अनुप्राणित उपमा तथा श्रीरङ्गनाथजी के उदय से सूर्य की प्रतीति होने से रूपक अलङ्कार है॥५५॥

भवतीं परस्य पुरुषस्य रङ्गिणो
महिमानमेव मणिपादु! मन्महे।
कथमन्यथा स्वमहिमप्रतिष्ठितः
प्रतितिष्ठति त्वयि पदात्पदं प्रभुः॥५६॥

हे मणिपादुके! मैं आप को परमपुरुष श्रीरङ्गनाथजी की महिमा ही मानता हूँ। यदि ऐसा नहीं होता तो अपनी महिमा में प्रतिष्ठित वे प्रभु अपने स्थान से निकलकर पदे पदे तुझमें कैसे प्रतिष्ठित होते? अर्थापत्ति अलङ्कार॥५६॥

तिथिरष्टमी यदवतारवैभवात्
प्रथमा तिथिस्त्रिजगतामजायत।
मणिपादुके! तमुपनीय वीथिका-
स्वतिथीकरोषि तदनन्यचक्षुषाम्॥५७॥

हे मणिपादुके! जिस भगवान् श्रीकृष्ण की अष्टमी तिथि उनके आविर्भाव के माहात्म्य के प्रभाव से तीनों लोकों की मुख्या तिथि हो गयी थी उस भगवान् को तुम वीथियों में लाकर तन्मात्र दृष्टि वाले अर्थात् प्रभु में ही अपनी दृष्टि जमाने वाले भक्तों के सामने प्रस्तुत कर देती हो॥५७॥

**अपारप्रख्यातेरशरणशरण्यत्वयशसा**
**ननु त्वं रङ्गेन्दोश्चरणकमलस्यापि शरणम्।**
**यया लभ्यः पङ्गुप्रभृतिभिरसौ रङ्गनगर-**
**प्रतोलीपर्यन्ते निधिरनघवाचां निरवधिः॥५८॥**

हे पादुके! अशरणों (जिनका कोई दूसरा रक्षक न हो) की रक्षा रूपी कीर्ति से अत्यधिक प्रसिद्धि से यही सिद्ध होता है कि तुम श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों की भी रक्षा करने वाली हो। जिस तुमसे निर्दुष्ट वचन वाले वेदों के अक्षय निधि अर्थात् निधि के समान गोपनीय पुरुषार्थ भूत वे भगवान् वीथीपरिसर में लंगड़ों आदि के द्वारा भी लभ्य हो जाते हैं॥५८॥

**तत्तद्वासगृहाङ्गणप्रणयिनः श्रीरङ्गशृङ्गारिणो**
**वाल्लभ्यादविभक्तमन्थरगतिस्त्वं मे गतिः पादुके।**
**लीलापङ्कजहल्लकोत्पलगलन्माध्वीकसेकोत्थिता**
**यत्रामोदविकल्पना विवृणुते शुद्धान्तवारक्रमम्॥५९॥**

हे पादुके! लक्ष्मी आदि के उन उन क्रीडागृहों के प्राङ्गणों में अनुराग वाले, श्रीरङ्ग में निवास करने वाले तरुण के प्रेम से अविकल्प मन्द गति वाली तुम मेरी गति (प्राप्य पुरुषार्थ) हो। जिस तुझमें लीलापङ्कज = क्रीडाकमल, हल्लक (रक्तसंध्यक) और उत्पल (नीलकमल) से निकलने वाले मकरन्द (सौरभ) के सेक (सेचन) से उड़ने वाली सुगन्धविकल्पना (क्रमशः सुगन्ध का प्रसार) लक्ष्मी आदि के अन्तःपुर में वारक्रम (दिवसक्रम) का वरण करती हैं। लक्ष्मी

के द्वारा पद्म का भूमि के द्वारा हल्लक (कमल विशेष) का और नीला देवी के द्वारा कुवलय का धारण भगवच्छास्त्र में प्रसिद्ध है। लक्ष्मी आदि के कमल आदि से सुगन्धित हाथों के द्वारा पादुका की सेवा होती है अत: उन उन गन्धों से उनके वारों के क्रम का अनुमान होता है, यह अभिप्राय है।।५९।।

**संभवतु पादरक्षे! सत्यसुपर्णादिरौपवाह्यगणः।**
**यात्रासु रङ्गभर्तुः प्रथमपरिस्पन्दकारणं भवती।।६०।।**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथ जी की यात्राओं में सत्य, सुपर्ण आदि राजवाहनसमूह (औपबाह्यगण:) ही रहें। केवल वहाँ आप ही भगवान् के प्रथम परिस्पन्द का कारण हैं अत: आपकी महिमा सर्वोपरि है। पादुका पर पैर रखकर ही भगवान् वाहन पर आरुढ होते हैं, इसी तथ्य को सामने रखकर यह कल्पना की गयी है। आक्षेप अलङ्कार।।६०।।



# अथ द्वादशी पुष्पपद्धतिः

इस पद्धति में पुष्पार्चन को लेकर स्तुति की गयी है—

**शौरेः संचारकालेषु पुष्पवृष्टिर्दिवश्च्युता।**
**पर्यवस्यति यत्रैव प्रपद्ये तां पदावनीम्॥१॥**

भगवान् श्रीकृष्ण के संचार के समय अन्तरिक्ष से च्युत हुई पुष्पवृष्टि जिस पादुका में ही पर्यवसित होती है उसी पादुका के शरण में मैं हूँ॥१॥

**दैवतं मम जगत्त्रयार्चिता दिव्यदम्पतिविहारपादुका।**
**पाणिपादकमलार्पणात्तयोर्या भजत्यनुदिनं सभाजनम्॥२॥**

तीनों लोकों से पूजित होने वाली तथा दिव्य दम्पति श्रीलक्ष्मीनारायण के विहार के लिए ही विराजमान पादुका मेरी परम उपास्य देवता है। उन दिव्य दम्पति के क्रमशः करकमलों और चरणकमलों में अर्पित होने से वह पादुका प्रतिदिन पूजन प्राप्त करती है। लक्ष्मी के करकमलों में परिचर्या के समय तथा भगवान् के चरणकमलों में विहार के समय पादुका की सभाजनता का विवेक कर लेना चाहिये। यथासंख्य और परिणाम अलङ्कार॥२॥

**तव रङ्गराजमणिपादु! नतो विहितार्हणः सुरसरित्पयसा।**
**अवतंसचन्द्रकलया गिरिशो नवकेतकीदलमिवार्पयति॥३॥**

हे श्रीरङ्गराज की मणिपादुके! प्रणत भगवान् शिव गङ्गाजी के जल से तुम्हारी पहले पूजा करते हैं। उसके बाद मस्तक में भूषणायमान चन्द्रकला से मानों तुम्हारे ऊपर केतकीदल को समर्पित

करते हैं। यहाँ पर प्रणाम के समय मस्तक में लगी गङ्गा और चन्द्रकला के सम्बन्ध की उत्प्रेक्षा अर्घ्यदान और अर्चन के रूप में है॥३॥

**कुसुमेषु समर्पितेषु भक्तैस्त्वयि रङ्गेशपदावनि! प्रतीमः।**
**शठकोपमुनेस्त्वदेकनाम्नः सुभगं यत् सुरभित्वमस्य नित्यम्॥४॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! भक्तगण जब तुम्हारे ऊपर फूलों को समर्पित कर देते हैं तब उन फूलों की उस सुगन्ध का हम नित्य अनुभव करते हैं जो तुम्हारे एक मात्र नाम वाले श्रीशठकोपमुनि से सम्बन्ध वाली है॥४॥

**पदे परस्मिन् भुवने विधातुः पुण्यैः प्रसूनैः पुलिने सरय्वाः।**
**मध्ये च पादावनि! सह्यसिन्धोरासीच्चतुःस्थानमिवार्चनं ते॥५॥**

हे पादुके! परमपद के रूप में विद्यमान वैकुण्ठ में तथा विधाता के भुवन (सत्यलोक) में, सरयू के तट (अयोध्या) में एवं कावेरी के मध्य में मनोज्ञ (पुण्य) फूलों से तुम्हारी अर्चना चार स्थानों वाली भगवदर्चा के समान ही थी। वैकुण्ठ-सत्यलोक-साकेत-श्रीरङ्ग, इन चारो स्थानों का अर्चन भगवच्छास्त्रसिद्ध कुम्भ-अग्नि-स्थण्डिल-बिम्बरूप, इन चारों स्थानों से सम्बन्धित भगवान् के अर्चन के समान है, इस कथन से उपमा अलङ्कार है॥५॥

**तवैव रङ्गेश्वरपादरक्षे! सौभाग्यमव्याहतमाप्तुकामाः।**
**सुरद्रुमाणां प्रसवैः सुजातैरभ्यर्चयन्त्यप्सरसोमुहुस्त्वाम्॥६॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! अप्रतिरुद्ध सौभाग्य की कामना करने वाली अपसरायें तुम्हारी अर्चना देववृक्षों से उत्पन्न हृद्य फूलों से बारम्बार करती हैं। हेतु अलङ्कार॥६॥

**निवेशितां रङ्गपतेः पदाब्जे मन्ये सपर्यां मणिपादरक्षे।**
**त्वदर्पणादापतितामपश्यद् गाण्डीवधन्वा गिरिशोत्तमाङ्गे॥७॥**

हे मणिपादुके! गाण्डीवधन्वा अर्जुन ने श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण श्रीरङ्गनाथजी के पदकमलों में निवेशित सपर्या (पुष्पार्चन) को तुम्हारे द्वारा अर्पित हुई शिवजी के मस्तक देखा था। युद्ध के समय भगवान् के चरणों में अर्पित पुष्प को अर्जुन ने शिव के मस्तक पर देखा था, यह तथ्य महाभारत में व्यास द्वारा वर्णित है। भगवान् के चरणसंसर्ग से पादुका में गिरा पुष्प पादुका के सम्बन्ध से शिवमस्तक में गिरा, इस कथन से अहेतु का हेतुत्व के रूप में कथन है, अतः हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार है।।७।।

**पत्राणि रङ्गनृपतेर्मणिपादरक्षे!**
**द्वित्राण्यपि त्वयि समर्प्य विभूतिकामाः।**
**पर्यायलब्धपुरुहूतपदाः शचीनां**
**पत्राङ्कुराणि विलिखन्ति पयोधरेषु।।८।।**

हे श्रीरङ्गराज की चरणपादुके! वैभव की कामना करने वाले पुरुष दो या तीन पुष्पदलों को तुम्हारे ऊपर अर्पित करके क्रमशः इन्द्र के पद को प्राप्त कर लेने वाले शचियों (इन्द्र की पत्नियों के नाम) स्तनों में पत्राङ्कुर का निर्माण करते हैं। यहाँ असमग्र हेतुओं के बिना ही दो तीन दल अर्पित करने मात्र से इन्द्रादिपद की प्राप्ति के कथन से विभावना अलङ्कार है।।८।।

**निर्वर्तयन्ति तव ये निचितानि पुष्पै-**
**र्वैहारिकाण्युपवनानि वसुन्धरायाम्।**
**कालेन ते कमललोचनपादरक्षे!**
**क्रीडन्ति नन्दनवने कृतिनः पुमांसः।।९।।**

हे कमलनयन श्रीभगवान् की पादुके! जो पुण्यात्मा पुरुष पृथ्वी पर फूलों से परिपूर्ण तुम्हारे क्रीडार्थ उपवन का निर्माण करते हैं वे पुण्य का परिपाक होने पर नन्दनवन में क्रीडा करते हैं। हेतु और हेतुमान् का एक साथ वर्णन होने से हेतु अलङ्कार है।।९।।

अर्चन्ति ये मधुभिदो मणिपादरक्षे!
भावात्मकैरपि परं भवतीं प्रसूनैः।
मन्दारदामसुभगैर्मुकुटैरजस्रं
वृन्दारकाः सुरभयन्ति पदं त्वदीयम्॥१०॥

हे श्रीमधुमथन की मणिपादुके! जो पुरुष भावात्मक फूलों से ही आपकी पूजा करते हैं देवगण उनके चरण को मन्दारमाला से शोभन हुए अपने मुकुटों से निरन्तर सुगन्धित करते रहते हैं॥१०॥

अस्पृष्टदोषपरिमर्षमलङ्घ्यमन्यै-
र्हस्तापचेयमखिलं पुरुषार्थवर्गम्।
चित्रं जनार्दनपदावनि! साधकानां
त्वय्यर्पिताः सुमनसः सहसा फलन्ति॥११॥

हे श्रीजनार्दन की पादुके! साधकों के द्वारा तुम्हारे ऊपर अर्पित फूल साधकों के ही उस पुरुषार्थवर्ग को आश्चर्य रूप से सहसा फलीभूत कर देते हैं जिसमें दोषों का संस्पर्श नहीं रहता और जो अन्यों से अलङ्घनीय रहता है तथा साधकों के हाथों से चयनयोग्य रहता है। विभावना और प्रसिद्ध फूलों की अपेक्षा से व्यतिरेक अलङ्कार॥११॥

वन्दारुभिः सुरगणैस्त्वयि संप्रयुक्ता
माला विभाति मधुसूदनपादरक्षे।
विक्रान्तविष्णुपदसंश्रयबद्धसख्या
भागीरथीव परिरम्भणकाङ्क्षिणी ते॥१२॥

हे श्रीमधुसूदन की पादुके! प्रणाम करने के स्वभाव वाले सुरगणों के द्वारा तुम्हारे ऊपर समर्पित माला ब्रह्मलोक का भी अतिक्रमण करने वाले श्रीविष्णु के पद के संश्रय से मैत्री स्थापित करती हुई तथा तुम्हारे साथ आलिङ्गन की इच्छा करती हुई भागीरथी गङ्गा के समान सुशोभित होती है॥१२॥

**ये नाम रङ्गनृपतेर्मणिपादुके! त्वा-**
**मभ्यर्चयन्ति कमलैरधिकर्तुकामाः।**
**आरोपयत्यवहिता नियतिः क्रमात्तान्**
**कल्पान्तरीयकमलासनपत्रिकासु॥१३॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! जो पुरुष विशेषाधिकार की इच्छा से कमलों के द्वारा तुम्हारा पूजन करते हैं उनको उनका ही भाग्य (नियति) सावधान होता हुआ क्रमशः कल्पान्तरीय ब्रह्मपत्रिकाओं में आरोपित कर देता है। ब्रह्मा की सूची में उनका नाम आ जाता है, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार ध्वनि यहाँ है॥१३॥

**त्वय्यर्पितानि मनुजैर्मणिपादरक्षे!**
**दूर्वाङ्कुराणि सुलभान्यथवा तुलस्यः।**
**साराधिकाः सपदि रङ्गनरेन्द्रशक्त्या**
**संसारनागदमनौषधयो भवन्ति॥१४॥**

हे मणिपादुके! मनुष्यों के द्वारा तुम्हारे ऊपर समर्पित सुलभ दूर्वा (दूब) के अङ्कुर अथवा तुलसी के दल श्रीरङ्गनाथजी की शक्ति से अत्यधिक पराक्रम से सम्पृक्त हुए संसार रूप सर्प के दमन के लिए औषध हो जाते हैं। संसारसागर से वे मुक्त हो जाते हैं, यह अभिप्राय है॥१४॥

**आराध्य नूनमसुरार्दनपादुके! त्वा-**
**मामुष्मिकाय विभवाय सहस्रपत्रैः।**
**मन्वन्तरेषु परिवर्तिषु देवि! मर्त्याः**
**पर्यायतः परिणमन्ति सहस्रनेत्राः॥१५॥**

हे देवि! असुरविनाशक श्रीभगवान् की पादुके! मृत्युलोक के प्राणी परलोक की विभुता की प्राप्ति की इच्छा से तुम्हारी कमलों से आराधना करके आवर्तित होने वाले मन्वन्तरों में क्रमशः सहस्रनेत्र

(इन्द्र) हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यहाँ कार्य-कारण के सारूप्य-वर्णन से 'समान' अलङ्कार है॥१५॥

**धन्यैस्त्वयि त्रिदशरक्षकपादरक्षे!**
**पुष्पाणि काञ्चनमयानि समर्पितानि।**
**विस्रंसिना विनमतो गिरिशोत्तमाङ्गा-**
**दारग्वधेन मिलितान्यपृथग्भवन्ति॥१६॥**

हे देवों के रक्षक श्रीभगवान् की पादुके! पुण्यवान् (धन्य) पुरुषों के द्वारा तुम्हारे ऊपर समर्पित स्वर्णमय फूल प्रणाम में झुके हुए शङ्करमस्तक से गिरने वाले आरग्वध (राजवृक्षपुष्प) से मिल कर अपृथक् अर्थात् एक हो जाते हैं। आरग्वधफूल के सादृश्य से काञ्चन के फूलों में विशेष का भान न होने से 'सामान्य' अलङ्कार यहाँ पर है॥१६॥

**विश्वोपसर्गशमनं त्वयि मन्यमानै-**
**र्वैमानिकैः प्रणिहितं मणिपादरक्षे।**
**पद्मासहायपदपद्मनखार्चिषस्ते**
**पुष्पोपहारविभवं पुनरुक्तयन्ति॥१७॥**

हे मणिपादुके! सारे उपद्रवों (उत्सर्ग) का शमन तुम्हारे ही अधीन है, ऐसा समझने वाले वैमानिक (विमान से यात्रा जो करते हैं) पुरुषों के द्वारा प्रयुक्त तुम्हारे पुष्पोपहार के वैभव को पद्मा = लक्ष्मी के सहाय = पति अर्थात् श्रीभगवान् के चरणकमलों के नखों की कान्तियाँ पुनरुक्त अर्थात् द्विगुणित कर देती हैं। अनुगुणालङ्कार॥१७॥

**नाकौकसां शमयितुं परिपन्थिवर्गान्**
**नाथे पदं त्वयि निवेशयितुं प्रवृत्ते।**
**त्वत्संश्रितां विजहतस्तुलसीं वमन्ति**
**प्रस्थानकाहलरवान् प्रथमं द्विरेफाः॥१८॥**

हे पादुके! जब श्रीरङ्गनाथजी देवताओं के शत्रु वर्ग का शमन करने के लिए तुझ पर अपना चरण स्थापित करने के लिए प्रवृत्त हो जाते हैं तब तुम्हारे ऊपर चढ़ी हुई तुलसी का संत्याग करने वाले भ्रमर सर्वप्रथम प्रस्थान में होने वाले काहल (वाद्यविशेष) के रवों का स्वयं वमन करने लगते हैं। गम्योत्प्रेक्षा॥१८॥

**रङ्गेशपादपरिभोगसुजातगन्धां**
**सम्प्राप्य देवि! भवतीं सह दिव्यपुष्पैः।**
**नित्योपदर्शितरसं न किलाद्रियन्ते**
**नाभीसरोजमपि नन्दनचञ्चरीकाः॥१९॥**

हे पादुके! इन्द्र के नन्दनवन में रहने वाले भ्रमर श्रीरङ्गनाथ जी के चरणों के उपभोग से उत्पन्न हुए शोभन गन्ध वाली आपको दिव्य फूलों के साथ प्राप्त करके श्रीभगवान् के उस नाभिकमल का भी आदर नहीं करते जहाँ नित्य ही मकरन्द विद्यमान रहता है॥१९॥

**प्रागेव काञ्चनपदावनि! पुष्पवर्षात्**
**संवर्तिते शमितदैत्यभयैः सुरेन्द्रैः।**
**पद्मेक्षणस्य पदपद्मनिवेशलाभे**
**पुष्पाभिषेकमुचितं प्रतिपद्यसे त्वम्॥२०॥**

हे सुवर्णनिर्मित पादुके! जिनका दैत्यों से भय शान्त हो गया है ऐसे इन्द्रादि देवताओं के द्वारा कमलनयन श्रीभगवान् के ऊपर पुष्पवर्षा के पहले ही उनके चरणकमल का तुम्हारे ऊपर निवेश हो जाता है। इस प्रकार यथायोग्य तुम ही पुष्पाभिषेक प्राप्त करती हो॥२०॥

**दिशि दिशि मुनिपत्न्यो दण्डकारण्यभागे**
**न जहति बहुमानान्नूनमद्यापि मूलम्।**
**रघुपतिपदरक्षे! त्वत्परिष्कारहेतो-**
**रपचितकुसुमानामाश्रमानोकहानाम्॥२१॥**

हे श्रीरघुपति की पादुके! दण्डकारण्य के भूभाग में प्रत्येक दिशाओं में मुनियों की पत्नियाँ चित्रकूट में विद्यमान तुम्हारे परिष्कार के लिए उन आश्रमवृक्षों के मूल का आज भी त्याग नहीं करतीं जिनके फूलों का चयन उन्होंने कर लिया था॥२१॥

**घटयसि परिपूर्णान् कृष्णमेघप्रचारे**
**कृतिभिरुपहितैस्त्वं केतकीगर्भपत्रैः।**
**वरतनुपरिमाणाद्वामतः श्यामलानां**
**प्रणतिसमयलग्नान् पादुके! मौलिचन्द्रान्॥२२॥**

हे पादुके! जब मेघ के समान श्रीकृष्ण का संचार होता है तब सूरियों के द्वारा लाकर समर्पित हुए केतकी के फूलों के भीतरी दलों से वरतनु (अर्धनारीश्वर) के परिणाम से वामभाग में श्यामवर्ण वाले अर्धनारीश्वर रुद्रों के सेवाकाल में संलग्न शिरोभूषण चन्द्रखण्डों को तुम परिपूर्ण कर देती हो। यहाँ पर प्रणाम की इच्छा से प्रवृत्त रुद्रों के अशक्य पूर्णचन्द्र के लाभ का वर्णन है, अतः 'विषम' नामक अलङ्कार है॥२२॥

**परिचरणनियुक्तैः पादुके! रङ्गभर्तुः**
**पवनतनयमुख्यैरर्पितां त्वत्समीपे।**
**विनतविधिमुखेभ्यो निर्विशेषां द्विरेफाः**
**कथमपि विभजन्ते काञ्चनीं पद्मभक्तिम्॥२३॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! श्रीरामचन्द्रजी की सेवा में नियुक्त हनुमान् आदि के द्वारा तुम्हारे समीप अर्पित तथा विनम्र हुए ब्रह्मा के मुखों से निर्विशेष = भेदक धर्मों से शून्य, सुवर्ण के समान वर्णवाली कमलों की श्रेणी (भक्ति) का विभाग भ्रमरगण किसी तरह कर पाते हैं। यहाँ कमल के समान ब्रह्मा के मुख और सुवर्णकमलों की सुगन्ध की विलक्षणता का भेदवैशिष्ट्य प्रतिपादित होने से 'विशेष' नामक अलङ्कार है॥२३॥

विधिशिवपुरुहूतस्पर्शितैर्दिव्यपुष्पै-
स्त्वयि सह निपतन्तस्तत्तदुद्यानभृङ्गाः।
मधुरिपुपदरक्षे! मञ्जुभिः स्वैर्निनादै-
रविदितपरमार्थान्नूनमध्यापयन्ति॥२४॥

हे श्रीमधुमथन की पादुके! ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्र के द्वारा प्रदत्त दिव्य (स्वर्ग में उत्पन्न) फूलों के साथ तुम्हारे ऊपर गिरने वाले उन-उन उपवनों के भ्रमर अपने मनोरम स्वरों से मानों उनको पढ़ा रहे हैं जिन्हें परमार्थ का बोध नहीं हुआ है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२४॥

प्रशमयति जनानां संज्वरं रङ्गभर्तुः
परिसरचलितानां पादुके! चामराणाम्।
अनुदिनमुपयातैरुत्थितं दिव्यपुष्पै-
र्निगमपरिमलं ते निर्विशन् गन्धवाहः॥२५॥

हे पादुके! प्रतिदिन उपगत दिव्य फूलों से प्रवृद्ध हुए तुम्हारे निगमपरिमल = वेदार्थरूप सुगन्ध का अनुभव करता हुआ श्रीरङ्गनाथ जी के समीप में डुलाये गये चामरों का पवन लोगों के तीनों (आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक) तापों का शमन करता है। यहाँ तापशान्ति रूप कार्य के साथ कारणरूप में विद्यमान गन्धवाह (पवन) का कथन होने से 'हेतु' नामक अलङ्कार है॥२५॥

अखिलभुवनरक्षानाटिकां दर्शयिष्य-
न्ननिमिषतरुपुष्पैरर्चिते रङ्गमध्ये।
अभिनयमनुरूपं शिक्षयत्यात्मना त्वां
प्रथमविहितलास्यः पादुके! रङ्गनाथः॥२६॥

हे पादुके! अनिमिष = नेत्रपतन से रहित देवताओं के मन्दारादि वृक्षों के फूलों से रङ्ग (श्रीरङ्गक्षेत्र और नाट्यस्थान) के मध्य स्थान के पूजित हो जाने पर सारे लोकों की रक्षा के लिए प्रस्तुत नाटिका

को प्रदर्शित करने वाले रङ्गनाथ (भगवान् और नट) स्वयं ही पहले नृत्त का प्रस्तुतीकरण करते हुए मानों तुम्हें अनुकूल अभिनय की शिक्षा दे रहे हैं। उत्प्रेक्षा और श्लिष्टपरम्परितरूपक अलङ्कार॥२६॥

**अगलितनिजरागां देवि! विष्णोः पदं तत्**
**त्रिभुवनमहनीयां प्राप्य संध्यामिव त्वाम्।**
**भवति विबुधमुख्यैः स्पष्टतारानुषङ्गं**
**परिसरपतितैस्ते पारिजातप्रसूनैः॥२७॥**

हे पादुके! वह प्रसिद्ध विष्णु का पद = चरण ही विष्णुपद = आकाश है जो तीनों भुवनों में पूजित संध्या के समान तुम्हें प्राप्त करके तुम्हारे ही समीप में प्राप्त हुए पारिजात के फूलों से सुस्पष्ट ताराओं से सम्बन्ध रखने वाला जैसा हो जाता है। वह फूल परिसर (पादुका के पास) किनके द्वारा आता है? इसका उत्तर है—विबुधमुख्यैः, अर्थात् ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा। यहाँ रूपक से संकीर्ण उपमा की छटा आकलनीय है॥२७॥

**व्यञ्जन्त्येते विभवमनघं रञ्जयन्तः श्रुतीर्नः**
**प्राध्वं रङ्गक्षितिपतिपदं पादुके! धारयन्त्याः।**
**नादैरन्तर्निहितनिगमैर्नन्दनोद्यानभृङ्गा**
**दिव्यैः पुष्पैः स्नपितवपुषो देवि! सौस्नातिकास्ते॥२८॥**

हे देवि! पादुके! ये सामने स्थित नन्दननामक देवोपवन से सम्बन्ध रखने वाले भ्रमर ही सौस्नातिक (शोभन स्नान के विषय में पूछने वाले) हैं जो भीतर में विद्यमान वेदों वाले अर्थात् अव्यक्त अक्षर वाले वेदपाठ के तुल्य अपने नादों से हमारी श्रुतियों को अनुरञ्जित करते हुए श्रीरङ्गनाथजी के चरण को धारण करने वाली तथा दिव्य फूलों से अभिषिक्त शरीर वाली तुम्हारे हृद्य (अनघ) विभव को अभिव्यक्त कर रहे हैं। रूपकालङ्कार॥२८॥

**किं पुष्पैस्तुलसीदलैरपि कृतं दूर्वापि दूरे स्थिता**
**त्वत्पूजासु मुकुन्दपादु! कृपया त्वं कामधेनुः सताम्।**
**प्रत्यग्राहृतदर्भपल्लवलवग्रासाभिलाषोन्मुखी**
**धेनुस्तिष्ठतु सा वसिष्ठभवनद्वारोपकण्ठस्थले॥२९॥**

हे श्रीमुकुन्द की पादुके! तुम्हारी पूजा में फूलों, तुलसीदलों और दूर्वाओं का क्या प्रयोजन है? अर्थात् इन सभी की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि सत्पुरुषों के लिए एकमात्र तुम ही कामधेनु हो। इसमें तुम्हारी कृपा ही कारण है। वह कामनाओं को पूर्ण करने में प्रसिद्ध धेनु (सवत्सा गाय) नूतन रूप से लाये गये कुश के पल्लवों के अल्प ग्रास की इच्छा वाली होकर वसिष्ठ के भवन के दरवाजे के पास ही रहे। तात्पर्य यही है कि पादुका के सामने सभी अनादरणीय ही हैं। आक्षेप-अलङ्कार॥२९॥

**चूडारग्वधरजसा चूर्णस्नानं विधाय ते पूर्वम्।**
**रङ्गेशपादुके! त्वामभिषिञ्चति मौलिगङ्गया शम्भुः॥३०॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! भगवान् शिव तुम्हारी शिखा में विद्यमान राजवृक्ष के फूल के पराग से चूर्णस्नान करके (चन्दनादि के चूर्णों से पहले विशिष्ट स्नान होता था जिसका यहाँ पर निर्देश है) तुम्हारा अभिषेक अपने मस्तक में विराजमान गङ्गा से करते हैं। पादुका को शिव मस्तक से प्रणाम करते हैं, यह अभिप्राय है। पर्यायोक्त अलङ्कार॥३०॥

●

# अथ त्रयोदशी परागपद्धतिः

इस पद्धति में पादुका के परागों को अभिलक्षित करके स्तुति की गयी है—

**पान्तु वः पद्मनाभस्य पादुकाकेलिपांसवः।**
**अहल्यादेहनिर्माणपर्यायपरमाणवः॥१॥**

गौतम की पत्नी अहल्या के देहनिर्माण में पर्याय अर्थात् पाक्षिक परमाणु = उपादानकारण के रूप में विद्यमान तथा पद्मनाभ भगवान् श्रीनारायण की पादुकाओं में विराजमान क्रीडासंचार की धूलियाँ आप लोगों की रक्षा करें॥१॥

**तव संचरणाद्रजो विधूतं यदिदं रङ्गनरेन्द्रपादरक्षे।**
**अलमेतदनाविलानि कर्तुं कतकक्षोद इवाशु मानसानि॥२॥**

हे श्रीरङ्गराज की चरणपादुके! आपके संचरण से ऊपर उड़ने वाली जो धूलि है, जैसे कतकबीज की धूलि जल को स्वच्छ करती है वैसे ही वह पादुका से उद्गत धूलि मन को स्वच्छ करने में समर्थ है॥२॥

**पुनरुक्तपितामहानुभावाः पुरुषाः केचिदमी पुनन्ति विश्वम्।**
**मधुवैरिपदारविन्दबन्धोरपरागास्तव पादुके! परागैः॥३॥**

हे पादुके! श्रीमधुमथन के चरणकमलों की सङ्गिनी (बन्धु) तुम्हारे परागों (संलग्न पुष्पधूलि) से जिन्होंने पितामह ब्रह्मा के माहात्म्य को पुनरुक्त कर दिया है अर्थात् जो ब्रह्मा के समान माहात्म्य वाले हो गये हैं ऐसे कुछ दुर्लभ पुरुष पूरे विश्व को ही पवित्र कर देते हैं। कैसे हैं वे? इस पर कहते हैं—अपरागाः। जिनमें

पराग न हों, ऐसा मानने पर पादुका के परागों से युक्त हैं, इस दूसरे वचन से विरोध होगा, जिसका समाधान 'अपगत = दूर हो गया है राग = सांसारिक वासना जिनकी, इस अर्थ से होगा। विरोधाभास अलङ्कार॥३॥

**अभियुक्तजनो निजार्भकाणां बहुशो रङ्गनरेन्द्रपादरक्षे।**
**अवलेपपिशाचमोचनार्थं रजसा लिम्पति तावकेन देहान्॥४॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की चरणरक्षिके! अभियुक्त (शिष्ट) जन अपने बालकों के गर्वरूप पिशाच को छुड़ाने के लिए उनके शरीरों को तुम्हारी धूलि से लीपते हैं। पादुकापरागों के संसर्ग से अनादिवासनामय अहङ्कार का नाश होता है, यह अभिप्राय है। हेतु के साथ हेतुमान् का वर्णन होने से 'हेतु' नामक अलङ्कार है॥४॥

**शिरसा परिगृह्य लोकपालास्तव रङ्गेश्वरपादुके! रजांसि।**
**विषमेषु बलेषु दानवानां व्यपनीतान्यशिरस्त्रमाविशन्ति॥५॥**

हे श्रीरङ्गेश्वर की पादुके! इन्द्र आदि लोकपाल तुम्हारी धूलि को अपने मस्तक से धारण करके दानवों के विषम (दुष्प्रवेश) सैन्य में इस तरह से घुसते हैं जहाँ अन्य शिरस्त्राण की अपेक्षा नहीं रहती। तात्पर्य यह है कि वहाँ पादुका का रज ही मस्तकों की रक्षा करता है। पादुका के रज को लेकर अन्य मस्तकरक्षक का अनादर होने से आक्षेप अलङ्कार है॥५॥

**कृतिनः शिरसा समुद्वहन्तः कतिचित् केशवपादुके! रजस्ते।**
**रजसस्तमसोऽपि दूरभूतं परिपश्यन्ति विशुद्धमेव सत्त्वम्॥६॥**

हे श्रीकेशव की पादुके! कोई कुशल पुरुष तुम्हारी कुछ धूलि को अपने मस्तक से लगाकर उस विशुद्धसत्त्वमय भगवान् के दिव्य विग्रह का दर्शन करते हैं जो राजसी और तामसी पुरुषों के ज्ञान से बहुत दूर है। पादुका के परागों से संपृक्त होकर वे यथार्थ ज्ञान के कारणीभूत सत्त्वगुणों के उन्मेष वाले हो जाते हैं, यह अभिप्राय है। विरोधाभास अलङ्कार है॥६॥

अधिकं पदमाश्रितोऽपि वेधाः प्रयतो रङ्गधुरीणपादरक्षे।
अभिवाञ्छति सङ्गमं परागैरभिजातैस्तव देवि! नाभिजातः॥७॥

हे श्रीरङ्ग की धुरा (कार्यभार) को वहन करने वाले श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! अधिक पद स्वीकार करके भी जो अभिजात नहीं है तथा जो नाभि से उत्पन्न हुए हैं ऐसे ब्रह्माजी तेरे अभिजात (कुलीन तथा प्राप्तरूप) मनोरम परागों से समागम चाहते हैं॥७॥

शुद्धसत्त्ववपुषैव भवत्या पादुके! विरजसौ हरिपादौ।
अस्तु किं पुनरिदं रजसा ते शुद्धसत्त्वमयता मनुजानाम्॥८॥

हे पादुके! विशुद्ध सत्त्वगुण वाला द्रव्य ही जिसका स्वरूप है ऐसी आपके द्वारा श्रीहरि के चरण रजोगुण से शून्य और परागों से शून्य होते हैं, ऐसे हों तथापि पुनः तुम्हारे रज (पराग) से मानवों की शुद्ध सत्त्व की प्रचुरता समझ में नहीं आती। यहाँ विरोधाभास अलङ्कार है॥८॥

तद्रजस्तव तनोति पादुके! मानसान्यकठिनानि देहिनाम्।
प्रस्तरस्य पदवीगतस्य यद् व्याचकार मुनिधर्मदारताम्॥९॥

हे पादुके! तुम्हारी वह लोकोत्तर धूलि प्राणियों के मनों को अकठिन अर्थात् सरल बना देती है जो धूलिमार्ग में आये हुए पत्थर को भी ऋषि की धर्मपत्नी के रूप में परिणत कर दी थी। वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥९॥

रङ्गेशयस्य पुरुषस्य जगद्विभूत्यै
रथ्यापरिक्रमविधौ मणिपादरक्षे।
सीमन्तदेशमनवद्यसरस्वतीनां
सिन्दूरयन्ति भवतीचलिताः परागाः॥१०॥

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गक्षेत्र में शयन करने वाले पुरुष श्रीरङ्गनाथजी की लोकविभुता के सम्पादनार्थ परिक्रमवीथी (मार्ग) में चारों ओर विचरण करने से उठे हुए पराग (रज) दोषों से शून्य

वाणी वाले वेदादि भगवच्छास्त्रों के सीमन्तदेश = मस्तक के मध्यभाग को सिन्दूर से सम्पन्न बना देते हैं। यहाँ 'अनवद्यसरस्वतीनाम्' से उपनिषदों का ग्रहण समझना चाहिये। समासोक्ति से संश्लिष्ट उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१०॥

**मान्येन रङ्गनृपतेर्मणिपादरक्षे!**
**चूडापदानि रजसा तव भूषयन्तः।**
**कालक्रमेण भजतां कमलासनत्वं**
**नाभीसरोजरजसां निवसन्ति मध्ये॥११॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की मणिपादुके! तुम्हारे पूज्य (मान्य) रज से अपने मस्तक को विभूषित करने वाले पुरुष कालक्रम से कमलासनत्व = ब्रह्मत्व को प्राप्त करने वाले श्रीभगवान् के नाभिकमल के परागों के मध्य में निवास करते हैं। क्रमशः ब्रह्मा हो जाते हैं, यह अभिप्राय है। यहाँ पर पादुकापरागों के सम्बन्ध से अनुरूप नाभिपद्म के परागों के साथ कथन से 'सम' अलङ्कार है॥११॥

**मातर्मुकुन्दचरणावनि! तावकीना-**
**श्चिन्तावशीकरणचूर्णविशेषकल्याः।**
**संचारपांसुकणिकाः शिरसा वहन्तो**
**विश्वं पुनन्ति पदपद्मपरागलेशैः॥१२॥**

हे मातः! श्रीमुकुन्द की चरणपादुके! चिन्ता के वशीकरण में प्रसिद्ध वशीकरण चूर्ण के समान तुम्हारी संचार के अधीन रजःकणिकाओं को अपने मस्तक से धारण करने वाले पुरुष श्रीभगवान् के चरणकमलों के अल्प परागों से ही पूरे विश्व को पवित्र कर देते हैं। 'उदात्त' अलङ्कार॥१२॥

**आयोजितान्यमलधीभिरनन्यलभ्ये**
**पादावनि! श्रुतिवधूपटवासकृत्ये।**

त्वत्संचरप्रचलितानि रजांसि शौरेः
प्रख्यापयन्ति पदपद्मपरागशोभाम्।।१३।।

चे चरणपादुके! विशुद्ध बुद्धि वाले सत्पुरुषों के द्वारा जब अन्य जनों से अलभ्य पादुकापराग के श्रुति रूपी वधुओं के पटवासकृत्य (पिष्टातकाधिवासन) के रूप में सम्पादित होने पर पटवास के रूप में उल्लिखित तुम्हारे संचारस्थान में प्रचलित रज श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों के परागों की शोभा का विस्तार करते हैं।।१३।।

मूर्धानमम्ब मुरभिन्मणिपादरक्षे!
येषां कदापि रजसा भवती पुनाति।
त्वामेव ते सुकृतिनः स्नपयन्ति काले
मन्दारदामरजसा मकुटच्युतेन।।१४।।

हे मातः! श्रीमुरमथन की चरणपादुके! आप अपने रज से जिन पुरुषों के मस्तक को एक बार भी शुद्ध कर देती हो वे पुण्यात्मा कृतार्थ होकर समय आने पर मुकुट से गिरे हुए मन्दारमाला के रज से आपका ही स्नपन करते हैं अर्थात् आपको नहला देते हैं। परस्पर उपकार के वर्णन से 'अन्योन्य' अलङ्कार है।।१४।।

रथ्याविहाररजसा परिधूसराङ्गीं
रङ्गेश्वरस्य ललितेषु महोत्सवेषु।
प्रस्फोटयत्यवनतो मणिपादुके! त्वां
गौरीपतिः स्वयमिभाजिनपल्लवेन।।१५।।

हे मणिपादुके! राजमार्ग में संचार से उत्पन्न रज से धूसरित अङ्गों वाली तुमको गौरी के पति शिव श्रीरङ्गनाथजी के मनोरम महोत्सवों में विनम्र होकर स्वयं पल्लवसदृश गजचर्म से प्रस्फोटित करते हैं अर्थात् धूलि को झाड़ते हैं। महापुरुष शिव का चरित यहाँ पादुका के माहात्म्य में अङ्ग है अतः 'उदात्त' अलङ्कार है।।१५।।

नेदीयसां निजपरागनिवेशपूर्वं
स्पृष्ट्वा शिरांसि भवती भवरोगभाजाम्।
गाढं निपीड्य गरुडध्वजपादरक्षे!
मानग्रहं शमयतीव परैरसाध्यम्।।१६।।

हे श्रीगरुडध्वज की चरणपादुके! आप अतिसमीप में विद्यमान संसाररोगग्रस्त अर्थात् सांसारिक बन्धनों में बँधे रहने वाले पुरुषों के मस्तकों का निजपरागनिवेशपूर्वक स्पर्श करके तथा उनको जोर से दबाकर उनके उस अभिमानग्रह का शमन कर देती हैं जो अन्यों से असाध्य है। जैसे मन्त्रज्ञ माथे में भस्म लगाकर भूत भगाते हैं वैसे ही पादुका भी रज लगाकर तथा मस्तक दबा कर भवग्रह (पिशाच) को भगाती है, यह अभिप्राय है। रूपक-अलङ्कार।।१६।।

आपातबल्लवतनोरकुमारयूनः
पादावनि! प्रविशतो यमुनानिकुञ्जान्।
आसीदनङ्गसमरात् पुरतः प्रवृत्तः
सेनापराग इव ते पदवीपरागः।।१७।।

हे चरणपादुके! तुम्हारे मार्ग का पराग (रज) आपाततः प्रतीत होने वाले गोपशरीर को धारण करने वाले, वस्तुतस्तु परमात्मा तथा कुमार न होने हुए भी तरुण (अनादि होने के कारण) एवं यमुना के लतागृहों में प्रवेश करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के कामयुद्ध (अनङ्गसमर) के पहले ही प्रवृत्त सेनापराग जैसा था। रूपक-उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कार।।१७।।

गङ्गापगातटलतागृहमाश्रयन्त्याः
पादावनि! प्रचलितं पदवीरजस्ते।
प्रायेण पावनतमं प्रणतस्य शम्भो-
रुद्धूलनं किमपि नूतनमातनोति।।१८।।

हे पादुके! गङ्गानदी के तट के ऊपर विद्यमान मार्ग के लतागृह (भोगशयन नामक भगवान् श्रीविन्दुमाधव का आवास अर्थात् काशी) में गयी हुई तुम्हारी उत्थित रज विनम्र शिव के किसी नूतन पावनतम उद्धूलन (उठी हुई धूलि) का सम्पादन करती है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार है क्योंकि अविमुक्त क्षेत्र काशी में विराजमान भोगशयन नामक भगवान् श्रीबिन्दुमाधव की या वनयात्रा के प्रसङ्ग में काशी के समीप आये श्रीरामचन्द्रजी की सेवा में संलग्न पादुका का रज शिव के पावनतम उद्धूलन के रूप में उद्भावित है॥१८॥

**अन्ते तदा त्वमविलम्बितमानयन्ती**
**रङ्गाद्भुजङ्गशयनं मणिपादरक्षे।**
**कामं निवर्तयितुमर्हसि संज्वरं मे**
**कर्पूरचूर्णपटलैरिव धूलिभिस्ते॥१९॥**

हे मणिपादुके! तुम उस अन्त समय में श्रीरङ्गविमान क्षेत्र से श्रीरङ्गनाथजी को भुजङ्गशय्या (शेष) पर शीघ्र लाती हुई मेरे आध्यात्मिक आदि ताप (संज्वर) को कपूर के चूर्णों के समान अपने उद्गत परागों से निश्चय ही दूर करने में समर्थ हो। उपमा अलङ्कार॥१९॥

**रङ्गेशपादसहधर्मचरि! त्वदीयान्**
**मौलौ निवेश्य महितान् पदवीपरागान्।**
**सन्तस्त्रिवर्गपदवीमतिलङ्घयन्तो**
**मौलौ पदं विदधते विबुधेश्वराणाम्॥२०॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी के चरणों की सहधर्मचारिणि! पादुके! महापुरुषगण तुम्हारे पूजित मार्गस्थ परागों को अपने मस्तक में स्थापित करके त्रिवर्ग (धर्म-अर्थ-काम) के मार्ग का अतिक्रमण करते हुए देवेन्द्र के मस्तक पर अपने चरणों को रख देते हैं। पादुकापरागों के सम्बन्ध से सन्त लोग ज्ञानी होकर दिक्पालों के ऐश्वर्य की गणना नहीं करते, यह अभिप्राय है॥२०॥

**मातस्तदा माधवपादरक्षे! त्वयि प्रसक्तं त्वरयोपयान्त्याम्।**
**परामृशेयं पदवीपरागं प्राणैः प्रयाणाय समुज्जिहानैः॥२१॥**

हे मातः! श्रीमाधव की चरणपादुके! मैं वेदान्तदेशिक अन्तकाल में प्रयाण करने वाले प्राणों से शीघ्रातिशीघ्र समीप आती हुई तुझमें संलग्न मार्गीय पराग का स्पर्श करूँ! मेरे प्राणों से तुम्हारी धूलि का संस्पर्श हो, यह अभ्यर्थना है॥२१॥

**तथागता राघवपादरक्षे! संपश्यमानेषु तपोधनेषु।**
**आसीदहल्या तव पांसुलेशैरपांसुलानां स्वयमग्रगण्या॥२२॥**

हे श्रीरघुनाथजी की पादुके! तथागता अर्थात् इन्द्र के साथ सम्बन्धदोष से उस प्रकार से पत्थर हुई अहल्या तपोधन (तपस्या ही जिनका धन हो) मुनियों के नयनों के सामने ही अर्थात् उनके देखते देखते तुम्हारी अल्प धूलियों से ही अपांसुलों = पतिव्रताओं में अग्रगण्य हो गयी। यहाँ पांसु (धूलि) के सम्बन्ध से अपांसुल = धूलि के सम्बन्ध से रहित हो गयी, यह विरोध है जिसका समाधान 'पतिव्रता' अर्थ को स्वीकार करके हो जाता है अतः विरोधाभास नामक अलङ्कार है॥२२॥

**पश्यामि पद्मेक्षणपादरक्षे! भवाम्बुधिं पातुमिव प्रवृत्तान्।**
**भक्तोपयानत्वरया भवत्या पर्यस्यमानान् पदवीपरागान्॥२३॥**

हे कमलनयन श्रीभगवान् की चरणपादुके! भक्तों के समीप जाने में शीघ्रता करने वाली आपके द्वारा ऊपर उड़ाये जाने वाले मार्गस्थ परागों (धूलि) को मैं वैसे ही देख रहा हूँ जैसे वे संसार-सागर को पीने अर्थात् सुखाने के लिए प्रवृत्त हों। परिणाम से संकीर्ण उत्प्रेक्षा अलङ्कार है क्योंकि संसार को सागर के रूप में परिणत करके उनको सुखाने के लिए पादुका के पर्यसित रजों को साधन के रूप में उद्भावित किया गया है॥२३॥

**पञ्चायुधी भूषणमेव शौरेर्यतस्तवैते मणिपादरक्षे।**
**वितन्वते व्याप्तदिशः परागाः शान्तोदयांश्छत्रुचमूपरागान्॥२४॥**

हे मणिपादुके! भगवान् श्रीकृष्ण के शङ्ख, चक्र आदि पाँचों आयुध भूषण ही हैं क्योंकि उनके द्वारा असुरों का वध नहीं होता। इसीलिए कि तुम्हारे ये दिशाओं को व्याप्त कर लेने वाले पराग ही शत्रुओं की सैन्यधूलियों (परागों) कों शान्त कर देते हैं। शान्त उदयः = उद्भवो येषाम्, अर्थात् जिनका उत्थान ही नष्ट हो गया हो ऐसे शत्रुसैन्यपराग पादुकापरागों से कर दिये जाते हैं। पूर्व वाक्यार्थ के प्रति उत्तरवाक्यार्थ के हेतु होने से यहाँ वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥२४॥

**परिणतिमकठोरां प्राप्तया यत्प्रभावा-**
**दलभत शिलया स्वान् गौतमो धर्मदारान्।**
**पुनरुपजनिशङ्कावारकं पादुके तत्**
**प्रशमयति रजस्ते रागयोगं प्रजानाम्॥२५॥**

हे पादुके! गौतम मुनि तुम्हारे 'रज' अर्थात् रजोगुण के प्रभाव से अकठोर = कोमल परिणाम कों प्राप्त कर लेने वाली शिला (पाषाण) से अपनी धर्मपत्नी को प्राप्त कर लिये थे। अहल्या में पहले जैसे ही अनुरक्त हो गये थे, यह अभिप्राय है। वही गौतम को अपनी पत्नी का लाभ कराने वाला तुम्हारा रज (धूलि और रजोगुण) प्रजाओं की उत्पत्ति की शङ्का का निवारक (दूर करने वाला) होता हुआ उनके रागयोग अर्थात् विषयों के प्रति लोभ के संयोग के शान्त कर देता है। प्रजाओं को प्रवृत्तिधर्मों से हटाकर निवृत्तिधर्मों में लगा देता है, यह अभिप्राय है॥२५॥

**रजनिविगमकाले रामगाथां पठन्तः**
**कुशिकतनयमुख्याः पादुके! भावयन्ते।**
**उपलशकलसक्तैस्त्वत्परागैरकाण्डे**
**जनितमुनिकलत्रान् दण्डकारण्यभागान्॥२६॥**

हे पादुके! कुशिक के पुत्रों में प्रधानता को प्राप्त कर लेने वाले विश्वामित्र आदि अहल्या की उत्पत्ति का प्रत्यक्ष दर्शन करने वाले तपस्वी ऋषिगण रजनि (रात्रि) के अन्तकाल (प्रभात) में श्रीरामचन्द्रजी की गाथा को पढ़ते हुए पाषाण खण्डों में संलग्न तुम्हारे परागों से अकाण्ड अर्थात् अनवसर में ही दण्डकारण्य के भूमिप्रदेशों का उस तरह से चिन्तन करते हैं जैसे उनमें ऋषियों की पत्नियाँ उत्पन्न हो गयी हों। तात्पर्य यह है कि वे ऋषि प्रातःकाल उठकर श्रीरामचन्द्रजी की गाथा को पढ़ते हुए पाषाण में स्थित पादुकापरागों से अनवसर में ही गौतम की पत्नी से सम्बन्धित दण्डकारण्य के प्रदेशों का चिन्तन करते हैं॥२६॥

**शुभसरणिरजोभिः शोभयन्ती धरित्रीं**
**परिणतिरमणीयान् प्रक्षरन्ती पुमर्थान्।**
**भवसि भुवनवन्द्या पादुके! रङ्गभर्तुः**
**शरणमुपगतानां शाश्वती कामधेनुः॥२७॥**

हे पादुके! कल्याणमय मार्गस्थित धूलियों से पृथ्वी को सुशोभित करती हुई तथा परिणाम में रमणीय धर्म आदि पुरुषार्थों को प्रदान करती हुई भुवनवन्दनीय तुम श्रीरङ्गनाथजी की शरण में आये हुए प्रपन्नों की शाश्वती (नित्य) कामधेनु हो। 'कामधेनु' गाय का संचार जैसे पावन है वैसे ही पादुका का संचार भी पावन है। इसीलिए पृथ्वी को शोभन पादुका बनाती है। रूपक-अलङ्कार॥२७॥

**पवनतरलितस्ते पादुके! रङ्गभर्तु-**
**र्विहरणसमयेषु व्याप्तविश्वः परागः।**
**विषमविषयवर्त्मव्याकुलानामजस्रं**
**व्यपनयति जनानां वासनारेणुजालम्॥२८॥**

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी के विहार के समय पवम से लोलायमान होता हुआ तथा पूरे संसार को ही व्याप्त करने वाला तुम्हारा पराग विषम (निम्न-उन्नत) विषय मार्गों में व्याकुल हुए जनों

के वासनामय रेणुजाल = धूलिसमूह को दूर कर देता है। यहाँ पर 'व्याघात' नामक अलङ्कार है॥२८॥

**निष्प्रत्यूहमुपासिषीमहि मुहुर्निःशेषदोषच्छिदो**
**नित्यं रङ्गधुरन्धरस्य निगमस्तोमार्चिते पादुके।**
**धत्ते मूर्धभिरादिपद्मजनिता तत्तादृशी संतति-**
**र्यत्संचारपवित्रितक्षितिरजःपङ्क्तिं चतुःपञ्चषैः॥२९॥**

निःशेष अर्थात् पूर्णरूप से पापादि दोषों का छेदन करने वाले श्रीरङ्गनाथजी की नित्य वेदसमूहों से पूजित उन पादुकाओं की निर्विघ्नतया हम उपासना करते हैं जिन पादुकाओं के संचार से पवित्र हुई पृथ्वी के परागों की पङ्क्ति को आदि कमल से उत्पन्न होने वाली वह प्रसिद्ध स्वरूप और अनुभवों वाली सन्तति अपने चार या पाँच और छः मस्तकों से धारण करती है। यहाँ 'सन्तति' से ब्रह्मा, रुद्र और कार्तिकेय को लिया गया है। तात्पर्य यह हुआ कि ब्रह्मा चारों मस्तकों से रुद्र पाँच मस्तकों से तथा कार्तिकेय छः मस्तकों से पादुकापवित्रितभूपरागों को धारण करते हैं। पर्यायोक्त अलङ्कार से संकीर्ण 'प्रेय' अलङ्कार॥२९॥

**रजसा परोरजस्तन्न खलु न लङ्घ्येत भगवतोऽपि पदम्।**
**किमुत हृदयं मदीयं भवती यदि नाम पादुके! न स्यात्॥३०॥**

हे पादुके! यदि आप नहीं होतीं तो रजोगुण के ऊपर विद्यमान शुद्धसत्त्वात्मक श्रीभगवान् का चरण भी रज अर्थात् रेणु से लङ्घित नहीं होता। ऐसे में मेरा हृदय भी अनादि रजोगुण वाला हुआ रज' से कैसे आक्रान्त होता? अर्थात् नहीं होता। तुम्हारे द्वारा ही मेरा हृदय और श्रीभगवान् का पद (चरण) अस्पृष्ट रज वाला होता। अर्थापत्ति अलङ्कार॥३०॥

# अथ चतुर्दशी नादपद्धतिः

इस पद्धति में पादुकान्तर्वर्ती मणिनादों को अभिलक्षित करके पादुका की स्तुति की गयी है—

**श्रुतीनां भूषणानां ते शङ्के रङ्गेन्द्रपादुके।**
**मिथः संघर्षसंजातं रजः किमपि शिञ्जितम्॥१॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तुम्हारा शिञ्चित = भीतर में स्थित मणियों की ध्वनि भूषणों के रूप में प्रतिष्ठित श्रुतियों के पारस्परिक संघर्ष से उत्पन्न रज है, ऐसा मैं मानता हूँ। यहाँ श्रुतियों को पादुका के भूषण के रूप में कथन प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव सम्बन्ध से लाक्षणिक है। इसी तरह उनसे रज (धूलि) की उत्पत्ति का कथन है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१॥

**मुरभिन्मणिपादुके भवत्याः स्तुतिमाकर्णयतां मया निबद्धाम्।**
**अवधीरयसीव मञ्जुनादैरचमत्कारवचांसि दुर्जनानाम्॥२॥**

हे श्रीमुरमथन की मणिपादुके! मेरे द्वारा गुम्फित आपकी स्तुति को सुनने वाले खलों के अचमत्कार = समर्थन से शून्य आक्षेप वचनों को तुम अपने मनोहर निनादो से तिरस्कृत करती जैसी प्रतीत हो रही हो। उत्पेक्षा अलङ्कार॥२॥

**विहितेष्वभिवादनेषु वेदैर्गमनोदीरितगर्भरत्ननादा।**
**मधुरं मधुवैरिपादरक्षे! भवती प्रत्यभिवादनं विधत्ते॥३॥**

हे मधुवैरी भगवान् श्रीनारायण की पादुके! अपने गमन से उच्चारित भीतरी रत्नों के नादों वाली तुम (उदीरितगर्भनादा) ऋग्

आदि वेदों के द्वारा अभिवादन किये जाने पर मधुर रूप से प्रत्यभिवादन अर्थात् आशीर्वाद देती हो। गम्य उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३॥

**स्वदते किमिहैव रङ्गनाथो मयि तिष्ठन् यदि वा पदे परस्मिन्।**
**इति पृच्छसि देवि! नूनमस्मान् मधुरैस्त्वं मणिपादुके! निनादैः॥४॥**

हे देवि! मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी अपने रङ्गायतन में ही रहते हुए या परम पद में रहते हुए आपको क्या अच्छे लगते हैं या मुझमें ही स्थित रहते अच्छे लगते हैं, इस प्रकार से तुम अपने मधुर निनादों से हम लोगों से निश्चय ही प्रश्न करती हो। यहाँ परम पद में स्थित भगवान् सेवकों के लिए दुर्लभ है तथा श्रीरङ्ग में अभिगमन साकाङ्क्ष है, अतः अनादर है। पादुका में स्वयं सम्मुख रहने से विना प्रयास के सेव्य हैं, अतः यहाँ आदर ध्वनित होता है। श्रीरङ्ग और वैकुण्ठ (परमपद) की अपेक्षा पादुका में आधिक्य-वर्णन से व्यतिरेकालङ्कार ध्वनि है॥४॥

**अवरोधगतस्य रङ्गभर्तुर्गतिषु व्यञ्जितगर्भरत्ननादा।**
**प्रतिसंलपसीव पादुके! त्वं कमलानूपुरमञ्जुशिञ्जितानाम्॥५॥**

हे पादुके! अन्तःपुर में गये हुए श्रीरङ्गनाथजी के गमनों में सुस्पष्ट गर्भरत्न के नादों वाली तुम मानो श्रीलक्ष्मीजी के नूपरों के मनोहर भूषणरवों के साथ प्रतिसंलाप करती हो अर्थात् स्वागत आदि प्रत्युत्तर देती हो। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥५॥

**मुरभिच्चरणारविन्दरूपं महितानन्दमवाप्य पूरुषार्थम्।**
**अनघैर्मणिपादुके! निनादैरहमन्नाद इतीव गायसि त्वम्॥६॥**

हे मणिपादुके! तुम श्रीमधुसूदन के चरणारविन्दरूप अभ्यर्हित आनन्द को ही परम पुरुषार्थ के रूप में प्राप्त करके अनघ अर्थात् व्यसनशून्य अपने निनादों से 'अहमन्नाद (मैं अन्नों का भक्षक हूँ)' इत्यादि श्रुतियों में कथित मन्त्रों का गान करती हो। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥६॥

**मधुवैरिपदाम्बुजं भजन्ती मणिपादावनि! मञ्जुशिञ्जितेन।**
**पठसीव मुहुः स्वयं प्रजानामपरोपज्ञमरिष्टशान्तिमन्त्रम्॥७॥**

हे मणिपादुके! तुम श्रीमुरारि के चरणकमल का सेवन करती हुई अपने मनोरम भूषणनिनाद से प्रजाओं के अरिष्ट की शान्ति का वह मन्त्र पढ़ती हो जिसे तुमसे अन्यों ने नहीं देखा है (अपरोपज्ञम्)। यहाँ पादुका के निनाद में संसार के अरिष्ट की शान्ति के लिए मन्त्रपाठ उद्भावित है, अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥७॥

**श्रुतिभिः परमं पदं मुरारेरनिदङ्कारमनेवमित्युपात्तम्।**
**इदमित्थमिति ब्रवीषि नूनं मणिपादावनि! मञ्जुभिः प्रणादैः॥८॥**

हे मणिपादुके! वेदों के द्वारा सुस्पष्ट विशेषबोध से रहित और परिच्छेदातीतरूप से प्रतिपादित श्रीमुरमथन के उत्कृष्ट पद वैकुण्ठ का तुम निश्चय ही इदमित्थन्तया (विलोक्यमानमङ्गलविग्रहविशिष्ट) अपने मनोरम निनादों से ख्यापन करती हो। श्रुतियों की अपेक्षा पादुका में वैशिष्ट्य की प्रतीति होने से व्यतिरेकालङ्कार है॥८॥

**मुनयः प्रणिधानसंनिरुद्धे हृदि रङ्गेश्वररत्नपादुके! त्वाम्।**
**विनिवेश्य विभावयन्त्यनन्याः प्रणवस्य प्रणिधिं तव प्रणादम्॥९॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! मननशील (मुनि) योगीजन यमनियमादि से जायमान एकाग्रता के बल से जब अपने मन को सारे विषयों से हटा लेते हैं तब वे उसमें तुमको बसाकर अन्य देवताओं से सम्बन्धरहित होकर प्रणव के उद्बोधक तुम्हारे निनाद का ध्यान करते हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥९॥

**मधुरं मणिपादुके! प्रवृत्ते भवती रङ्गपतेर्विहारकाले।**
**अभयार्थनया समभ्युपेतानविसंवादयतीव मञ्जुनादैः॥१०॥**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी का जब विहारकाल मधुरतया प्रवृत्त होता है तब आप अभय की प्रार्थना से सम्मुख आये हुए जनों

को अपने मधुर रवों से निर्भयता के उत्तर को देती हुई जैसी लगती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१०॥

**श्रवसोर्मम पारणां दिशन्ती मणिपादावनि! मञ्जुलैः प्रणादैः।**
**रमया क्षमया च दत्तहस्तं समये रङ्गधुरीणमानयेथाः॥११॥**

हे मणिपादुके! तुम अपनी सुमधुर ध्वनियों से मेरे कानों में पारणा (उपवास के पश्चात् भोजन, तृप्ति) को प्रदान करती हुई श्रीलक्ष्मीजी और श्रीभूमिदेवी से दत्त हाथों वाले श्रीरङ्गनाथजी को अन्तिम समय में हमारे पास ले आना॥११॥

**अनुयाति नित्यममृतात्मिकां कलां**
**तव रङ्गचन्द्रमणिपादु! झङ्कृतम्।**
**श्रवसा मुखेन परिभुज्य यत्क्षणा-**
**दजरामरत्वमुपयान्ति साधवः॥१२॥**

हे श्रीरामचन्द्रजी की मणिपादुके! तुम्हारा झङ्कार शब्द अमृतस्वरूपिणी चन्द्रकला का अनुसरण करता है तथा साधु पुरुष अपने कान रूपी मुख से उस झङ्कार का पान करके अल्पकाल में ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जैसे चन्द्रकला का पान करके देवता अजर अमर हो जाते हैं वैसे ही पादुका के झङ्कार का श्रवण करके प्रपन्नजन मुक्त हो जाते है, यह अभिप्राय है। रूपकानुप्राणित उपमा अलङ्कार॥१२॥

**परुषैरजस्रमसतामनर्थकैः**
**परिवादपैशुनविकत्थनादिभिः।**
**मधुकैटभारिमणिपादुके! मम**
**श्रुतिदुष्कृतानि विनिवारय स्वनैः॥१३॥**

हे! श्रीमधुकैटभारि की मणिपादुके! खलों के कठोर और निरर्थक जो परिवाद = अविद्यमान दोषों का कथन, पैशुन = विद्यमान दोषों का प्रकटीकरण, विकत्थन = व्यर्थ वाणी प्रभृति जो

दु:शब्दजाल हैं, उनसे जाने जाने वाले जो मेरे श्रवणसम्बन्धी पाप हैं उन्हें तुम अपने निनादों से दूर करो॥१३॥

**पादुके! परिजनस्य दूरतः सूचयन्ति खलु तावकाः स्वनाः।**
**लीलया भुजगतल्पमुज्झतः श्रीमतस्त्रिचतुरान् पदक्रमान्॥१४॥**

हे पादुके! तुम्हारे निनाद (स्वन) लीलापूर्वक शेषशय्या का परित्याग करने वाले श्रीमान् रङ्गनाथजी के तीन या चार चरणविक्षेपों की सूचना दूर स्थित परिजन को देते हैं। भगवान् आ रहे हैं, ऐसी सूचना परिजनों को पादुका के निनाद देते हैं, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१४॥

**देवि! दैत्यदमनाय सत्वरं प्रस्थितस्य मणिपादुके! प्रभोः।**
**विश्वमङ्गलविशेषसूचकं शाकुनं भवति तावकं रुतम्॥१५॥**

हे देवि! मणिपादुके! दैत्यों का दमन करने के लिए शीघ्र ही प्रस्थान करने वाले प्रभु श्रीरङ्गनाथजी के सकल मङ्गलविशेषों (शुभभेद) के सूचक शकुन के रूप में तुम्हारे निनाद होते हैं। पादुका के निनाद श्रीभगवान् की विजय को सूचित करते हैं, यह अभिप्राय है। गम्य उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१५॥

**दातुमर्हसि तदा मम श्रुतौ देवि! रङ्गपतिरत्नपादुके।**
**विह्वलस्य भवदीयशिञ्जितं स्वादु कर्णरसनारसायनम्॥१६॥**

हे देवि! श्रीरङ्गपति की रत्नमयपादुके! तुम अन्तकाल में विह्वल (कातर) हुए मेरे कर्ण में अपने शिञ्जान (भूषणरव) रूपी सुस्वादु, कर्णरूपी जिह्वा में रसायन प्रदान करो! यहाँ शिञ्जित रोगनाशक सुस्वादु औषध के रूप में परिणत है तथा उसे देने का कथन है, अतः परिणाम-अलङ्कार है॥१६॥

**अहमुपरि समस्तदेवतानामुपरि ममैष विभाति वासुदेवः।**
**तदिह परतरं न किञ्चिदस्मादिति वदसीव पदावनि! प्रणादैः॥१७॥**

हे चरणपादुके! ब्रह्मा आदि सारे देवताओं के ऊपर मैं (पादुका) अवस्थित हूँ तथा मेरे ऊपर श्रीभगवान् सुशोभित हो रहे हैं। इस कारण से इस प्रपञ्च में इस भगवान् वासुदेव के ऊपर कोई भी नहीं है, इस तथ्य को मानो अपने अव्यक्त रवों से तुम कह रही हो। 'सार' अलङ्कार से संकीर्ण उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१७॥

**अवनतविबुधेन्द्रमौलिमालामधुमदशिक्षितमन्थरप्रयाता।**
**प्रथयसि परिरब्धशौरिपादा मणिकलहेन वियातजल्पितानि॥१८॥**

हे पादुके! विनम्र हुए देवेन्द्रों के मस्तकों में विद्यमान मालाओं के मधुओं (पुष्परस तथा मद्य) से उत्पन्न मद से मन्द गति का अभ्यास करने वाली तथा भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का आलिङ्गन करने वाली तुम मणियों के संघर्षण से जायमान शब्द से मानों धृष्ट वचनों का विस्तार कर रही हो। विशेषण के बल से मधुपान में आसक्त नायिका की प्रतीति होने से समासोक्ति-अलङ्कार तथा इससे संसृष्ट उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है॥१८॥

**आस्थानेषु त्रिदशमहितान् वर्तयित्वा विहारान्**
**स्थाने स्थाने निजपरिजनं वारयित्वा यथार्हम्।**
**वासागारं स्वयमुपसरन् पादुके! मञ्जुनादा-**
**मापर्यङ्कान्न खलु भवतीं रङ्गनाथो जहाति॥१९॥**

हे पादुके! आस्थानों (सभा) में देवों के द्वारा पूजित विहारों का प्रवर्तन करके तथा जगह जगह ब्रह्मा आदि अपने परिजन का यथायोग्य (औचित्य के साथ) निवारण करके स्वयम् अपने शयनगृह में चलते हुए श्रीरङ्गनाथजी पलँग तक आप को नहीं छोड़ते क्योंकि आप मनोहर नाद उस समय करती हैं॥१९॥

**अन्तर्न्यस्तैर्मणिभिरुदितं पादुके! रङ्गबन्धौ**
**मन्दं मन्दं निहितचरणे मञ्जुलं ते निनादम्।**

**पश्यन्त्यादिक्रमपरिणतेः प्राक्तनीं तां पराया-**
**मन्ये मित्रावरुणविषयादुच्चरन्तीमवस्थाम्॥२०॥**

हे पादुके! जब श्रीरङ्गनाथजी धीरे धीरे अपना चरण रखते हैं तब भीतर सुस्थापित मणियों से उत्पन्न होने वाले मनोहर तेरे निनाद को मैं मित्रावरुणदेश (प्राण और अपान का स्थान) से अर्थात् नाभिप्रदेश से उद्‌गमन करने वाली परा वाणी की आद्य उस अवस्था की भावना (पुनः पुनः अनुसन्धान) करता हूँ जिसका परिणाम पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के रूप में होता है। 'प्राणो वै मित्रः अपानो वरुणः', इस श्रुति से प्राण और अपान का 'मित्रावरुण' शब्द से निर्देश है। वाणी का चातुर्विध्य व्याकरण-आगम आदि शास्त्रों में प्रतिपादित है।

'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति॥'

इस मन्त्र का भी नयन चार प्रकार की वाणियों में आगम के विद्वान् करते हैं॥२०॥

**प्रख्यातानां परिषदि सतां कारयित्वा प्रतिज्ञां**
**प्रायेण त्वां प्रथितविभवां वर्णयन्ती मया त्वम्।**
**पादन्यासक्रममनुगुणं प्राप्य रङ्गाधिराजात्**
**पद्यारम्भान् गणयसि परं पादुके! स्वैर्निनादैः॥२१॥**

हे पादुके! प्रसिद्ध सत्पुरुषों के समाज में मुझसे (प्रयोज्यकर्ता) 'पादुकासहस्र' की रचना की प्रतिज्ञा करा कर विख्यात वैभव वाली अपना ही वर्णन मुझसे कराती हुई तुम श्रीरङ्गनाथ जी के पास से अनुरूप चरणविक्षेप की परिपाटी को प्राप्त करके अपने निनादों (कलरव) से परम पद्यों के आरम्भों (उपक्रम) की गणना करती हो। कितने पद्य रचे जा रहे हैं, यह परिगणन पादुका अपने निनादों से मानो करती है, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२१॥

विष्णोरस्मिन् पदसरसिजे वृत्तिभेदैर्विचित्रै-
रैदम्पर्यं निगमवचसामैककण्ठ्येन सिद्धम्।
इत्थं पुंसामनिपुणधियां पादुके! त्वं तदेव
स्पृष्ट्वा सत्यं वदसि नियतं मञ्जुना शिञ्जितेन॥२२॥

हे पादुके! श्रीविष्णु भगवान् के इस दृश्यमान चरणकमल में ही वेदवचनों का तात्पर्य (ऐदम्पर्यम् = इदमेव परं प्रकृष्टं प्रतिपाद्यं यत्र तदिदंपरम्, तस्य भावः) विचित्र = नाना प्रकार के अभिधा-लक्षणा-गौणी-व्यञ्जना रूप वृत्तियों के प्रभेदों से ऐककण्ठ्य (परस्पर के अविरोध) से सिद्ध है, इस प्रकार से मन्दबुद्धि पुरुषों के समक्ष मानों तुम अपने मनोहर निनाद से उसी चरणकमल का स्पर्श करके शपथ (सत्य) खा रही हो। सारे वेदों का तात्पर्य श्रीनारायण के चरणकमलों के प्रतिपादन में ही है, ऐसा शपथ पादुका भगवान् के चरणों का स्पर्श करके ही खा रही है, यह अभिप्राय है॥२२॥

आम्नायैस्त्वामनितरपरैः स्तोतुमभ्युद्यतानां
मध्ये भक्त्या मधुविजयिनः पादुके! मोहभाजाम्।
शिक्षातत्त्वस्खलितवचसां शिक्षयस्येव पुंसां
मात्रादीनि स्वयमनुपदं मञ्जुभिः स्वैर्निनादैः॥२३॥

हे श्रीमधुविजय की पादुके! अनितरपर अर्थात् तुमसे अन्य में जिनका तात्पर्य नहीं है ऐसे वेदों (आम्नाय) के द्वारा तुम्हारी स्तुति में तत्पर पुरुषों के मध्य में मोह से ग्रस्त हुए तथा शिक्षा (स्वर-वर्ण-मात्रा आदि का बोधक वेदाङ्ग) की यथार्थता में स्खलित वाणी वाले पुरुषों को मानो तुम अपने मनोहर निनादों से ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत और उदात्त आदि मात्राओं की पदे पदे शिक्षा दे रही हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२३॥

लक्ष्मीकान्तं कमपि तरुणं रथ्यया निष्पतन्तं
रागाद्द्रष्टुं त्वरितमनसां राजधानीवधूनाम्।

**प्रत्यादेशं भजति मधुरैः पादुके शिञ्जितैस्ते**
**चेतोहारी कुसुमधनुषः शिञ्जिनीमञ्जुनादः॥२४॥**

हे पादुके! रथ्या (राजमार्ग) से आने वाले अनिर्वचनीय सौन्दर्यादि गुणों से सम्पृक्त तरुण श्रीरङ्गनाथजी को प्रेमपूर्वक देखने के लिए शीघ्रता से युक्त मानस वाली श्रीरङ्गनगर की नारियों का मनोहर और कामदेव की प्रत्यञ्चा का मञ्जु (रमणीय) निनाद मानों तुम्हारे मधुर भूषणरवों से तिरस्कार को प्राप्त हो रहा है। यहाँ उपमेय पादुकानिनाद से उपमान कामप्रत्यञ्चाघोष का तिरस्कार वर्णित है, अत: प्रतीप नामक अलङ्कार है॥२४॥

**रङ्गाधीशे सहकमलया सादरं यायजूकैः**
**सारं दिव्यं सवनहविषां भोक्तुमाहूयमाने।**
**नेदीयोभिर्निगमवचसां नित्यमंहःप्रतीपैः**
**प्रत्यालापं दिशति भवती पादुके! शिञ्जितैः स्वैः॥२५॥**

हे पादुके! जब यायजूक (यजन के स्वभाव वाले) यागीय हव्य पदार्थों के दिव्य सार तत्त्व का भक्षण करने के लिए लक्ष्मी जी के साथ श्रीरङ्गनाथजी का सादर आह्वान करते हैं तब तुम नित्य निकटवर्ती तथा पापों के विरोधी अपने भूषारवों से आह्वान वाले वेदवचनों के प्रत्युत्तर को देती हो। यहाँ पर पादुका के नाद में भगवदाह्वानपरक वेदों का प्रत्युत्तरत्व उद्भावित है, अत: उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है॥२५॥

**उपास्य नूनं मणिपादुके! त्वां रङ्गेशपादाम्बुजराजहंसीम्।**
**पत्युः प्रजानामलभन्त पूर्वं मञ्जु स्वनं वाहनराजहंसाः॥२६॥**

हे मणिपादुके! निश्चय ही श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों की राजहंसी तुम्हारी पहले उपासना करके प्रजाओं के पति ब्रह्मा जी के वाहन राजहंस मनोहर स्वर प्राप्त किये थे। यहाँ पर उत्प्रेक्षा

अलङ्कार से राजहंसों के रव की अपेक्षा पादुकानादों के अधिक्य की प्रतीति होने से व्यतिरेकालङ्कार ध्वनि है।।२६।।

**अनादिमायारजनीवशेन प्रस्वापभाजां प्रतिबोधनार्हाम्।**
**पश्यामि नित्योदितवासरस्य प्रभातनान्दीमिव पादुके! त्वाम्।।२७।।**

हे पादुके! अनादि मायारूपी रात्रि के बल से अत्यन्त अबोधरूप सुषुप्ति वाले जनों के उद्‌बोधन के योग्य आपको मैं नित्य उदित दिन अर्थात् मोक्षकाल की प्रभातनान्दी की तरह देखता हूँ। प्रभातनान्दी = प्रातःकाल में पढ़ी जाने वाली मङ्गलगाथा। रूपक से संकीर्ण उपमा अलङ्कार।।२७।।

**शृणोतु रङ्गाधिपतिः प्रजानामार्तध्वनिं क्वापि समुज्जिहानम्।**
**इतीव मत्वा मणिपादुके! त्वं मन्दप्रचारैर्मृदुशिञ्जितासि।।२८।।**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी कहीं पर भी उठने वाले प्रजाओं के दीनतापूर्ण शब्द को सुनें, ऐसा मान करके ही मानो तुम मन्द गमनों से मृदु (कोमल) ध्वनि वाली हो। हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार।।२८।।

**अन्ते ममार्तिं शमयिष्यतस्तामग्रेसराण्यापततो मुरारेः।**
**श्रमोपपन्नः शृणुयां भवत्याः शीतानि पादावनि! शिञ्जितानि।।२९।।**

हे पादुके! अन्तसमय में श्रम से युक्त मैं मेरी ही पीड़ा का शमन करने के लिए मार्ग में आने वाले श्रीमुरमथन के आगे फैलने वाले आपके शीतल शिञ्जान को सुनूँ।।२९।।

**स्वादूनि रङ्गेश्वरपादरक्षे! श्रोत्रैः पिबन्तस्तव शिञ्जितानि।**
**पचन्त्यविद्योपचितानशेषानन्तर्गतानात्मविदः कषायान्।।३०।।**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! चित्-अचित् का विवेक करने वाले आत्मज्ञानी अपने कानों से तुम्हारे सुस्वादु भूषाकलरव का श्रवण करते हुए अन्तःकरणों में विद्यमान तथा अविद्या (माया) से परिपुष्ट सारे विषयानुरागों (कषाय) को दूर कर देते हैं।।३०।।

**अवैमि रङ्गाधिपतेः सकाशादवेक्षमाणेषु जनेषु रक्षाम्।**
**उदारनादां मणिपादुके! त्वामोमित्यनुज्ञाक्षरमुद्गिरन्तीम्॥३१॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! दीनजन जब श्रीरङ्गनाथजी के पास से रक्षा की अपेक्षा करते हैं तब मैं तुमको उदारनाद करने वाली 'ओम्', इस तरह से स्वीकृतिशब्द का उच्चारण करने वाली समझता हूँ॥३१॥

**मधुद्विषः स्वैरविहारहेतुर्मञ्जुस्वनाञ्शिक्षयसीव मातः।**
**पर्यन्तभाजोर्मणिपादरक्षे! पद्माधरण्योर्मणिनूपुराणि॥३२॥**

हे मातः! मणिपादुके! 'मधु' नामक दैत्य के शत्रु श्रीरङ्गनाथजी के स्वेच्छापूर्वक विहार की कारणभूता तुम पास में रहने वाली लक्ष्मी और पृथ्वी के मणिनूपुरों को रमणीय शब्दों की मानों शिक्षा देती हो। यहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार से लक्ष्मी और पृथ्वी के नूपुरों के रवों की अपेक्षा पादुकारवों के आधिक्य की प्रतीति होने से व्यतिरेकालङ्कार ध्वनि है॥३२॥

**प्रास्थानिकेषु समयेषु समागतेषु**
**प्राप्ता पदं परिचितं द्विजपुङ्गवेन।**
**पुष्णासि रङ्गनृपतेर्मणिपादुके! त्वं**
**पुण्याहघोषमिव गर्भमणिप्रणादैः॥३३॥**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी का जब प्रास्थानिक (यात्रायोग्य) समय आता है तब द्विजपुङ्गव = द्विजश्रेष्ठ (पक्षिराज गरुड और ब्राह्मणश्रेष्ठ) से आश्रित श्रीमद्भगवच्चरण को प्राप्त करने वाली तुम अपने भीतरी मणिनादों से मानों पुण्याहघोष (स्वस्ति वाचन) को पुष्ट करती हो। श्लेष से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३३॥

**आर्तध्वनेरुचितमुत्तरमन्तकाले**
**कर्णेषु मञ्जुनिनदेन करिष्यसीति।**

**वासं भजन्ति कृतिनो मणिपादरक्षे!**
**पुण्येषु देवि! पुलिनेषु मरुद्वृधायाः॥३४॥**

हे देवि! मणिपादुके! मरण के समय तुम अपने मनोहर निनाद से कानों में आर्तवाणी का योग्य उत्तर (सान्त्वना) दोगी, इस बुद्धि से पुण्यात्मा कावेरी के पुण्य तटों पर निवास करते हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३४॥

**दूत्ये बलेर्विमथने शकटस्य भङ्गे**
**यात्रोत्सवेषु च विभोः प्रतिपन्नसख्या।**
**वीरायितानि विरुदोपहितानि नूनं**
**मञ्जुस्वनैः प्रथयसे मणिपादुके! त्वम्॥३५॥**

हे मणिपादुके! प्रभु श्रीरङ्गनाथजी के पाण्डवदूतकर्म में, बलिनिग्रह में तथा यात्रोत्सवों में एवम् शकटासुरभञ्जन में मैत्री को प्राप्त करने वाली अर्थात् भगवान् के चरणों का साथ न छोड़ने वाली तुम अपने मनोरम निनादों से विरुदावली में निबद्ध वीरोचित कृत्यों का ख्यापन करती हो॥३५॥

**स्तोतुं प्रवृत्तमपि मां निगमस्तुतां त्वां**
**व्यासज्यमानकरणं विषयेष्वजस्रम्।**
**अन्तर्मणिध्वनिभिरच्युतपादुके! त्वं**
**संबोधयस्यनुकलं सहजानुकम्पा॥३६॥**

हे अच्युत की पादुके! सहज अर्थात् स्वाभाविक दया वाली तुम अपने भीतरी मणिनादों से उस समय मुझे सम्बोधित = सावधान करती हो जब मैं वेदों के द्वारा संस्तुत तुम्हारे गुणों के गान में प्रवृत्त होता हुआ भी निरन्तर विषयों में संसक्त इन्द्रियों वाला हो जाता हूँ! विषयों से पराङ्मुख करके तुम मेरे चित्त को श्रीभगवच्चरणों में लगाती हो, यह अभिप्राय है॥३६॥

देवस्य दानवरिपोर्मणिपादरक्षे!
प्रस्थानमङ्गलविधौ प्रतिपन्ननादाम्।
मा भैष्ट साधव इति स्वयमालपन्तीं
जाने जगत्त्रितयरक्षणदीक्षितां त्वाम्॥३७॥

हे मणिपादुके! दानवों के शत्रु देव श्रीनारायण के प्रस्थानरूप मङ्गलकृत्य में नादों को स्वीकार करने वाली तथा हे साधुजनों! आप भयभीत न हों, ऐसा स्वयम् आलाप कती हुई आपको मैं तीनों लोकों की रक्षा में दीक्षित ही समझता हूँ। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३७॥

स्वच्छन्दविभ्रमगतौ मणिपादुके! त्वं
पादारविन्दमधिगम्य परस्य पुंसः।
जातस्वना प्रतिपदं जपसीव सूक्तं
विद्रावणं किमपि वैरिवरूथिनीनाम्॥३८॥

हे मणिपादुके! परम पुरुष भगवान् श्रीनारायण के स्वच्छन्दलीलाविहार में उनके चरणकमल को प्राप्त करके तुम ध्वनि करती हुई मानो शत्रुओं की सेना के विद्रावण (पलायनसाधन) सूक्त का प्रत्येक क्षण में जप करती हो। पादुका के शब्दों को सुनने से ही शत्रुओं की सेना पलायित हो जाती है, यह अभिप्राय है। पादुका के नादों में विद्रावणसूक्तमन्त्रों की उद्भावना करने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥३८॥

रक्षार्थमाश्रितजनस्य समुज्जिहाने
रङ्गेश्वरे शरदि शेषभुजङ्गतल्पात्।
नादास्तव श्रुतिसुखा मणिपादरक्षे!
प्रस्थानशङ्खनिनदात् प्रथमे भवन्ति॥३९॥

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी जब शरद्-ऋतु में आश्रित प्रपन्नजन की रक्षा के लिए शेषनाग की शय्या को त्यागते हैं तब कानों में सुख प्रदान करने वाले तेरे निनाद प्रास्थानिक शङ्खनाद के पहले ही होते हैं। व्यतिरेक अलङ्कार॥३९॥

**नित्यं पदाम्बुरुहयोरिह गोपिकां त्वां**
**गोपीजनप्रियतमो मणिपादरक्षे।**
**सम्पन्नघोषविभवां गतिभिर्निजाभिः**
**प्रीत्यैव न त्यजति रङ्गसमाश्रितोऽपि॥४०॥**

हे मणिपादुके! गोपीजनों के प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण श्रीरङ्गक्षेत्र को स्वीकार करके भी उनके चरणकमलों की नित्य गोपिका = रक्षिका (गुपू रक्षणे) तथा अपनी ही गतियों से सम्पन्न निनाद-विभुता वाली तुमको प्रेम के कारण ही नहीं छोड़ते॥४०॥

**प्रायः पदावनि! विभोः प्रणतार्तिहन्तुः**
**प्रस्थानमङ्गलविधौ प्रथमोद्यतानि।**
**त्वच्छिञ्जितानि सपदि स्वयमारभन्ते**
**कालोचितान् कनककाहलशङ्खनादान्॥४१॥**

हे पादुके! प्रणत पुरुषों की पीड़ा का नाश करने वाले प्रभु श्रीरङ्गनाथजी के प्रास्थानिक मङ्गलकार्य में अर्थात् माङ्गल्य को प्रकट करने के लिए (निमित्तात् कर्मयोगे, से निमित्तसप्तमी) प्रथम वार ही प्रादुर्भूत तुम्हारे निनाद उस यात्राकाल के योग्य, स्वर्णमय काहल और शङ्ख के नादों का स्वयम् आरम्भ करते हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४१॥

**आम्रेडितश्रुतिगणैर्निनदैर्मणीना-**
**माम्नायवेद्यमनुभावमभङ्गुरं ते।**
**उद्गास्यतां नियतमिच्छसि सामगानां**
**तानप्रदानमिव शौरिपदावनि! त्वम्॥४२॥**

हे श्रीशौरिभगवान् की पादुके! आम्नाय = वेदों से ही ज्ञेय तथा अभङ्गुर (पूर्ण) उस तुम्हारे माहात्म्य का उच्चस्वर से गान प्रारम्भ करने वाले सामगायकों को मानो तुम वेदसमूहों का आवर्तन करने वाले अर्थात् वेदतुल्य अपने अन्तर्मणिरवों से तान प्रदान करती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४२॥

**रथ्यासु रङ्गनृपतेर्मणिपादरक्षे!**
**त्वद्गर्भरत्नजनितो मधुरः प्रणादः।**
**संदर्शनोत्सुकधियां पुरसुन्दरीणां**
**संपद्यते श्रवणमोहनमन्त्रघोषः॥४३॥**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी की रथ्याओं (राजमार्ग) में तुम्हारे अन्दर विद्यमान रत्नों का मधुर नाद भगवान् के दर्शन के लिए उत्कण्ठित बुद्धि वाली नगरसुन्दरियों के कानों में मोहन = चित्ताकर्षक अर्थात् प्रेमावेश का जनक मन्त्रघोष हो जाता है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४३॥

**आकस्मिकेषु समयेष्वपवार्य भृत्या-**
**नन्तःपुरं विशति रङ्गपतौ सलीलम्।**
**व्यामोहनेन भवती सुदृशामधीते**
**मञ्जुस्वनेन मदनोपनिषद्रहस्यम्॥४४॥**

हे पादुके! आकस्मिक समयों में जब श्रीरङ्गनाथजी परिजनों को दूर करके लीलापूर्वक अन्तःपुर में प्रवेश करते हैं तब आप अपने व्यामोहन अर्थात् प्रेमावेश के जनक मनोहर निनाद से मानो सुन्दर नयनों वाली लक्ष्मी आदि के समक्ष कामोपनिषद् अर्थात् कामशास्त्र के रहस्य का उपदेश देती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४४॥

**यात्राविहारसमयेषु समुत्थितं ते**
**रङ्गाधिपस्य चरणावनि! मञ्जुनादम्।**

पर्याकुलेन्द्रियमृगग्रहणाय पुंसां
संमोहनं शबरगीतमिव प्रतीमः॥४५॥

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी के यात्राविहार के समय प्रकट होने वाला रमणीय तुम्हारा नाद पुरुषों के व्याकुल इन्द्रियरूपी मृगों को पकड़ने के लिए सम्मोहन रूप किरातगीत जैसा हमें प्रतीत होता है। जैसे शबरों का गान सुनकर मृग स्तब्ध हो जाते हैं, वैसे ही पादुका के नादों के श्रवण से इन्द्रियाँ भी काबू में रहती हैं, यह अभिप्राय है॥४५॥

प्रायेण सह्यदुहितुर्नदराजकन्या
जामातुरागमनसूचनमीहमाना।
मञ्जुप्रणादसुभगैर्मणिपादुके! त्वा-
मन्तर्युतामकृत यौतकरत्नखण्डैः॥४६॥

हे मणिपादुके! नदराज = सागर की कन्या लक्ष्मीजी कावेरी नदी के जामाता श्रीरङ्गनाथजी के आगमन की सूचना चाहती हुई मनोहर ध्वनि करने से सुभग (रमणीय) यौतक (पिता आदि के द्वारा प्रदत्त स्त्रीधन) रत्नखण्डों से तुमको अन्तर्गर्भवती बना दी थी। कावेरीनदी सागर की पत्नी है अतः सागरकन्या लक्ष्मी के पति भगवान् उसके जामाता हुए। पादुकानाद में कावेरी के लिए भगवान् के आगमन की सूचना उद्भावित है, अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥४६॥

नित्यं विहारसमये निगमानुयातै-
र्विक्षेपताण्डवितगर्भमणिप्रसूतैः।
नादैः स्वयं नरकमर्दनपादरक्षे!
नादावसाननिलयं वदसीव नाथम्॥४७॥

हे नरकासुर के सम्मर्दनकारी श्रीभगवान् की पादुके! तुम विहार के समय सदा वेदों का अनुसरण करने वाले (वेदतुल्य) अपने चरणप्रक्षेपचलितमणियों से उत्पादित नादों से स्वयं ही मानो

नादसमाप्ति-काल में अवस्थान वाले अपने स्वामी से वार्ता करती हो। नाद के अन्तसमय = योगदशा में जब प्राणवायुशब्द की निवृत्ति होती है तब भगवान् का प्रकट रूप से अवस्थान होता है। इस प्रकार के भगवान् से पादुका स्वयं बोलती है, यह भाव है॥४७॥

**साधारणेषु युवयोर्मणिपादरक्षे!**
**देवस्य दानवरिपोस्त्रिषु विक्रमेषु।**
**अद्यापि शिञ्जितवशादनुवर्तमानं**
**न्यूनाधिकत्वविषयं कलहं प्रतीमः॥४८॥**

हे श्रीभगवान् की मणिपादुकायें! (दोनों पादुकाओं का सम्बोधन) दानवों के शत्रु श्रीभगवान् के और तुम दोनों के साधारण तीनों चरणविक्षेपों में आज भी हम न्यून और आधिक्य को लेकर भूषारवों के व्याज से होने वाले कलह को समझते हैं। अपह्नुतिगर्भ उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४८॥

**प्रायः पदावनि! विभोः प्रणयापराधे**
**मानग्रहं शमयितुं महिषीजनानाम्।**
**उच्चारयन्ति निनदैस्तव गर्भरत्ना-**
**न्युद्घातमक्षरमुपाश्रयभारतीनाम्॥४९॥**

हे पादुके! प्रभु श्रीरङ्गनाथजी जब प्रेमापराध कर देते हैं तब लक्ष्मी आदि महारानियों के प्रणयकोप (मान) ग्रह को शान्त करने के लिए तुम्हारे अन्दर विद्यमान रत्न अपने निनादों से समीपवर्ती वेदों (भारती) के उद्घात अर्थात् आद्य अक्षर प्रणव का उच्चारण करते हैं। रूपक से संकीर्ण उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१४९॥

**अन्तश्चरेषु पवनेषु जितेष्वभिज्ञाः**
**प्रत्यङ्मुखीं परिणमय्य मनःप्रवृत्तिम्।**
**आस्वादयन्ति सरसं मणिपादरक्षे!**
**नादावसानसमये भवतीनिनादम्॥५०॥**

हे मणिपादुके! अभिज्ञ अर्थात् योगीजन शरीर के भीतर संचरण करने वाले प्राण आदि पवनों को जब अपने वश में कर लेते हैं तब अपनी मन:प्रवृत्ति को प्रत्यक्स्वरूप भगवान् की ओर परिणत करके नादावसान के समय (प्राण आदि के उपघात से उत्पन्न होने वाले शब्दों के उपरम-काल में) आपके सरस निनाद को सुनते हैं।।५०।।

**दाक्षिण्यमत्र नियतं नियता सुधाऽस्मि-**
**न्नित्युद्गतो नियतमच्युतपादरक्षे।**
**प्रत्येकसंश्रितपदस्तुतये भवत्योः**
**संघर्षवाद इव मध्यमणिप्रणादः।।५१।।**

हे श्रीअच्युत भगवान् की चरणपादुके! (यहाँ भी दोनों पादुकायें गृहीत हैं) आप दोनों के अन्दर विद्यमान प्रणाद (अव्यक्त ध्वनि) एक-एक करके अपने आश्रित श्रीभगवच्चरणों की स्तुति के लिए इसमें दाक्षिण्य (दाहिने पैर में वामभिन्नत्व, सरलता, उदारता) व्याप्त है और इसमें (वामचरण में) सुधा (अमृत) व्याप्त है, इस तरह से मानो संघर्षवाद करके उद्भूत होता है।।५१।।

**संचारकेलिकलहायितगर्भरत्ना**
**सांसिद्धिकं सकलजन्तुषु सार्वभौमम्।**
**रक्षार्थिनां प्रथयसीव पदावनि! त्वं**
**रङ्गेश्वरस्य निरवग्रहमानृशंस्यम्।।५२।।**

हे पादुके! संचारकेलि में कलह करने वाले अन्दर रत्न हों जिसके ऐसी तुम सारे जन्तुओं में श्रीरङ्गनाथजी के स्वाभाविक और सारी भूमियों में विदित तथा निरवरुद्ध कारुण्य का प्रख्यापन रक्षा चाहने वालों के प्रति करती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।।५२।।

**प्राप्तुं परं पुरिशयं पुरुषं मुनीना-**
**मभ्यस्यतामनुदिनं प्रणवं त्रिमात्रम्।**

**श्रीरङ्गराजचरणावनि! शिञ्जितं ते**
**शङ्के समुन्नयनसामविशेषघोषम्॥५३॥**

हे श्रीरङ्गराज की पादुके! जो मुनिजन प्राणियों में अन्तर्यामी के रूप में शयन करने वाले परम पुरुष श्रीभगवान् को प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन तीन मात्राओं वाले ओङ्कार का जप करते हैं उनके लिए तेरे भूषणों की ध्वनि समुन्नयन = ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराने वाले सामविशेष का घोष है, ऐसा मैं समझता हूँ॥५३॥

**नित्यं समाहितधियामुपदर्शयन्ती**
**नागेशयं किमपि धाम निजोर्ध्वभागे।**
**हृत्कर्णिकामनुगता मणिपादुके! त्वं**
**मञ्जुस्वना स्फुरसि वाग्भ्रमरी परेव॥५४॥**

हे मणिपादुके! समाहित अर्थात् विकल्पशून्य बुद्धि वाले पुरुषों के हृदयकमल की कर्णिका (बीजकोश) में नित्य गयी हुई तुम अपने ऊपर वाले भाग (उपनिषद्) में अनिर्वचनीय, अशेषकल्याणगुणनिधि, तेज:स्वरूप श्रीशेषशायी (नागेशय) भगवान् श्रीरङ्गनाथजी को प्रदर्शित करती हुई मनोहर नादों वाली अत्युत्कृष्ट वाक् (श्रुति) रूपी भ्रमरी जैसी स्फुरित होती हो। भ्रमरी भी अपने ऊर्ध्वभाग में नागेशय = नाग अर्थात् मेघ में विद्यमान नीलरूप प्रभा को दिखाती हुई मनोहर स्वर करती स्फुरित होती है। श्लेष से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥५४॥

**मानेषु दानवरिपोर्मणिपादरक्षे!**
**त्वामाश्रितेषु निगमेष्ववधीरितेषु।**
**मञ्जुस्वनैर्वदसि मैवमितीव मात-**
**र्वेलां लिलङ्घयिषतो मनुजान्निरोद्धुम्॥५५॥**

हे मात:! दानवों के शत्रु श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तुमको ही स्वीकार करने वाले अर्थात् तुम्हारे प्रतिपादन में ही जिनका तात्पर्य

है ऐसे निगम = वेद प्रमाण जब तिरस्कृत हो जाते हैं तब मर्यादा के अतिक्रमण की इच्छा करने वाले मनुष्यों को रोकने के लिए तुम 'ऐसा मत करो', इस प्रकार से मनोरम स्वरों में बोलती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥५५॥

**क्रन्दत्सु कातरतया करणव्यपाये**
**रङ्गोपशल्यशयितेषु जनेष्वलक्ष्यम्।**
**आसीदसि त्वरितमस्खलितानुकम्पा**
**मातेव मञ्जुनिनदा मणिपादुके! त्वम्॥५६॥**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गक्षेत्र के सीमान्त प्रदेशों में सोये हुए प्राणियों के इन्द्रिय आदि के निर्गमन-काल में अर्थात् मरणकाल में कातरता से किसी रक्षक को न देखकर क्रन्दना करने पर तुम मनोहर निनादों से सम्पृक्ततया अविच्छिन्न अनुकम्पा से पूर्ण होकर माता की तरह शीघ्र ही उपस्थित हो जाती हो॥५६॥

**भास्वत्सुवर्णवपुषां मणिपादरक्षे!**
**पद्मासहायपदपद्मविभूषणानाम्।**
**मञ्जीरशिञ्जितविकल्पितमञ्जुनादा**
**मञ्जूषिकेव भवती निगमान्तवाचाम्॥५७॥**

हे मणिपादुके! मञ्जीर = नुपुर के शब्द से विकल्पित अर्थात् तुल्य नादों वाली आप प्रभा वाला सुवर्ण (स्वर्ण और सुन्दर अक्षर) ही जिनका शरीर है ऐसे श्रीनारायण (पद्मासहाय) के चरणकमलों के भूषण उपनिषद् वचनों की पेटिका जैसी हैं॥५७॥

**रङ्गेशपादकमलात् त्वदधीनवृत्ते-**
**रन्येषु केषुचिदलक्ष्यमनन्यवेद्यम्।**
**आम्नायगूढमबहिर्मणिभिः क्वणद्भि-**
**र्नेदीयसां प्रथयसीव निजानुभावम्॥५८॥**

हे पादुके! तुम्हारे ही अधीन जिनकी स्थिति है ऐसे श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमल से अन्य किन्हीं पुरुषों में जो अदृश्य है तथा जो स्वयम् के द्वारा ही ज्ञेय है, ऐसे वेदों में गुप्त रहने वाले अपने प्रभाव को तुम अत्यन्त निकट रहने वाले अपने सेवकों के समक्ष ही मुखरित (शब्दायमान) आभ्यन्तरमणियों से प्रख्यापित करती हो॥५८॥

**कालोपपन्नकरणात्ययनिर्विचेष्टे**
**जातश्रमे मयि जनार्दनपादरक्षे।**
**आश्वासनाय पुरतः प्रसरन्तु मात-**
**र्वार्ताहरास्तव रवाः शमितार्तयो मे॥५९॥**

हे मातः! श्रीजनार्दन की चरणपादुके! जब मैं मरणकाल में इन्द्रियों के निर्गमन से निश्चेष्ट और श्रम से युक्त हो जाऊँ तब पीड़ाओं को शान्त करने वाले दूत बनकर प्रस्तुत हुए आपके कलरव मेरे सामने आश्वासन के लिए फैलें!॥५९॥

**संरक्षणाय समये जगतां त्रयाणां**
**यात्रासु रङ्गनृपतेरुपतस्थुषीषु।**
**संपत्स्यते श्रुतिसुखैर्मणिपादरक्षे!**
**मङ्गल्यसूक्तिरनघा तव मञ्जुनादैः॥६०॥**

हे मणिपादुके! तीनों लोकों की रक्षा के लिए श्रीरङ्गनाथजी की यात्रा का समय जब उपस्थित होता है तब कानों में सुख प्रदान करने वाले तेरे सुमधुर नादों से अनघ अर्थात् निष्कल्मष (मनोज्ञ) माङ्गल्यकारिणी सूक्ति (शुभ आशीर्वाद) निष्पन्न होगी। नादों के मङ्गल्यसूक्ति के रूप में परिणत होने से परिणामालङ्कार है॥६०॥

**गर्भोपलैर्गमनवेगवशाद्विलोलै-**
**र्वाचालिता मधुभिदो मणिपादरक्षे।**

**प्रस्तौषि भावितधियां पथि देवयाने**
**प्रस्थानमङ्गलमृदङ्गविशेषघोषम्॥६१॥**

हे श्रीमुरारि की मणिपादुके! गमन के समय वेग के बल से विशेषतः चञ्चल अपने आभ्यन्तरस्थित रत्नों से मुखरित (वाचालित, नादों वाली) होती हुई तुम देवयान वाले मार्ग (अर्चिरादिमार्ग) में प्रसक्त मति वाले मुमुक्षुओं के प्रयाण में होने वाले मङ्गल के लिए प्रस्तुत मृदङ्ग के घोष (ध्वनि) को प्रस्तुत करती हो। पादुकाभक्तों को श्रीभगवद्धाम की प्राप्ति होती है, यह अभिप्राय है। परिणाम-अलङ्कार॥६१॥

**पर्यङ्कमाश्रितवतो मणिपादुके! त्वं**
**पादं विहाय परिकल्पितमौनमुद्रा।**
**श्रोतुं प्रभोरवसरं दिशसीव मात-**
**र्नाभीसरोजशयितार्भकसामगीतिम्॥६२॥**

हे मणिपादुके! जब भगवान् श्रीरङ्गनाथजी शयन-हेतु अपने पलँग पर चले जाते हैं तब तुम प्रभु के चरण को त्याग करके मौनमुद्रा को स्वीकार करती हुई मानो नाभिकमल में शयन करने वाले बालक ब्रह्माजी के सामगान को सुनने के लिए प्रभु को अवसर देती हो। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥६२॥

**भोगाय देवि! भवती मणिपादरक्षे!**
**पद्मासहायमधिरोप्य भुजङ्गतल्पे।**
**विश्वस्य गुप्तिमधिकृत्य विहारहीना**
**वाचंयमा किमपि चिन्तयतीव कार्यम्॥६३॥**

हे देवि! मणिपादुके! भोग के लिए लक्ष्मीपति श्रीरङ्गनाथजी को शेषशय्या पर चढ़ा कर विहार (संचार) से हीन हुई आप विश्व की रक्षा को लेकर शब्द न करती हुई (वाचंयमा) मानो किसी विशिष्ट कार्य का चिन्तन करती हो। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥६३॥

नित्यप्रबोधसुभगे पुरुषे परस्मिन्
निद्रामुपेयुषि तदेकविहारशीला।
मञ्जुस्वनं विजहती मणिपादुके! त्वं
संवेशमिच्छसि परं चरणान्तिकस्था॥६४॥

हे मणिपादुके! नित्य अर्थात् सनातन ज्ञान (प्रबोध) से मनोज्ञ (सुभग) परम पुरुष भगवान् श्रीरङ्गनाथजी जब निद्रा को स्वीकार कर लेते हैं अर्थात् शेषशय्या पर जब शयन करते हैं तब एक मात्र उनके साथ ही विचरण के स्वभाव वाली तुम मनोहर नाद का परित्याग करती हुई श्रीभगवान् के चरणों के समीप स्थित होकर केवल शयन की इच्छा करती हो। नित्य प्रबोध वाले निद्रा को प्राप्त होते हैं, इस उक्ति से विरोधाभास अलङ्कार है। पादुका के विशेषण की महिमा से पत्नीत्व की प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार भी है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार के साथ दोनों अलङ्कारों की संसृष्टि आकलनीय है॥६४॥

लास्यं विहाय किमपि स्थितमाश्रयन्ती
रङ्गेश्वरेण सहिता मणिमण्डपेषु।
मञ्जुस्वनेषु विरतेष्वपि विश्वमेतन्
मौनेन हन्त भवती मुखरीकरोति॥६५॥

हे मणिपादुके! मणिमय अर्थात् मणिप्रचुर मण्डपों में श्रीरङ्गेश्वर (श्रीरङ्गनाथ और सूत्रधार) के साथ आप लास्य (नृत्त, यहाँ संचार ही लास्य के रूप में अभेदरूप से आरोपित है) को त्याग करके किसी अनिर्वचनीय अवस्थान (गतिनिवृत्ति) को स्वीकार करती हुई मनोहर शब्दों के विरत हो जाने पर भी इस विश्व को अपने मौन से वाचालित करती हैं। तुम्हारे नाद की निवृत्ति तुम्हारे लास्य के प्रेक्षकों के श्लाघाघोष का कारण हुई, यह अभिप्राय है। नदी के वृत्तान्त की प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार है॥६५॥

विस्मापितेव भवती मणिपादरक्षे!
वैरोचनेर्वितरणेन तथाविधेन।
एतावताऽलमिति देवि! गृहीतपादा
नाथं त्रिविक्रममवारयतेव नादैः॥६६॥

हे देवि! मणिपादुके! उस प्रकार के त्रैलोक्यदानरूप विरोचन के पुत्र बलि के दान से विस्मय को प्राप्त हुई सी तुम मानो पैर पकड़कर प्रभु त्रिविक्रम भगवान् को अपने नादों से रोक रही थी कि अब इस आक्रमण कृत्य से विरत हों। बलि को अब अधिक पीड़ित मत करो, ऐसा निवारण पादुका ने किया, यह अभिप्राय है॥६६॥

सामानि रङ्गनृपतिः सरसं च गीतं
लीलागतेषु विनिवारयति स्वतन्त्रः।
श्रोतुं तव श्रुतिसुखानि विशेषवेदी
मञ्जूनि काञ्चनपदावनि! शिञ्जितानि॥६७॥

हे सुवर्ण की पादुके! मैं यही मानता हूँ कि श्रीरङ्गनाथजी स्वतन्त्र होकर अपने लीलापूर्वक गमनों में सामों (वैदिकगीति) और सरस गीत का जो निवारण करते हैं वह इसलिए कि वे विशेष तारतम्य को जानने वाले तुम्हारे मनोहर और कानों में सुख प्रदान करने वाले शिञ्जान (भूषारव) को सुनना चाहते हैं। परिकर और फलोत्प्रेक्षा अलङ्कार॥६७॥

तत्तादृशीं प्रथयता रुचिरां स्वरेखां
वर्णाधिकेन मधुसूदनपादरक्षे।
पश्यन्ति चित्तनिकषे विनिवेश्य सन्तो
मञ्जुस्वनेन तव नैगमिकं सुवर्णम्॥६८॥

हे मधुसूदन की चरणपादुके! योगी साधुजन अपने चित्तरूपी कसौटी (निकष) में वेदसम्बन्धी शोभन वर्ण रूप स्वर्ण को रुचिर

निजरेखा को प्रख्यापित करने वाले अक्षरात्मक शब्द से भी अधिक तुम्हारे मनोहर निनाद से चित्त में आकलित करते हैं। उत्तम और अनुत्तम स्वर्ण को जैसे वणिग्जन कसौटी में परखते हैं वैसे ही तारतम्य का विवेचन करते हैं, यह अभिप्राय है। श्लेष से अनुप्राणित एकदेशविवर्तिरूपक अलङ्कार॥६८॥

**मुग्धस्य हन्त भवतीं स्तुवतो ममैता-**
**न्याकर्ण्य नूनमयथायथजल्पितानि।**
**इत्थं वद त्वमिति शिक्षयितुं प्रणादान्**
**मञ्जूनुदीरयसि माधवपादुके! त्वम्॥६९॥**

हे श्रीमाधव की पादुके! तुम्हारे माहात्म्य के अपरिज्ञान से तुम्हारी स्तुति करते हुए मेरे इन श्रूयमाण असंगत वचनों को सुनकर के तुम इस प्रकार अर्थात् मेरे शिञ्जान के समान बोलो, ऐसी मुझे शिक्षा देने के लिए ही मनोहर ध्वनियों को झङ्कृत करती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥६९॥

**आदौ सहस्रमिति यत् सहसा मयोक्तं**
**तुष्टूषता निरवधिं महिमार्णवं ते।**
**आम्रेडयस्यथ किमेतदमृष्यमाणा**
**मञ्जुस्वनेन मधुजिन्मणिपादरक्षे॥७०॥**

हे श्रीमधुविजय की पादुके! आदि में (पादुकास्तुति की अनुमति के समय) निःसीम तेरे माहात्म्य-सागर की स्तुति की इच्छा करने वाला मैं 'एक हजार' संख्या का कथन किया जिसे तुम सहन न करती हुई अपने मनोहर रव से पुनः पुनः ख्यापित करती हो। पादुका के माहात्म्य को एक हजार श्लोकों में परिच्छिन्न नहीं किया जा सकता, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥७०॥

**परिमितपरिबर्हं पादुके! संचरिष्णौ**
**त्वयि विनिहितपादे लीलया रङ्गनाथे।**

**नियमयति विपञ्चीं नित्यमेकान्तसेवी**
**निशमयितुमुदारान्नारदस्ते निनादान्॥७१॥**

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी जब तुम्हारे ऊपर अपने चरणकमलों को रखकर अत्यल्प-परिच्छद होकर लीलापूर्वक विचरण करने लगते हैं तब नित्य ही एकान्त का सेवन करने वाले नारद तुम्हारे उत्कृष्ट निनादों को सुनने के लिए अपनी वीणा को नियमित कर देते हैं। वीणा नहीं बजाते, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥७१॥

**विहरति विशिखायां रङ्गनाथे सलीलं**
**गमनवशविलोलैर्गर्भरत्नैः क्वणन्त्याः।**
**मणिवलयनिनादैर्मञ्जुलैस्ते दिशन्ति**
**प्रतिवचननिनादं पादुके! पौरनार्यः॥७२॥**

हे पादुके! जब श्रीरङ्गनाथजी विशिखा अर्थात् श्रीरङ्गनगर की गली में लीला के साथ विहार करने लगते हैं तब गमन के बल से चञ्चल हुए अपने आभ्यन्तर (भीतर विद्यमान) रत्नों से शब्द करती हुई तुमको अपने मनोज्ञ मणिमयवलयनिनादों से (मणिप्रचुरकङ्कण की ध्वनियों से) नगर की नारियाँ प्रत्युत्तर-निनाद समर्पित करती हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥७२॥

**अनुकृतसवनीयस्तोत्रशस्त्रां निनादै-**
**रनुगतनिगमां त्वामास्थितो रङ्गनाथः।**
**अनितरविबुधार्हं हव्यमास्वादयिष्यन्**
**दिशति चरणरक्षे यज्ञवाटं द्विजानाम्॥७३॥**

हे पादुके! अपने निनादों से अग्निष्टोम आदि सोमयज्ञों में होने वाले तीनों सवनों के अङ्ग के रूप में अनुष्ठीयमान स्तोत्रों और शस्त्रों का अनुकरण करने वाली तथा जिसका वेद भी अनुगमन करेंगे, ऐसी तुम्हारे ऊपर विद्यमान श्रीरङ्गनाथजी अन्यदेवताओं के लिए अयोग्य हव्य का आस्वादन करते हुए द्विजों की यज्ञशाला

में प्रवेश करते हैं। स्तोत्र-शस्त्रात्मक ब्राह्मणभाग से ज्ञेय भगवान् उसी के समान पादुका पर बैठकर आते हैं, इस कथन से उपमा-संकीर्ण उदात्त अलङ्कार है। सामवेदियों के द्वारा किया जाने वाला गानविशिष्ट मन्त्र से साध्य गुणिनिष्ठ देवगुणों का कथन स्तोत्र कहलाता है तथा वही ऋग्वेदियों के द्वारा किया जाने वाला अप्रगीतमन्त्रसाध्य-गुणाभिधान शस्त्र कहलाता है॥७३॥

**चरणकमलमेतद्रङ्गनाथस्य नित्यं**
**शरणमिति जनानां दर्शयन्ती यथावत्।**
**प्रतिपदमपि हृद्यं पादुके! स्वादुभावा-**
**दनुवदति परं ते नादमाम्नायपङ्क्तिः॥७४॥**

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी का यह परिदृश्यमान चरणकमल ही जनों का सदैव रक्षक (शरण) है, इस तथ्य को यथावत् प्रदर्शित करती हुई वेदों की श्रेणी पदे पदे स्वादुभाव से तेरे नाद का अनुवाद करती है। कविप्रौढोक्तिसिद्ध उपमालङ्कार॥७४॥

**रहितभुजगतल्पे त्वत्सनाथे प्रजानां**
**प्रतिभयशमनाय प्रस्थिते रङ्गनाथे।**
**प्रथममुदयमानः पादुके! तूर्यघोषात्**
**प्रतिफलति निनादः पाञ्चजन्ये त्वदीयः॥७५॥**

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी जब शेषशय्या से अलग होकर तुम्हारे साथ लोगों के भय के कारणीभूत असुर आदि के विनाश के लिए प्रस्थान करते हैं तब परिजनों द्वारा किये जाने वाले तूर्य (वाद्यविशेष) के घोष से पहले होने वाला तुम्हारा नाद 'पाञ्चजन्य' नामक भगवान् के शङ्ख में प्रतिध्वनि करता है॥७५॥

**बकुलधरतनुस्त्वं संहितां यामपश्यः**
**श्रुतिपरिषदि तस्याः सौरभं योजयन्ति।**

**हरिचरणसरोजामोदसंमोदितायाः**
**प्रतिपदरमणीयाः पादुके! ते निनादाः॥७६॥**

हे पादुके! श्रीहरि के चरणकमल के सौरभ (सुगन्ध) से सम्यग्रूप से मोदित तुम्हारे पदे पदे रमणीय निनाद श्रुतियों की परिषद् में उस संहिता (द्रविडोपनिषद्) के सौरभ को नियोजित करते हैं जिस संहिता का दर्शन वकुल के पुष्पाभरण को अपने शरीर में धारण करने वाले श्रीशठकोप मुनि ने किया था॥७६॥

**दनुतनयनिहन्तुर्जैत्रयात्रानुकूले**
**शरदुपगमकाले सह्यजामापतन्ति।**
**श्रुतिमधुरमुदारं शिक्षितुं ते निनादं**
**परिहृतनिजवासाः पादुके! राजहंसाः॥७७॥**

हे पादुके! दनु के पुत्र दानवों का वध करने वाले श्रीरङ्गनाथजी की जब विजययात्रा के अनुकूल शरद्-ऋतु का काल आता है, तब राजहंस अपने निवासस्थान (मानसरोवर) को त्यागकर मानो कानों में मधुर लगने वाले तुम्हारे निनाद का अभ्यास करने के लिए सह्यजा = कावेरी नदी में आ जाते हैं। यहाँ पर शरत्काल में कावेरी नदी में हंसों का आगमन पादुकानाद के अभ्यासार्थ हुआ है, यह उद्भावन है। एवञ्च, उत्प्रेक्षालङ्कार से हंसरव की अपेक्षा पादुकानादों का उत्कर्ष गम्य होने से व्यतिरेकालङ्कार-ध्वनि है॥७७॥

**विहरणसमयेषु प्रत्यहं रङ्गभर्तु-**
**श्चरणनखमयूखैः सोत्तरीया विशुद्धैः।**
**परिणमयसि नादं पादुके! गर्भरत्नै-**
**र्दमयितुमिव शिष्यान् दीर्घिकाराजहंसान्॥७८॥**

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी के प्रतिदिन होने वाले विचरण के समय उनके विशुद्ध चरणनखों की किरणों से ऊपरी परिधान वाली तुम श्रीरङ्गनगर की वापियों में रहने वाले शिष्य राजहंसों को मानो

शिक्षित करने के लिए आभ्यन्तर भाग में जड़ित रत्नों से नाद का उत्पादन करती हो। फलोत्प्रेक्षा॥७८॥

परिषदि विरतायां पादुके! रङ्गभर्तुः
परिजनमपवार्य प्रस्थितस्यावरोधान्।
मणिनिकरसमुद्यन्मञ्जुनादापदेशा-
दभिलपसि यथार्हं नूनमालोकशब्दम्॥७९॥

हे पादुके! गोष्ठी की समाप्ति में परिचारक जन को बाहर ही रोक कर अन्तःपुरों की ओर प्रस्थान करने के लिए तत्पर श्रीरङ्गनाथजी के मणिसमुदाय से निकलने वाले मनोहर नादों के बहाने तुम निश्चय ही आलोकशब्द का अभिलाप करती हो। अपह्नुति से संकीर्ण उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥७९॥

गुरुजननियतं तद्गोपिकानां सहस्रं
दिनकरतनयायाः सैकते दिव्यगोपः।
वशमनयदयत्नाद्वंशनादानुयातै-
स्तव खलु पदरक्षे! तादृशैर्मञ्जुनादैः॥८०॥

हे पादुके! दिव्य गोप भगवान् श्रीकृष्ण ने रवितनया (यमुना) के तट पर वंशीनाद के अनुकूल तुम्हारे उस प्रकार के लोकोत्तर रमणीय नादों से उन हजारों गोपियों को भी अपने वश में कर लिया था जो पिता-पति आदि अभिभावकों से नियन्त्रित थीं। समाधि-अलङ्कार॥८०॥

निजपदविनिवेशान्निर्विशेषप्रचारान्
परिणमयति भक्तान् रङ्गनाथो यथा माम्।
इति विहरणकाले मञ्जुशिञ्जाविशेषै-
र्हितमुपदिशसीव प्राणिनां पादुके! त्वम्॥८१॥

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी अपने भक्तों को वैसे ही अपने पद (शुद्धसत्त्व स्थान) में विनिविष्ट करने से निर्विशेष = विलक्षणता से

शून्य प्रचार (आवरण) से सम्पृक्त कर देते हैं जैसे मुझे अपने पद (चरण) में विनिविष्ट करके निर्विशेष प्रचार (गमन) से सम्पन्न करते हैं, इस प्रकार से तुम संचार के समय अपने मनोज्ञ शिञ्जा (रव) के प्रभेदों से प्राणियों को कल्याण का उपदेश करती हो। उपमासंकीर्ण उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥८१॥

**अयमयमिति तैस्तैः कल्पितानध्वभेदान्**
**प्रतिपदमवलोक्य प्राणिनां व्याकुलानाम्।**
**चटुलमणिकलापैः शौरिपादावनि! त्वं**
**मुखरयसि विहारैर्मुक्तिघण्टापथाग्र्यम्॥८२॥**

हे शौरि (श्रीकृष्ण) की पादुके! उन उन शङ्कर आदि देवगणों के द्वारा 'यह मार्ग है, यह मार्ग है', इस प्रकार से पदे पदे कल्पित मार्ग विशेषों को देखकर निश्चय न कर पाने के कारण व्याकुल चित्त वाले प्राणियों के मोक्ष के बहुजनप्रणम्य मार्ग को तुम अपने लोल मणिकलापों वाले विहारों से प्रकाशित करती रहती हो। श्रीभगवान् का चरणकमल ही सारे प्राणियों के लिए मुक्ति का उपाय है, ऐसा कहती हो, यह अभिप्राय है। वाचकपद का प्रयोग न होने से उत्प्रेक्षा-अलङ्कार ध्वनि है॥८२॥

**पदकमलमुदारं दर्शयन्ती मुरारेः**
**कलमधुरनिनादा गर्भरत्नैर्विलोलैः।**
**विषमविषयतृष्णाव्याकुलानि प्रजाना-**
**मभिमुखयसि नूनं पादुके! मानसानि॥८३॥**

हे पादुके! तुम भगवान् श्रीमुरमथन के उदार चरणकमल को दिखलाती हुई तथा अपने भीतर स्थित चलायमान रत्नों से अव्यक्त मधुर नाद से सम्पृक्त होकर प्रजाओं के विषम विषयतृष्णा से व्याकुल हुए चित्तों को निश्चय ही भगवान् के सम्मुख करती रहती हो। यहाँ 'मानसानि', इस पद से मृगों का भी रूपकविधा से उपादान

है। ऐसी अवस्था में 'कमल' पद पद्म और जल दोनों अर्थों में अभिप्रेत होगा। श्रीभगवान् का चरणकमल ही जल है, जहाँ पर पादुका प्राणियों के मृगतृष्णाव्याकुल मन रूपी हरिणों को उपस्थापित करती है, यह अभिप्राय है। रूपक से संकीर्ण उत्प्रेक्षा॥८३॥

**मधुरिपुपदरक्षे! मन्दबुद्धौ मयि त्वा-**
**मनवधिमहिमानं त्वत्प्रसादात् स्तुवाने।**
**मणिनिकरसमुत्थैर्मञ्जुनादैः कवीना-**
**मुपरमयसि तांस्तान्नूनमुत्सेकवादान्॥८४॥**

हे श्रीमधुमथन की पादुके! जब मैं मन्दबुद्धि पुरुष तुम्हारी कृपा से ही अपरिच्छिन्न (व्यापक) महिमा वाली तुम्हारी स्तुति करने लगता हूँ तब तुम निश्चय ही अपनी मणियों के समुदाय से निकलने वाले निनादों से कवियों के उन उन गर्वपूर्ण वचनों को दूर कर देती हो। मेरे समान दूसरा कोई कवि है ही नहीं, ऐसे गर्वीले वचनों को शान्त कर देती हो, यह अभिप्राय है। फलतः यही सिद्ध हुआ कि इस महाकवि का कवित्वप्रकर्ष पादुकाप्रसादजन्य ही है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥८४॥

**शरणमुपगते त्वां शार्ङ्गिणः पादरक्षे!**
**सकृदिति विधिसिद्धं त्यक्तुकामेऽपि मोहात्।**
**प्रचलितमणिजालव्यञ्जितैः शिञ्जितैः स्वै-**
**रलमलमिति नूनं वारयस्यादरेण॥८५॥**

हे शार्ङ्गधन्वा श्रीनारायण की पादुके! जब कोई पुरुष तुम्हारी शरण प्राप्त करके भी अज्ञानता के बल से 'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम।' इस शास्त्रसिद्ध पुनः अनुष्ठेयता के अभाव' को एक बार भी त्यागना चाहता है तब तुम प्रचलित मणिसमुदाय से झङ्कृत होने वाले अपने शिञ्जानों से आदरपूर्वक रोकती हो कि ऐसा मत करो! उक्त शास्त्र

से सिद्ध एक बार के अनुष्ठान का त्याग 'प्रमाणपर्यन्त अनुवर्तन रूप श्रौत नियोग से संभव है। इसी को 'विमोहात्', इस पद से कहा है। प्रपत्तिशास्त्र से विरुद्ध होने के कारण पादुका का निवारण उपपन्न है। उत्प्रेक्षा॥८५॥

**विकलकरणवृत्तौ विह्वलाङ्गे विलक्षं**
**विलपति मयि मोहाद्बिभ्रती शौरिपादम्।**
**परिसरमधिगन्तुं पश्य पादावनि! त्वं**
**प्रतिभयमखिलं मे भर्त्सयन्ती निनादैः॥८६॥**

हे चरणपादुके! जब मैं चक्षु आदि इन्द्रियों के व्यापार से उपरत (शान्त) होकर विह्वल अर्थात् भयातुर अङ्गों वाला होता हुआ लक्ष्यशून्यता के कारण विलाप करने लगूँ तब तुम श्रीकृष्ण के चरण को धारण करती हुई तथा अपने निनादों से सकल भय के हेतु यम आदि को तर्जित करती हुई मेरे सामीप्य को प्राप्त करने के लिए संकल्प करो!॥८६॥

**करणविगमकाले कालहुङ्कारशङ्की**
**द्रुतपदमुपगच्छन् दत्तहस्तः प्रियाभ्याम्।**
**परिणमयतु कर्णे रङ्गनाथः स्वयं नः**
**प्रणवमिव भवत्याः पादुके मञ्जुनादम्॥८७॥**

हे पादुके! कारणों (इन्द्रिय) के निर्गमन के समय काल अर्थात् यमराज के हुङ्कार = तर्जनशब्द की शङ्का करने वाले और अपनी प्रियाओं के हाथों में अपने हाथों को रखकर शीघ्रतापूर्वक समीप आते हुए श्रीरङ्गनाथजी हमारे कानों में आपके मनोज्ञ नाद को ओङ्कार के समान परिणत करें। अपने स्वरूप के ज्ञापन के लिए ओङ्कार के समान तुम्हारे नाद का श्रवण करायें, यह अभिप्राय है। उपमा अलङ्कार॥८७॥

कमलवनसखीं तां कौमुदीमुद्वहन्तं
सविधमुपनयन्ती तादृशं रङ्गचन्द्रम्।
प्रलयदिनसमुत्थान् पादुके! मामकीनान्
प्रशमय परितापाञ्छीतलैः शिञ्जितैः स्वैः॥८८॥

कमलवन की सखी उस प्रसिद्ध कौमुदी अर्थात् लक्ष्मी को धारण करने वाले वैसे अर्थात् तीनों तापों को दूर करने वाले श्रीरङ्गक्षेत्र में विद्यमान श्रीभगवान् रूपी चन्द्र को मेरे निकट लाती हुई तुम अन्तिम काल में आविर्भूत हमारे परितापों को अपने शीतल कलरवरूपी अमृत से शान्त कर दो! कौमुदी (चाँदनी) कमलवन की विरोधिनी है किन्तु श्रीभगवान् जिसे धारण करते हैं वह श्रीरूपिणी कौमुदी उसकी सखी है। इस प्रकार आधिक्य की प्रतीति होने से व्यतिरेकालङ्कार है। एकदेशविवर्तिरूपक है ही॥८८॥

प्रशमयतु भयं नः पश्चिमश्वासकाले
रहसि विहरणं ते रङ्गनाथेन सार्धम्।
नियतमनुविधत्ते पादुके! यन्निनादो
निखिलभुवनरक्षाघोषणाघोषलीलाम्॥८९॥

हे पादुके! एकान्त में श्रीरङ्गनाथजी के साथ तेरा लीलापूर्वक वह विहार हमारे अन्तिम श्वास के समय होने वाले भय को दूर करे जिस विहार से सम्बन्धित तुम्हारा निनाद सारे लोकों की रक्षा के लिए होनी वाली घोषणा के डिण्डिमघोष का अनुकरण करता है। निदर्शना से उज्जीवित काव्यलिङ्ग-अलङ्कार॥८९॥

त्रिकविनिहितहस्तं चिन्तयित्वा कृतान्तं
गतवति हृदि मोहं गच्छता जीवितेन।
परिकलयतु बोधं पादुके! शिञ्जितं ते
त्वरयितुमिव सज्जं त्वद्विधेयं मुकुन्दम्॥९०॥

हे पादुके! गमन के लिए उन्मुख जीव से उपलक्षित मेरा हृदय जब गले में हाथ डाले हुए यमराज का चिन्तन करके मूर्च्छित हो जाय अर्थात् विचारणाशक्ति से शून्य हो जाय तब तुम्हारे वश में रहने वाले श्रीमुकुन्द को मेरे उद्धार के लिए शीघ्र प्रवृत्त कराने में तत्पर की तरह स्थित तेरा शिञ्जान (भूषारव) मेरे आत्मबोध को जागृत करे। मेरे व्यामुग्ध हृदय को उस समय तेरा शिञ्जान उद्‌बोधित करे, यह अभिप्राय है॥९०॥

**उपघ्नं संवित्तेरुपनिषदुपोद्‌घातवचनं**
**तव श्रावं श्रावं श्रुतिसुभगमन्तर्मणिरवम्।**
**विजृम्भन्ते नूनं मधुमथनपादावनि! मम**
**द्रवीभूतद्राक्षामधुरिमधुरीणा भणितयः॥९१॥**

हे श्रीमधुमथन भगवान् की पादुके! तुम्हारे अन्दर विद्यमान मणियों का कानों में मनोज्ञ लगने वाला निनाद संवित्ति = समीचीन ज्ञान अर्थात् ज्ञान का फलीभूत अनुव्यवसायात्मक ज्ञान का आश्रय तथा उपनिषदों का प्रस्तावक वाक्य है जिसे सुन-सुन कर परिपाक से द्रवीभूत द्राक्षा (अङ्गूर) के माधुर्य के कार्यभार को वहन करने में समर्थ मेरी उक्तियाँ प्रसृत होती हैं। तुम्हारे शिञ्जानों को सुनने से ही वाणियाँ द्राक्षा के समान मधुर होकर उमड़ती हैं, यह अभिप्राय है। ऊपर के दो पादों में रूपक अलङ्कार है जिसका उत्प्रेक्षा से साङ्कर्य है॥९१॥

**विलासैः क्रीणन्तो निखिलजनचेतांसि विविधा**
**विहारास्ते रङ्गक्षितिरमणपादावनि! मुहुः।**
**विगाहन्तामन्तर्मम विलुठदन्तर्मणिशिला-**
**खलात्कारव्याजक्षरदमृतधाराधमनयः॥९२॥**

हे श्रीरङ्गक्षितिरमण अर्थात् श्रीरङ्गनाथजी की चरणपादुके! अपने विलासों से सकल जनों के मन को क्रयप्राप्त द्रव्य की तरह वश

में करते हुए तथा परिघूर्णन से पूर्ण अन्तर्गत रत्नशिलाओं के खलात्कार अर्थात् 'खल-खल' शब्दविशेष के बहाने बहने वाली अमृत की धारा को धमनी (नाड़ी) के समान धारण करने वाले तुम्हारे लीलापूर्वक संचार मेरे हृदय में बारम्बार निमज्जन करें। पूर्णत: तेरे विहार मेरे मानस के विषय हो जाँय, यह तात्पर्य है। अपह्नुति-अलङ्कार॥९२॥

**श्रुतिश्रेणीस्थेयश्रुतिसुभगशिञ्जामुखरितां**
**भजेम त्वां पद्मारमणचरणत्रायिणि! परम्।**
**न मुद्रानिद्राणद्रविणकणविश्राणनदशा-**
**विशालाहङ्कारं कमपि घनहुङ्कारपरुषम्॥९३॥**

हे पद्मा अर्थात् श्रीलक्ष्मीजी के रमण की चरणपादुके! श्रुतियों अर्थात् निगमों की श्रेणी में जायमान विवादस्थान का निर्णय करने वाले और कानों में रमणीय तुम्हारे शिञ्जान (अन्तर्मणिध्वनि) से मुखरित अर्थात् शब्दायमान केवल तुम्हारा ही मैं भजन करना चाहता हूँ। अन्तर्मणिरव से शब्दसम्भारों वाली तुम्हारी ही सेवा मुझे अभीष्ट है, यह अभिप्राय है। ऐसी अवस्था में घने हुङ्कार अर्थात् तर्जनवाग्व्यापार से कठोर किसी क्षुद्रपुरुष की सेवा नहीं करना चाहता जो मुद्रा (मुहर) से निद्राण अर्थात् व्यापारशून्य होकर स्थित धन के कण के दान (विश्राणन) की दशा में अर्थात् दान के समय विशाल अहङ्कार से पूर्ण हो जाता है। यहाँ कवि की पादुका में निरतिशय प्रीति प्रकट हो रही है, क्योंकि वह पादुका परम प्रेयान् श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों की रक्षा करने में तत्पर रहती है। क्षुद्रों के सेवा के अभाव रूप कार्य के साथ कारणभूत पादुकासेवा का वर्णन होने से हेतु अलङ्कार है॥९३॥

**तवैतच्छ्रीरङ्गक्षितिपतिपदत्रायिणि! नृणां**
**भवत्यागश्चिन्तारणरणकभङ्गाय रणितम्।**

**शरीरे स्वं भावं प्रथयति यदाकर्णनवशा-**
**न्न नः कर्णे भावी यममहिषघण्टाघणघणः॥९४॥**

हे श्रीरङ्गभूमि के पति की चरणरक्षिके पादुके! तुम्हारा यह श्रूयमाण रणित = निनाद मानवों के अपराध (आगः) की चिन्ता अर्थात् विमर्श से उत्पन्न भयसम्पृक्तता के भङ्ग अर्थात् नाश के लिए होता है। जिस निनाद के श्रवण के बल से जब यह नाशवान् शरीर अपने 'नाश' धर्म को प्रकट करता है तब यमराज के महिष (भैसा) के कण्ठभूषण की घण्टाओं का 'घण-घण' शब्द हमारे कानों में नहीं होगा। हम उस समय यम के वशवर्ती नहीं होंगे, यह अभिप्राय है। काव्यलिङ्ग-अलङ्कार की निरुक्ति-अलङ्कार से संसृष्टि है। शीर्यते विशीर्यत इति शरीरम्। अर्थात् जो गल-पच जाय वह शरीर कहलाता है, यह शरीर का निर्वचन है।।९४।।

**परित्रस्ताः पुण्यद्रवपतनवेगात् प्रथमतः**
**क्षरद्भिःश्रीरङ्गक्षितिरमणपादावनि! तदा।**
**विदामासुर्देवा बलिमथनसंरम्भमनघैः**
**प्रणादैस्ते सद्यः पदकमलविक्रान्तिपिशुनैः॥९५॥**

हे श्रीरङ्गक्षितिरमण अर्थात् श्रीरङ्गनाथजी की चरणपादुके! तदा अर्थात् बलि के राज्य के समय दैत्यराज बलि से त्रस्त देवगण पुण्यद्रव अर्थात् ब्रह्म के कमण्डलु में स्थित श्रीभगवच्चरणारविन्द-प्रक्षालनद्रव के पतनवेग से सर्वप्रथम शीघ्र आने वाले मनोज्ञ तथा तत्काल (पदविक्षेप के समय ही) श्रीभगवान् के चरणारविन्द के पदविक्षेप की सूचना देने वाले तुम्हारे प्रणादों (अन्तर्मणिकलकल) से बलि के निग्रह के उद्योग को समझे थे।। श्रीभगवान् के चरणों के प्रक्षालन के समय ब्रह्मकमण्डलु में स्थित पुण्यद्रव ही गङ्गा के रूप में द्रवीभूत हुआ है, यह श्रीमद्भागवतादि पुराणों में प्रसिद्ध है। तात्पर्य यही है कि गङ्गा के पतन के पहले ही देवों ने शीघ्र

उपस्थित होने वाले पादुकाशब्दों से ही बलिनिग्रह को समझ लिया था। इस प्रकार यहाँ अनुमान-अलङ्कार है।।९५।।

**स्वेषु स्वेषु पदेषु किं नियमयस्यष्टौ दिशामीश्वरान्**
**स्वैरालापकथाः प्रवर्तयसि किं त्रय्या सहासीनया।**
**रङ्गेशस्य समस्तलोकमहितं प्राप्ता पदाम्भोरुहं**
**मा भैषीरिति मामुदीरयसि वा मञ्जुस्वनैः पादुके।।९६।।**

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी के सकल लोकों से पूजित चरणकमल को प्राप्त कर लेने वाली क्या तुम अपने मनोरम निनादों से इन्द्र आदि दिक्पालों को अपने अपने पदों पर स्थापित करती हो किम्वा अपने साथ आसीन (श्रीभगवत्पद का प्रतिपादन करने से वेदत्रयी पादुका के साथ स्थित है, ऐसा समझना चाहिये) ऋग्-यजुः सामरूप वेदत्रयी के साथ स्वेच्छा से पारस्परिक सम्भाषण की परम्परा का प्रवर्तन करती हो अथवा क्या 'डरो मत', ऐसा मुझसे कहती हो? सन्देह-अलङ्कार।।९६।।

**रङ्गे देवि! रथाङ्गपाणिचरणस्वच्छन्दलीलासखि**
**स्तोकस्पन्दितरम्यविभ्रमगतिप्रस्तावकं तावकम्।**
**कालोपागतकालकिङ्करचमूहुङ्कारपारम्परी-**
**दुर्वारप्रतिवावदूकमनघं श्रोष्यामि शिञ्जारवम्।।९७।।**

हे देवि! श्रीरथाङ्गपाणि भगवान् श्रीनारायण के चरणों में स्वच्छन्द विहार की सखि! पादुके! श्रीरङ्गक्षेत्र में थोड़ा चलायमान होने से रमणीय विलासपूर्वक गमनों (भगवान् के लीला विहार) का प्रस्तावक (प्रारम्भक) तथा अन्तिम समय में आये हुए यमराज के किङ्करों, (सेवक) की सेना के हुङ्कारों (तर्जनार्थ वाणीव्यापार) की परम्परा (श्रेणी) के दुर्वार प्रतिवादी के रूप में स्थित तुम्हारे मनोज्ञ शिञ्जान-रव (ध्वनि) को सुनूँगा। पादुका के निनाद से ही यमकिङ्करों के नाद का पराजय सम्भव है, इसी अभिप्राय से उनकी हुङ्कारश्रेणी

के वावदूक के रूप में पादुकाप्रणाद का कथन किया गया है। कवि अपने अन्तकाल में ऐसी कामना करता है॥९७॥

**त्वच्छिञ्जारवशर्करारससदास्वादात् सतामुन्मदा**
**मातर्माधवपादुके! बहुविदां प्रायः श्रुतिर्मुह्यति।**
**सारासारसकृद्विमर्शनपरिम्लानाक्षरग्रन्थिभि-**
**र्ग्रन्थैस्त्वामिह वर्णयाम्यहमतस्त्रासत्रपावर्जितः॥९८॥**

हे मातः! श्रीमाधव की पादुके! साधु और बहुत से शास्त्रीय तत्त्वों के जानकर पुरुषों की श्रुति (कान) तुम्हारे निनादरूपी शर्करारस के निरन्तर आस्वाद (अनुभव) के प्रभाव से उन्माद अर्थात् हर्षातिरेक से परिपूर्ण होती हुई प्राय मोहित होती रहती है। अन्य विषयों को उनके कान ग्रहण नहीं करते, यह अभिप्राय है। इसीलिए मैं भय लज्जा से रहित होकर यहाँ पर गुण-दोषों के विषय में एक बार विमर्श (विचार) में भी कृश अर्थात् अविचारित अक्षरग्रन्थियों वाले ग्रन्थों से तुम्हारी स्तुति करता हूँ। उत्तरार्ध में पूर्वार्ध वाक्यार्थ के हेतु होने से वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है जो उत्प्रेक्षा-अलङ्कार से संकीर्ण है॥९८॥

**तवाम्ब! किल खेलतां गतिवशेन गर्भाश्मनां**
**रमारमणपादुके! किमपि मञ्जुभिः शिञ्जितैः।**
**पदस्तुतिविधायिभिस्त्वदनुभावसिद्धान्तिभिः**
**सयूथ्यकलहायितं श्रुतिशतं समापद्यते॥९९॥**

हे मातः! श्रीरमारमण की पादुके! गति के बल से संचलित अन्तर्गत रत्नों के संघर्ष से जायमान तथा श्रीभगवच्चरणकमलों की स्तुति करने वाले तथा तुम्हारे प्रताप के विषय में सिद्धान्ततत्त्व का प्रतिपादन करने वाले तुम्हारे मनोरम कलरवों से बहुत प्रकार की श्रुतियाँ अपने समुदाय में ही मानों कलह करने लगीं। श्रुतियाँ भी भगवान् के चरणों की स्तुति करती हैं और पादुका के माहात्म्य

का प्रतिपादन करती हैं, इसी प्रकार से निरूपित पादुकानादों के साथ पारस्परिक विजय के लिए मानो कलह हो गया हो, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥९९॥

**क्षिपति मणिपादरक्षे! नादैर्नूनं समाश्रितत्राणे।**
**रङ्गेश्वरस्य भवती रक्षापेक्षाप्रतीक्षणविलम्बम्॥१००॥**

हे मणिपादुके! आप अपने अव्यक्त शब्दों से श्रीरङ्गनाथजी के आश्रितों (सेवक, प्रपन्न) की रक्षा में रक्षा की अपेक्षा होने पर प्रतिक्षण होने वाले विलम्ब को दूर करती हो। अज्ञान के कारण अपनी रक्षा की प्रार्थना से रहित जीवों की रक्षा करिये, इस प्रकार से पादुका मानो अपने नादों से भगवान् को प्रेरित करती है, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१००॥

# अथ पञ्चदशी रत्नसामान्यपद्धतिः

इस पद्धति में पादुका के अन्दर जड़े हुए विभिन्न रत्नों को अभिलक्षित करके स्तुति की गयी है—

**उदर्चिषस्ते रङ्गेन्द्रपादावनि! बहिर्मणीन्।**
**अन्तर्मणिरवं श्रुत्वा मन्ये रोमाञ्चिताकृतीन्॥१॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तुम्हारे अन्दर विन्यस्त मणियों के शब्द को सुनकर ऊपर निकलती दीप्ति वाली बाहरी भागों में विन्यस्त मणियाँ हर्षातिरेक से रोमाञ्चित आकार वाली हो गयी हैं, ऐसा मैं मानता हूँ। यहाँ पर बाह्य मणियों की जो किरणें उद्गत हो रही हैं, उनमें आन्तरमणियों के निनाद को सुनकर रोमाञ्च की उद्भावना की गयी है। एवञ्च उत्प्रेक्षा-अलङ्कार से बालमणियों की किरणें ऊपर नहीं फैल रही हैं, अपितु आन्तरमणिरवश्रवणजन्य उनके ये रोमाञ्च हैं, यह अपह्नुति ध्वनि है जो पादुकाविषयक-कविनिष्ठरत्याख्यभाव का उपस्कारक है॥१॥

**विधेहि शौरेर्मणिपादुके! त्वं विपद्यमाने मयि रश्मिजालैः।**
**आसीदतामन्तककिङ्कराणां वित्रासनान् वेत्रलताविशेषान्॥२॥**

हे भगवान् श्रीकृष्ण की मणिपादुके! अन्तकाल में जब मैं विपत्तिग्रस्त होऊँ तब तुम अपने किरणों के समुदायों से मेरे पास आ धमके अन्तक (यमराज) के दूतों को भयभीत करने वाले वेत के लताविशेषों को तैय्यार करो! आपत्काल में यमदूत तुम्हारी किरणों को वेतसदण्ड समझ कर पलायित हो जाँय, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२॥

**मुकुन्दपादावनि! मध्यनाड्या मूर्धन्यया निष्पततो मुमुक्षोः।**
**आब्रह्मलोकादवलम्बनार्थं रत्नानि ते रश्मिगणं सृजन्ति॥३॥**

हे श्रीमुकुन्द की चरणपादुके! मूर्धन्या = मूर्ध्नि भवा, अर्थात् मस्तक में होने वाली हृदय से सम्बन्धित मध्य नाड़ी (धमनी) से ब्रह्मलोक में निर्गमन करने वाले मुमुक्षु (मोक्ष का इच्छुक) के ब्रह्मलोक (परमपद) तक अवलम्बन (सहारा) के लिए तेरे रत्न किरणसमूह का उत्पादन करते हैं। मध्यनाड़ी सुषम्णा को कहते हैं जिससे योगी प्रपन्न का परमपद में प्रस्थान होता है। 'तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति', यह श्रुति इस तथ्य में प्रमाण है॥३॥

**असूर्यभेद्यां रजनीं प्रजानामालोकमात्रेण निवारयन्ती।**
**अमोघवृत्तिर्मणिपादरक्षे! मुरद्विषो मूर्तिमती दया त्वम्॥४॥**

हे मणिपादुके! जो बन्धरूपा रजनी (रात्रि) सूर्य के द्वारा भी अभेद्य है उसको तुम अपने केवल आलोक (प्रकाश) से ही दूर कर देती हो। इस प्रकार से तुम तो अमोघ व्यापार वाली होती हुई श्रीमुरमथन की साक्षात् शरीरधारिणी दया हो। रूपक और अतिशयोक्ति अलङ्कारों से परिपोषित उत्प्रेक्षा अलङ्कार वाचकशब्द के अभाव में गम्य है॥४॥

**रङ्गेशपादावनि! तावकानां रत्नोपलानां द्युतयः सरन्ति।**
**श्रेयःफलानां श्रुतिवल्लरीणामुपघ्नशाखा इव निर्व्यपायाः॥५॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तेरे अन्दर विद्यमान मणियों की कान्तियाँ विघ्नशून्य वेदलताओं की उन आश्रयशाखा की तरह फैल रही हैं जिनका धर्म आदि श्रेय ही फल है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥५॥

**कस्यापि पुंसः कनकापगायाः पुण्ये सलीलं पुलिने शयालोः।**
**समीपवृत्तिर्मणिपादुके! त्वं संवाहयन्तीव पदं करैः स्वैः॥६॥**

हे मणिपादुके! कनकापगा = कावेरी नदी के पुण्य तट पर शयन करने के स्वभाव वाले अगाध और लोकोत्तर महिमा से सम्पन्न

किसी पुरुष अर्थात् श्रीरङ्गनाथजी के समीप में ही रहने वाली तुम मानो अपने करों से अर्थात् अपनी किरणरूपी हाथों से उनके चरण दबाती हो। रूपक से संकीर्ण उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥६॥

**दिदृक्षमाणस्य परं निधानं स्नेहान्विते योगदशाविशेषे।**
**संवित्प्रदीपं मणिपादरक्षे! संधुक्षयन्तीव मरीचयस्ते॥७॥**

हे मणिपादुके! उत्कृष्ट निधिरूप श्रीरङ्गनाथजी का दर्शन करने वाले योगीजन के स्नेह अर्थात् ध्येय विषयक प्रेमरूपी तेल से युक्त योगदशाविशेष अर्थात् ध्यानावस्थानभेद रूपी दीपकवर्तिकाविशेष (बत्ती) में प्रज्ज्वलित ज्ञानरूपी प्रदीप को तेरी किरणें मानो संदीपित कर रही हैं। श्लिष्टपरम्परित रूपक-अलङ्कार से संकीर्ण उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥७॥

**समाधिभाजां तनुते त्वदीया रङ्गेशपादावनि! रत्नपङ्क्तिः।**
**स्थानं प्रयातुं तमसः परं तत् प्रदीपकृत्यं प्रभया महत्या॥८॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की चरणपादुके! तेरे अन्दर और बाहर जटित रत्नों की श्रेणी अपनी पर्याप्त प्रभा (कान्ति) से समाधि लगाने वाले योगीजनों के तम से बहुत दूर स्थित स्थान की ओर प्रस्थान करने के लिए मानो दीपक का कार्य करती है। पादुका के सेवक निर्विघ्न परमपद प्राप्त करते हैं, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥ जिस तरह से लोग दीपक के बल से अन्धकार के बाहर की वस्तु प्राप्त करते हैं वैसे ही योगी पादुका की रत्नकिरणों के सम्बन्ध से प्रकृति-मण्डल का अतिक्रमण करके परम पद प्राप्त करते है जो पद तम = अविद्या से परम्पार में स्थित है, यह अभिप्राय है। निदर्शना अलङ्कार॥८॥

**बध्नासि रङ्गेश्वरपादरक्षे! मन्ये यथार्हं मणिरश्मिजालैः।**
**सेवानतानां त्रिदशेश्वराणां शेषापटीं शेखरसंनिविष्टाम्॥९॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! मैं यही मानता हूँ कि तुम अपने मणिसमूहों से श्रीभगवत्सेवाओं में अत्यन्त झुके रहने वाले इन्द्र आदि देवेश्वरों के मस्तकों में स्थित योग्यतानुसार शेषापटी (पगड़ी) बाँधती हो। पादुका के रत्नों की किरणें इस तरह फैलती हैं कि इन्द्रादि देवों के मस्तकों में पगड़ी जैसी लगती हैं। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥९॥

**भजन्ति रङ्गेश्वरपादरक्षे! प्रकल्पयन्तो विविधान् पुमर्थान्।**
**उदर्चिषश्चिन्तयतां जनानां चिन्तामणित्वं मणयस्त्वदीयाः॥१०॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की चरणपादुके! तुम्हारे विग्रह में जटित तथा ऊपर किरणें विखेरने वाली मणियाँ धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, इन नाना प्रकार के पुरुषार्थों को पादुकाचिन्तकों को देती हुईं 'चिन्तामणि' नामक रत्न हो रही हैं। चिन्तामात्रेण फलदायी मणिश्चिन्तामणिः, अर्थात् सोचने मात्र से जो फल देती है वह चिन्तामणि कहलाती है, इस निर्वचन से 'निरुक्ति अलङ्कार सुस्पष्ट है जिससे संकीर्ण रूपक अलङ्कार है—मणयश्चिन्तामणिरेव॥१०॥

**नाथस्य दत्ते नदराजकन्या पातुं शुभान् पादनखेन्दुरश्मीन्।**
**मणिप्रभाभिः प्रतिपन्नपक्षां लीलाचकोरीमिव पादुके! त्वाम्॥११॥**

हे पादुके! नदराज = क्षीरसागर की कन्या लक्ष्मीजी मानो श्रीरङ्गनाथजी के कल्याणकारी चरणनखरूपी चन्द्रों की किरणों को पीने के लिए ही लीलाचकोरी के समान अपनी मणिकान्तियों से स्वीकृत पार्श्वभाग (पक्ष) रूपी पङ्खों वाली तुमको सौप देती हैं। यहाँ पर लक्ष्मीजी के द्वारा श्रीरङ्गनाथ के लिए समर्पित पादुका में नखचन्द्रिकापानेच्छुकचकोरीत्व की उद्भावना होने से उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है जो रूपक-अलङ्कार से संकीर्ण है॥११॥

**जनस्य रङ्गेश्वरपादुके! त्वं जातानुकम्पा जनयस्ययत्नात्।**
**आकृष्य दूरान्मणिरश्मिजालैरनन्यलक्षाणि विलोचनानि॥१२॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! अनुकम्पा (कृपा) से परिपूर्ण तुम अपनी मणियों के समुदाय रूपी जालों से लोगों के नयनों को दूर से ही खींचकर अपने ऊपर ही लगा देती हो वह भी विना प्रयत्न के। गम्योत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१२॥

**रङ्गेशपादावनि! तावकीनैः स्पृष्टाः कदाचिन्मणिरश्मिपाशैः।**
**कालस्य घोरं न भजन्ति भूयः कारागृहान्तेषु कशाभिघातम्॥१३॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तुम्हारे अन्दर जड़ित मणियों की किरणरूपी पाशों से जिनका स्पर्श हो जाता है वे लोग यमराज के कारागारों के भीतर पुनः भयङ्कर कोड़ों का आघात नहीं सहते। यहाँ कारागार में कोड़ों के घात का निषेध करके मणिकिरणों के आघात का वर्णन होने से 'परिसंख्या' अलङ्कार है। जैसा कि लक्षण है—

'परिसंख्या निषिध्यैकमेकस्मिन् वस्तुवर्णनात्'॥१३॥

**रत्नानि रङ्गेश्वरपादरक्षे! त्वदाश्रितान्यप्रतिघैर्मयूखैः।**
**आसेदुषीणां श्रुतिसुन्दरीणां वितन्वते वर्णनिचोललक्ष्मीम्॥१४॥**

श्रीरङ्गनाथजी की चरणरक्षिके! तुम्हारे श्रीविग्रह में विन्यस्त रत्न अपनी अवरोधरहित किरणों से समीपस्थित श्रुतिरूपी सुन्दरियों के वर्णयुक्त अर्थात् कुङ्कुमादि-आलेपनयुक्त निचोल (कूर्पासक) की शोभा का विस्तार करते हैं। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१४॥

**निद्रारसप्रणयिनो मणिपादरक्षे!**
**रङ्गेश्वरस्य सविधं प्रतिपद्यमाना।**
**शय्याफणीन्द्रमभितो भवती विधत्ते**
**रत्नांशुभिर्यवनिकामिव दर्शनीयाम्॥१५॥**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी जब निन्द्रा-रस के प्रणयी होते हैं तब उनके पास उपस्थित होकर अपने रत्नों की किरणों से मानो

तुम शय्यारूप में स्थित फणीन्द्र शेषनाग के चारों ओर दर्शनीय यवनिका (पर्दा) का विस्तार करती हो। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१५॥

**सद्यस्त्वदुद्ग्रहदशानमिताकृतीनां**
**स्त्रस्तांशुकं निजरुचा मणिपादुके! त्वम्।**
**पद्मासहायपरिवारविलासिनीनां**
**पट्टांशुकैरिव पयोधरमावृणोषि॥१६॥**

हे मणिपादुके! तुम अपनी कान्ति से अपने ग्रहण के समय झुकी हुई आकृति वाली पद्मासहाय अर्थात् श्रीरङ्गनाथजी की सुन्दरियों के गिरे हुए उत्तरीय (दुपट्टा) वाले स्तन को मानो पट्टांशुकों से आवृत (आच्छादित) करती हो। यहाँ रत्नों की कान्तियों की उद्भावना स्तनों को ढकने के लिए पट्टांशुक के रूप में की गयी है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१६॥

**देवस्य रङ्गवसतेः पुरतः प्रवृत्तै-**
**रुद्धूतविश्वतिमिरां मणिरश्मिजालैः।**
**मन्ये मदीयहृदयायतनप्रवेश-**
**माङ्गल्यदीपकणिकां मणिपादुके! त्वाम्॥१७॥**

हे मणिपादुके! देव श्रीरङ्गनाथजी के आगे फैलने वाली मणि-किरणों के समुदायों से सारे अन्धकारों को दूर करने वाली तुमको मैं अपने ही हृदयरूपी प्राङ्गण के प्रवेश में मङ्गल के योग्य सूक्ष्मदीपिका मानता हूँ॥१७॥

**आकीर्णरत्ननिकरां मणिपादुके! त्वां**
**रङ्गेश्वरस्य ललितां विपणिं प्रतीमः।**
**यत्संश्रयेण भवति स्थिरभक्तिमूल्यं**
**कैवल्यमत्र जगतां क्रयविक्रयार्हम्॥१८॥**

हे मणिपादुके! तुमको मैं श्रीरङ्गनाथरूपी वणिक् (क्रयविक्रयव्यवहारी) की श्रेष्ठ मणियों की समुदाय वाली मनोहर

पण्यवीथिका समझता हूँ जिसके संसेवन से स्थिर भक्ति मूल्य वाला कैवल्य (परमपद) यहाँ पर संसार के पुरुषों के क्रय और विक्रय के योग्य हो जाता है॥१८॥

**व्यङ्क्तुं क्षमं भगवतो जगदीश्वरत्वं**
**वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहचक्रचिह्नम्।**
**आश्लिष्य निर्भररुचिं मणिपादुके! त्वा-**
**मासीदनाभरणसुन्दरमङ्घ्रिपद्मम्॥१९॥**

हे मणिपादुके! पर्याप्त कान्तियों से परिपूर्ण तुम्हारा आलिङ्गन करके जगदीश्वरत्व अर्थात् सार्वभौमत्व को अभिव्यक्त करने में समर्थ होता हुआ भगवान् श्रीरङ्गनाथजी का वज्र, अङ्कुश, ध्वज, कमल और चक्र से चिह्नित चरणकमल अलङ्कारों के विना ही सुन्दर हो जाता था। अनाभरणसुन्दरम्, से विभावना-अलङ्कार प्रतीत हो रहा है, क्योंकि आभरणरूपकारण के विना भी सौन्दर्यरूप कार्य का कथन है। समासोक्ति अलङ्कार से उसकी संसृष्टि है॥१९॥

**रत्नप्रभापटलचक्रमनोहरा त्वं**
**पद्मारुणं पदमिदं त्वयि रङ्गभर्तुः।**
**मन्ये तदेतदुभयं मणिपादरक्षे!**
**चक्राब्जमण्डलमकिञ्चनरक्षणार्थम्॥२०॥**

हे मणिपादुके! रत्नों के कान्तिसमूह के चक्र अर्थात् चक्राकार से मनोहर लगने वाली तुम तथा तुम्हारे ऊपर स्थित श्रीरङ्गनाथजी का पद्म (कमल) की तरह लाल यह चरण, ये दोनों मिलकर अकिञ्चन अर्थात् जो श्रीमद्भगवान् के पूजन साधनों से शून्य हैं उनकी रक्षा के लिए चक्राकार और कमलाकार मण्डलरेखाओं के सन्निवेश हो गये हैं, ऐसा मैं स्वीकार करता हूँ। यहाँ पर पादुकारत्नसमुदाय ही बाहर चक्राकार रेखा के रूप में और श्रीभगवान् का चरणकमल कमलाकार रेखा के रूप में उद्भावित है, अतः

उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है। भगवत्-शास्त्र में चक्राब्जरेखामण्डल का विन्यास विस्तार से निरूपित है॥२०॥

**त्रासात् स्वयं प्रणमतां दनुजेश्वराणां**
**सङ्ख्येऽवलूनशिरसामपि मौलिरत्नैः।**
**आयोजयत्यनुकलं मणिपादुके! त्वां**
**सैरन्ध्रिकेव मुरवैरिकृपाणधारा॥२१॥**

हे मणिपादुके! 'मुर' नामक दैत्य के शत्रु भगवान् श्रीरङ्गनाथजी के खड्ग की धारा (धार) सैरन्ध्रिका = अलङ्कारप्रसाधनिका के समान भय से स्वयम् प्रणाम करने वाले तथा युद्ध में कटे मस्तक वाले दैत्यों के मुकुटमणियों से हर क्षण कल-कल के साथ तुमको नियोजित कर रही है। प्रणतों के मुकुटमणियों से पादुका का स्वयं सम्बन्ध सम्पादित होता है तथा जो प्रणत नहीं है उनके मुकुटों को निकाल कर कृपाणधारा पादुका में नियोजित कर रही है, यह अभिप्राय है॥२१॥

**आस्कन्दनानि विबुधेन्द्रशिखामणीनां**
**त्वामाश्रितान्यसुरसूदनपादरक्षे।**
**रत्नानि ते स्तुतिसुवर्णपरीक्षणार्थं**
**नूनं भजन्ति निकषोपलतां कवीनाम्॥२२॥**

हे असुरों के विनाशक श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! इन्द्र आदि देवेन्द्रों के प्रणाम करने के कारण चूड़ारत्नों के अयस्कान्त की तरह आकर्षक (खींचने वाले) तुम्हारे आश्रित रत्न (पादुकाविन्यस्त रत्न) कवियों की स्तुतियों में उपयुज्यमान सुन्दर वर्ण रूप सुवर्ण (स्वर्ण) के परीक्षण के लिए निश्चय ही निकषशिला (कसौटी) का काम कर रहे हैं। पादुका में विन्यस्त रत्न चुम्बक की तरह देवेन्द्रों के मुकुटों में विद्यमान रत्नों को अपनी ओर खींचते हैं जिनका वर्णन करने से ही कवियों के वर्णन का तात्पर्य व्यक्त होता है, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२२॥

पादावनि! प्रणयिना प्रतिपादितार्थां
क्रीडासरोजमिव शौरिपदं भजन्तीम्।
प्रत्युप्तरत्ननिकरप्रतिपन्नशोभां
पश्यामि रोहणगिरेरधिदेवतां त्वाम्॥२३॥

हे श्रीभगवान् की चरणपादुके! प्रणयी (भक्त और याचक) के प्रयोजन और धन का सम्पादन करने वाली तथा श्रीरङ्गनाथजी के चरण का क्रीड़ाकमल की तरह सेवन करने वाली एवम् जटित रत्नों के समूहों से शोभायमान होती हुई तुमको मैं रोहणपर्वत (वह पर्वत जहाँ रत्नों के ही वृक्ष होते हैं) की अधिष्ठातृदेवता की तरह देखता हूँ। उपमा और उत्प्रेक्षा की संसृष्टि अलङ्कार यहाँ आकलनीय है॥२३॥

यामेव रत्नकिरणैर्मणिपादरक्षे!
चूडापदे तनुभृतां भवती विधत्ते।
शक्रादिदैवतशिखामणिरज्यमानै-
स्त्वामेव ते प्रकटयन्ति पदैरभिख्याम्॥२४॥

हे मणिपादुके! आप प्राणियों के चूड़ापद अर्थात् मस्तक में रत्नकिरणों से जिस शोभा का निष्पादन करती हैं वे प्राणी इन्द्र आदि देवताओं की मुकुटमणियों से रज्यमान अर्थात् अन्यवर्णों में प्रकट होने वाले अपने चरणों से उसी शोभा को प्रकट करते हैं। पर्यातः एक ही शोभा का मस्तक और चरण में वर्णन होने से 'पर्याय' अलङ्कार है॥२४॥

रत्नाङ्कुरैरविरला मणिपादरक्षे!
पाकोन्मुखैः परिगता पुरुषार्थसस्यैः।
देवेन रङ्गपतिना जगतां विभूत्यै
केदारिकेव कृपया परिकल्पिता त्वम्॥२५॥

हे मणिपादुके! रत्नरूप अङ्कुरों से अविरल अर्थात् घनी तथा पाक = परिणाम में तत्पर पुरुषार्थरूप सस्यों (व्रीहि आदि धान्यफल)

से परिव्याप्त तुम देव श्रीरङ्गनाथजी के द्वारा संसार की विभुता के लिए कृपापूर्वक केदारिका (क्षेत्रभूमि) की तरह परिकल्पित हो। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२५॥

**निर्धूतमोहतिमिरास्तव रत्नदीपै-**
**र्निर्विश्यमानविभवं नदराजपुत्र्या।**
**प्रत्यक्षयन्ति निगमान्तनिगूढमर्थं**
**पादावनि! त्वयि निवेशितभावबन्धाः॥२६॥**

हे चरणपादुके! जिनका भावबन्ध = अभिप्रायसम्बन्ध तुझमें निवेशित है वे भक्तजन तेरे रत्नरूपी दीपों से मोह = अज्ञान के अन्धकार को प्रक्षिप्त करते हुए उपनिषदों में निगूढ़ (गुप्त) उस अर्थ (श्रीरङ्गनाथरूप वस्तु और धन) का प्रत्यक्ष करते हैं जिसका विभव (विभूति और धन) श्रीलक्ष्मीजी से सम्भुज्यमान है। श्लिष्टरूपक-अलङ्कार॥२६॥

**रत्नोपलप्रकरसंभव एष दूराद्-**
**रङ्गाधिराजचरणावनि! तावकीनः।**
**आर्द्रापराधपरिखिन्नधियां प्रजाना-**
**माश्वासनार्थ इव भाति करप्रसारः॥२७॥**

हे श्रीरङ्गाधिराज की चरणपादुके! रत्नमणियों के समुदाय से उत्पन्न तुम्हारा यह दूर से ही कर अर्थात् किरण रूपी कर (हाथ) का प्रसार (फैलाव) ताजे अपराध से परिखिन्न हृदयवाली प्रजाओं के आश्वासन के लिए तत्पर जैसा प्रतीत हो रहा है। लोक में जैसे लोग अपराधियों को हाथ फैलाकर आश्वस्त करते हैं वैसे ही पादुका भी, यह अभिप्राय है। इससे पादुका की प्राणियों पर अपार दया ध्वनित होती है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२७॥

**व्यामुह्यतो विषयिबालमृगान् मदीयान्**
**संसारघर्मजनितासु मरीचिकासु।**

**पादावनि! प्रगुणरत्नमयूखजालै-**
**राकृष्य विश्रमय केशवकान्तिसिन्धौ॥२८॥**

हे चरणरक्षिके पादुके! संसार ही घर्म अर्थात् घाम है जिससे उत्पन्न हुई मृगतृष्णाओं में व्यामोह से ग्रस्त हुए इन्द्रियरूपी बालमृगों को अपने प्रगुण = प्रकृष्टगुण वाले तथा प्रकृष्ट धागों से निर्मित (गुण = धर्म और तन्तु दोनों अभीष्ट हैं) रत्नकिरणों के समुदाय रूपी जालों (वागुरा) से खींच कर श्रीभगवान् केशव की कान्तिरूपी सागर में विश्राम प्रदान करो! रूपक-अलङ्कार॥२८॥

**अन्तर्निधाय मुनिभिः परिरक्ष्यमाणा-**
**मात्मीयरश्मिगुणितां मणिपादरक्षे।**
**रङ्गेशपादकमलप्रतिपन्नमुद्रां**
**नीवीमवैमि भवतीं निगमान्तवाचाम्॥२९॥**

हे मणिपादुके! मुनियों के द्वारा अन्तर्मानस और गृहगर्भ आदि से गुप्त प्रदेश में स्थापित करके परिरक्षित होती हुई तथा अपनी ही किरणों से प्रगुणित हुई अर्थात् प्रवर्धित हुई एवम् श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमल में मुद्रा अर्थात् मर्यादा को प्राप्त कर लेने वाली, दूसरे पक्ष में कमलाकार रेखा से युक्त तुमको मैं वेदान्तवाणियों की नीवी की तरह समझता हूँ। जीवी = कटिवस्त्रग्रन्थि। पक्षान्तर में निगम = नगरों में अन्त अर्थात् मनोहरवाणी वाले वनियों की नीवी = मूलधन के समान समझता हूँ। श्लेष से संकीर्ण उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२९॥

**रामस्य रङ्गवसतेश्चरणानुषङ्गात्**
**काष्ठां गतां भुवनपावनतां दधाना।**
**पादावनि! प्रचुररत्नशिलानिबद्धा**
**संसारसंतरणसेतुरसि प्रजानाम्॥३०॥**

हे पादुके! श्रीरङ्गक्षेत्र में वसने वाले श्रीराम के चरणों के सम्पर्क से परम काष्ठा = उत्कृष्टता को प्राप्त हुई भुवनपावनता (सारे संसार के पापों को दूर करने वाला सामर्थ्य) को धारण करती हुई तुम अत्यधिक रत्नशिलाओं से निर्मित वह सेतु हो जो प्रजाओं के संसार सागर से पार जाने के लिए बना है। पक्षान्तर में—काष्ठा = दक्षिणदिशा में गयी हुई, भुवन = समुद्रजल की पावनता = पवित्रता को पोषित करती हुई समुद्रोत्तरण की सेतु हो, यह योजना होगी। श्लेष से संकीर्ण उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥३०॥

**दिविषन्मुकुटेषु संचरन्त्याः प्रचुरस्ते मणिपादुके! प्रकाशः।**
**दिवि रङ्गपतेर्महोत्सवार्थं वितता वन्दनमालिकेव भाति॥३१॥**

हे मणिपादुके! दिवि सीदन्तीति दिविषदो देवाः। देवताओं के मुकुटों में संचरण करने वाली (प्रणाम करने से ऐसा कथन किया गया है) तुम्हारा प्रचुर (अत्यधिक) प्रकाश आकाश में मानो उस वन्दनमालिका की झाँकी प्रस्तुत करता है जो श्रीरङ्गनाथजी के महोत्सव के लिए विस्तृत हो। वन्दनमालिका = तोरण। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥३१॥

**प्रभवन्ति दवीयसां स्वभावात्तव रत्नानि मुकुन्दपादरक्षे।**
**अयसामिव हन्त लोहकान्ताः कठिनानां मनसां विकर्षणाय॥३२॥**

हे श्रीमुकुन्द की चरणपादुके! तुम्हारे अन्दर या बाहर जटित रत्न स्वभाव से ही कठोर और अत्यन्त दूर रहने वाले पुरुषों के मन को खींचने में वैसे ही समर्थ होते हैं जैसे—लोहकान्त (चुम्बक) लोहा के विकर्षण में समर्थ होते हैं। भक्ति के अभाव में भी सौन्दर्य की अधिकता के कारण पादुका के रत्न कठोर पुरुषों के मन को आकृष्ट करके भक्तिरसनिर्भर बना देते हैं, यह अभिप्राय है। उपमा-अलङ्कार॥३२॥

**परिपश्यति देवि! रङ्गनाथे रहसि त्वं सविधे निविश्य लक्ष्म्याः।**
**परिपुष्यसि रत्नधामभिः स्वैरनसूयेव मनोज्ञमङ्गरागम्॥३३॥**

हे देवि! पादुके! एकान्त में श्रीरङ्गनाथजी के देखने रहने पर उनके समीप निविष्ट होकर तुम अपने रत्नों की कान्तियों (धाम) से लक्ष्मीजी के मनोहर अङ्गराग का मानो परिपोषण करती हो वह भी अनुसूया = अत्रि की पत्नी की तरह। अनुसूया ने सीताजी को अङ्गराग समर्पित किया था, यह रामायण में उल्लिखित है। उपमा-अलङ्कार॥३३॥

**तव रत्नकरार्पितं नवीनं परिगृह्य स्थिरमंशुकं मनोज्ञम्।**
**जरदंशुकवत् सुखेन देहं कृतिनः केशवपादुके! त्यजन्ति॥३४॥**

हे श्रीकेशव की पादुके! पुण्यात्मा लोग तुम्हारे रत्नों के किरणरूपी हाथों से प्रदत्त नूतन स्थिर तथा मनोरम अंशुक = किरणरूपी वस्त्र को ग्रहण करके सुखपूर्वक पुराने वस्त्र के समान अपने शरीर का त्याग करते हैं। रूपकसंकीर्ण-उपमा॥३४॥

**अभितो मणिपादुके! निबद्धैः कृतसंस्कारविशेषमात्मरत्नैः।**
**कुरुते भवती पदं मुरारेः कठिनेऽस्मिन् हृदये निवेशयोग्यम्॥३५॥**

हे मणिपादुके! आप सर्वतः निबद्ध = जटित अपने रत्नों से सम्पादित संस्कारविशेष वाले अर्थात् अलङ्कारों से सम्पन्न और अपूर्व शक्तियों से युक्त श्रीमुरमथन के चरण को मेरे कठिन हृदय में निवेश के योग्य बना देती हो॥३५॥

**निजरत्नकराञ्चलैर्मदीयानपराधानवधूय दत्तसाम्या।**
**रमया सहितस्य रङ्गभर्तुः पदयोरर्पय पादुके! स्वयं माम्॥३६॥**

हे पादुके! तुम अपने किरणरूपी हाथों के अञ्चलों (अग्रभाग) से मेरे अपराधों को दूर करके अपने साम्य (साधर्म्य) को प्रदत्त करने वाली मुझे लक्ष्मीजी के साथ श्रीरङ्गनाथजी के चरणों में अर्पित कर दो॥३६॥

**रश्मिजालपरिवेषबन्धुरा रङ्गभूमिपतिरत्नपादुके।**
**विश्वलोचनविहङ्गहारिणी वागुरेव वितता विराजसे॥३७॥**

हे श्रीरङ्गभूमिपति की रत्नपादुके! किरणों के जाल अर्थात् समूहरूप जाल (रज्जुनिर्मित पक्षिबन्धन) के मण्डल (परिवेश) से मनोज्ञ हुई तुम सारे संसार के नयनरूपी पक्षियों का हरण करने वाली विस्तृत वागुरा = मृगबन्धिनी की तरह सुशोभित होती हो। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार या किसी आचार्य के मत में उपमा-अलङ्कार।।३७।।

**मानसाम्बुजविकासहेतुभिः सेविता मणिगणैः प्रभाकरैः।**
**पादुके! वहसि सद्भिराश्रितां देवि! विष्णुपदसंपदं नवाम्।।३८।।**

हे देवि! पादुके! मानस = मनरूपी मानससरोवर में उत्पन्न कमल के विकास में हेतु बने अपने मणिसमुदायरूपी सूर्यों से सेवित होती हुई तुम सत्पुरुषों के द्वारा संसेवित तथा नूतन, श्रीविष्णु के चरणकमलों की सम्पदा का वहन करती हो। रूपक अलङ्कार।।३८।।

**अधिशयितफणीश्वरस्य शौरेः स्वयमधिरूढपदोपधानपार्श्वा।**
**मणिवलयजुषा करेण मन्दं स्पृशसि पदावनि! पादयोर्युगं तत्।।३९।।**

हे पादुके! फणीश्वर श्रीशेष के ऊपर शयन किये हुए श्रीनारायण के चरणोपबर्ह के पास में स्वयम् अधिरूढ हुई तुम उनके चरणयुगल का मणिमय कङ्कण वाले अपने हाथ से धीरे से स्पर्श करती हो। यहाँ भी 'करेण', इस पद से किरणों और हाथ, दोनों अर्थों की विवक्षा है। चरणसंवाहिका नायिका की प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार है जो श्लिष्ट-रूपक-अलङ्कार से संकीर्ण है।।३९।।

**भवत्यन्ते त्वां प्रणतस्य जन्तोस्तदोकोऽग्रज्वलनं त्वत्प्रकाशैः।**
**यतो नाड्या मध्यमया विनिर्यन् गतिं विन्देत् केशवपादरक्षे।।४०।।**

हे श्रीकेशव की चरणपादुके! जो जन्तु तुमको प्रमाण करने का उपक्रम करता है उसका वह हृदय तुम्हारे ही प्रकाशों से अग्रज्वलन अर्थात् अग्रप्रकाश वाला हो जाता है जिसके मध्यम नाड़ी सुषम्णा से निकलता हुआ जन्तु परमगति को प्राप्त करता है। यहाँ त्रिष्टुप् छन्द में 'प्रस्तारिक' नामक वृत्तभेद है। प्राणों के उत्क्रमण के समय

श्री भगवान् के संकल्प के अधीन हृदय का अग्र प्रकाशन पादुका के रत्नों के प्रकाश से उत्पन्न हुआ है, यह उद्भावित है। फलतः उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है॥४०॥

**अशिथिलपरिणद्धा रश्मिजालैर्मणीनां**
**दुरधिगमतमं नः पारमारोपयन्ती।**
**कमलनयनमाद्यं कर्णधारं दधाना**
**भवसि भवपयोधेः पादुके! पोतपात्री॥४१॥**

हे पादुके! अपनी मणियों की किरणों के समूहों से दृढतया परिणद्ध अर्थात् बँधी हुई तुम हम लोगों को अन्धकार (अविद्या) के पार उस स्थान की प्राप्ति कराती हो जिसको प्राप्त करना बहुत कठिन है (दुरधिगमतम) तथा आदि में होने वाले कमलनयन श्रीरङ्गनाथरूपी कर्णधार (श्रेष्ठ नाविक) को धारण करती हुई तुम निश्चय ही भवसागर की पोतपात्री (समुद्रतरणार्थ यानपात्र) हो। सावयव रूपक अलङ्कार॥४१॥

**मणिकिरणगणैस्ते कल्पिते गुल्मभेदे**
**मृगयुरिव कुरङ्गीं त्वां पुरस्कृत्य भव्याम्।**
**हरति चरणरक्षे! भक्तिपाशावरुद्धं**
**हृदयहरिणयूथं प्राणिनां रङ्गनाथः॥४२॥**

हे चरणपादुके! श्रीरङ्गनाथजी तुम्हारी मणियों के किरणसमूहों से गुल्म (स्तम्ब) विशेष की परिकल्पना करके (किरणसमूहो की गुल्म = झाड़ की तरह प्रतीति होने से ऐसा कथन किया गया है) व्याध की तरह साक्षात् भव्य कुरङ्गी = मृगी के रूप में स्थित तुमको आगे करके प्राणियों के भक्तिपाश में बँधे हुए हृदयरूपी हरिणयूथ का अपहरण करते हैं। रूपक से अनुप्राणित उपमा अलङ्कार।

**परिचितपदमूला पादुके! रङ्गिणस्त्वं**
**प्रभवति भुजमध्ये कौस्तुभोऽयं तथापि।**

**भवति भृशमधस्तात् तेजसा भव्यभूम्ना**
**शलभितदुरितानां तावकानां मणीनाम्॥४३॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तुम श्रीभगवान् के चरणों के अध:प्रदेश में नित्य आसक्त हुई विराजमान रहती हो। यह उनके हृदय में (भुजाओं के मध्य) कौस्तुभमणि तो दृढ़ता से प्रकाशित होता रहता है तथापि वह भव्यभूम्ना अर्थात् शोभन और विपुल प्रभा से पापों को शलभ (पतङ्गकीट) की तरह भस्म करने वाली तुम्हारी मणियों से अधस्तात् अर्थात् नीचे हो जाता है। उर्ध्वस्थित कौस्तुभ नीचे हो जाता है, यह विरोध है जिसका समाधान पादुका के पाप निवर्तकत्वसामर्थ्य से उत्कृष्टता को स्वीकार करके हो जाता है। विरोधाभास-अलङ्कार॥४३॥

**कल्पश्रेणीदिनपरिणतौ जन्तुजाले प्रसुप्ते**
**विष्वग्व्याप्ते जगति तमसा पादुके! तादृशेन।**
**स्त्यानालोकैस्तव मणिगणैर्वासगेहप्रदीपा:**
**संपद्यन्ते सह कमलया जागरूकस्य यून:॥४४॥**

हे पादुके! कल्पों = ब्रह्मा के दिनों की श्रेणी ही श्रीभगवान् का दिन है जिसकी परिणति में अर्थात् श्रीभगवान् का जब सायङ्काल उपस्थित होता है (ब्रह्मप्रलयकाल) तब प्राणियों का सारा समुदाय प्रसुप्त अर्थात् नष्ट हो जाता है। उस समय वैसे प्रगाढ़ अन्धकार से जगत् (संसार) जब पूर्णत: व्याप्त हो जाता है तब श्रीलक्ष्मीजी के साथ जागने वाले तरुण श्रीरङ्गनाथजी के निवासस्थान के प्रदीपों की व्यवस्था तेरे घने प्रकाशों वाले मणिगणों से ही होती है। मणिगणों के प्रकाश ही उस समय श्रीभगवद्गृह में दीप होते हैं, यह रूपकालङ्कारध्वनि उत्प्रेक्षा अलङ्कार से है। अर्थात् अलङ्कार से अलङ्कारध्वनि है॥४४॥

**श्रीरङ्गेन्दोश्चरणकमलद्वन्द्वसेवावलेपा-**
**दारूढायां त्वयि मखभुजामानतान् मौलिभागान्।**

तेषां चूडामणिभिरनघैस्तावकानां मणीनां
केशाकेशि प्रभवति मिथस्त्रासलेशोज्झितानाम्॥४५॥

हे पादुके! श्रीरङ्गक्षेत्र के चन्द्रमा श्रीमद्भगवान् के चरणकमलयुगल की सेवा के गर्व से जब तुम देवताओं (मखभुजाम्) के झुके हुए मस्तकभागों पर आरूढ़ हो जाती हो तब त्रास=रत्नदोष और भय की अल्पता से भी विनिर्मुक्त तुम्हारी मणियों का देवताओं की विशुद्ध चूड़ामणियों से परस्पर केशाकेशि अर्थात् केशपकड़ कर युद्ध होने लगता है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥४५॥

त्वद्रत्नोपलरश्मिपञ्जरतनुत्राणं स्थिरं बिभ्रतो
मातर्माधवपादुके! न तु पुनर्हस्तैः स्पृशन्त्याकुलैः।
दूरोत्सिक्तदुराढ्यजिह्मगबिलद्वाःपालकोपानल-
ज्वालामित्रकठोरवेत्रलतिकादत्तार्धचन्द्रं वपुः॥४६॥

हे मातः! श्रीमाधव की पादुके! तुम्हारी रत्नशिलाओं की किरणें पञ्जर (नीड़) जैसी हैं और वे ही तनुत्राण अर्थात् कञ्चुच हैं जिसे धारण करने वाले पुरुष अपने आकुल (सम्भ्रान्त) हाथों से पुनः उस शरीर का स्पर्श नहीं करते जिसे अत्यन्त गर्वीले दुष्ट धनिक रूपी सापों के गृहद्वाररूपी' बिलद्वार के रक्षक भुजङ्गों की क्रोधाग्निज्वाला के समान कठोर वेत्रलता (कोड़ा) के द्वारा अर्धचन्द्रदान दिया गया हो। अर्थात् उस वेत्रलता से जिस शरीर का तिरस्कार होता है ऐसे शरीर का वे पुरुष दूरतः स्पर्श नहीं करते। मुक्त हो जाते हैं, यह अभिप्राय है। रूपक से संकीर्ण पर्यायोक्त अलङ्कार॥४६॥

संवर्तोदितसूर्यकोटिसदृशीं रङ्गेशपादावनि!
प्रस्तौषि प्रतियत्नरत्ननिकरज्योतिश्छटामुद्भटाम्।
तन्मन्ये तदनन्यसूरिपरिषन्मध्येनिवेशाय न-
स्तादृग्वासरसेऽपि भेत्तुमचिरादस्माकमन्धन्तमः॥४७॥

हे श्रीरङ्गनाथजी की चरणपादुके! यह जो तुम प्रलयकाल (संवर्त) में उदित होने वाले करोड़ों सूर्यों के समान प्रतियत्न = गुणाधान अर्थात् संस्कारों से संस्कृत मणिसमुदायों की अत्यधिक कान्तिच्छटा को प्रस्तुत करती वह निश्चय ही अपने प्रति अनन्यभाव में स्थित सूरियों की सभा के मध्य हम लोगों को संनिविष्ट करने हेतु उस तुच्छ प्रकृतिमण्डलनिवास में प्रीति होने पर भी हमारे प्रगाढ़ अन्धकार को ध्वस्त करने के लिए ही। अर्थात् हमारी अविद्या तुम्हारे तप:पुञ्जों से नष्ट हो जिससे हम सूरियों की सभा में जा सकें, इसीलिए तुम अपनी किरणों का विस्तार करती हो! उत्प्रेक्षा-अलङ्कार।।४७।।

**सलीलं विन्यस्य त्वयि चरणरक्षे! निजपदं**
**यदृच्छानिष्क्रान्ते विहरति हरौ रङ्गरसिके।**
**दिशासौधानष्टौ जनयसि तदा निर्भरमिल-**
**न्मणिच्छायामायाघनघटितकेतुव्यतिकरान्।।४८।।**

हे चरणपादुके! जब श्रीरङ्गनाथजी अपने चरणों को तुम्हारे ऊपर रख कर स्वेच्छा से निकल कर लीलापूर्वक विचरण करने लगते हैं तब तुम दिशारूपी सौधों (चूना से लीपे गये ऊँचे महल) को अत्यधिक मिलने वाली मणिकान्तियों के बहाने सघनतया निबद्ध ध्वजाओं से सम्पृक्त जैसा बना देती हो। पादुका की मणिकिरणें ऊँचे महलों में ध्वजाओं की स्थापना करती हैं, ऐसा उद्भावन है। अपह्नुति-अलङ्कार।।४८।।

**महार्घैराश्लिष्टा मणिभिरवधूतद्युमणिभिः**
**कथञ्चित्क्षेत्रज्ञैरधिगतपदामम्ब भवतीम्।**
**मुकुन्देन त्रातुं पदकमलमूले विनिहितां**
**निराबाधां मन्ये निधिमनघवाचां निरवधिम्।।४९।।**

हे अम्ब! पादुके! द्युमणि = सूर्य को भी तिरस्कृत कर देने वाली बहुमूल्य मणियों से संसृष्ट तथा क्षेत्रज्ञों (पुरुष और देश-विशेषों

के जानकार से किसी तरह प्राप्त पदस्वरूप और स्थान) वाली आप को मैं मुकुन्द के द्वारा मुकुन्द (निधिविशेष) के साथ पद और निधि की रक्षा करने के लिए पदकमलों के मूल में स्थापित, बाधा से रहित, वेदवाणियों की निःसीम निधि मानता हूँ। श्लेष से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४९॥

**तापत्रयं निरुन्धे पचति कषायान् विशोषयति पङ्कम्।**
**तेजस्त्रितयमिदं ते शङ्के रङ्गेन्द्रपादुके! तेजः॥५०॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तुम्हारा तेज आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक रूप, वसन्तादि तीन ऋतुओं से उत्पन्न तीनों तापों को नष्ट करता है, कषायों (पाप, व्याधि) का नाश करता और पङ्क (पाप, कीचड़) को सुखाता है। इस प्रकार से वह तेज 'चन्द्र-अग्नि-सूर्य' रूप तीनों तेजों का समुदाय है, ऐसा मैं समझता हूँ। श्लेषसंकीर्ण उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥५०॥

●

# अथ षोडशी बहुरत्नपद्धतिः

इस पद्धति में श्रीपादुका में परिव्याप्त संकीर्ण वर्णों से युक्त रत्नों को अभिलक्षित करके पादुका की स्तुति की गयी है।

**मुखबाहूरुपादेभ्यो वर्णान् सृष्टवतः प्रभोः।**
**प्रपद्ये पादुकां रत्नैर्व्यक्तवर्णव्यवस्थितिम्॥१॥**

मैं वेदान्तदेशिक अपने मुख, बाहु, वक्ष और चरणों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की सृष्टि करने वाले प्रभु श्रीरङ्गनाथजी की उस पादुका की शरण में हूँ जिसमें रत्नों से वर्णों (शुक्ल, रक्त, पीत आदि) की व्यवस्था अर्थात् असाङ्कर्य प्रकट है। 'वर्णव्यवस्थिति', इससे अपने-अपने धर्मों में स्थित ब्राह्मणादि वर्णों का असाङ्कर्य और ककार आदि वर्णों की व्यवस्था भी प्रतिपादित है अतः श्लेषमूलक 'सम' नामक अलङ्कार है॥१॥

**मणिभिः सितरक्तपीतकृष्णैर्भवती काञ्चनपादुके! विचित्रा।**
**युगभेदविकल्पितं मुरारेर्युगपद्दर्शयतीव वर्णभेदम्॥२॥**

हे सुवर्ण की पादुके! तुम अपने सित (श्वेत), रक्त, पीत और कृष्ण वर्णों वाले मणियों से वैचित्र्यानुवेध से संपृक्त हुई श्रीमुरमथन के उस वर्णभेद (रूपभेद) को सत्ययुग आदि युगों के भेदों से विकल्पित रूप से एक साथ मानो प्रदर्शित कर रही हो। 'आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः। शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः'। इस सभापर्व के वचन से सिद्ध है कि श्रीभगवान् का वर्ण युग के भेद से बदलता रहता है॥२॥

**नवरत्नविचित्रिता मुरारेः पदयोस्त्वं मणिपादुके! विभासि।**
**नवखण्डवती वसुन्धरेव प्रणयाज्जन्मभुवं समाश्रयन्ती॥३॥**

हे मणिपादुके! मौक्तिक, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनीलमणि, वैडूर्य, गोमेद, पुष्पराग, प्रवाल और हेम रूप नौ संख्या में व्यवस्थित रत्नों से तुम श्रीमुरमथन के चरणों में सुशोभित हो रही हो। कैसे? भारत, किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, भद्राश्व, केतुमाल, रम्य, हिरण्मय और कुरु नामक नौ खण्डों वाली पृथ्वी के समान प्रेम से अपने जन्म-स्थान श्रीभगवच्चरणों की स्वीकार करती हुई॥३॥

**सहसा विनिवेद्य सापराधांस्त्वदधीनस्वपदे मुकुन्दपादे।**
**अरुणोपलसक्तमौक्तिकश्रीः स्मयमानेव विभासि पादुके! त्वम्॥४॥**

हे पादुके! अरुणोपल अर्थात् पद्मरागमणियों में संसक्त मोतियों की कान्ति वाली तुम अपराध कर देने वाले पुरुषों को अपने ही अधीन रक्षा और व्यवसाय वाले श्रीमुकुन्दचरणों में रक्षा करने के निमित्त शीघ्र ही लगा कर यत्किञ्चित् हास के साथ (स्मयमानेव) सुशोभित हो रही हो। यहाँ पर पादुका में अप्राकरणिक लक्ष्मी के वृत्तान्त की प्रतीति होने से 'समासोक्ति' अलङ्कार है। 'परोक्ति-र्भेदकैःश्लिष्टैः समासोक्तिः', यह प्रकाशग्रन्थ में लक्षण है॥४॥

**बहुरत्नसमुद्भवं मयूखं तव मन्ये मणिपादुके! मुरारेः।**
**चरणोपगतं मयूरपिच्छं मकुटारोहणसाहसं प्रमार्ष्टुम्॥५॥**

हे मणिपादुके! मैं तो यही मानता हूँ कि तुम्हारी नाना रत्नों से उत्पन्न होने वाली किरण श्रीकृष्ण की बाल्यलीला के समय उनके चरणों में गयी हुई मयूर की पाँख है जो मुकुट पर विराजमान होने की धृष्टता को दूर करने के लिए ही है। मयूरपिच्छ भगवान् के मुकुट पर है जिसे सहन न करती हुई पादुका मयूरपिच्छाकार अपनी कान्तियों को भगवच्चरणों में विखेर कर यह द्योतित करती है कि वह मुकुट पर चढ़ने का साहस न करे, यह अभिव्यञ्जना है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥५॥

**प्रभया हरिनीलमौक्तिकानां विकसन्त्या दिशसीव पादुके त्वम्।**
**मधुभिच्चरणारविन्दलक्ष्म्याः स्रजमिन्दीवरपुण्डरीकबद्धाम्॥६॥**

हे पादुके! तुम मरकत-नीलमणि और मोतियों की विकसित कान्ति से मानो श्रीमुरमथन भगवान् के चरणों में विद्यमान शोभा रूपी लक्ष्मी को नीलकमल और श्वेतकमलों की गुथी हुई माला प्रदान कर रही हो। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥६॥

**तव माधवपादुके! मणीनां प्रभया देवि! सितासितारुणानाम्।**
**वहते गिरिशस्य मौलिगङ्गा कुमुदेन्दीवरपद्मकाननानि॥७॥**

हे देवि! माधव की पादुके! तेरी लाल और नील मणियों की कान्ति से गिरिश अर्थात् श्रीशङ्करजी के मस्तक में विराजमान गङ्गा श्वेतकमल, नीलकमल और रक्तकमलों के समुदाय को धारण करती हैं। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार से यह वस्तु ध्वनित है कि शङ्करजी सदैव भगवान् के चरणों में प्रणत रहते हैं॥७॥

**पृथग्विधानां द्युतिभिर्मणीनां त्वां पादुके! लोहितशुक्लकृष्णाम्।**
**विहारहेतोरिह रङ्गभर्तुः पादानुषक्तां प्रकृतिं प्रतीमः॥८॥**

हे पादुके! नाना प्रकार की मणियों की कान्तियों से रक्त-शुक्ल और कृष्ण वर्णों वाली तुमको हम विहारहेतु श्रीरङ्गनाथजी के चरणों में संसक्त प्रकृति समझते हैं। 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः', इस श्रुति से प्रकृति में विद्यमान सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण लोहित, शुक्ल और कृष्ण वर्णों से प्रतिपादित हैं। अपूर्वकल्पना यह महाकवि की है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥८॥

**तमालनीलद्युतिमिन्द्रनीलैर्मुक्तानुविद्धां मणिपादुके! त्वाम्।**
**अवैमि रङ्गेश्वरकान्तिसिन्धोर्वेलामविश्रान्तगतागतार्हाम्॥९॥**

हे मणिपादुके! इन्द्रनीलमणियों से नील कान्ति वाली तथा मोतियों और मुक्तात्माओं से अनुविद्ध = अनुस्यूत अर्थात् पिरोयी हुई तुमको मैं श्रीरङ्गनाथजी के कान्तिसागर की निरन्तर गमनागमन के योग्य तटभूमि ही समझता हूँ। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥९॥

**अवैमि रङ्गेश्वरपादुकाभ्यामकालकाल्यं विभवं विधातुम्।**
**वज्रेन्द्रनीलव्यपदेशदृश्यं बन्दीकृतं नूनमहस्त्रियामम्॥१०॥**

श्रीरङ्गनाथजी की दोनों पादुकायें अकालकाल्य अर्थात् काल में करणीय जो न हो (कालपरिच्छेद से उत्तीर्ण), ऐसे मुक्तिरूप ऐश्वर्य का निष्पादन करने के लिए ही हीरे और इन्द्रनीलमणि के बहाने अवलोकनीय दिन और रात्रि दोनों को बन्दी बना ली हैं, ऐसा मैं समझता हूँ। कैतवापह्नुतिगर्भ उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१०॥

**पदस्य गोप्त्री भवती मुरारेर्मणिस्पृशा मौक्तिकरत्नभासा।**
**अन्तर्दृशं साञ्जनया मुनीनामनक्ति कर्पूरशलाकयेव॥११॥**

हे पादुके! श्रीमुरमथन के चरण की रक्षा करने वाली तुम हरित और नील संसर्ग वाली मौक्तिक रत्नों की कान्ति से कज्जलवती कर्पूरशलाका (सींक) के समान मुनियों के अन्तर्नयन को अञ्जित करती हो। यहाँ 'पदस्य गोप्ती', यह पद ज्ञान की रक्षा के अभिप्राय से प्रयुक्त है। पादुकारत्नों की कान्ति मुनियों के ज्ञानचक्षु को खोल देती है, यह तात्पर्य है। अञ्जनवती कर्पूरशलाका बाह्यनयनों में दृष्टि क्रिया में उपयोगी है। पादुकाकान्ति तो अनादि-अविद्या से अवच्छिन्न अन्तर्दृष्टि को शुद्ध करती है, इस प्रकार से व्यतिरोकालङ्कार ध्वनि है॥११॥

**मुक्तामयूखप्रकरैः सुभद्रा कृष्णा महेन्द्रोपलरश्मिजालैः।**
**मान्या मुरारेर्मणिपादुके! त्वं विहारयुक्ता विजयं वृणोषि॥१२॥**

हे मणिपादुके! मोतियों के किरणसमुदायों से सुभद्रा अर्थात् अतिभव्य (कल्याणकारिणी) हो तथा इन्द्रनीलमणियों की किरण के समूहों से कृष्णा (कृष्ण वर्ण वाली) हो। इस प्रकार श्रीमुरारि की मान्य होती हुई तुम संचार से युक्त होकर विजय (उत्कर्ष, शत्रुपराभव) का ही वरण करती हो। यहाँ पर सुभद्रा से कृष्ण की बहन और कृष्णा से द्रोपदी की भी विवक्षा है जो श्रीकृष्ण की मान्य

होती हुई अर्जुन (विजय) का वरण करती हैं। श्लेष-अलङ्कार हमारे मत से है जिसका रूपक से साङ्कर्य है॥१२॥

**विचित्रवर्णां मणिपादुके! त्वां छन्दोमयीं सामनिबद्धगीतिम्।**
**मुनीन्द्रजुष्टां द्विपदां मुरारेः प्रत्यायिकां काञ्चिदृचं प्रतीमः॥१३॥**

हे मणिपादुके! विशेषत: चित्रवर्णों (छवों वर्णों का साङ्कर्य) वाली तथा मुनियों से सेवित, स्वच्छन्द गमन वाली और सान्त्वना में गानों से युक्त तुमको हम श्रीमुरमथन का बोध कराने वाली द्विपदा ऋचा ही मानते हैं जो विचित्र अक्षरों वाली, गायत्री आदि छन्दों में निबद्ध, रथन्तर आदि गीत्यात्मक सामों में आबद्ध और मुनियों के द्वारा गेय है। श्लेष से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥१३॥

**प्रसेदुषी गोत्रभिदः प्रणामैः पुष्णासि रङ्गेश्वरपादुके! त्वम्।**
**मणिप्रभासंचलनापदेशात् प्रायस्तदर्हाणि शरासनानि॥१४॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तुम इन्द्र (गोत्रभिद्) के प्रणामों से प्रसन्न हुई मणियों की कान्तियों के प्रसार के बहाने उनके योग्य शरासन (धनुष) का पोषण करती हो। पादुका के रत्नों की कान्तियों का प्रसार इन्द्रधनुष के समान है, यह उपमा-अलङ्कार उत्प्रेक्षा से अभिव्यक्त है, अत: यहाँ अलङ्कार से अलङ्कार ध्वनि है॥१४॥

**शोणाश्मनां नवहरिन्मणिरश्मिभिन्नं**
**बालातपं बलिविमर्दनपादरक्षे।**
**श्यामीकृतं शुकशकुन्तगणप्रवेशा-**
**च्छङ्के सतां किमपि शालिवनं विपक्वम्॥१५॥**

हे बलि का संमर्दन करने वाली मुरमथन की पादुके! तुम्हारी मरकतमणियों की कान्तियों से मिला हुआ पद्मरागमणियों का अक्षीण किरणसमुदाय शुकपक्षियों के प्रवेश से सत्पुरुषों के लिए कोई विलक्षण पका हुआ धानों का वन हो गया है, ऐसा मैं मानता हूँ। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१५॥

**संभिद्यमानमणिमौक्तिकविद्रुमश्रीः**
**सैरन्ध्रिकेव भवती मणिपादरक्षे।**
**प्रस्तौति रङ्गनृपतेश्चरणारविन्दे**
**कस्तूरिकाघुसृणचन्दनपङ्कचर्चाम्॥१६॥**

हे मणिपादुके! परस्पर संमिश्रित इन्द्रनीलमणि, विद्रुम (प्रवाल) और मोतियों की कान्ति वाली आप सैरन्ध्रिका (अलङ्कारप्रसाधनिका) के समान ही श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों में कस्तूरी, कुङ्कुम (घुसृण) और चन्दन के पङ्कों की रचना प्रस्तुत करती हो। उपमा और उत्प्रेक्षा अलङ्कारों की संसृष्टि॥१६॥

**आतन्वतीमसुरमर्दनपादरक्षे!**
**शुद्धान्तपक्ष्मलदृशां मदनेन्द्रजालम्।**
**वैहारिकीं विविधरत्नमयूखलक्ष्या-**
**न्मन्ये समुद्वहसि मोहनपिच्छिकां त्वम्॥१७॥**

हे असुरमर्दन भगवान् श्रीनारायण की पादुके! नाना प्रकार के रत्नों की किरणों के बहाने तुम श्रीभगवान् के अन्तःपुर में रहने वाली नारियों के कामरचित इन्द्रजाल (जादू) का विस्तार करने वाली विहार के उद्देश्य से संमोहन की पिच्छिका (पाँख) को धारण करती हो, ऐसा मैं मानता हूँ। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१७॥

**रत्नैर्व्यवस्थितसितासितशोणवर्णै-**
**रालोकवद्भिरजहच्छ्रुतिसंनिकर्षैः।**
**द्रष्टुं मुकुन्दचरणावनिमेषदृश्यौ**
**संदृश्यसे जननि! संभृतनेत्रपङ्क्तिः॥१८॥**

हे मातः! श्रीमुकुन्द की चरणरक्षिके! व्यवस्थित अर्थात् अलग-अलग रूपों में प्रतिभासित शुक्ल, कृष्ण और लाल वर्णों वाले, प्रकाश से युक्त और वेदों के सामीप्य का त्याग न करने वाले

अपने रत्नों से तुम मानो मुकुन्द के चरणों को, जो अपलक (निर्निमेष) देखने के योग्य हैं, देखने के लिए परिपुष्ट नयनों की पङ्क्ति जैसी प्रतीत होती हो नयनों की पङ्क्ति के पक्ष में अक्षिगोलकों के प्रान्त अवयवों में व्यवस्थित शुक्ल, कृष्ण, रक्त रूप वाले, दर्शनक्रिया से युक्त, कानों के सामीप्य को न त्यागने वाले बहुत से नयनों के द्वारा अनिमेषों (देवों) के दर्शनयोग्य श्रीभगवच्चरणों के अवलोकन के लिए नेत्रपङ्क्ति प्रतीत होती हो, यह अर्थान्तर योजना भी होगी। श्लेष से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१८॥

**गारुत्मतान्तरितमौक्तिकपङ्क्तिलक्ष्याद्**
**दूर्वामधूकरचितं दुरितोपशान्त्यै।**
**मातः! स्वयं वहसि मुग्धधियां प्रजानां**
**मङ्गल्यमाल्यमिव माधवपादुके! त्वम्॥१९॥**

हे श्रीमाधव की पादुके! तुम अपने गारुत्मत अर्थात् मरकतमणियों से अन्तरित = क्रमिक व्यवस्थित मोतियों की श्रेणी के बहाने अविवेकी प्रजाओं के पापों के शमन के लिए दूर्वा (दूब) और मधूक (महुआ) के फूलों से निर्मित माङ्गल्यमालाओं को स्वयं धारण करती हो। इससे पादुका की अत्यन्त करुणा व्यक्त होती है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१९॥

**रङ्गाधिराजपदरक्षिणि! राजते ते**
**वप्रोपसंघटितमौक्तिकविद्रुमश्रीः।**
**सक्ता चिरं मनसि संयमिनां निवासात्**
**सूर्येन्दुवह्निमयमण्डलवासनेव॥२०॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तुम्हारे श्रीविग्रह में संघटित (पिरोये गये) मोतियों के अन्तर्गत विद्रुम रत्नों की कान्ति संयमी पुरुषों के मन में चिरकाल तक निवास करने से मानो संसक्त (संलग्न) हुई

सूर्य-चन्द्र-अग्नि के बिम्बों की वासना ही सुशोभित हो रही है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२०॥

आसक्तवासवशिलाशकलास्त्वदीयाः
पद्मासहायपदरक्षिणि! पद्मरागाः।
प्रत्यक्षयन्ति कमपि भ्रमराभिलीनं
पादारविन्दमकरन्दरसप्रवाहम्॥२१॥

हे लक्ष्मीपति श्रीनारायण की पादुके! जिनमें इन्द्रनीलमणि के टुकड़े संश्लिष्ट हों ऐसे तुम्हारे पद्मराग श्रीभगवान् के चरणकमलों के मकरन्दरसों के लोकोत्तर उस प्रवाह का प्रत्यक्ष करते हैं जिसमें भ्रमर लीन हों। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२१॥

अन्तःपुराणि समयेष्वभिगन्तुमेका
रङ्गेशितुर्जनपयसीव पदावनि! त्वम्।
मुक्तांशुजालमिलनाद्रुचिरैः प्रवालै-
र्बिम्बाधरं स्मितविशेषयुतं प्रियाणाम्॥२२॥

हे पादुके! अन्य जनों से शून्य अर्थात् अँकेली तुम श्रीरङ्गनाथजी के अन्तःपुरों में रति के समय जाने के लिए अपने मौक्तिककिरणों के सम्पर्क से मनोहर हुए प्रवालरत्नों के द्वारा लक्ष्मी आदि प्रेयसियों के मन्दहासविशेषों से युक्त बिम्बाधर का स्मरण कराती हो। बिम्बनामक फल की तरह लाल अधर = बिम्बाधर। मोतियों की कान्ति से युक्त प्रवाल (मूँगा) स्मितयुक्त अधर का स्मरण कराते हैं, यह अभिप्राय है॥२॥

रङ्गेश्वरस्य मृगयोश्चरणावसक्तां
रक्षःकपीन्द्रमकुटेषु निवेशयोग्याम्।
मन्ये पदावनि! निबद्धविचित्ररत्नां
मायामृगस्य रचितामिव चर्मणा त्वाम्॥२३॥

हे चरणपादुके! चित्र-विचित्र रत्नों से गुथी हुई तुमको मैं मृगयु (मारीच मृग को पकड़ने वाले व्याध) श्रीरङ्गनाथजी के चरणों में संसक्त और विभीषण-सुग्रीव के मुकुटों में निवेश के योग्य मायामृग (मारीच) के चमड़े से निर्मित पादुका जैसा मानता हूँ। मारीचमृग का शरीर नाना प्रकार के रत्नों के वर्ण जैसा था, यह रामायण में प्रसिद्ध है। मारीचमृगचर्म से पादुका की रचना उद्भावित है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२३॥

**बध्नासि रङ्गपतिविभ्रमपादुके! त्वं**
**मायाकिरातमकुटे नवबर्हमालाम्।**
**आकृष्टवासवधनुःशकलैर्मणीना-**
**मन्योन्यसंघटितकर्बुरितैर्मयूखैः॥२४॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी के विचरण में उपयुक्त पादुके! खींच लिये गये हों इन्द्रधनुष के टुकड़े जिनमें अर्थात् इन्द्रधनुष के टुकड़े के समान वर्ण वाले परस्पर के संश्लेष से चित्रित हुए अपने मणियों की किरणों से तुम किरातवेशधारी श्रीशङ्करजी के मुकुट में नूतन मयूरपिच्छों की माला बाँधती हो। श्रीशिव का प्रणाम यहाँ ध्वनित है।॥२४॥

**अन्योन्यबन्धुरहरिन्मणिपद्मरागा**
**रङ्गेश्वरस्य चरणावनि! राजसे त्वम्।**
**आत्मोपमानविभवाच्चरितार्थयन्ती**
**शैलात्मजागिरिशयोरिव मूर्तिमेकाम्॥२५॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! परस्पर वर्णों के उत्कर्ष से सुशोभित (बन्धुर) मरकत और पद्मराग मणियों वाली तुम एक अर्थात् अभिन्न हुई, पार्वतीशङ्कर की मूर्ति (आकार) को अपनी सादृश्यसम्पत्ति से चरितार्थ अर्थात् कृतार्थ करती हुई सी सुशोभित हो रही हो। शिव के कर्पूर की तरह गौर और पार्वती के श्याम होने से वर्णसाम्य का कथन है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२५॥

तापत्रयप्रशमनाय समाश्रितानां
संदर्शितारुणसितासितरत्नपङ्क्तिः।
पुष्णासि रङ्गनृपतेर्मणिपादुके! त्वं
प्रायः सरोजकुमुदोत्पलकाननानि॥२६॥

हे श्रीरङ्गनाथजी की मणिपादुके! लाल, श्वेत और कृष्ण रत्नों की पङ्क्ति को प्रकट करने वाली तुम अपने आश्रित जनों के तीनों तापों को शान्त करने के लिए प्रायः सरोज (रक्तकमल), कुमुद (श्वेतकमल) और उत्पलों (नीलकमल) के वनों को संपुष्ट करती हो। कामादि ज्वरों से पीडित जन जैसे शरीरों में कमलदलों का विन्यास करते हैं वैसे ही पादुका सारे सेवकों का रत्न किरणों से शीतलोपचार करती है, यह अभिप्राय है। 'सम' अलङ्कार तथा यथासंख्य-अलङ्कार॥२६॥

देहद्युतिं प्रकटयन्ति महेन्द्रनीलाः
शौरेः पदाम्बुजरुचिं तव पद्मरागाः।
अन्योन्यलब्धपरभागतया त्वमीषा-
माभाति कान्तिरपरा मणिपादरक्षे॥२७॥

हे मणिपादुके! तुम्हारे श्रीविग्रह में विन्यस्त इन्द्रनील मणियाँ भगवान् श्रीशौरि के शरीर की श्याम कान्ति को प्रकट कर रही हैं तथा 'पद्मराग' मणियाँ प्रभु के चरणकमलों की रक्त कान्ति को प्रकट कर रही हैं। पारस्परिक गुणोत्कर्ष (परभागो गुणोत्कर्षः) को प्राप्त कर लेने के कारण इन रत्नों की कोई अन्य ही कान्ति प्रकट हो रही है। आदितः दो पादों में उपमा तथा अन्तिम पाद में भेदकातिशयोक्ति अलङ्कार है॥२७॥

आकीर्णमौक्तिकहरिन्मणिपद्मरागा-
मम्भोजलोचनपदावनि! भावये त्वाम्।

**तत्पादविश्रमजुषां श्रुतिसुन्दरीणां**
**वर्णोपधानमिव मौलिनिवेशयोग्यम्॥२८॥**

हे कमलनयन श्रीनारायण की पादुके! परस्पर संश्लिष्ट मोती, हरिन्मणि (मरकत) और पद्मरागों वाली तुमको मैं श्रीरङ्गनाथजी के ही चरणों में विश्राम का सेवन करने वाली अर्थात् श्रीमद्भगवच्चरणकमलों का ही परम तात्पर्य के रूप में प्रतिपादन करने वाली श्रुतिसुन्दरियों (वेदाङ्गना) के मस्तक में निवेश के योग्य वर्णोपधान अर्थात् चित्र पट से निर्मित उपबर्ह की तरह भावित करता हूँ। रूपकानुप्राणित उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२८॥

**आसन्नवासवशिलारुचिरास्त्वदीयाः**
**पद्मेक्षणस्य पदरक्षिणि! पद्मरागाः।**
**संभावयन्ति समये क्वचिदुष्णभानोः**
**सद्यःप्रसूतयमुनासुभगामवस्थाम्॥२९॥**

हे कमलनयन श्रीभगवान् की पादुके! समीप में वर्तमान (आसन्न) इन्द्रनील मणियों से मनोरम हुए तेरे पद्मराग किसी समय उष्णभानु = सूर्य की उस अवस्था (दशा) का अत्यधिक सम्मान करते हैं जो तत्काल उत्पन्न यमुना से रमणीय हो गयी है। निदर्शना-अलङ्कार॥२९॥

**मुक्तेन्द्रनीलमणिभिर्विहिते भवत्याः**
**पङ्क्ती दृढे परमपूरुषपादरक्षे।**
**मन्ये समाश्रितजनस्य तवानुभावा-**
**दुन्मोचिते सुकृतदुष्कृतशृङ्खले द्वे॥३०॥**

हे परम पुरुष श्रीनारायण की पादुके! आप की मुक्तामणियों और इन्द्रनील मणियों से रचित दृढ पङ्क्तियाँ तुम्हारे प्रभाव से ही आश्रितजन के छुड़ाये गये पुण्य और पाप की दो शृङ्खलायें (जञ्जीर) हैं, ऐसा मैं मानता हूँ। पादुकारत्नों की दोनों पङ्क्ति सेवक जन

की पाप-पुण्य-शृङ्खलायें हैं जो पादुका के प्रभाव से अलग कर दी गयी हैं, इस उत्प्रेक्षा-अलङ्कार से पादुका का कारुण्यातिशय रूप वस्तु व्यङ्ग्य है जो कि कविप्रौढोक्तिनिष्पन्न शरीर है॥३०॥

**उद्गीर्णगाढतमसो हरिनीलभङ्गा-**
**स्ताराविशेषरुचिराणि च मौक्तिकानि।**
**त्वत्संगमात् सरसिजेक्षणपादरक्षे!**
**संयोजयन्ति निशया भवमौलिचन्द्रम्॥३१॥**

हे कमलनयन श्रीभगवान् की पादुके! उद्गीर्ण अर्थात् बाहर फैलायी गयीं प्रगाढ नील कान्तियों वाले नीलमणि के खण्ड और नक्षत्रों (ताराविशेष) की तरह मनोहर मौक्तिक, ये दोनों ही तुझमें समासक्त होने से शङ्करजी के मस्तक में विराजमान चन्द्रमा को रात्रि से संयोग करा दे रहे हैं। मोतियों से संपृक्त नीलच्छटा नक्षत्रयुक्त रात्रि के रूप में उद्भावित है जिससे प्रणत श्रीशिव के मस्तक के चन्द्र का संयोग वर्णित है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३१॥

**विष्णोः पदेन घटिता मणिपादुके! त्वं**
**व्यक्तेन्द्रनीलरुचिरुज्ज्वलमौक्तिकश्रीः।**
**कालेषु दीव्यसि मरुद्भिरुदीर्यमाणा**
**कादम्बिनीव परितःस्फुटवारिबिन्दुः॥३२॥**

हे मणिपादुके! श्रीविष्णु के चरण से युक्त तथा सुस्पष्ट इन्द्रनीलमणि की कान्ति वाली और उज्ज्वल मोतियों की शोभा से सम्पन्न तुम श्रीभगवान् के संचरण के समय वायुयों से प्रेरित होती हुई सुस्पष्ट सर्वतः जलबिन्दुओं वाली कादम्बिनी (मेघपङ्क्ति) के समान क्रीडा करती हो। कादम्बिनी भी श्रीविष्णु के पद = स्थान आकाश में रहती है और नील-मौक्तिक-आभा से संपृक्त रहती है। श्लिष्टोपमा अलङ्कार॥३२॥

भासा स्वया भगवतो मणिपादरक्षे!
मुक्ताञ्चिता मरकतोपलपद्धतिस्ते।
नित्यावगाहनसहं सकलस्य जन्तो-
र्गङ्गाञ्चितं जनयसीव समुद्रमन्यम्॥३३॥

हे श्रीभगवान् की मणिपादुके! तेरी मोतियों से अभ्यर्हित (पूजित, सहकृत) मरकतमणियों की पद्धति अपनी ही आभा से सारे जन्तुओं के नित्य सेवन (अवगाहन) के योग्य गङ्गा से अञ्चित = पूजित किसी अन्य ही समुद्र का मानो निर्माण कर रही है। प्रसिद्ध समुद्रस्नान पर्व में ही विहित है। अतः अन्य काल में वह स्नान-योग्य नहीं रहता। पादुकारत्नपद्धति से रचित समुद्र तो नित्य ही स्नान के योग्य रहता है, यह व्यतिरेक अलङ्कार ध्वनित है जिससे उत्प्रेक्षा का साङ्कर्य है॥३३॥

सूर्यात्मजा हरिशिलामणिपङ्क्तिलक्ष्यात्
त्वां नित्यमाश्रितवती मणिपादरक्षे।
आदौ जनार्दनपदे क्षणमात्रलग्ना-
मासन्नमौक्तिकरुचा हसतीव गङ्गाम्॥३४॥

हे मणिपादुके! 'इन्द्रनील' मणियों की श्रेणी के व्याज से यमुना तुम्हारे आश्रय में नित्य रहती हुई पहले जनार्दन श्रीभगवान् के चरण में क्षणमात्र लगी रहने वाली गङ्गा का मानो समीपस्थित मोतियों की कान्ति से उपहास कर रही है। हास का वर्णन स्वच्छता के रूप में कविसम्प्रदाय में सिद्ध है जो मोतियों की कान्ति से उद्भावित है। पादुका के माध्यम से भगवान् के नित्य सान्निध्य से यमुना को गर्व है और वह गङ्गा का उपहास करती है कि वह श्रीभगवच्चरण के सन्निधान में कुछ क्षण के लिए ही थी। अपह्नुति-उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥३४॥

पर्यन्तसंघटितभासुरपद्मरागाः
पद्मोदरभ्रमरकान्तिमुषस्त्वदीयाः।
त्वत्संश्रयेण चरणावनि! शक्रनीलाः
पीताम्बरेण पुरुषेण तुलां लभन्ते॥३५॥

हे चरणपादुके! किनारों के भागों में देदीप्यमान (भासुर) 'पद्मराग' मणियों वाली तथा कमलों के भीतर भौरों की कान्ति को चुराने वाली 'इन्द्रनील' मणियाँ तुम्हारे आश्रय से पीताम्बरधारी श्री भगवान् की तुलना को प्राप्त कर रहे हैं। उपमा-अलङ्कार॥३५॥

शङ्के पदावनि! सदा परिचिन्वती त्वं
रङ्गेशितुश्चरणपङ्कजसौकुमार्यम्।
अग्रे महोभिररुणोपलमौक्तिकानां
प्राज्यां विनिक्षिपसि पल्लवपुष्पपङ्क्तिम्॥३६॥

हे श्रीरङ्गनाथजी की चरणरक्षिके! श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों की मृदुलता का सदा बहुत बार चयन करती हुई तुम लालमणि और मोतियों की कान्ति से उनके आगे संचरण के समय पल्लवों और फूलों की झड़ी लगा देती हो, ऐसी मैं आशङ्का करता हूँ। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥३६॥

निर्गच्छता चरणरक्षिणि! नीयमाना
रङ्गेश्वरेण भवती रणदीक्षितेन।
सूते सुरारिसुभटीनयनाम्बुजानां
ज्यौत्स्नीं निशामिव सितासितरत्नभासा॥३७॥

हे चरणरक्षिणि! पादुके! रणदीक्षित अर्थात् युद्ध में तत्पर हुए बाहर निकलने वाले श्रीरङ्गनाथजी के द्वारा दूसरे स्थान पर ली जाती हुई तुम अपनी कृष्ण और विशद कान्ति से मानो दानवों की भटियों के नयनकमलों के समक्ष चन्द्रिकामय रजनी का उत्पादन करती हो। उत्प्रेक्षा॥३७॥

**मरकतहरिताङ्गी मेदुरा पद्मरागै-**
**रभिनवजलबिन्दुव्यक्तमुक्ताफलश्रीः।**
**कलयसि पदरक्षे! कृष्णमेघप्रचारात्**
**कनकसरिदनूपे शाद्वलं सेन्द्रगोपम्॥३८॥**

हे पदरक्षे! 'मरकत' मणियों से हरित वर्णों वाली तथा 'पद्मराग' मणियों से घनी और नूतन जलबिन्दुओं के समान सुस्पष्ट मौक्तिक-कान्तियों से युक्त तुम कृष्णरूपी काले मेघ के संचार से कावेरी नदी के कच्छप्रदेश (अनूप) में सफेद 'इन्द्रगोप' नामक कीड़ों से युक्त बाल हरिततृणों वाले प्रदेश की आभा प्राप्त करती हो। मेघप्रचार के समय कच्छ प्रदेशों में नूतन जल के बिन्दु, 'इन्द्रगोप' तृण होते हैं जो पादुकावयवों से उद्भावित हैं। रूपक से अनुप्राणित उत्प्रेक्षालङ्कार॥३८॥

**विरचितसुरसिन्धोर्विष्णुपादारविन्दात्**
**समधिकमनुभावं पादुके! दर्शयन्ती।**
**बलभिदुपलमुक्तापद्मरागप्रकाशैः**
**परिणमयसि नूनं प्राप्तशोणं प्रयागम्॥३९॥**

हे पादुके! गङ्गा (सुरसिन्धु) को उत्पन्न करने वाले विष्णुचरणकमल से भी अधिक प्रभाव को प्रकट करती हुई तुम इन्द्रनीलमणि, मौक्तिक और 'पद्मराग' मणियों के प्रकाशों से प्रयाग को 'शोण' नद से युक्त कर देती हो। श्रीभगवच्चरण केवल गङ्गा का ही उत्पादक है किन्तु पादुका श्वेत, कृष्ण और रक्तवर्णों से गङ्गा, यमुना और शोण का उत्पादन करती है, इस प्रकार आधिक्य के प्रतिपादन से व्यतिरेकालङ्कार है जो आद्य पादद्वयप्रतिपाद्य अर्थ में हेतु है, अतः काव्यलिङ्ग-अलङ्कार भी है॥३९॥

**विविधमणिमयूखैर्व्यक्तपक्षां विचित्रै-**
**र्जलनिधिदुहितुस्त्वां वेद्मि लीलाचकोरीम्।**

अनिशमविकलानां पादुके! रङ्गभर्तु-

श्चरणनखमणीनां चन्द्रिकामापिबन्तीम्॥४०॥

हे पादुके! नाना प्रकार की मणियों की विचित्र किरणों से सुस्पष्ट पार्श्वरूपी पाँखों वाली तुमको मैं श्रीलक्ष्मीजी की क्रीडाचकोरी ही मानता हूँ जो निरन्तर श्रीरङ्गनाथजी के परिपूर्ण चरणनखमणियों की चन्द्रिका का पान करती रहती है। उत्प्रेक्षा॥४०॥

चरणकमलसेवासङ्गिनां रङ्गभर्तु-

र्विनयगरिमभाजां वर्जितैरातपत्रैः।

पुनरपि पदरक्षे! पुष्यसि त्वं सुराणां

बहुविधमणिकान्त्या बर्हिपिच्छातपत्रम्॥४१॥

हे पादुके! विनय की गरिमा से सम्पन्न और भगवान् श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों की सेवा में ही लगे रहने वाले वर्जित छत्रों से उपलक्षित अर्थात् छत्ररहित देवों के लिए तुम नाना प्रकार की मणियों की कान्ति से पुनः पुनः मयूरपिच्छों का ही छत्र तैयार कर देती हो। उत्प्रेक्षा॥४१॥

मरकतरुचिपत्रा मौक्तिकस्मेरपुष्पा

स्फुटकिसलयशोभा भासुरैः पद्मरागैः।

फलमखिलमुदारा रङ्गनाथस्य पादे

कलयति भवती नः कल्पवल्लीव काचित्॥४२॥

हे पादुके! मरकत मणियों की कान्तिरूपी पत्तों वाली तथा मौक्तिकरूपी विकसित फूलों वाली और देदीप्यमान 'पद्मराग' मणियों से सुस्पष्ट किसलयों की शोभा वाली तुम श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमल में उदार हुई कल्पवृक्ष की लता की तरह सारे फलों को प्रदान करती हो। रूपक-उपमा अलङ्कार॥४२॥

बहुमणिरुचिराङ्गीं रङ्गनाथस्य पादा-

न्निजशिरसि गिरीशो निक्षिपन् पादुके! त्वाम्।

**स्मरति ललितमन्तर्लालनीयं भवान्या-**
**स्तरलघनकलापं षण्मुखस्यौपबाह्यम्॥४३॥**

हे पादुके! गिरीश = रुद्र अनेकमणियों से रमणीय आकार वाली तुमको श्रीरङ्गनाथजी के चरण से अपने मस्तक पर निक्षिप्त करते हुए भवानी पार्वती के अन्त:पुर में लालनीय, मनोहर और निविड (घने) तरल बर्ह से युक्त श्रीकार्तिकेय के वाहन मयूर का स्मरण करते हैं। स्मृति-अलङ्कार॥४३॥

**विविधमणिसमुत्थैर्व्यक्तमापादयन्ती**
**दिवसरजनिसन्ध्यायौगपद्यं मयूखैः।**
**उपनिषदुपगीतां पादुके! रङ्गिणस्त्वा-**
**मघटितघटनार्हां शक्तिमालोचयामः॥४४॥**

हे पादुके! नाना प्रकार की मणियों से निकलने वाली किरणों से रात और दिन की सन्ध्या के यौगपद्य (एक काल का मिश्रण) का आपादन करने वाली तुमको हम उपनिषदों से गीयमान, अघटितघटनापटीयसी श्रीरङ्गनाथजी की शक्ति ही समझते हैं। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥४४॥

**सकलमिदमवन्ध्ये शासने स्थापयन्ती**
**मुरमथनपदस्था मौक्तिकादिप्रकारा।**
**प्रकटयसि विशुद्धश्यामरक्तादिरूपान्**
**फलपरिणतिभेदान् प्राणिनां पादुके! त्वम्॥४५॥**

हे पादुके! श्रीमुरमथन भगवान् के चरण और तत्प्रदत्त अधिकार में स्थिर रहती हुई तथा इस सारे संसार को अबन्ध्य अर्थात् अमोघ शासन (आज्ञा) में स्थापित करती हुई और मौक्तिक आदि मणियों से निष्पन्न शरीर वाली तुम प्राणियों के विशुद्ध (सत्त्व), श्याम (तम) और रक्त (रज) रूपों वाले फलपरिणाम के प्रभेदों को प्रकट करती हो। वे फलप्रकार मोक्ष-स्वर्ग-नरक रूप हैं। श्लिष्ट विशेषणों के बल

से शुभाशुभ फलों को देने वाले धर्माधिष्ठाता श्रीभगवान् की प्रतीति होने से समासोक्ति-अलङ्कार है जिससे संकीर्ण उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है।।४५।।

**प्रदिशति मुदमक्ष्णोः पादुके! देहभाजां**
**शतमखमणिपङ्क्तिः शार्ङ्गिणस्तुल्यवर्णा।**
**परिसरनिहितैस्ते पद्मरागप्रदीपै-**
**र्घनतरपरिणद्धा कज्जलश्यामिकेव।।४६।।**

हे पादुके! शार्ङ्गधन्वा भगवान् श्रीनारायण के समान वर्ण वाली तेरी 'इन्द्रनील' मणियों की श्रेणी समीप में स्थित 'पद्मराग' मणियों के प्रदीपों से सघन रूप में परिणद्ध = उत्पादित अञ्जन की नीलिमा जैसी ही प्राणियों की आँखों में हर्ष प्रदान करती है। उपमा से संसृष्ट उत्प्रेक्षा-अलङ्कार।।४६।।

**कलयापि हानिरहितेषु सदा**
**तव मौक्तिकेषु परितः प्रथते।**
**उपरज्यमानहरिणाङ्कतुला**
**हरिपादुके! हरिशिलामहसा।।४७।।**

हे श्रीहरि की पादुके! सदा अत्यल्प रूप से भी अपकर्ष (हानि) से रहित अर्थात् परिपूर्ण तेरी मोतियों में हरिशिला (इन्द्रनीलमणि) की कान्ति से राहु से निगृह्यमाण (ग्रस्त) चन्द्रमा का साम्य झलकता है। 'इन्द्रनील' मणि से सन्निकृष्ट मौक्तिकों में राहुग्रस्त चन्द्रमा की समानता के कथन से उपमा-अलङ्कार है।।४७।।

**मरकतपत्रला रुचिरविद्रुमपल्लविता**
**पृथुतरमौक्तिकस्तबकिता निगमैः सुरभिः।**
**उपवनदेवतेव चरणावनि! रङ्गपते-**
**रभिलषतो विहारमधिगम्य पदं स्पृशसि।।४८।।**

हे चरणरक्षिके! 'मरकत' मणियों से पत्तों वाली, मनोरम विद्रुमों से पल्लवों = किसलयों वाली, मोटी-मोटी मोतियों से गुच्छों वाली तथा वेदों से सुगन्धवती तुम विहार करने के इच्छुक श्रीरङ्गनाथजी के चरण के समीप आकर उपवन की अधिष्ठातृदेवता की तरह उसका स्पर्श करती हो। रूपकानुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४८॥

**सदोत्तुङ्गे रङ्गक्षितिरमणपादप्रणयिनि!**
**त्वदालोके तत्तन्मणिकिरणसंभेदकलुषे।**
**प्रतिस्त्रोतोवृत्त्या प्रथितरुचिभेदं न सहते**
**नवाम्भःस्वाच्छन्द्यं नमदमरकोटीरमकरः॥४९॥**

हे श्रीरङ्गभूमि के रमण की चरणप्रेयसि! प्रणाम में तत्पर देवताओं के मुकुटों में विद्यमान प्रतिमारूप मकर = ग्राह रूपी जीवित मकर सर्वदा ही उन्नत तथा उन-उन मणिकिरणों के संमिश्रण से चित्रित तुम्हारे प्रकाशरूपी प्रवाह में प्रतिकूल स्त्रोत के व्यापार से नूतन जलों की स्वच्छन्नता को प्रख्यात कान्ति और रसप्रभेद के रूप में सहन नहीं कर पाता। जैसे मकर नवीन जलप्रवाह में अभिमुखतया चलता हुआ उसे रोकता है वैसे प्रतिमामकर भी, यह भाव है। रूपक से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४९॥

**जनयसि पदावनि! त्वं मुक्ताशोणमणिशक्रनीलरुचा।**
**नखरुचिसंततिरुचिरां नन्दकनिस्त्रिंशसंपदं शौरेः॥५०॥**

हेचरणरक्षिके! तुम मौक्तिक, शोणमणि और इन्द्रनीलमणि की कान्ति से श्रीकृष्ण के नखों की कान्तियों के वितान से मनोरम 'नन्दक' नामक खड्ग की सम्पत्ति को उत्पन्न कर रही हो। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥५०॥

●

# अथ सप्तदशी पद्मरागपद्धतिः

इस पद्धति में पद्मराग रत्नों की माला से विभूषित पादुका की स्तुति की गयी है—

**प्रपद्ये रङ्गनाथस्य पादुकां पद्मरागिणीम्।**
**पदैकनियतां तस्य पद्मवासामिवापराम्॥१॥**

श्रीरङ्गनाथजी के चरणों में नियमतः विराजमान, पद्मराग मणियों वाली उनकी पादुका की शरण में मैं हूँ जो पद्म = कमल में रागयुक्त, भगवच्चरणसेवा में तत्पर दूसरी कमलनिवासिनी लक्ष्मी जैसी है। शिलष्टोपमा-अलङ्कार॥१॥

**अतिवाङ्मनसं विचिन्त्य शौरेः पदरक्षे! पदपद्मसौकुमार्यम्।**
**परिपुष्यसि पद्मरागभासा पदवीमाहितपल्लवामिव त्वम्॥२॥**

हे श्रीभगवान् की चरणरक्षिके! तुम शौरि भगवान् श्रीकृष्ण की वाङ्मनसातीत चरणकमलमृदुलता का चिन्तन करके मानो अपनी 'पद्मराग' मणियों की कान्ति से उनके मार्ग को पल्लव बिछाकर परिपुष्ट करती हो ताकि चलने में भगवान् को परेशानी न हो। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२॥

**पदपल्लवसङ्गिभिः प्रदीप्तैरधिकोल्लासिभिरम्ब! पद्मरागैः।**
**अनले शयनं क्वचिन्मुरारेरविसंवादयसीव पादुके! त्वम्॥३॥**

हे मातः! पादुके! तुम पदकिसलयों में सक्त, अत एव अधिक उल्लास से युक्त प्रदीप्त पद्मरागों से श्रीमुरमथन भगवान् के अग्निशयन को यथार्थरूप में प्रस्तुत करती हो। श्रीभगवच्छास्त्र में

युगान्तकाल में भगवान् का अग्नि में शयन प्रतिपादित है। तथा हि—

युगान्तेषु च संहारं यः करोति च सर्वदा।
शङ्कराख्यो महारुद्रः प्रादुर्भावान्तरं हि तत्।।
देवस्यानलशायोर्वै सर्वायुःसंस्थितस्य वा।। इति।।३।।

**विवृणोति रङ्गपतिरत्नपादुके! त्वयि पद्मरागमणिपद्धतिः शुभा।**
**निबिडोरुसंघटनपीडनक्षरन्मधुकैटभक्षतजपङ्कवासनाम्।।४।।**

हे श्रीरङ्गनाथजी की रत्नपादुके! तुझमें विराजमान 'पद्मराग' मणियों की किरणों की शुभ श्रेणी सघन ऊरुभाग (सक्थि) के संघटन (संयोजन) से संमर्दन द्वारा बहते हुए मधु-कैटभ-रुधिरों की पङ्कवासना की व्याख्या करती है। श्रीभगवान् के ऊरुभागों से 'मधु-कैटभ' नामक दैत्यों का वध होने पर गिरा हुआ रक्त पादुका में आज भी विद्यमान है, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।।४।।

**प्रतियन्ति रङ्गपतिपादुके! जनास्तव पद्मरागमणिरश्मिसंततिम्।**
**अभिजग्मुषां त्वदनुभावखण्डितादघसंचयाद्विगलितामसृक्छटाम्।।५।।**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तेरे 'पद्मराग' मणियों की किरणों की धारा को लोग तुम्हारी शरण में आये पुरुषों के तुम्हारे ही प्रभाव से खण्डित पापसमूह से गिरने वाली खूनों की धारा के रूप में समझते हैं। उत्प्रेक्षा।।५।।

**पश्यन्ति रङ्गेश्वरपादुके! त्वां पौराङ्गनाः स्पर्शितरागबन्धाम्।**
**शृङ्गारयोनेर्ज्वलनस्य दीप्तैरङ्गारजालैरिव पद्मरागैः।।६।।**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! श्रीरङ्ग नगर की नारियाँ तुमको शृङ्गार रस के मूल काम रूपी अग्नि के प्रदीप्त अङ्गारराशि के समान पद्मरागों से प्रदत्त रक्तिमा के योग और अनुरागबन्ध से युक्त समझते हैं। यहाँ पर पद्मरागों में कामाग्नि के अङ्गारों की उद्भावना होने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।।६।।

**अवैमि दोषापगमस्य हेतुं तमोऽपहां संभृतपद्मरागाम्।**
**अशेषवन्द्यां मणिपादुके! त्वां रङ्गेशसूर्योदयपूर्वसंध्याम्॥७॥**

हे मणिपादुके! राग-द्वेष आदि दोषों के नाश का हेतु, अन्धकार को दूर करने वाली, परिपुष्ट पद्मरागों वाली और सकलजनसमुदाय के द्वारा वन्दनीय तुमको हम श्रीरङ्गनाथरूपी सूर्य के उदय की सूचिका प्रातःकाल की सन्ध्या समझते हैं॥ उत्प्रेक्षा॥७॥

**अवाप्य पादावनि! रङ्गभर्तुः पदाम्बुजे पल्लवसंस्तराभाम्।**
**त्वत्पद्मरागद्युतयो भजन्ते कालानलत्वं कलुषाम्बुधेर्नः॥८॥**

हे चरणरक्षिके! तेरे पद्मरागों की कान्तियाँ श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमल में किसलयास्तरण की शोभा को प्राप्त करके हमारे पापसमुद्र के लिए कालाग्नि हो रही हैं। व्याघात-अलङ्कार है क्योंकि जो पल्लव के समान सुखदायी हैं वे ही अग्नि का शोषण कर रही हैं, ऐसा कथन है॥८॥

**निसर्गसिद्धं मणिपादरक्षे! देवस्य रङ्गावसथप्रियस्य।**
**बालार्कवर्णाःपदपद्मरागं त्वत्पद्मरागाः पुनरुक्तयन्ति॥९॥**

हे मणिपादुके! तुम्हारे बालसूर्य के समान पद्मराग श्रीरङ्गनाथजी के स्वभावसिद्ध चरणकमलराग को पुनरुक्त अर्थात् द्विगुणित कर रहे हैं। श्रीभगवान् के चरणकमलराग को पुनरुक्त अर्थात् द्विगुणित कर रहे हैं। श्रीभगवान् के चरणकमल की रक्तिमा में पादुका के पद्मराग की रक्तिमा मिल कर उसे द्विगुणित कर रही है, यह अभिप्राय है। उपमा और अनुगुण अलङ्कार॥९॥

**पदेन विश्वं मणिपादरक्षे! पत्न्या समं पालयतो मुरारेः।**
**यशःपयोधौ परिकल्पयन्ति प्रवालशोभां तव पद्मरागाः॥१०॥**

हे मणिपादुके! तुम्हारे पद्मराग अपनी पत्नी लक्ष्मीजी के साथ अपने पद (चरण और अध्यवसाय) से विश्व का पालन करने वाले

श्रीमुरमथन के कीर्तिसमुद्र में प्रवालों (मूगा) की शोभा की परिकल्पना कर रहे हैं। रूपक से संकीर्ण उत्प्रेक्षा॥१०॥

**अर्चिष्मती काञ्चनपादरक्षे! प्रस्तौति ते पाटलरत्नपङ्क्तिः।**
**रेखारथाङ्गस्य महःप्रपञ्चं रङ्गेशपादाम्बुजमध्यभाजः॥११॥**

हे सुवर्णनिर्मित पादुके! तेरी कान्तिमती पद्मरागमणिपङ्क्ति अर्थात् पद्मरागों की कान्तिमयी पङ्क्ति श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों के मध्य भाग का सेवन करने वाले रेखारूपी चक्र के तेजोविस्तार (महःप्रपञ्च) का सम्पादन कर रही है। तात्पर्य यह है कि यद्यपि चक्र श्रीभगवान् के दिव्यमङ्गल विग्रह से पृथक् नहीं है तथापि उसकी कान्तिमत्ता पादुकापद्मरागों से ही है॥११॥

**त्वयैव पादावनि! शोणरत्नैर्बालातपं नूनमुदीरयन्त्या।**
**पद्मापतेः पादतलप्ररूढं रेखाम्बुजं नित्यमभूदनिद्रम्॥१२॥**

हे पादुके! शोण (रक्त) रत्नों से तेजःसमुदाय अर्थात् सूर्यकिरणों को उत्पन्न करने वाली तुमसे ही लक्ष्मीपति श्रीरङ्गनाथजी के चरणतल में दृढता से विद्यमान रेखारूप कमल नित्य ही विकसित रहता था॥१२॥

**नित्यं निजालोकपथं गतानां श्रेयो दिशन्तीं श्रितपद्मरागाम्।**
**महीयसीं माधवपादरक्षे! मन्यामहे मङ्गलदेवतां त्वाम्॥१३॥**

हे श्रीमाधव की चरणपादुके! नित्य ही अपने प्रकाशपथ में गये हुए पुरुषों को श्रेय = मोक्ष, ऐश्वर्य प्रदान करती हुई तथा पद्मरागमणि को ग्रहण करने वाली तुमको हम उत्कृष्ट मङ्गलदेवता अर्थात् कल्याण की अधिष्ठातृदेवता लक्ष्मी मानते हैं। पादुका के सारे विशेषण लक्ष्मी-पक्ष में भी घटित होंगे—अपनी दृष्टिपथ में आये पुरुषों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाली कमल की रक्तिमा को धारण करने वाली लक्ष्मी भी हैं। श्लेषालङ्कार से अनुप्राणित स्वरूपोत्प्रेक्षा॥१३॥

देवस्य रङ्गरसिकस्य विहारहेतो-
रात्मानमङ्घ्रिकमले विनिवेद्य पूर्वम्।
प्रायो निवेदयसि शोणमणिप्रकाशैः
प्रत्यूषपद्मकलिकां पदरक्षिणि! त्वम्॥१४॥

हे चरणरक्षिके! तुम संसाररूपी रङ्गमञ्च के रसिक सभानायक देव श्रीरङ्गनाथजी के विहार के लिए पहले स्वयं को उनके चरणकमल में समर्पित करके अपनी 'पद्मराग' मणियों के प्रकाशों से प्रातःकालिक विकसित कमलकुड्मल (मुकुल) प्रदान करती हो। नटी प्रणामपूर्वक रङ्गमञ्ज में राजा को पुष्पाञ्जलि प्रदान करती है, इस अर्थ की विशेषतः प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार है जिसका उत्प्रेक्षा से साङ्कर्य है॥१४॥

प्रत्यङ्मयस्य हविषः प्रणवेन देवि!
प्रक्षेपणाय परमार्थविदां मुनीनाम्।
प्राज्यां मुकुन्दचरणावनि! पद्मरागैः
पर्यायपावकशिखां भवतीं प्रतीमः॥१५॥

हे देवि! मुकुन्द की चरणपादुके! 'पद्मराग' मणियों से उपलक्षित आप को हम परमार्थ तत्त्व के जानकार मुनियों के प्रत्यङ्मय = जीवस्वरूप हवि के 'ओङ्कार' मन्त्र से प्रक्षेपण के लिए पर्याप्त (प्राज्य) दूसरी अग्निज्वाला के रूप में समझते हैं। देवता की इच्छा से द्रव्यत्याग को याग कहते हैं। परमात्मा के शेष (दास) जीव का भी प्रपत्ति रूपी प्रक्षेप के लिए पादुका आहवनीय अग्नि के रूप में उद्भावित है, अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। 'यदाहवनीये जुहोति', इस विधि से वैदिक 'आहवनीय' नामक अग्नि में ही हवि का प्रक्षेप वेद में विहित है॥१५॥

संपद्यते तव पदावनि! पद्मरागैः
प्रस्थानमाङ्गलिकहोमहुताशनश्रीः।

**क्षीराहुतिर्भवति यत्र विकल्पगङ्गा**
**रङ्गेश्वरस्य रुचिरा नखरश्मिधारा॥१६॥**

हे पादावनि = पादुके! तुम्हारे पद्मरागों से श्रीरङ्गनाथजी के प्रस्थान = यात्रा के समय होने वाले माङ्गलिक होम के लिए अग्नि की शोभा होती है, जहाँ पर पाक्षिकी गङ्गा के रूप में विराजमान श्रीरङ्गनाथजी के नखों की किरणों की धारा (अविच्छिन्न सन्तान) ही दूध की आहुति होती है। उत्प्रेक्षा॥१६॥

**आमुञ्चतामरुणयावकपङ्कलक्ष्मीं**
**शोणाश्मनां तव पदावनि! कान्तियोगात्।**
**पद्मासहायपदपद्मनखाः श्रयन्ते**
**सन्ध्यानुरञ्जितसुधाकरबिम्बशोभाम्॥१७॥**

हे पादुके! लाल अलक्तक (महावर) के काँदों की शोभा की योजना करने वाले तेरे पद्मरागों की कान्तियों के संयोग से श्रीलक्ष्मीपति नारायण के चरणकमलों के नख सन्ध्या से अनुरञ्जित चन्द्रमा के बिम्ब की शोभा को धारण करते हैं। निदर्शना-अलङ्कार, जैसा कि लक्षण है—'अभवन् वस्तुसंबन्ध उपमापरिकल्पकः, निदर्शना'॥१७॥

**स्थाने तवाच्युतपदावनि! पद्मरागा-**
**स्तेजोमयाःप्रशमयन्ति तमो मदीयम्।**
**चित्रं तदेतदिह यज्जनयन्ति नित्यं**
**रागात्मकेन महसा रजसो निवृत्तिम्॥१८॥**

हे श्रीअच्युत की पादुके! तेरे तेजःप्रचुर (पर्याप्त तेज वाले) पद्मराग मेरे आध्यासिक तम (अविद्यान्धकार) को दूर करते हैं फिर भी आश्चर्य है कि अपने रागात्मक कान्ति से रजोगुण की निवृत्ति करते हैं। रजोगुणमूलक राग से रजोगुण की निवृत्ति के असम्भाव्य

होने से आश्चर्योक्ति है। 'व्याघात'नामक अलङ्कार यहाँ है। इस पद्य में इस नैषधीय पद्य की छाया प्रतीत होती है—

नि:शङ्कसंकोचितपङ्कजोऽयमस्यामुदीतो मुखमिन्दुबिम्बः।
चित्रं तथापि स्तनकोकयुग्मं न स्तोकमप्यञ्चति विप्रयोगम्॥१८॥

**पद्माकरान्तरविकासिनि रङ्गभर्तुः**
**पीत्वा पदावनि! मधूनि पदारविन्दे।**
**शोणोपलद्युतिमयीं सुभगप्रचारां**
**मन्ये बिभर्षि महतीं मदरागशोभाम्॥१९॥**

हे पादुके! लक्ष्मीजी के अन्य हाथ से अथवा उनके हाथ के मध्य में विकसित होने वाले श्रीरङ्गनाथजी के चरणारविन्द में विद्यमान मधु (पुष्परस और मद्य) पीकर शोमन संचरण करने वाली, प्रचुर पद्मरागों की कान्ति वाली अत्यधिक मदजनित रक्तिमा की शोभा को आप परिपुष्ट करती हैं, ऐसा मैं समझता हूँ॥१९॥

**पादावनि! प्रसृमरस्य कलेर्युगस्य**
**प्रायेण संप्रति निवारयितुं प्रवेशम्।**
**श्रीरङ्गसीम्नि तव शोणमणिप्रसूतः**
**प्राकारमग्निमयमारभते प्रकाशः॥२०॥**

हे पादुके! तुम्हारे शोणमणि = पद्मरागमणि से उत्पन्न होने वाला प्रकाश श्रीरङ्ग धाम में विश्व को ही व्याप्त कर लेने वाले कलियुग के प्रवेश को प्रायः रोकने के लिए ही अग्निमय = अग्नि से निर्मित प्राकार (प्रावरण, अवरोधक) का निर्माण करता है। श्रीभगवान् के सन्निधान से ही होने वाली कलिधर्म की निवृत्ति पद्मरागकान्ति रूप प्रावरण से उद्भावित है, अतः उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है॥२०॥

**लीलागृहान्तरविहारिणि रङ्गनाथे**
**लाक्षारसैररुणरत्नमयूखलक्ष्यैः।**

**प्रायेण रञ्जयति पादसरोजयुग्मं**
**सैरन्ध्रिकेव भवती मणिपादरक्षे॥२१॥**

हे मणिपादुके! जब श्रीरङ्गनाथजी अपने लीलागृह के मध्य में विहार करने लगते हैं तब लाल रत्न (पद्मराग) की किरणों के व्याज से लाक्षारसों (यावक) के द्वारा आप प्रसाधनिका के समान श्रीभगवान् के दोनों चरणकमलों को प्रायः अनुरञ्जित करती रहती हैं। उपमा-उपह्नुति से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२१॥

**रङ्गेशितुर्विहरतो मणिपादरक्षे!**
**रथ्यान्तरे सुमनसः परिकीर्यमाणाः।**
**त्वत्पद्मरागकिरणस्फुरणाद्भजन्ते**
**संध्यातपान्तरिततारकपङ्क्तिलक्ष्मीम्॥२२॥**

हे मणिपादुके! विचरण करने वाले श्रीरङ्गनाथजी के राजमार्ग के मध्य में विखेरे गये फूल तुम्हारे पद्मरागकिरणों के स्फुरण से सन्ध्या-काल में लाल सूर्यकिरणों से अनुलिप्त नक्षत्रों (ताराओं) की श्रेणी की शोभा को धारण करते हैं। निदर्शनालङ्कार॥२२॥

**रङ्गाधिराजपदरक्षिणि! बिभ्रतस्त्वां**
**गङ्गातरङ्गविमले गिरिशस्य मौलौ।**
**संवर्धयन्ति महसा तव पद्मरागाः**
**शैलात्मजाचरणयावकपङ्कलक्ष्मीम्॥२३॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तुम्हारे श्रीविग्रह में जटित पद्मराग अपनी कान्ति से उस समय श्रीपार्वती के चरणों में यावक (लाक्षाराग) के पङ्को (कर्दम) की शोभा को बढ़ाते हैं जब शङ्करजी अपने गङ्गातरङ्गों से निर्मल मस्तक में आप को धारण करते हैं। उपमा-अलङ्कार॥२३॥

**शरणमुपगतानां शर्वरीं मोहरूपां**
**शमयितुमुदयस्थान् मन्महे बालसूर्यान्।**

पदसरसिजयोगाद्रङ्गनाथस्य भूयः
परिणमदरुणिम्नः पादुके! पद्मरागान्॥२४॥

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी के स्वाभाविक रूप से लाल चरणकमलों के सम्पर्क से पुनः पुनः उत्पन्न आरुण्य वाले तुम्हारे पद्मरागों को श्रीभगवान् या तुम्हारा ही शरण में आये हुए प्रपन्नों की मोह = अज्ञान रूपी रात्रि को दूर करने के लिए उदयोन्मुख बाल सूर्य ही हम मानते हैं। उत्प्रेक्षा॥२४॥

हरिपदरुचिराणां पादुके! तावकाना-
मरुणमणिगणानां नूनमर्धेन्दुमौलिः।
प्रणतिसमयलग्नां वासनामेव धत्ते
कलमकणिशकान्तिस्पर्धिनीभिर्जटाभिः॥२५॥

हे पादुके! अर्धचन्द्रमौलि भगवान् शिव कलम की कणिश = धान की मञ्जरी की कान्ति से स्पर्धा (कलह) करने वाली अपनी जटाओं से प्रणाम के समय संलग्न तुम्हारे हरिचरणों के समान मनोहर 'पद्मराग' मणियों की वासना = प्रभाप्रसार को ही धारण करते हैं। श्रीभगवत्पदसम्बन्धी सुगन्धविशिष्ट किरणांश पद्मरागों में प्रवेश करके प्रणतशिर शिव के मस्तक पर संक्रान्त होते हैं जिससे उनकी जटायें लाल लगती हैं, यह अभिप्राय है॥ उपमा-उत्प्रेक्षा की संसृष्टि॥२५॥

प्रतिविहरणमेते पादुके! रङ्गभर्तुः
पदकमलसगन्धाः पद्मरागास्त्वदीयाः।
तरुणतपनमैत्रीमुद्वहद्भिर्मयूखैः
स्थलकमलविभूतिं स्थापयन्त्यव्यवस्थाम्॥२६॥

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों के समान गन्ध वाले तुम्हारे ये पद्मराग श्रीभगवान् के प्रत्येक संचार में तरुण सूर्य के

समान किरणों से अनियत देश वाली स्थलकमलों की विभूति (संपत्ति) को स्थापति करते हैं। उपमोत्प्रेक्षा की संसृष्टि॥२६॥

अयमनितरभोगान् रञ्जयन् वीतरागां-
स्तरुणमणिगणानां तावकानां प्रकाशः।
मधुरिपुपदरक्षे! मङ्क्षु जाज्वल्यमानः
शलभयति जनानां शाश्वतं पापराशिम्॥२७॥

हे मधुमथन की पादुके! पादुका से अन्य विषयों में अनासक्त रहने वाले वीतराग पुरुषों को अनुरञ्जित करने वाले तेरे तरुण मणिगणों का प्रकाशरूपी जाज्वल्यमान (देदीप्यमान) अग्नि जनों के शाश्वत पापराशि को शीघ्र ही शलभ की तरह जला -देता है। श्लिष्टपरम्परित रूपक से अनुप्राणित परिणाम-अलङ्कार॥२७॥

प्रचुरनिगमगन्धाः पादुके! रङ्गभर्तुः
पदकमलसमृद्धिं प्रत्यहं भावयन्तः।
दधति शकलयन्तो गाढमन्तस्तमिस्रं
समुचितमरुणत्वं तावकाः पद्मरागाः॥२८॥

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों की समृद्धि को उत्पन्न करने वाले तथा प्रचुर रूप से वेदों के सौरभ को धारण करने वाले तुम्हारे पद्मराग प्रगाढ भीतरी अविद्यान्धकार को खण्डित करते हुए यथायोग्य अरुणिमा (रक्तिमा) को धारण करते हैं। रूपक अलङ्कार है क्योंकि समुचितमरुणत्व से सूर्य आरोपित है॥२८॥

लाक्षालक्ष्मीमधररुचके रङ्गिणः पादरक्षे!
वक्त्राम्भोजे मदपरिणतिं पद्मरागद्युतिस्ते।
कर्णोपान्ते किसलयरुचिं देवि! सेवानतानां
सीमन्ते च त्रिदशसुदृशां सौति सिन्दूरशोभाम्॥२९॥

हे देवि! श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तेरे पद्मराग मणियों की कान्ति सेवा में प्रणत रहने वाली देवाङ्गनाओं के रुचकसदृश ओष्ठ

में (ओष्ठ के समान कण्ठाभरण को रुचक कहते हैं)। लाक्षा की शोभा को उनके ही मुखकमल में मधुपान से जनित रक्तिमा को, कानों के अग्रभाग में पल्लवों की कान्ति को तथा सीमन्त (मस्तक के मध्य रेखा) में सिन्दूर की शोभा को प्रकट करती है। यहाँ पद्मरागकान्ति का विषयभेद से अनेकधा उल्लेख से उल्लेख अलङ्कार तथा एक क्रिया में अन्वय होने से तुल्ययोगिता की संसृष्टि है। तथा हि—तुल्ययोगिता का लक्षण प्रकाशग्रन्थ में है—

'नियतानां सकृद्धर्मः पुनः सा तुल्ययोगिता। इति॥२९॥

**अरुणमणयस्तवैते हरिपदरागेण लब्धमहिमानः।**
**गमयन्ति चरणरक्षे! द्युमणिगणं ज्योतिरिङ्गणताम्॥३०॥**

हे श्रीनारायण की चरणपादुके! तुम्हारे ये 'पद्मराग' मणियाँ श्रीहरि के चरणों की रक्तिमा से महिमामण्डित होते हुए द्युमणि = सूर्यों के समुदाय को खद्योत कीट जैसा बना दे रहे हैं। अत्युक्ति-अलङ्कार॥३०॥



# अथाष्टादशी मुक्तापद्धतिः

इस पद्धति में केवल मोतियों से भूषित पादुका का वर्णन है—

**बद्धानां यत्र नित्यानां मुक्तानामीश्वरस्य च।**
**प्रत्यक्षं शेषशेषित्वं सा मे सिद्ध्यतु पादुका॥१॥**

जिस पादुका में बद्ध अर्थात् पिरोये गये नित्य मौक्तिक रूपी मुक्त पुरुषों का और ईश्वर का शेषशेषिभाव (स्वस्वामिभाव, सेवकसेव्यभाव) प्रत्यक्ष है वह पादुका मेरे अभिलाष का कारण बने। यहाँ बद्ध (सांसारिक) नित्य (संसार से जिनका स्पर्श नहीं है ऐसे गरुड आदि), मुक्त (संसारबन्धन से मुक्त) जीवों का ईश्वर से शेषशेषित्व अभिलक्षित है॥१॥

**तव रङ्गधुरीणपादरक्षे! विमला मौक्तिकपद्धतिर्विभाति।**
**सुहृदि त्वयि साधितापवर्गैः समये संक्रमितेव साधुकृत्या॥२॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तुम्हारी 'मुक्ता' मणियों की श्रेणी मोक्ष का सम्पादन कर लेने वाले पुरुषों के द्वारा समय पर (पुण्य और पापों के त्याग के समय) मित्रभूत तुझमें संक्रमित साधुकृत्य (पुण्य) की तरह सुशोभित हो रही है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२॥

**शरणागतसस्यमालिनीयं तव मुक्तामणिरश्मिनिर्झरौघैः।**
**ननु रङ्गधुरीणपादरक्षे! जगती नित्यमदैवमातृकाऽभूत्॥३॥**

हे श्रीरङ्गक्षेत्र के कार्यभार का वहन करने वाले भगवान् की पादुके! शरणागत (प्रपन्न) रूपी सस्य (धान्य) की श्रेणियों वाली यह जगती तेरे मुक्तामणियों की रश्मि (किरण) रूपी प्रपातों (झरना) के समुदायों से नित्य ही अदैवमातृका हुई है। दैव = मेघ ही जिसकी

माता हो वह दैवमातृका कहलाती है। न दैवमातृका = अदैवमातृका अर्थात् भाग्य भरोसे न रहकर नहर आदि साधनों से धान्यसम्पत्ति का निष्पादन। जैसे नदी आदि के प्रवाहों से धान प्रसन्न होते हैं वैसे ही मोतियों की कान्ति से प्रपन्न जन, यह अभिप्राय है। रूपक-अलङ्कार।।३।।

**अधिविष्णुपदं परिस्फुरन्ती नवमुक्तामणिनिर्मलप्रकाशा।**
**परिपुष्यसि मङ्गलानि पुंसां प्रतिपच्चन्द्रकलेव पादुके! त्वम्।।४।।**

हे पादुके! विष्णु के पद आकाश में स्फुरित होने वाली, नूतन मुक्तामणि के समान निर्मल प्रकाशवाली प्रतिपदा की चन्द्रकला के समान तुम श्रीविष्णु के चरणों में सुशोभित होती हुई, अपनी मुक्तामणियों से निर्मल प्रकाशवाली पुरुषों के मङ्गलों को परिपुष्ट करती हो। श्लिष्टोपमालङ्कार।।४।।

**निहिता नवमौक्तिकावलिस्त्वामभितः काञ्चनपादुके! मुरारेः।**
**नखचन्द्रमसां पदाश्रितानां प्रतिमाचन्द्रपरम्परेव भाति।।५।।**

हे सुवर्णपादुके! तुम्हारे दोनों ओर स्थापित (जटित) नूतन मोतियों की पङ्क्ति मानो श्रीमुरमथन के चरणों में आश्रित नखरूपी चन्द्रों की प्रतिबिम्बचन्द्रपङ्क्ति ही सुशोभित हो रही है। पादुका में विद्यमान मौक्तिकपङ्क्तियाँ मानो श्रीमद्भगवच्चरणनखचन्द्रों की प्रतिबिम्ब हैं, यह उद्भावन है अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।।५।।

**समतामुपैति वपुषापि सदा भवदीयमौक्तिकमहश्छुरिता।**
**हरिपादुके! हरिपदोद्भवया कनकापगा सुरपुरापगया।।६।।**

हे श्रीहरि की पादुके! सदा ही आपके मौक्तिक की प्रभा से परिव्याप्त कनकापगा = कावेरी नदी श्रीहरि के चरण से उत्पन्न होने वाली सुरपुरापगा = गङ्गा के साथ शरीर से भी (आकारतोऽपि) समता को प्राप्त कर रही है। गङ्गा में शुक्लत्व है ही, कावेरी में

पादुकामौक्तिकप्रभा की व्याप्ति से शुक्लत्व है, यह अभिप्राय है। उपमा॥६॥

**तव रङ्गचन्द्रतपनीयपादुके! विमला समुद्वहति मौक्तिकावलिः।**
**चरणारविन्दनवचन्द्रमण्डलप्रणयोपयातनवतारकारुचिम्॥७॥**

हे श्रीरङ्गचन्द्र की सुवर्णपादुके! तेरी निर्मल मौक्तिकपङ्क्ति श्रीभगवान् के चरणकमलों में विद्यमान नखरूपी चन्द्रबिम्बों के प्रति प्रेम होने से आये हुए मनोरम नक्षत्रों (तारका) की शोभा को धारण कर रही है। निदर्शनालङ्कार या गम्योत्प्रेक्षा॥७॥

**चन्द्रचूडमुकुटेन लालिता चारुमौक्तिकमयूखपाण्डरा।**
**रङ्गनाथपदपद्मसङ्गिनी लक्ष्यसे सुरधुनीव पादुके॥८॥**

हे पादुके! चन्द्रचूड़ भगवान् शिव के मुकुट से लालित = सम्मानित और अपनी सुन्दर मोतियों की किरणों से शुक्ल वर्ण वाली तथा श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों के साथ रहने वाली तुम उस गङ्गा की तरह दिखायी देती हो जो सुन्दर मौक्तिककिरणों के समान शुक्ल और श्रीभगवान् के चरणकमलों से उत्पन्न हुई है। श्लिष्टोपमा-अलङ्कार॥८॥

**ये भजन्ति भवतीं तवैव ते मौक्तिकद्युतिविकल्पगङ्गया।**
**वर्धयन्ति मधुवैरिपादुके! मौलिचन्द्रशकलस्य चन्द्रिकाम्॥९॥**

हे श्रीमधुरिपु की पादुके! जो पुरुष आप का भजन करते हैं वे तुम्हारे मोतियों की कान्तिरूप पाक्षिकी गङ्गा से अपने ही मस्तक में विद्यमान चन्द्रखण्ड (कलाचन्द्र) की चन्द्रिका को बढ़ाते है। पादुका की सेवा से शिवत्व प्राप्त कर लेते हैं, यह अभिप्राय है। पर्यायोक्त अलङ्कार॥९॥

**मुक्तामयूखैर्नियतं त्वदीयैरापूरयिष्यन्नवतंसचन्द्रम्।**
**बिभर्ति रङ्गेश्वरपादरक्षे! देवो महान् दर्शितसंनतिस्त्वाम्॥१०॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! प्रणाम को प्रकाशित कर देने वाले महान् देव अर्थात् महादेव के रूप में प्रसिद्ध भगवान् शिव तुम्हारी मोतियों की किरणों से अपने अलङ्कार चन्द्रमा को पूर्ण करते हुए तुमको नियत रूप से धारण करते हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१०॥

**परिष्कृता मौक्तिकरश्मिजालैः पदस्य गोप्त्री भवती मुरारेः।**
**भवत्यनेकोर्मिसमाकुलानां पुंसां तमःसागरपोतपात्री॥११॥**

हे पादुके! अपनी मोतियों के किरणसमुदाय से अलङ्कृत हुई और श्रीमुरारि के चरण की रक्षा करने वाली आप अनेकों प्रकार की लहरों से व्याकुल पुरुषों के अविद्यान्धकार के सागर को पार करने के लिए पोतपात्री अर्थात् जहाज हो। रूपक-अलङ्कार॥११॥

**रङ्गेशपादप्रतिपन्नभोगां रत्नानुविद्धैर्महितां शिरोभिः।**
**मुक्तावदातां मणिपादुके! त्वां मूर्तिं भुजङ्गाधिपतेः प्रतीमः॥१२॥**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी के चरण से प्राप्त भोग (सुख) वाली तथा रत्नों से युक्त देवादि-मस्तकों से पूजित एवं मोतियों से स्वच्छ तुमको हम श्रीरङ्गेशपाद अर्थात् श्रीमत्पूज्यरङ्गनाथजी के द्वारा प्राप्त भोग (शरीर) वाली तथा अपने मस्तकमणि से युक्त मस्तकों (फण) से पूजित एवम् मोतियों की तरह स्वच्छ भुजङ्गनाथ श्रीशेष की मूर्ति समझते हैं। श्लेष से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१२॥

**मुकुन्दपादावनि मौक्तिकैस्ते ज्योत्स्नामयं विश्वमिदं दिवापि।**
**वैमानिकानां न भजन्ति येन व्याकोचतामञ्जलिपद्मकोशाः॥१३॥**

हे श्रीमुकुन्द की पादुके! तुम्हारी मोतियों से यह पूरा संसार ही दिन में भी प्रचुर चाँदनी वाला हो जाता है जिससे विमान पर आरूढ़ देवताओं के अञ्जलिरूपी कमलों के मुकुल विकसित नहीं हो पाते। काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥१३॥

**समाश्रितानामनघां विशुद्धिं त्रासव्यपायं च वितन्वती त्वम्।**
**सायुज्यमापादयसि स्वकीयैर्मुक्ताफलैर्माधवपादुके! नः॥१४॥**

हे श्रीमाधव की पादुके! तुम हम आश्रितजनों की निष्कल्मष (निष्पाप) विशुद्धि और रक्तदोष के निराकरण का सम्पादन करती हुई अपनी मोतियों के दानों से सायुज्य (परस्पर साम्य) पैदा करती हो। अर्थान्तर—हम सेवकों की मनोज्ञ रागादिशून्यता और भय के असम्बन्ध का विस्तार करती हुई तुम अपने मुक्त और अफल = सांसारिक फलों से असम्पृक्त अथवा अफल = निष्फल कार्य (न विद्यते फलं येषाम्) का परित्याग कर देने वाले पुरुषों के साथ हमारे सायुज्य का सम्पादन करती हो। श्लेषालङ्कार से उपमालङ्कार ध्वनि है कि पादुका के मौक्तिक फल उसके भगवच्चरणकमलों के सेवन के अतिरिक्त निष्फल कार्यों का त्याग करने से जीवन्मुक्त प्रपन्नों के समान हैं॥१४॥

**अवैमि पादावनि! मौक्तिकानां कीर्णामुदग्रैः किरणप्ररोहैः।**
**यात्रोत्सवार्थं विहितां मुरारेरभङ्गुरामङ्कुरपालिकां त्वाम्॥१५॥**

हे श्रीभवच्चरणपादुके! तुम्हारे मौक्तिकों के उदग्र = उन्मुख किरणाङ्कुरों से व्याप्त तुमको मैं श्रीमुरारि के यात्रोत्सवों में होने वाली पूर्ण और अङ्कुरों से आढ्य उनके अर्पण की पात्री समझता हूँ। पादुका श्रीभगवान् की यात्रा में होने वाले उत्सव में अङ्कुरों को अर्पित करती है, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१५॥

**शिवत्वहेतुं सकलस्य जन्तोः स्रोतोविशेषैः सुभगामसंख्यैः।**
**मुक्तामयूखैः सुरसिन्धुमन्यां पुष्णासि रङ्गेश्वरपादुके! त्वम्॥१६॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! अपने असंख्य मौक्तिककिरणरूप प्रवाहप्रभेदों से सारे जन्तुओं की कल्याणकारणभूत, हृद्य किसी अन्य गङ्गा को ही परिपुष्ट करती हो। पादुका का कल्याणातिशयध्वनि यहाँ है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१६॥

**रङ्गे शयानस्य पदावनि! त्वां लावण्यसिन्धोः सविधे निषण्णाम्।**
**परिस्फुरन्मौक्तिकजालदृश्यां प्रसूतिभिन्नां प्रतियन्ति शुक्तिम्॥१७॥**

हे पादुके! श्रीरङ्गक्षेत्र में शयन करने वाले लावण्य के सागर श्रीभगवान् के समीप आप को चारों ओर स्फुरित होने वाले मौक्तिकसमुदाय से दर्शनीय और प्रस्फुटित मुख वाली शुक्ति ही सत्पुरुष समझते हैं। रूपक-उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१७॥

**अवैमि रङ्गेश्वरपादरक्षे! मुक्ताफलानि त्वयि निस्तुलानि।**
**तेनैव कल्पान्तरतारकाणामुप्तानि बीजानि जगद्विधात्रा॥१८॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तुझमें विद्यमान गोले मोतियों के दाने उसी जगत् के विधाता के द्वारा बोये गये अन्य कल्प में होने वाली ताराओं के बीज हैं, ऐसा मैं समझता हूँ। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१८॥

**विक्रम्यमाणमभवत् क्षणमन्तरिक्षं**
**मायाविना भगवता मणिपादरक्षे।**
**व्योमापगाविपुलबुद्बुददर्शनीयै-**
**र्मुक्ताफलैस्तव शुभैः पुनरुक्ततारम्॥१९॥**

हे मणिपादुके! विरोचनपुत्र बलि को ठगने के लिए मायावी बने श्रीभगवान् के विक्रम का विषय आकाश क्षण भर में आकाशगङ्गा के अत्यधिक बुलबुलों की तरह दर्शनीय तेरे शुभ मौक्तिकफलों से दूनी हुई ताराओं से युक्त हो गया। आकाश में पहले से विद्यमान तारायें पादुका की मोतियों के दानों से दूनी हो गयीं, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा और उपमा अलङ्कारों की संसृष्टि॥१९॥

**लक्ष्मीविहाररसिकेन पदावनि! त्वं**
**रक्षाविधौ भगवता जगतो नियुक्ता।**

सत्त्वं तदर्हमिव दर्शयसि प्रभूतं
मुक्तामयूखनिकरेण विसृत्वरेण॥२०॥

हे पादुके! लक्ष्मीजी के साथ विहार करने में रसिक श्रीभगवान् के द्वारा संसार की रक्षा के सम्पादन में नियुक्त तुम फैलने वाले अपने मौक्तिककिरणों के समुदाय से प्रचुर रूप में स्थित रक्षाकार्य के योग्य सत्त्वगुण को प्रदर्शित करती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२०॥

पादार्पणेन भवतीं प्रतिपद्यमाने
श्रीरङ्गचन्द्रमसि संभृतमौक्तिकश्रीः।
अङ्गीकरोषि चरणावनि! कान्तिमग्र्या-
मुद्भिद्यमानकुमुदेव कुमुद्वती त्वम्॥२१॥

हे चरणपादुके! मोतियों की शोभा को धारण या सम्पुष्ट करने वाली तुम उस समय जब श्रीरङ्ग में विद्यमान श्रीभगवान् रूपी चन्द्रमा अपने चरणों को अर्पित कर आप को प्राप्त होते हैं अर्थात् जब अपने चरणों को आपके ऊपर स्थापित करते हैं तब विकसित कुमुदों (जलपुष्प) वाली कुमुदिनी के समान श्रेष्ठ कान्ति को स्वीकार करती हो। रूपक से संकीर्ण उपमा अलङ्कार॥२१॥

त्रय्यन्तहर्म्यतलवर्णसुधायितेन
ज्योत्स्नाविकल्पितरुचा मणिपादुके! त्वम्।
मुक्तामयी मुरभिदङ्घ्रिसरोजभाजां
वर्णेन ते शमयसीव सतामवर्णम्॥२२॥

हे मणिपादुके! प्रचुर मोतियों वाली तुम वेदान्त रूपी अट्टालिकाओं के तल में सफेद लेप के रूप में स्थित (तात्पर्य का अविषय रूप मलिनता को दूर करने वाली) चन्द्रिका के समान अपने वर्ण से श्रीमुरमथन के चरणकमलों का सेवन करने वाले महापुरुषों के अवर्ण = अपवाद और मालिन्य को मानो दूर कर देती हो।

वर्ण से अवर्ण के शमन के कथन से 'शम' नाम अलङ्कार तथा उत्प्रेक्षा-श्लेष भी॥२॥

वैकुण्ठपादनखवासनयेव नित्यं
पादावनि! प्रसुवते तव मौक्तिकानि।
अच्छिन्नतापशमनाय समाश्रिताना-
मालोकमण्डलमिषादमृतप्रवाहम्॥२३॥

हे चरणपादुके! तेरी मोतियाँ श्रीरङ्गनाथजी के चरणों में विराजमान नखों की वासना से मानो नित्य ही आश्रित जनों के अच्छिन्न अर्थात् अनादि काल से प्रवृत्त आध्यात्मिक आदि तीनों तापों के शमन के लिए अपने प्रकाशपुञ्ज के बहाने अमृत के प्रवाह को उत्पन्न करती हैं। सापह्नवोत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२३॥

रामानुवृत्तिजटिले भरतस्य मौलौ
रङ्गाधिराजपदपङ्कजरक्षिणि! त्वम्।
एकातपत्रितजगत्त्रितयाऽद्वितीयं
मुक्तांशुभिः कृतवती नवमातपत्रम्॥२४॥

हे श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों की रक्षा करने वाली पादुके! श्रीरामचन्द्रजी का अनुवर्तन करने के कारण तपस्वी बने श्रीभरत के जटाओं वाले मस्तक में अपनी मोतियों की कान्तियों से एकछत्र के रूप में तीनों लोकों को कर देने वाली तुम अद्वितीय और नूतन छत्र का निर्माण कर दी थी। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार और 'एकातपत्रितजगत्त्रितया' इस सभिप्राय विशेषण से परिकर अलङ्कार है॥२४॥

पादावनि! स्फुटमयूखमधुप्रवाहा
मुग्धा परिस्फुरति मौक्तिकपद्धतिस्ते।
रूढस्य रङ्गपतिपादसरोजमध्ये
रेखात्मनः सुरतरोरिव पुष्पपङ्क्तिः॥२५॥

हे चरणपादुके! विकसित किरणरूपी मकरन्द के प्रवाहों वाली मनोहर तेरी मोतियों की श्रेणी श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों के मध्य रेखा के रूप में उत्पन्न कल्पवृक्ष की पुष्पश्रेणी की तरह मानो स्फुरित हो रही है।। उत्प्रेक्षा।।२५।।

**आम्रेडितैः पदनखेन्दुरुचा मनोज्ञै-**
**र्मुक्तांशुभिर्मुरभिदो मणिपादुके! त्वम्।**
**स्वाभाविकीं सकलजन्तुषु सार्वभौमीं**
**प्रायः प्रसक्तिममलां प्रकटीकरोषि।।२६।।**

हे मणिपादुके! तुम श्रीमुरारि के चरणनख रूपी चन्द्रों की कान्ति से द्विगुणित और मनोहर मौक्तिककिरणों से सारे जन्तुओं में स्वाभाविक, निर्मल व्यापक प्रसन्नता को प्राय: प्रकट करती हो। प्रसन्नता का हेतु सत्त्वगुण है अत: 'श्वेत' रूप से कथन है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार।।२६।।

**निःसीमपङ्कमलिनं हृदयं मदीयं**
**नाथस्य रङ्गवसतेरधिरोढुमिच्छोः।**
**मातस्तवैव सहसा मणिपादरक्षे!**
**मुक्तांशवः स्फटिकसौधतुलां नयन्ति।।२७।।**

हे मात: मणिपादुके! तेरी मोतियों की किरणें असीमित पङ्क (कषाय, काँदों) से मलिन हृदय में आरुढ होने के इच्छुक श्रीरङ्गनाथजी की प्रसन्नता के लिए ही उस हृदय को स्फटिकनिर्मित सौध (चूना से पोत गया घर) के समान कर दे रही हैं। जैसा राजा के आगमन पर लोग अपने मैले घर को चूना आदि से स्वच्छ करते हैं वैसे ही पादुका मौक्तिककिरणों से मेरे हृदय को स्वच्छ करती है, इस प्रकार से उपमा-अलङ्कार व्यङ्ग्य है।।२७।।

**श्यामा तनुर्भगवतः प्रतिपन्नतारा**
**त्वं चन्द्रिकाविमलमौक्तिकदर्शनीया।**

स्थाने तदेतदुभयं मणिपादरक्षे!
बोधं क्षणान्नयति बुद्धिकुमुद्वतीं नः॥२८॥

हे मणिपादुके! श्रीभगवान् का ताराओं (शुद्ध मोती और नक्षत्र) को प्राप्त कर लेने वाला श्यामल शरीर और चन्द्रिका (चाँदनी) के समान निर्मल मोतियों से दर्शनीय तुम, ये दोनों (भगवान् का शरीर और पादुका) हमारी बुद्धिरूपी कुमुद्वती को क्षण भर में बोधयुक्त कर देते हैं, यह अपने स्थान पर उचित ही है। उपमा-रूपक-अनुगुण और उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२८॥

उद्गाढपङ्कशमनैर्मणिपादरक्षे!
मुक्तांशुभिर्मुरभिदो नखरश्मिभिन्नैः।
चूडापदेषु निहिता त्रिदशेश्वराणां
तीर्थोदकैः स्नपयसीव पदार्थिनस्तान्॥२९॥

हे मणिपादुके! त्रिदशेश्वर अर्थात् इन्द्र आदि देवताओं के मस्तकों पर स्थित तुम श्रीमुरारि के नखों की किरणों से संसृष्ट; प्रगाढ़ पङ्क (पाप, कर्दम) को शान्त करने वाली अपनी मौक्तिक-किरणों से मानो तीर्थजलों से उन्हें नहलाती हो जो अपने-अपने इन्द्र आदि पदों को चाहते हैं। रूपक-संकीर्ण उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२९॥

रङ्गेशपादनखचन्द्रसुधानुलेपं
संप्राप्य सिद्धगुलिका इव तावकीनाः।
संसारसंज्वरजुषां मणिपादरक्षे!
संजीवनाय जगतां प्रभवन्ति मुक्ताः॥३०॥

हे मणिपादुके! तुम्हारी मोतियाँ श्रीरङ्गनाथजी के नखरूपी चन्द्रों की कान्तिरूपिणी सुधा (अमृत) के अनुलेप को प्राप्त करके निष्पन्न औषधि-गोलियों की तरह संसाररूपी व्याधियों से ग्रस्त सांसारिक लोगों के सम्यक् जीवन के लिए समर्थ होती हैं। जैसे वैद्य वटियों

को अनुपान में संयोजित करके ज्वरादि-ग्रस्त पुरुषों को जीवन देते हैं, वैसे ही। उपमा-अलङ्कार॥३०॥

**भावोत्तरैरधिगता भरतप्रधानैः**
**प्रत्युप्तमौक्तिकमिषेण विकीर्णपुष्पा।**
**रङ्गेश्वरस्य नियतं त्वयि लास्यभाजो**
**रङ्गस्थलीव ललिता मणिपादुके! त्वम्॥३१॥**

हे मणिपादुके! भावोत्तर = भक्ति के उत्कर्ष से युक्त भरत आदि भक्तप्रवरों से प्राप्त हुई तथा स्वयम् में जटित मोतियों के व्याज से फूलों को विखेरती हुई मनोहर तुम तुम्हारे ही ऊपर नृत्य करने वाले श्रीरङ्गनाथजी की भावोत्तर = अभिनय में निपुण, भरतप्रधान = श्रेष्ठ नटों के द्वारा ज्ञात हुई ललित रङ्गस्थली (रङ्गमञ्च) जैसी निश्चय ही हो। श्लेष-अपह्नुति से गर्भित उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥३१॥

**मन्ये मुकुन्दचरणावनि! मौलिदेशे**
**विन्यस्य देवि! भवतीं विनतस्य शंभोः।**
**आपादयन्त्यधिकृताः प्रतिपन्नतारं**
**चूडातुषारकिरणं तव मौक्तिकौघैः॥३२॥**

हे श्रीमुकुन्द की चरणपादुके! प्रणत श्रीशिवजी के मस्तकभाग पर आपको स्थापित करके अधिकृत पूजक जन आपके मौक्तिक-समूहों से ताराओं से मुक्त शिखाचन्द्र का सम्पादन कर देते हैं॥३२॥

**पद्मापतेर्विहरतः प्रियमाचरन्ती**
**मुक्तामयूखनिवहैः पुरतो विकीर्णैः।**
**कन्दानि काञ्चनपदावनि! पद्मिनीनां**
**मन्ये विनिक्षिपसि मन्दिरदीर्घिकासु॥३३॥**

हे सुवर्णपादुके! कीड़ा करने वाले श्रीलक्ष्मीपति का अभीष्ट कार्य करती हुई तुम सामने बिखेरे गये मौक्तिककिरणसमूहों से मन्दिर की

दीर्घिकाओं (बावली) में कमलिनी (सनाल कमल) के कन्दों को प्रक्षिप्त करती हो, ऐसा मैं मानता हूँ। उत्प्रेक्षा॥३३॥

**आशास्य नूनमनघां मणिपादरक्षे!**
**चन्द्रस्य वारिधिसुतासहजस्य वृद्धिम्।**
**धात्रीं मुकुन्दपदयोरनपायिनीं त्वां**
**ज्योत्स्ना समाश्रयति मौक्तिकपङ्क्तिलक्ष्यात्॥३४॥**

हे मणिपादुके! निश्चय ही चन्द्रिका (ज्योत्स्ना) सागरतनया श्रीलक्ष्मीजी के भ्राता चन्द्रमा की अनघ = क्षय से रहित वृद्धि की अपेक्षा करके मौक्तिकों की श्रेणी के बहाने श्रीमुकुन्द के चरणों को धारण करने वाली तथा उनसे अविनाभूत आपके आश्रय में आती है। अपह्नुति से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥३४॥

**ये नाम केऽपि भवतीं विनयावनम्रै-**
**रुत्तंसयन्ति कृतिनः क्षणमुत्तमाङ्गैः।**
**इच्छन्ति रङ्गनृपतेर्मणिपादरक्षे!**
**त्वन्मौक्तिकौघनियतामिह ते विशुद्धिम्॥३५॥**

हे श्रीरङ्गराजजी की मणिपादुके! जो कोई पुण्यात्मा पुरुष आप को क्षणभर के लिए ही विनय से झुके हुए अपने मस्तकों से अलङ्कृत करते हैं अर्थात् मस्तकों पर धारण करते हैं वे यहाँ पर तुम्हारे मौक्तिकसमुदायों से नियत तुम्हारी ही श्वैत्यरूप पावनता (विशुद्धि) की इच्छा करते हैं। पादुका के समान ही पावन होना चाहते हैं, यह अभिप्राय है॥३५॥

**अनुदिनललितानामङ्गुलीपल्लवानां**
**जनितमुकुलशोभैर्देवि! मुक्ताफलैस्त्वम्।**
**प्रकटयसि जनानां पादुके! रङ्गभर्तुः**
**पदसरसिजरेखापाङ्क्षजन्यप्रसूतिम्॥३६॥**

हे देवि! पादुके! तुम प्रतिदिन श्रीभगवान् के ललित (मनोज्ञ और ग्लानिशून्य) अङ्गुलीरूप पल्लवों (किसलय) से उत्पादित मुकुल (कोरक) की शोभा वाले अपनी मोतियों के दानों से श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों में विद्यमान रेखा के आकार में 'पाञ्चजन्य' नामक शङ्ख को जनों के मध्य में प्रकट करती हो। रूपक और उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३६॥

**बलिविमथनवेलाव्यापिनस्तस्य विष्णोः**
**पदसरसिजमाध्वी पावनी देवि! नूनम्।**
**जननसमयलग्नां जाह्नवी तावकानां**
**वहति चरणरक्षे! वासनां मौक्तिकानाम्॥३७॥**

हे देवि! चरणपादुके! बलि के निग्रह के काल में प्रसिद्ध श्रीविष्णु के चरणकमलों की पावन अर्थात् परिशुद्धि की कारणभूता पुष्परस के रूप में विद्यमान तुम गङ्गा ही हो जो उत्पत्ति के समय संसक्त अपनी मोतियों की वासना का वहन करती हो। गङ्गा में विद्यमान श्वेतिमा पादुका के अवयवों के अनुवर्तन के कारण ही है, यह उद्भावन है, अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥३७॥

**मधुरिपुपदमित्रैर्वैरमिन्दोः सरोजैः**
**शमयितुमिव ताराः सेवमानाश्चिरं त्वाम्।**
**प्रचुरकिरणपूराः पादुके! संश्रितानां**
**कलिकलुषमशेषं क्षालयन्तीव मुक्ताः॥३८॥**

हे पादुके! श्रीमुरमथन के मित्र कमलों के साथ चन्द्रमा के प्रसिद्ध वैर का शमन करने के लिए ही तुम्हारा सेवन करने वाली ताराओं की तरह विद्यमान तुम्हारी प्रचुर किरणों के प्रवाह वाली मोतियाँ मानो आश्रित प्रपन्नजनों के सकल कलिकालुष्य को धो रही हैं। दो उत्प्रेक्षा-अलङ्कारों की संसृष्टि॥३८॥

मुकुलितपरितापां प्राणिनां मौक्तिकैः स्वै-
रमृतमिव दुहानामाद्रिये पादुके! त्वाम्।
विषधरफणपङ्क्तिर्यत्प्रभावेण मन्ये
ललितनटनयोग्यं रङ्गमासीन्मुरारेः॥३९॥

हे पादुके! अपनी मोतियों से प्राणियों के संताप को शान्त करने वाली और उनके लिए मानो अमृत का दोहन करने वाली तुम्हारा मैं आदर करता हूँ। जिस अमृतवर्षिणी पादुका के प्रभाव से ही श्रीशेषनाग के फणों की श्रेणी श्रीमुरमथन के ललित मञ्चन के योग्य रङ्गमञ्च हो गयी थी, ऐसा मैं मानता हूँ। दो उत्प्रेक्षा-अलङ्कारों का काव्यलिङ्ग-अलङ्कार के साथ अङ्गाङ्गिभाव होने से संकर॥३९॥

सकृदपि विनतानां त्रासमुन्मूलयन्तीं
त्रिभुवनमहनीयां त्वामुपाश्रित्य नूनम्।
न जहति निजकान्तिं पादुके! रङ्गभर्तु-
श्चरणनखमणीनां संनिधौ मौक्तिकानि॥४०॥

हे पादुके! एक बार भी तुम्हारे प्रति विनम्र हुए पुरुषों के भय को निःशेष रूप से दूर करने वाली तथा तीनों लोकों में पूजित तुम्हारे आश्रय में रहने के कारण ही तुझमें जटित मोतियाँ श्रीरङ्गनाथजी के चरणनखों वाली मणियों के सन्निधान में भी अपनी कान्ति को नहीं छोड़तीं। यदि तुम्हारी मोतियाँ तुम्हारे आश्रय में नहीं रहतीं तो भगवन्नखमणियों की कान्ति के सामने उनकी कान्ति फीकी पड़ जाती, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥४०॥

भुवनमिदमशेषं बिभ्रतो रङ्गभर्तुः
पदकमलमिदं ते पादुके! धारयन्त्याः।
चिरविहरणखेदात् संभृतानां भजन्ति
श्रमजलकणिकानां संपदं मौक्तिकानि॥४१॥

हे पादुके! इस सारे भुवन को धारण करने वाले श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमल को धारण करने वाली तुम्हारी मोतियाँ मानो चिरकाल तक विचरण करने के कारण उत्पन्न हुए श्रम से जनित स्वेदबिन्दुओं की शोभा को प्राप्त कर रही हैं। मोतियों का श्रम के कारण स्वेदकण के रूप में उद्भावन है, अतः उत्प्रेक्षा-अलङ्कार गम्यत्वेन सुस्पष्ट है।।४१।।

**प्रकटितयशसां ते पादुके! रङ्गभर्तु-**
**र्द्विगुणितनखचन्द्रज्योतिषां मौक्तिकानाम्।**
**करणविलयवेलाकातरस्यास्य जन्तोः**
**शमयति परितापं शाश्वती चन्द्रिकेयम्।।४२।।**

हे पादुके! तेरे श्रीविग्रह में जटित मोतियाँ श्रीरङ्गनाथ जी के यश को प्रकट कर दी हैं अर्थात् उनके यश के समान उज्ज्वल हैं तथा उनके नखरूपी चन्द्रों की ज्योतियों को अपनी कान्ति से द्विगुणित कर दी हैं। इस प्रकार तेरी मोतियों की शाश्वत (नित्य) यह चन्द्रिका मरण के समय कातर (खिन्न) हुए इस जन्तु के परिताप का शमन करती है। 'शाश्वत', इस पद से चन्द्र की चन्द्रिका की अपेक्षा मौक्तिकचन्द्रिका का व्यतिरेक (आधिक्य) है। तृतीयपाद में रूपक है।।४२।।

**दिव्यं धाम स्थिरमभियतां देवि! मुक्तामणीनां**
**मध्ये कश्चिद्भवति मधुजित्पादुके! तावकानाम्।**
**न्यस्तो नित्यं निजगुणगणव्यक्तिहेतोर्भवत्या-**
**मात्मज्योतिःशमिततमसां योगिनामन्तरात्मा।।४३।।**

हे श्रीमधुविजय की पादुके! दिव्य और स्थिर तेज प्राप्त करने वाली और अपनी ज्योति से अन्धकार का शमन करने वाली आप के मुक्तामणियों के मध्य में कोई आप में ही न्यस्त (स्थापित) योगियों की अन्तरात्मा (जीव) है जिसका विशेषस्वरूप परिलक्षित

नहीं होता। मुक्तामणियों के सारे विशेषण श्लेष के माध्यम से योगियों में भी घटित होते हैं। योगी भी दिव्य आत्मतेज को धारण करते हैं और प्रत्यगात्मज्योति से अविद्या-तम को ध्वस्त किये हुए हैं। ऐसा अपने गुणगणों की अभिव्यक्ति के लिए ही है। तात्पर्य यह है कि मुक्तामणि और मुमुक्षुओं के अन्तरात्मा के धर्मों का साम्य श्लेष के माध्यम से उक्त है अत: वैशिष्ट्य का उन्मीलन नहीं हो पाता। इस प्रकार 'मीलित' नामक अलङ्कार यहाँ है। तथा हि लक्षण है—

मीलितं यदि सादृश्यात् विशेषो नोपलक्ष्यते।। इति।४३।।

**शुद्धे नित्यं स्थिरपरिणतां देवि! विष्णोः पदे त्वा-**
**मास्थानींताममितविभवां पादुके! तर्कयामि।**
**आलोकैः स्वैर्भुवनमखिलं दीपवद् व्याप्य कामं**
**मुक्ताः शुद्धिं यदुपसदनाद् बिभ्रति त्रासहीनाः।।४४।।**

हे देवि! पादुके! श्रीविष्णु के निर्मल एवम् सत्त्वरूप चरण और परमपद में नित्य और स्थिररूप में परिणत (वर्तमान) आपको मैं असीमित विभव वाली आस्थानी (महामणिमय सभामण्डप) ही मानता हूँ जिस आस्थानी रूप पादुका के सेवन से तथा उसको प्राप्त कर लेने से अपने आलोकों (प्रकाश और ज्ञान) से मुक्ताः = मोतियाँ और मुक्त पुरुष दीपक की तरह सारे भुवन को व्याप्त करके अत्यधिक शुद्धि (निर्मलता) को भयमुक्त होकर धारण करते हैं। श्लेष और उत्प्रेक्षा अलङ्कार।।४४।।

**प्राप्ता शौरेश्चरणकमलं पादुके! भक्तिभाजां**
**प्रत्यादेष्टुं किमपि वृजिनं प्रापिता मौलिभागम्।**
**देवेन त्वं दशशतदृशा दन्तिराजस्य धत्से**
**मूर्ध्नि न्यस्ता मुखपटरुचिं मौक्तिकानां प्रभाभिः।।४५।।**

हे पादुके! श्रीकृष्ण के चरणकमलों में गयी हुई तुम भक्त पुरुषों के किसी संसाररूप पाप को नष्ट करने के लिए मस्तक के ऊपर स्थापित की गयी हजारों नयनों वाले इन्द्र के द्वारा दन्तिराज ऐरावत के मस्तक पर न्यस्त होकर अपनी मोतियों की कान्ति से मुखावरण की शोभा को धारण करती हो।।४५।।

**तव हरिपादुके! पृथुलमौक्तिकरत्नभुवः**
**प्रचलदमर्त्यसिन्धुलहरीसहधर्मचराः।**
**पदमजरामरं विदधते कथमम्ब! सतां**
**प्रणतसुरेन्द्रमौलिपलितङ्करणाः किरणाः।।४६।।**

हे श्रीहरि की चरणपादुके! बहती हुई गङ्गा के प्रवाहों के समान तेरे मोटे मौक्तिक मणियों से निकलने वाली ये किरणें प्रणत हुए देवों के जरा (वार्धक्य) से रहित मस्तकों के बालों को पलित (पका हुआ) बनाती हुईं सत्पुरुषों के स्वरूप को जरा और नाश से रहित कैसे बनाती हैं? सर्वथा लोकविलक्षण यह कार्य है, यह अभिप्राय है। देवताओं के काले बाल पादुका के मौक्तिककिरणों से सफेद जैसे लगते हैं, यह आकूत है। व्याघात अलङ्कार।।४६।।

**कपर्दे कस्यापि क्षितिधरपदत्रायिणि! तथा**
**मुहुर्गङ्गामन्यां क्षरति तव मुक्तामणिमहः।**
**मुधारम्भः कुम्भस्थलमनुकलं सिञ्चति यथा**
**निरालम्बो लम्बोदरकलभशुण्डारचुलकः।।४७।।**

हे क्षितिधर श्रीरङ्गनाथ की पादुके! किसी लोकोत्तर देव श्रीशङ्करजी के जटाजूट में तुम्हरे मुक्तामणियों का तेज बारम्बार प्रसिद्ध गङ्गा से विलक्षण किसी अन्य गङ्गा को ही इस प्रकार बहा रहा है जैसे गजानन श्रीगणेशरूपी हाथी के बच्चे की शूड़ का चुलुक (पुट) निराश्रय होकर निरर्थक उद्योग करता हुआ क्षण-क्षण में कुम्भस्थल (कपोल) का सेचन करता रहता है। पादुका की मौक्तिक-

किरणों से गङ्गा का भ्रम पाले गणेश का शुण्डापुट व्यर्थ ही कपोलों में जल सेंचन करता है, यह अभिप्राय है। भ्रान्तिमान् अलङ्कार॥४७॥

**मुकुन्दपदरक्षिणि! प्रगुणदीप्तयस्तावकाः**
**क्षरन्त्यमृतनिर्झरं कमपि मौक्तिकग्रन्थयः।**
**मनागपि मनीषिणो यदनुषङ्गिणस्तत्क्षणा-**
**ज्जरामरणदन्तुरं जहति हन्त! तापत्रयम्॥४८॥**

हे श्रीमुकुन्द की पादुके! तुम्हारी अत्यधिक कान्ति वाली मौक्तिक-ग्रन्थियाँ किसी विलक्षण अमृतप्रपात (स्रोत) को बहाती रहती हैं जिनके अल्प सम्बन्ध से ही मनीषीजन तत्क्षण जरा (वार्धक्य) और मरण से नतोन्नत (विषम) हुए आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक रूप तीनों तापों का त्याग कर देते हैं। मुक्त हो जाते हैं, यह अभिप्राय है। काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥४८॥

**देवः श्रीपदलाक्षया तिलकितस्तिष्ठत्युपर्येव ते**
**गौरीपादसरोजयावकधनी मूले समालक्ष्यते।**
**इत्थं जल्पति दुर्मदान्मुरभिदः शुद्धान्तचेटीजने**
**प्रायस्त्वं मणिपादुके! प्रहसिता मुक्तामयूखच्छलात्॥४९॥**

हे मणिपादुके! श्रीलक्ष्मीजी के चरणों के लाक्षारस (महावर) से परिष्कृत (अलङ्कृत) अर्थात् लक्ष्मी जी के चरणों में मनाने के लिए गिरे हुए देव श्रीरङ्गनाथजी तुम्हारे ऊपर ही विराजमान रहते हैं तथा श्रीपार्वतीजी के चरणों के लाक्षारस से धनवान् हुए श्रीशङ्करजी तुम्हारे नीचे ही दिखायी देते हैं क्योंकि तुम उनके मस्तक पर विराजमान रहती हो, इस प्रकार से जब मतवाली होकर श्रीमुरमथन के अन्तःपुर की चेटी बोलने लगती है तब तुम प्रायः मोतियों की किरणों के व्याज से प्रकृष्ट हास कर देती हो अर्थात् हँसने लगती हो। श्लिष्ट गुप्त वस्तु कवि के द्वारा आविष्कृत होने से विवृतोक्ति-अलङ्कार है। जैसा कि लक्षण है—

'विवृतोक्तिः श्लिष्टगुप्तं कविनाविष्कृतं यदि।' इति।
इससे अनुप्राणित कैतवापह्नुति अलङ्कार है॥४९॥

**रङ्गेशचरणरक्षा सा मे विदधातु शाश्वतीं शुद्धिम्।**
**यन्मौक्तिकप्रभाभिः श्वेतद्वीपमिव सह्यजाद्वीपम्॥५०॥**

श्रीरङ्गनाथजी की वह चरणपादुका मेरी शाश्वती (नित्य) शुद्धि करे जिसकी मोतियों की कान्तियों से कावेरी के मध्य का भाग श्वेतद्वीप की तरह झलकता है। उपमा अलङ्कार॥५०॥

## अथैकोनविंशी मरकतपद्धतिः

इस पद्धति में केवल मरकत मणियों से भूषित पादुका की स्तुति की गयी है—

**वन्दे गारुत्मतीं वृत्त्या मणिस्तोमैश्च पादुकाम्।**
**यया नित्यं तुलस्येव हरितत्त्वं प्रकाश्यते॥१॥**

वृत्ति अर्थात् श्रीभगवान् के वहनरूप व्यापार से और मरकतमणिसमूहों से गरुड़ के समान हुई पादुका की मैं स्तुति करता हूँ जिसके द्वारा नित्य ही तुलसी के समान हरितत्व = हरा वर्ण और हरिस्वरूप (भगवत्स्वरूप) प्रकाशित होता है। उपमा और समुच्चय अलङ्कार॥१॥

**सविलासगतेषु रङ्गभर्तुस्त्वदधीनेषु बहिष्कृतो गरुत्मान्।**
**अधिगच्छति निर्वृतिं कथञ्चिन्निजरत्नैस्त्वयि पादुके! निविष्टैः॥२॥**

हे पादुके! तुम्हारे ही अधीन होने वाले श्रीरङ्गनाथजी के लीलागमनों में बहिष्कृत हुए गरुड़ जी (संसार में वाहन की आवश्यकता न होने के कारण यह कथन है) तुझमें सन्निविष्ट मरकतरत्नों से किसी तरह निर्वृति (भगवदङ्गसङ्गसुख) प्राप्त करते हैं। यह जानकर सुखी होते हैं कि मेरी पङ्खों के समान पादुका की मरकतकिरणें भगवान् से सम्पृक्त हैं, यह अभिप्राय है॥२॥

**समये मणिपादुके! मुरारेर्मुहुरन्तःपुरमुग्धचेटिकास्ते।**
**हरितान् हरिदश्मनां मयूखांस्तुलसीपल्लवशङ्कया क्षिपन्ति॥३॥**

हे मणिपादुके! श्रीमुरमथन के अन्तःपुर की चेटियाँ (दासी) विमुग्ध हुईं उनके संचार के समय तुम्हारे मरकतमणियों की हरी

किरणों को तुलसीदल की आशङ्का से दूर करती रहती हैं कि उनके चरणों से उनका सम्बन्ध न हो।। भ्रान्तिमान् अलङ्कार।।३।।

**हरितः सहसा हरिन्मणीनां प्रभया रङ्गनरेन्द्रपादरक्षे।**
**तुलसीदलसंपदं दधाति त्वयि भक्तैर्निहितः प्रसूनराशिः।।४।।**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तुम्हारे ऊपर भक्तों के द्वारा अर्पित फूलों की राशि सहसा तुम्हारी मरकतमणियों की कान्ति से हरी हुई तुलसीदलों की शोभा को धारण करती है। तद्गुण और उपमा अलङ्कार है।।४।।

**प्रसादयन्ती मणिपादुके! त्वं विक्षेपयोगेन विहारवेलाम्।**
**हरिन्मनोज्ञा हरिकान्तिसिन्धोः संदृश्यसे शैवलमञ्जरीव।।५।।**

हे मणिपादुके! विक्षेपयोग अर्थात् श्रीभगवान् के चरणों के विक्षेप से विहारवेला (लीलाकाल) को प्रसाद से सम्पृक्त करती हुई तुम हरिन्मणि से मनोज्ञ होकर हरी कान्तियों के सागर की शैवालमञ्जरी जैसी दिखायी देती हो। शैवालमञ्जरी भी सागर का विक्षेप होने पर विहारबेला (क्षोभ से जायमान कालुष्य) को निर्मल करती है तथा हरे वर्ण वाली होती है। श्लेष और उपमा अलङ्कार, मतान्तर से उत्प्रेक्षा।।५।।

**बध्नासि रङ्गेश्वरपादरक्षे! हरिन्मणीनां प्रभया स्फुरन्त्या।**
**चूडापदेषु श्रुतिसुन्दरीणां माङ्गल्यदूर्वाङ्कुरमाल्यपङ्क्तिम्।।६।।**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! स्फुरित होने वाले मरकतमणियों की कान्ति से तुम श्रुतिसुन्दरियों के मस्तकों में मङ्गल के लिए दुर्वाङ्कुरों की माल्यश्रेणी पिरो देती हो। रूपक-उत्प्रेक्षा का संकर अलङ्कार।।६।।

**अच्छेद्यरश्मिनियतैर्घटिता हरिद्भिः**
**सद्वर्त्मना गतिमती मणिपादरक्षे।**

संदृश्यसे सवितृमण्डलमध्यभाजो
रङ्गेश्वरस्य रथसंपदिवापरा त्वम्॥७॥

हे मणिपादुके! अच्छेद्य अर्थात् अनवरुद्धतया फैलने वाली किरणरूपी रज्जुओं से सम्बद्ध मरकतरत्न रूपी रज्जुओं से तथा समीचीन मार्ग रूपी नक्षत्रपथ से गमन करने वाली तुम आदित्य-मण्डल के मध्य में स्थित हिरण्मय पुरुष श्रीरङ्गनाथजी की कोई अन्य रथसम्पत्ति ही दिखायी देती हो॥ श्लेष से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥७॥

श्यामायमाननिगमान्तवनोपकण्ठाः
स्थाने पदावनि! हरिन्मणयस्त्वदीयाः।
पर्यन्तशाद्वलवतीं प्रथयन्ति नित्यं
नारायणस्य रुचिरां नखरश्मिगङ्गाम्॥८॥

हे पादुके! वेदान्तरूपी वनों के समीपदेश को श्यामल कर देने वाले तुम्हारे 'मरकत' मणियाँ श्रीनारायण के नखों की किरणरूपी मनोहर गङ्गा को आस-पास बालतृणों से युक्त नित्य ही कर देते हैं। श्लेष-रूपक और उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥८॥

उद्दिश्य कामपि गतिं मणिपादरक्षे!
रङ्गेश्वरस्य चरणे विनिवेशितात्मा।
प्रायो हरिन्मणिरुचा दृढभक्तिबन्धा
प्रादुष्करोति भवती तुलसीवनानि॥९॥

हे मणिपादुके! किसी लोकोत्तर गति की अपेक्षा से श्रीरङ्गनाथजी के चरण में विनिवेशित स्वरूप वाली तुम दृढ़ भक्तिबन्ध वाली होती हुई तुलसी के वनों को प्रकट कर देती हो। कथम्? 'मरकत' मणियों की कान्ति से॥ उत्प्रेक्षा॥९॥

सेवार्थमागतवतां त्रिदशेश्वराणां
चूडामणिप्रकरशालिषु मौलिषु त्वम्।

**संवर्तयस्यसुरमर्दनपादरक्षे!**
**स्वेनाश्मगर्भमहसा शुकपङ्क्तिशोभाम्॥१०॥**

हे असुरसंहारक श्रीभगवान् की पादुके! सेवा करने के लिए आने वाले देवेश्वरों के चूडामणियों के समुदाय वाले मस्तकों में तुम अपने 'मरकत' (अश्मगर्भ) मणियों की कान्ति से शुकपङ्क्ति की शोभा का वितान करती हो॥ उत्प्रेक्षा॥१०॥

**दरपरिणतदूर्वावल्लरीनिर्विशेषै-**
**र्मरकतशकलानां मांसलैरंशुजालैः।**
**पशुपतिविधृता त्वं तस्य पाणौ निषण्णं**
**मधुरिपुपदरक्षे! वञ्चयस्येणशावम्॥११॥**

हे श्रीमधुरिपु की पादुके! तुम पशुपति रुद्र के द्वारा धारण की गयी थोड़ी पकी हुई दूर्वा (दूब) की वल्लरी (लता) से निर्विशेष अर्थात् उसके समान मरकतखण्डों के परिपुष्ट किरणसमुदायों से उनके हाथ में विद्यमान हरिणशिशु को ठगा करती हो। दूर्वा की प्रतीति कराने वाली किरणों के साथ ही उनके कार्य आकर्षण का वर्णन होने से हेतुनामक अलङ्कार है जिससे भ्रान्तिमान् अलङ्कार की अभिव्यक्ति है॥११॥

**हरिचरणसरोजन्यासयोग्यं भवत्याः**
**प्रगुणमभिलषन्त्यो वर्णलाभं तुलस्यः।**
**प्रतिदिशमुपहारैः पादुके! तावकानां**
**मरकतशंकलानामाश्रयन्ते मयूखान्॥१२॥**

हे पादुके! तुलसियाँ श्रीहरि के चरणकमलों में निक्षेप के योग्य आपके अत्युत्कृष्ट वर्णों के लाभ की आकाङ्क्षा करती हुई तुम्हारे ही मरकतमणियों के टुकड़ों की कान्तियों को उपहारों से स्वीकार करती हैं॥१२॥

हरितमणिमयूखैरञ्चिताध्यात्मगन्धै-
र्दिशसि चरणरक्षे! जातकौतूहला त्वम्।
दनुजमथनलीलादारिकाणामुदारां
दमनकदलपङ्क्तिं देवि! मौलौ श्रुतीनाम्।।१३।।

हे देवि! पादुके! उत्पन्न कौतूहल वाली तुम वेदान्त के साथ पूजित सम्बन्ध वाले या वेदान्तभाग रूपी सुगन्ध वाले मरकत मणियों के मयूखों (किरण) से श्रीरङ्गनाथ (दनुजमथन) की क्रीड़ाकुमारियों (श्रुति) के मस्तक में दमनक = गन्धौषधिविशेष की पत्रपङ्क्ति को देती हो।।१३।।

अधिगतबहुशाखैरश्मगर्भप्रसूतै-
र्मधुरिपुपदरक्षे! मेचकैरंशुजालैः।
अनितरशरणानां नूनमारण्यकानां
किमपि जनयसि त्वं कीचकारण्यदुर्गम्।।१४।।

हे श्रीमधुसूदन की पादुके! अपने भीतरी मणियों से उत्पन्न होने वाले, बहुत-सी शाखाओं (वेदशाखारूपी शाखा) को प्राप्त कर लेने वाले नील किरणसमूहों से तुम निश्चय ही अन्यों की शरण में न जाने वाले वनवासियों के लिए कीचकवनों का दुर्ग बना देती हो। कीचक उन बासों को कहते हैं जो पवन से टकरा कर बजते हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।।१४।।

प्रचुरनिगमशाखां पादुके! रङ्गिणस्त्वां
चरणनखमयूखैश्चारुपुष्पानुबन्धाम्।
मरकतदलरम्यां मन्महे संचरन्तीं
कनकहरिदनूपे काञ्चिदुद्यानलक्ष्मीम्।।१५।।

हे श्रीमधुमथन की पादुके! प्रचुर वेदशाखा रूप शाखा वाली और श्रीरङ्गनाथजी के चरणनखों की किरणों से रमणीय पुष्पसंयोग वाली तथा मरकतखण्डों से रमणीय और मरकत के समान स्थित

दलों से रमणीय आप को हम कावेरी के कच्छप्रान्त में किसी उपवन की श्री ही समझते हैं। सारे विशेषण श्लेषभित्ति से उद्यानलक्ष्मीपक्ष में भी घटित हैं। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥१५॥

**नखकिरणनिकायैर्नित्यमाविर्मृणाले**
**महितरसविशेषे मेचकैरंशुभिस्ते।**
**परिकलयसि रम्यां पादुके! रङ्गभर्तुः**
**पदकमलसमीपे पद्मिनीपत्रपङ्क्तिम्॥१६॥**

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी की नखकिरणों के समूहों से नित्य ही मृणालों (कमलदण्ड) को प्रकट कर देने वाले तथा पूजित प्रीतिभेदरूपी जलभेदरूपी जलभेद वाले उनके ही चरणकमलों के समीप तुम अपनी नीली किरणों से कमलिनी (सनाल कमल) के पत्तों की श्रेणी का सम्पादन करती हो। रूपक और उत्प्रेक्षा का संकरालङ्कार॥१६॥

**अनिमिषयुवतीनामार्तनादोपशान्त्यै**
**त्वयि विनिहितपादे लीलया रङ्गनाथे।**
**दधति चरणरक्षे! दैत्यसौधानि नूनं**
**मरकतरुचिभिस्ते मङ्क्षु दूर्वाङ्कुराणि॥१७॥**

हे पादुके! जब श्रीरङ्गनाथजी देवों की युवतियों के करुणविलापों की शान्ति के लिए लीलापूर्वक आपके ऊपर अपने चरणों को रखते हैं तब निश्चय ही तुम्हारे मरकतमणियों की कान्ति से दैत्यों के सुधागृह (अट्टालिका) शीघ्र ही दूर्वा के अङ्कुरों को धारण कर लेते हैं। घरों में दूर्वाङ्कुरों का उदय शून्यता का प्रतीक है जिससे दैत्यों का क्षय ध्वनित होता है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१७॥

**विपुलतममहोभिर्वीतदोषानुषङ्गं**
**विलसदुपरिनैल्यं देवि! विष्णोः पदं तत्।**

**पृथुमरकतदृश्यां प्राप्य पादावनि! त्वां**
**प्रकटयति समन्तात् संप्रयोगं हरिद्भिः॥१८॥**

हे देवि! पादुके! यहाँ 'विष्णोः पदम्', से भगवान् का चरण और उनका प्रकाश, इन दोनों अर्थों का सभङ्ग और अभङ्गश्लेष से प्रतिपादन है। अत्यधिक महोभिः = कान्तियों से दोष सम्बन्ध से रहित, ऊपर अर्थात् प्रपदभाग के ऊर्ध्व देश में विलसित नीलिमा वाला श्रीभगवच्चरण स्थूल मरकतों से रमणीय पादुका को प्राप्त करके चारों ओर दिशाओं के संसर्ग को प्रकट करता है। श्रीविष्णु का परम पद प्रकाश भी अहोभिः = दिनों से दोषा = रात्रि के सम्बन्ध से रहित है तथा व्यापक भी है एवम् प्रकाश के ऊपरी भागों में नीलरूप से प्रतीति होने के कारण ऊर्ध्वभाग में नैल्ययुक्त है जो मरकतमणियों से रमणीय हुई पादुका को प्राप्त करके चारों ओर हरिद्भिः = सूर्य के घोड़ों के संसर्ग को प्रकट करता है। तात्पर्य यह है कि मरकतमयी पादुका के सम्बन्ध से भगवान् का चरण श्याम होता हुआ सारी दिशाओं में संचरण करता है और प्रकाश हरे वर्णों से युक्त होकर सूर्यमण्डल के भीतर विद्यमान श्रीभगवान् के संचार के लिए अश्वयुक्त होता है॥१८॥

**पद्माभूम्योः प्रणयसरणिर्यत्र पर्यायहीना**
**यत्संसर्गादनघचरिताः पादुके! कामचाराः।**
**तारासक्तं तमिह तरुणं प्रीणयन्ते जरत्यो**
**नित्यश्यामास्तव मरकतैर्नूनमाम्नायवाचः॥१९॥**

हे पादुके! जिस भगवान् में लक्ष्मी और पृथ्वी की प्रणयपद्धति अन्य सादृश्य से रहित अर्थात् अनुपम होती है तथा जिस प्रभु के संसर्ग से स्वेच्छापूर्वक होने वाले गोपाङ्गनाओं के विहार आदि पापों से शून्य कृत्यों वाले ही हैं उसी तार (ओङ्कार) में प्रसक्त अर्थात् प्रणव के द्वारा प्रतिपाद्य और ताराओं से संसक्त चन्द्र रूप तरुण पुरुष को अनादि काल से होने वाले तुम्हारे मरकतमणियों से

नित्यतया श्याम हुईं वेदवाणियाँ प्रसन्न करती हैं। विशेषणों से श्यामा (रात्रि) की प्रतीति होने से समासोक्ति-अलङ्कार भी है॥१९॥

**स्थलकमलिनीव काचिच्चरणावनि! भासि कमलवासिन्याः।**
**यन्मरकतदलमध्ये यः कश्चिदसौ समीक्ष्यते शौरिः॥२०॥**

हे पादुके! तुम कमलों में निवास करने वाली लक्ष्मी की कोई लोकोत्तर स्थलकमलिनी की तरह सुशोभित होती हो जिसके मरकतदलों वाले कमलों के मध्य में कोई लोकोत्तर ही श्रीरङ्गनाथजी दिखायी देते हैं। उत्प्रेक्षा-अलङ्कार॥२०॥



## अथेन्द्रनीलपद्धतिर्विंशी

इस पद्धति में केवल 'इन्द्रनील' मणि से अलङ्कृत पादुका का वर्णन है—

**हरिणा हरिनीलैश्च प्रतियत्नवतीं सदा।**
**अयत्नलभ्यनिर्वाणामाश्रये मणिपादुकाम्॥१॥**

श्रीरङ्गनाथजी और इन्द्रनील रत्नों से सदैव परिष्कारयुक्त एवम् प्रयत्नशील (प्रतियत्नो गुणाधानम्, एधोदकस्योपस्कुरुते अर्थात् जल के गुण को काष्ठ धारण करता है। इसी तरह यहाँ भी पारस्परिक गुणों का धारण अर्थ ही प्रतीत होता है) तथा जिससे अल्प प्रयास से ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, ऐसी पादुका का मैं सेवन करता हूँ। प्रतियत्नवतीं और अयत्नलभ्यनिर्वाणां में विरोध आभासित होने से विरोधाभास अलङ्कार है॥१॥

**हरिरत्नमरीचयस्तवैते नवनीलीरसनिर्विशेषवर्णाः।**
**श्रुतिमूर्धनि शौरिपादरक्षे! पलितानुद्भवभेषजं भवन्ति॥२॥**

हे श्रीकृष्ण की चरणपादुके! नूतन नीलीरस अर्थात् नीलनामक औषधिद्रव्य के समान वर्ण वाली तुम्हारे नीलरत्नमणियों की ये किरणें वेदों के मस्तकभाग में (वेदान्त) वार्धक्य से जनित शुक्लिमा की औषधियाँ होती हैं। गम्योत्प्रेक्षा॥२॥

**अलकैरिव बिम्बितैः श्रुतीनां हरिनीलैः सृजसि त्वमुन्मयूखैः।**
**कमलादयितस्य पादरक्षे! करुणोदन्वति शैवलप्ररोहान्॥३॥**

हे चरणपादुके! तुम वेदों में अलकों (चूर्णकुन्तल, घुँघराले केश) की तरह प्रतिफलित अपने इन्द्रनीलमणियों की ऊपर फैलती किरणों

से कमला के नाथ श्रीरङ्गनाथ जी के दयासागर में शैवालों के प्ररोहों की रचना करती हो। उत्प्रेक्षा॥३॥

**अनघैर्हरिनीलपद्धतीनां प्रथमानैर्मणिपादुके! मयूखैः।**
**अधरीकुरुषे रथाङ्गपाणेरमितामूर्ध्वमवस्थितस्य कान्तिम्॥४॥**

हे मणिपादुके! तुम अपने अनघ (निष्पाप, रमणीय) इन्द्रनील मणियों की फैलती किरणों से ऊपर स्थित श्रीरङ्गनाथजी की अमित कान्ति को नीचे कर देती हो। अपनी कान्तियों से ऊर्ध्वभाग को भी आच्छादित कर देती हो, यह अभिप्राय है। विरोधाभास॥४॥

**चरणावनि! भाति सह्यकन्या हरिनीलद्युतिभिस्तवानुविद्धा।**
**वसुदेवसुतस्य रङ्गवृत्तेर्यमुनेव स्वयमागता समीपम्॥५॥**

हे चरणपादुके! तुम्हारे इन्द्रनील मणियों की कान्ति से व्याप्त सह्य पर्वत की कन्या कावेरी नदी वैसी ही सुशोभित होती है मानो श्रीरङ्गक्षेत्र में आये हुए श्रीदेवकीनन्दन के समीप स्वयं यमुनाजी आ गयी हों। उत्प्रेक्षा॥५॥

**अवधीरितदेवतान्तराणामनघैस्त्वं मणिपादुके! मयूखैः।**
**हरिनीलसमुद्भवैर्विधत्से हरिसारूप्यमयत्नतो जनानाम्॥६॥**

हे मणिपादुके! तुम इन्द्रनील मणियों से उत्पन्न होने वाली अपनी रमणीय किरणों से उन लोगों को बिना प्रयत्न से ही श्रीहरि के समान बना देती हो जो अन्य देवताओं को तिरस्कृत कर देते हैं। पादुकासेवी देवताओं से ऊपर उठकर श्रीभगवान् के सारूप्यमोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं, यह ध्वनि है॥६॥

**नेत्रेषु पुंसां तव पादरक्षे! नीलाश्मभासा निहिताञ्जनेषु।**
**श्रिया समं संश्रितरङ्गकोशो निधिः स्वयं व्यक्तिमुपैति नित्यम्॥७॥**

हे पादुके! तुम्हारी नीलमणिकान्ति से जब लोग अपने नयनों में अञ्जन लगा लेते हैं तब श्रीलक्ष्मीजी के साथ श्रीरङ्गकोश =

श्रीरङ्गविमानरूपी धनगृह को स्वीकार कर लेने वाले श्रीभगवान् रूपी निधि स्वयं उनके सामने प्रकट हो जाती है। तथाभूत अञ्जन के प्रभाव से श्रीभगवन्निधि का दर्शन करते हैं, यह अभिप्राय है। 'निधि' शब्द से श्रीभगवान् का ग्रहण होने से रूपक अलङ्कार है।।७।।

**अभङ्गुरामच्युतपादरक्षे! मान्यां महानीलरुचिं त्वदीयाम्।**
**निःश्रेयसद्वारकपाटिकायाः शङ्के समुत्पाटनकुञ्चिकां नः।।८।।**

हे अच्युत की पादुके! तुम्हारे महानील मणियों की अभङ्गुर और समान्य कान्ति हम लोगों के परम कल्याण के दरवाजों के कपाटों को खोलने के लिए कुञ्चिका (कुञ्जी) है, ऐसा मैं समझता हूँ। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।।८।।

**जीवयत्यमृतवर्षिणी प्रजास्तावकी दनुजवैरिपादुके।**
**घोरसंचरणघर्मनाशिनी कालिकेव हरिनीलपद्धतिः।।९।।**

हे दनुजरिपु श्रीभगवान् की पादुके! तुम्हारे इन्द्रनील मणियों की श्रेणी अमृत की वर्षा करने वाली और घोर संसाररूप ग्रीष्मताप का नाश करती हुई कालिका = मेघपङ्क्ति की तरह प्रजाओं को जीवन प्रदान करती है। रूपक से अनुप्राणित उपमा-अलङ्कार।।९।।

**शतमखोपलभङ्गमनोहरा विहरसे मुरमर्दनपादुके।**
**मणिकिरीटगणेषु दिवौकसां मधुकरीव मनोरमपङ्क्तिषु।।१०।।**

हे श्रीमुरमर्दन की पादुके! इन्द्रनील मणियों के खण्डों से मनोहर हुई तुम देवताओं के मणिमय मुकुटसमुदायों में वैसे ही विहार करती हो जैसे इन्द्रनीलमणिखण्डों के समान मनोहर मधुकरी (भ्रमरी) किन्हीं फूलों की मनोरम पङ्क्तियों में विहार करती है। श्लिष्टोपमा।।१०।।

**अन्विच्छतां किमपि तत्त्वमनन्यदृश्यं**
**सम्यक्प्रकाशजननी धृतकृष्णरूपा।**

**पादावनि! स्फुरसि वासवरत्नरम्या**
**मध्ये समाधिनयनस्य कनीनिकेव॥११॥**

हे पादुके! समीचीन प्रकाश की जननी (उत्पादिका) तथा कृष्ण के रूप को धारण करने वाली एवं इन्द्रनीलमणियों से रमणीय हुई तुम किसी वाणी-मन के अविषय और योगियों के लिए भी अगम्य तत्त्व का अन्वेषण करने वाले पुरुषों (योगी) के समाधिरूपी नेत्र की कनीनिका की तरह सुशोभित होती हो। कनीनिका = नयनपुत्तली भी समीचीन ज्ञान को उत्पन्न करती है तथा काले रूप को धारण की हुई इन्द्रनीलमणि के समान रमणीय रहती है। श्लिष्टोपमा॥११॥

**मातः! सलीलमधिगम्य विहारवेलां**
**कान्तिं समुद्वहसि काञ्चनपादुके! त्वम्।**
**लक्ष्मीकटाक्षरुचिरैर्हरिनीलरत्नै-**
**र्लावण्यसिन्धुपृषतैरिव रङ्गधाम्नः॥१२॥**

हे मातः! सुवर्णपादुके! तुम जब लीलापूर्वक संचरणकाल को प्राप्त होती हो तब मानो श्रीरङ्गनाथ जी के लावण्यसागर के बिन्दु जैसे प्रतीत होने वाले और लक्ष्मी जी के कटाक्षों की तरह मनोरम इन्द्रनील मणियों से कोई अद्भुत कान्ति प्राप्त करती हो। उपमा-उत्प्रेक्षा की संसृष्टि॥१२॥

**क्लृप्तावकु(गु)ण्ठनविधिर्मणिपादरक्षे!**
**नीलांशुकैर्बलभिदश्मसमुद्भवैस्ते।**
**संगच्छते मुनिजनस्य मतिः समाधौ**
**रात्रौ समस्तजगतां रमणेन लक्ष्म्याः॥१३॥**

हे देवि! मणिपादुके! तुम्हारे इन्द्रनील मणियों से उत्पन्न होने वाले नील किरणरूपी नीले वस्त्रों से अपने घूँघट का सम्पादन करने वाली मुनजनों की बुद्धि उस समय लक्ष्मीनाथ श्रीरङ्गनाथ जी से समाधि में संगत हो जाती है जब संसार के सारे प्राणियों की रात्रि

होती है। अविद्यान्धकार में जब सांसारिक प्राणी मग्न हुए सोते हैं तब योगियों की बुद्धि भगवान् में लगी रहती है। जैसा कि भगवान् वासुदेव ने कहा है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥इति।

श्लिष्टरूपक और अतिशयोक्ति तथा समासोक्ति अलङ्कार॥१३॥

**द्रष्टुं कदाचन पदावनि! नैव जन्तुः**
**शक्नोति शाश्वतनिधिं निहितं गुहायाम्।**
**कृष्णानुरूपहरिनीलविशेषदृश्या**
**सिद्धाञ्जनं त्वमसि यस्य न देवि! दृष्टेः॥१४॥**

हे देवि! पादुके! कृष्ण के अनुरूप इन्द्रनील मणियों से विशेषतः दर्शनीय हुई तुम जिस पुरुष की दृष्टि का सिद्धाञ्जन नहीं होती वह जन्तु बुद्धिरूपिणी गुहा में निहित परम पुरुष रूप शाश्वतनिधि को देखने में समर्थ नहीं होता। जैसे अञ्जन से रहित पुरुष निधि का दर्शन नहीं कर पाता वैसे ही पादुकासम्बन्ध से शून्य पुरुष भगवान् को नहीं जान पाते, यह अभिप्राय है। श्लेष से अनुप्राणित रूपक अलङ्कार।

श्रीरङ्ग में निधि का दर्शन पादुका-अञ्जन से होता है, यह पहले ही प्रतिपादित है। इस श्लोक से समाधि के प्रसङ्ग में श्रीकृष्ण के रूप का दर्शन तदनुरूप पादुकाञ्जन के बिना सम्भव नहीं, यह प्रतिपादित है॥१४॥

**प्रत्येमि रङ्गनृपतेर्मणिपादुके! त्वां**
**कृष्णान्तरङ्गरुचिभिर्हरिनीलरत्नैः।**
**विश्वापराधसहनाय पदं तदीयं**
**विश्वम्भरां भगवतीं समये भजन्तीम्॥१५॥**

संसार के अपराधों को सहन करने के लिए उनके चरण का समय पर सेवन करती हुई भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तरङ्ग अर्थात् समान कान्तियों वाली इन्द्रनीलमणियों से उपलक्षित तुमको हम संसार के अपराधों को सहन करने के लिए उनके चरण का समय पर सेवन करती हुई भगवान् श्रीकृष्ण में अन्तरङ्ग = रतासक्त रुचि = प्रेमप्रभेदों से उपलक्षित भगवती वसुन्धरा ही समझता हूँ। परिकर और उत्प्रेक्षा अलङ्कारों का सङ्करालङ्कार॥१५॥

**मत्वा मषीं परिमितां भवती तदन्यां**
**वैकुण्ठपादरसिके! मणिपादुके! स्वान्।**
**अङ्क्ते स्वयं किरणलेपिभिरिन्द्रनीलै-**
**राशातटेषु ललितानपदानवर्णान्॥१६॥**

हे श्रीवैकुण्ठ के चरणों में रस का अनुभव करने वाली मणिपादुके! आप 'इन्द्रनील' मणि से अन्य मषी (स्याही) को स्वल्प मानकर किरणरूप विलेपन वाले इन्द्रनील मणियों से दिशाओं के प्रान्तभागों में अपने ललित विरुदावली-अक्षरों को स्वयं ही व्यक्त करती हो।।उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१६॥

**बलमथनमणीनां धामभिस्तावकानां**
**मधुरिपुपदरक्षे! वासरैरव्यपेता।**
**अभिसरणपराणां बल्लवीनां तदासी-**
**च्छमितगुरुभयार्तिः शर्वरी काचिदन्या॥१७॥**

हे श्रीमधुरिपु की पादुके! तुम्हारे इन्द्रनीलमणियों की प्रभाओं से श्रीकृष्णावतार के समय अभिसार (रमण करने हेतु पति से अन्य पुरुष के पास गमन) में तत्पर गोपियों के श्वसुर आदि से होने वाले भय की पीडा को शान्त करने वाली, दिनों के व्यवधान से शून्य (दिन व्यवधान के रूप में जहाँ उपस्थित न हो) कोई अनिवर्चनीय रात्रि प्रकट हो गयी थी। तात्पर्य यही है कि इन्द्रमणियों

की कान्ति से आच्छादित दिन ही अभिसरण के लिए रात्रि हो गया था। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१७॥

**शतमखमणिभङ्गैरुन्मयूखैर्दिशन्ती**
**शरणमुपगतानां रङ्गनाथेन साम्यम्।**
**प्रथयसि जगति त्वं पादुके! हैतुकाना-**
**मुपनिषदुपगीतां तत्क्रतुन्यायवार्ताम्॥१८॥**

हे पादुके! तुम ऊपर की ओर फैलने वाली किरणों से युक्त इन्द्रनीलमणिखण्डों से शरणागत लोगों के श्रीरङ्गनाथ जी से समता को प्रदर्शित करती हुई उपनिषद् में कही गयी तत्क्रतु (वह क्रतु = याग ही उपासना हो जिसकी अर्थात् परब्रह्म) के विषय में मीमांसा-न्यायों (सिद्धान्तयुक्ति) की वार्ता का विस्तार हैतुकों (धर्म और ब्रह्म के विषय में हेतु प्रदर्शित करने वाले पाखण्डी) के सामने करती हो। श्रीरङ्गनाथजी की शरण में आये पुरुषों का श्रीरङ्गनाथ जी से वर्णसाम्य ही परमसाम्यरूप मोक्ष में दृष्टान्त है, इस तथ्य को पादुका मानो पाखण्डियों के सामने प्रकट करती है, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१८॥

**परिचरति विधौ त्वां पादुके! रङ्गभर्तुः**
**पदसरसिजभृङ्गैर्भासुरैरिन्द्रनीलैः।**
**प्रकटितयमुनौघा भक्तिनम्रस्य शम्भोः**
**परिणमयसि चूडाविष्णुपद्याः प्रयागम्॥१९॥**

हे पादुके! जब शिवमस्तक के चन्द्रमा रूपी ब्रह्मा (विधु और विधि शब्द सप्तमी विभक्ति में 'विधौ' के रूप में श्लिष्ट है) तुम्हारी सेवा करने लगते हैं तब श्रीभगवान् के चरणकमलों में भ्रमररूपी देदीप्यमान 'इन्द्रनील' रत्नों से यमुना के प्रवाह को प्रकट कर देने वाली तुम भक्ति में प्रणत हुए शम्भु के मस्तक में विद्यमान गङ्गा को यमुना के साथ सङ्गम में परिणत कर देती हो। यहाँ पर शिव

के मस्तक में विद्यमान गङ्गा का इन्द्रनीलमणि के साथ होने वाला सम्बन्ध यमुनासङ्गम के रूप में उद्भावित है, अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥१९॥

**पदकिसलयसङ्गात् पादुके! पत्रलश्री-**
**र्नखमणिभिरुदारैर्नित्यनिष्पन्नपुष्पा।**
**शतमखमणिनीला शौरिलावण्यसिन्धो-**
**र्निबिडतमतमाला कापि वेलावनी त्वम्॥२०॥**

हे पादुके! श्रीभगवान् के किसलयों के समान चरणों के संग से पत्तों की शोभा वाली हुई तथा उनके उदार मणितुल्य नखों से नित्य ही निष्पन्न फूलों वाली और इन्द्रनील मणियों से नीले वर्ण की हुई तुम श्रीकृष्ण के लावण्यसागर के तट की उस अनिर्वचनीय वनी (अटवी) जैसी हो गयी हो जिसमें घने तमालों के वृक्ष हों। उपमा और उत्प्रेक्षा का सङ्करालङ्कार॥२०॥

**त्वयि विनिहितमेतत् केऽपि पश्यन्ति मन्दाः**
**शतमखमणिजालं शार्ङ्गिणः पादरक्षे।**
**वयमिदमिह विद्मः प्राणिनां भावुकानां**
**हृदयगृहगुहाभ्यः पीतमन्धन्तमिस्त्रम्॥२१॥**

हे शार्ङ्गधन्वा श्रीभगवान् की पादुके! कोई मन्दमति पुरुष तुम्हारे में विन्यस्त इन इन्द्रनीलमणियों के समुदाय को क्या जानते हैं? अर्थात् नहीं जानते हैं (काकु)? हम तो इसे भावुक प्राणियों के हृदय-गृह-गुहाओं से निकाल कर पिया गया प्रगाढ अन्धकार ही समझते हैं। वह इन्द्रनीलमणिजाल नहीं बल्कि प्राणियों की अविद्यातमिस्त्रा है जिसे पादुका ने करुणा के कारण पी लिया है, यह अभिप्राय है। अपह्नुति-अतिशयोक्ति का सङ्करालङ्कार॥२१॥

**क्लृप्तश्यामा मणिभिरसितैःकृष्णपक्षेण जुष्टा**
**श्रेयः पुंसां जनयसि गतिं दक्षिणामुद्वहन्ती।**

तेनास्माकं प्रथयसि परं पादुके! तत्त्वविद्भि-
मौंलौ दृष्टां निगमवचसां मुक्तिकालाव्यवस्थाम्॥२२॥

हे पादुके! नीले मणियों से संजात श्याम वर्ण वाली तुम रात्रि ही हो जो श्रीकृष्ण के पक्ष में रहने वाले भक्त से तथा कृष्णपक्ष से सेवित होती हुई समर्थ (दक्षिणा) संचार और दक्षिणायन का वहन करती हुई पुरुषों के कल्याण को उत्पन्न करती हो। इसी कारण से तत्त्वज्ञों के द्वारा वेदवाक्यों के मस्तक अर्थात् वेदान्त में दृष्ट मोक्षकाल की अव्यवस्था को हम लोगों के समक्ष प्रस्तुत करती हो। भक्तों के लिए मोक्ष की कोई कालसीमा नहीं है, भगवत्कृपा से वे कभी भी मुक्त हो सकते हैं, यह अभिप्राय है॥२२॥

सद्भिर्जुष्टा समुदितविधुर्जैत्रयात्राविनोदे-
ष्वातन्वाना रजनिमनघामिन्द्रनीलांशुजालैः।
चित्रं ख्याता कुमुदवनतः पादुके! पुष्यसि त्वं
व्याकोचत्वं विबुधवनितावक्त्रपङ्केरुहाणाम्॥२३॥

हे पादुके! साधुजनों और नक्षत्रों से सेवित तथा श्रीरङ्गनाथरूपी चन्द्रमा से युक्त एवं अपने इन्द्रनीलमणिकिरणसमूहों से रमणीय रात्रि का विस्तार करती हुई कुमुद की रक्षा में या कुमुद-वन = कैरववन से विख्यात तुम श्रीभगवान् की विजययात्रा के विलासकार्य में देवाङ्गनाओं के मुखकमलों के विकास को ही पुष्ट करती हो, यह आश्चर्य ही है। रात्रि में कमलों का विकास आश्चर्यजनक होता ही है। श्लेषरूपकों से अनुप्राणित व्याघात अलङ्कार॥२३॥

नित्यं लक्ष्मीनयनरुचिरैः शोभिता शक्रनीलैः
शालग्रामक्षितिरिव शुभैः शार्ङ्गिणो रूपभेदैः।
साकेतादेः समधिकगुणां सम्पदं दर्शयन्ती
मुक्तिक्षेत्रं मुनिभिरखिलैर्गीयसे पादुके! त्वम्॥२४॥

हे पादुके! लक्ष्मी के नयनों के समान इन्द्रनीलमणियों से श्रीभगवान् के शुभ रूपप्रभेद शालग्रामशिलाओं की उत्पत्ति भूमि की तरह सुशोभित होती हुई तथा अयोध्या आदि से अधिक गुणों वाली शोभा को प्रदर्शित करती हुई तुम सारे मुनियों के द्वारा मुक्तिक्षेत्र ही कही जाती हो। उपमा-व्यतिरेक अलङ्कार॥२४॥

**पादन्यासप्रियसहचरीं पादुके वासगेहात्**
**त्वामारुह्य त्रिचतुरपदं निर्गते रङ्गनाथे।**
**अन्तःस्निग्धैरसुरमहिलावेणिविक्षेपमित्रैः**
**श्यामच्छायं भवति भवनं शक्रनीलांशुभिस्ते॥२५॥**

हे पादुके! जब श्रीरङ्गनाथजी चरणविक्षेपों के विषय में प्रिय सखी बनी आपके ऊपर आरूढ होकर अपने शय्यास्थान से दो-तीन पग आगे बढ़ते हैं तब भीतर सरस तथा असुरों की स्त्रियों की वेणी (केशजाल) के विस्रंसन के समान हुए तुम्हारे इन्द्रनीलमणिमयूखों (किरण) से भवन श्यामकान्ति वाला हो जाता है। उपमा अलङ्कार॥२५॥

**या ते बाह्याङ्क(ङ्ग)ण(न)मभियतः पादुके! रङ्गभर्तुः**
**संचारेषु स्फुरति विततिः शक्रनीलप्रभायाः।**
**विष्वक्सेनप्रभृतिभिरसौ गृह्यते वेत्रहस्तै-**
**र्भ्रूविक्षेपस्तव दिविषदां नूनमाह्वानहेतुः॥२६॥**

हे पादुके! प्राङ्गण के बाहर चलने वाले श्रीरङ्गनाथजी के संचारों में तुम्हारे नीलमणियों की कान्ति का जो विस्तार स्फुरित होता है वह बेंत लिए विष्वक्सेन आदि सेनापतियों के द्वारा देवता के आह्वान का कारण तुम्हारे भौहों का विक्षेप ही जाना जाता है॥२६॥

**अक्ष्णोरञ्जनकल्पना यवनिका लास्यप्रसूतेर्गति-**
**श्छिद्गङ्गायमुना मुकुन्दजलधेर्वेलातमालाटवी।**

कान्ताकुन्तलसंततिः श्रुतिवधूकस्तूरिकालङ्क्रिया
नित्यं रत्नपदावनि! स्फुरति ते नीला मणिश्रेणिका॥२७॥

हे रत्नमय पादुके! तेरे इन्द्रनील मणियों की श्रेणी सेवकों के नयनों में अञ्जनालङ्कार है और नृत्य को आविष्कृत करने वाली श्रीरङ्गनाथ जी की गति की यवनिका (तिरस्कारिणी, पर्दा) एवं ज्ञानगङ्गा की यमुना है। इसी तरह वह मुकुन्दरूपी समुद्र के तटों पर तमाल की अटवी तथा श्री-भूमि आदि प्रियतमाओं की केशपङ्क्ति और वेदवधूटी की कस्तूरी रूप अलङ्कार है। इन्द्रनील की श्रेणी का बहुधा उल्लेख होने से उल्लेख अलङ्कार है॥२७॥

निरन्तरपुरन्दरोपलभुवं द्युतिं तावकी-
मवैमि मणिपादुके! सरणिसङ्गिनीं रङ्गिणः।
तदीयनवयौवनद्विरदमल्लगण्डस्थली-
गलन्मदझलज्झलाबहुलकज्जलश्यामिकाम्॥२८॥

हे मणिपादुके! पङ्क्तिरूप में स्थित नीलमणियों से निकलने वाली और श्रीरङ्गनाथ जी के मार्ग की सहचरी त्वत्सम्बन्धिनी कान्ति को मैं श्रीरङ्गनाथजी के ही नवयौवनरूपी श्रेष्ठ हाथी के गण्डस्थलों (गालों) से बहने वाली मदजलश्रेणी (मदझलज्झला) की घनी काजल की तरह स्थित नीलिमा ही समझता हूँ। 'झलज्झला' शब्द झल-झल करने वाले प्रवाह की ओर इङ्गित है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२८॥

प्रतीमस्त्वा पादावनि! भगवतो रङ्गवसते-
र्घनीभूतामित्थं पदकमलमाध्वीपरिणतिम्।
स्फुरन्तः पर्यन्ते मदगरिमनिष्यन्दमधुप-
प्रसक्तिं यत्रैते विदधति महानीलमणयः॥२९॥

हे पादुके! तुमको हम भगवान् श्रीरङ्गनाथजी का इस तरह से घनीभूत (सघन) उनके चरणकमलों के मकरन्द (रस) का परिपाक ही समझते हैं जहाँ पर किनारों के भागों में ये नीलमणियाँ स्फुरित

होते हुए अत्यधिक आनन्द से निश्चल भ्रमरों के संसर्ग का सम्पादन करते हैं। काव्यलिङ्ग और उत्प्रेक्षा का संकर॥२९॥

**नमतां निजेन्द्रनीलप्रभवेण मुकन्दपादुके! भवती।**
**तमसा निरस्यति तमः कण्टकमिव कण्टकेनैव॥३०॥**

हे श्रीमुकुन्द की पादुके! आप अपने नील मणियों से उत्पन्न होने वाले तम (अन्धकार) से नमन करने वाले भक्तों के अज्ञान तम को वैसे दूर कर देती हैं जैसे काँटों से काँटा निकाला जाता है। रूपक-उपमा अलङ्कार॥३०॥



# अथ बिम्बप्रतिबिम्बपद्धतिरेकविंशी

श्रीभगवान् की पादुका मणिमय है जहाँ बहुत से प्रतिबिम्बों का बिम्ब का निर्देश करते हुए वर्णन किया गया है। कहीं पर बिम्बवर्णन की प्रधानता है तो कहीं पर प्रतिबिम्बवर्णन की। इसीलिए इस पद्धति का नाम 'बिम्बप्रतिबिम्बपद्धति' रखा गया है।

**शौरेः शुद्धान्तनारीणां विहारमणिदर्पणम्।**
**प्रसत्तेरिव संस्थानं पदत्राणमुपास्महे॥१॥**

श्रीरङ्गनाथजी की अन्तःपुरस्थ श्री-भूमि आदि दिव्य अङ्गनाओं के विहार के लिए मणिमय दर्पण तथा स्वच्छता और प्रसन्नता के आकार की तरह स्थित पदत्राण (पादुका) की हम उपासना करते हैं। रूपक और उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१॥

**कमलापतिपादुके! कदाचिद्विहगेन्द्रस्त्वयि बिम्बितो विभाति।**
**सविलासगतेऽपि रङ्गभर्तुर्निजमात्मानमिवोपधातुकामः॥२॥**

हे श्रीकमलापति की पादुके! कभी तुझमें प्रतिबिम्बित गरुड श्रीरङ्गनाथजी के लीलाविहार में भी अपने शरीर को स्थापित करने की कामना से सम्पन्न जैसे सुशोभित हो रहे हैं। यहाँ यही उद्भावन है कि संचार में भी गरुड भगवान् के सान्निध्य को छोड़ना नहीं चाहते। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२॥

**मणिपङ्क्तिषु ते दिशामधीशाः प्रतिबिम्बानि निजानि वीक्षमाणाः।**
**अभियन्ति मुकुन्दपादुके! त्वामधिकारान्तरसृष्टिशङ्कयेव॥३॥**

हे मणिपादुके! इन्द्र आदि दिक्पाल तुम्हारी मणिपङ्क्तियों में अपने ही प्रतिबिम्बों को देखते हुए अधिकारान्तर अर्थात् इन्द्र आदि

की सृष्टि की शङ्का से ग्रस्त हुए मानो तुम्हारी शरण ग्रहण करते हैं ताकि उनका पद सुरक्षित रहे। हेतूत्प्रेक्षा॥३॥

**मणिमौलिशतेन बिम्बितेन प्रणतानां परितः सुरासुराणाम्।**
**मुरभिन्मणिपादुके! महिम्ना युगपत्तेषु समर्पितेव भासि॥४॥**

हे श्रीमुरमथनकी पादुके! प्रणाम में झुके हुए देवों और असुरों के चारों ओर प्रतिबिम्बित सैकड़ों मणिमय मुकुटों से मानो अपने प्रभाव से तुम उन मणिमुकुटों में एक ही समय निक्षिप्त होकर सुशोभित होती हो। उत्प्रेक्षा॥४॥

**उपनीतमुपायनं सुरेन्द्रैः प्रतिबिम्बच्छलतस्त्वयि प्रविष्टम्।**
**स्वयमेव किल प्रसादभूम्ना प्रतिगृह्णासि मुकुन्दपादुके! त्वम्॥५॥**

हे श्रीमुकुन्द की पादुके! देवताओं के द्वारा समर्पित उपहार ही प्रतिबिम्ब के बहाने तुझमें प्रविष्ट हो गया है जिसे तुम मानो स्वच्छता की अधिकता से अर्थात् अनुग्रहबाहुल्य से स्वयं ही स्वीकार करती हो। अपह्नुति और उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥५॥

**रङ्गेश्वरस्य नवपल्लवलोभनीयौ**
**पादौ कथं नु कठिना स्वयमुद्वहेयम्।**
**इत्याकलय्य नियतं मणिपादुके! त्वं**
**पद्मास्तरं वहसि तत्प्रतिबिम्बलक्षात्॥६॥**

हे मणिपादुके! अत्यन्त कठिन मैं श्रीरङ्गनाथजी के नूतन पल्लवों के समान रमणीय चरणों का कैसे वहन करूँगी, ऐसा विचार करके मानो तुम उनके कमल जैसे चरणों में प्रतिफलन (प्रतिबिम्बन) के बहाने कमलों का आस्तरण (विछौना) स्वीकार करती हो। सापह्नवा उत्प्रेक्षा॥६॥

**पादार्पणात् प्रथमतो हरिदश्मरम्ये**
**मध्ये तव प्रतिफलन् मणिपादरक्षे।**

मन्ये निदर्शयति रङ्गपतिर्युगान्ते
न्यग्रोधपत्रशयितं निजमेव रूपम्॥७॥

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी तुझमें चरण रखने के पहले मरकतमणियों से रमणीय तुम्हारे मध्य में प्रतिबिम्बत होते हुए प्रलयकाल में वट के पत्र में सोये अपने ही स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं, ऐसा मैं मानता हूँ। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥७॥

यात्रावसानमधिगच्छति रङ्गनाथे
विश्राणयस्यनुपदं मणिपादुके! त्वम्।
प्रायः प्रयाणसमये प्रतिबिम्बितानां
तीर्थावगाहमपरं त्रिदशेश्वराणाम्॥८॥

हे मणिपादुके! जब श्रीरङ्गनाथजी यात्रा की समाप्ति करते हैं तब तुम प्रस्थान के समय प्रतिबिम्बित देवेशों के द्वितीय अर्थात् चन्द्रपुष्करणीस्नान से विलक्षण उत्सवावभृथ-स्नान को प्रदान करती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥८॥

उच्चावचेषु तव रत्नगणेषु मात-
र्वेधाः प्रयाणसमये प्रतिबिम्बिताङ्गः।
आशङ्कते मधुभिदो मणिपादुके! त्वा-
मागामिकल्पकमलासनपङ्क्तिगर्भाम्॥९॥

हे मातः! श्रीमधुमथन की पादुके! तुम्हारे नतोन्नत अर्थात् अनेक प्रकारों के रत्नगणों में प्रयाण के समय प्रतिबिम्बित अङ्ग वाले ब्रह्माजी तुमको वैसा देखते हैं मानो तुम्हारे भीतर आगामी कल्पों के ब्रह्माओं की कतार स्थित हो। ममिणय पादुका में अनेक ब्रह्मा उनको दिखायी देते हैं जिससे अनेकों कल्पों के ब्रह्मा की भ्रान्ति हो जाती है। उत्प्रेक्षा और भ्रान्तिमान् अलङ्कारों का संकर॥९॥

आलोलरश्मिनियतां मणिपादुके! त्वा-
मारुह्य संचरति रङ्गपतौ सलीलम्।

अन्तःपुरेषु युगपत् सुदृशो भजन्ते
दोलाधिरोहणरसं त्वयि बिम्बिताङ्ग्यः॥१०॥

हे मणिपादुके! जब श्रीरङ्गनाथजी चञ्चल किरणों से परिव्याप्त तुम्हारे ऊपर आरूढ होकर लीलापूर्वक विहार करते हैं तब उनके अन्तःपुरों में सुन्दर नयनों वाली नारियाँ तुझमें प्रतिबिम्बित हुईं एक साथ झूलों पर बैठने का आनन्द लेने लगती हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१०॥

कालेषु राघवपदावनि! भक्तिनम्रः
कार्याणि देवि! भरतो विनिवेदयंस्ते।
त्वद्रत्नबिम्बिततयापि मुहुः स्वकीयां
राजासनस्थितिमवेक्ष्य भृशं ललज्जे॥११॥

हे देवि! श्रीराघव की चरणपादुके! अधिकार के समय भक्ति से विनम्र हुए श्रीभरतजी तुमको अपना कार्य बतलाते हुए तुम्हारे रत्नों में प्रतिबिम्बित होने के कारण स्वयं को राजासन पर देखकर बार-बार लज्जित हुए थे। सिंहासनाधिरूढ पादुका में स्वयं को देखकर लज्जित हो गये कि श्रीभगवान् के स्थान पर मैं कैसे आ गया, यह अभिप्राय है। प्रतिबिम्ब लज्जा का कारण नहीं है फिर भी वैसे प्रतिपादन से अतिशयोक्ति अलङ्कार है। जिसे भरत का अत्यन्त विनम्रभाव व्यक्त होता है। अलङ्कार से वस्तुध्वनि॥११॥

प्रत्यागते विजयिनि प्रथमे रघूणां
विन्यस्यति त्वयि पदं मणिपादरक्षे।
रत्नौघबिम्बितनिशाचरवानरां त्वां
पूर्वक्षणस्थमिव पुष्पकमन्वपश्यन्॥१२॥

हे मणिपादुके! रावण पर विजय प्राप्त करने वाले श्रीरामचन्द्र जी लौटकर जब तुम्हारे ऊपर अपना चरण रखते हैं तब प्रजायें तुम्हारे रत्नसमुदाय में प्रतिबिम्बित राक्षस और वानरों वाली तुमको

पूर्व क्षण में स्थित पुष्पक विमान की तरह ही देखी थीं। श्रीभगवान् राक्षस-वानरों के साथ ही पुष्पकारूढ हुए थे जो अयोध्या में आकर पादुका में प्रतिबिम्बित होकर वैसा ही दिखायी देने लगे थे, यह अभिप्राय है। उपमा अलङ्कार॥१२॥

**वैयाकुलीं शमयितुं जगतो वहन्त्या**
**रक्षाधुरां रघुधुरन्धरपादरक्षे।**
**प्राज्यं यशः प्रचुरचामरबिम्बलक्ष्यात्**
**प्रायस्त्वया कवलितं प्रतिभूपतीनाम्॥१३॥**

हे रघुधुरन्धर श्रीरामचन्द्रजी की पादुके! संसार की व्याकुलता को दूर करने के लिए रक्षा के भार को वहन करने वाली तुम शत्रु राजाओं के पर्याप्त यश को प्रचुर चामरों के प्रतिबिम्ब के बहाने पी गयी थी॥१३॥

**प्रतिदिशमुपयाते देवि! यात्रोत्सवार्थं**
**त्वयि विहरणकाले बिम्बिते जीवलोके।**
**वहसि मणिगणैस्त्वं पादुके! रङ्गभर्तुः**
**कवलितसकलार्थां काञ्चिदन्यामवस्थाम्॥१४॥**

हे देवि! पादुके! नाना दिशाओं से यात्रोत्सव में आने वाले सारे प्राणी जब श्री भगवान् के विचरण के समय तुझमें प्रतिबिम्बित हो जाते हैं तब तुम मानो अपने मणिगणों से श्रीरङ्गनाथजी के सकल प्रपञ्च को निगल जाने वाली किसी अन्य ही प्रलयकालिक अवस्था को धारण कर लेती हो। जैसे प्रलय में भगवान् उदर में सारे प्राणियों की रक्षा करते हैं वैसे ही, यह अभिप्राय है। निदर्शना अलङ्कार॥१४॥

**भगवति गरुडस्थे वाहनस्थाः सुरेन्द्रा-**
**स्त्वयि विनिहितपादे भूमिमेवाश्रयन्ति।**
**तदपि चरणरक्षे! रत्नजाले त्वदीये**
**प्रतिफलितनिजाङ्गास्तुल्यवाहा भवन्ति॥१५॥**

हे पादुके! श्रीभगवान् रङ्गनाथजी जब गरुड के ऊपर आरूढ हो जाते हैं तब देवेन्द्रगण अपने-अपने वाहनों पर आसीन हो जाते हैं और जब भगवान् तुम्हारे ऊपर अपना चरण रखते हैं तब वे यानों को त्याग कर भूमि पर आ जाते हैं। भूमि पर स्थित होने पर भी वे तुम्हारे रत्नसमुदाय में प्रतिबिम्बित अङ्गों वाले होकर समान वाहन वाले हो जाते हैं। तत्तद्मणिरूप तुल्य वाहन वाले हो जाते हैं, यह अभिप्राय है अथवा पादुका में समा जाने के कारण मणियों के समान ही भगवान् के वाहन हो जाते हैं, यह भी अभिप्राय है। गरुडापेक्षया पादुका का माहात्म्यातिशय द्योतित है क्योंकि देवेन्द्र भगवान् के पादुकास्थ होने पर जमीन धर लेते हैं। इस प्रकार व्यतिरेकालङ्कार ध्वनि है॥१५॥

**स्वच्छाकारां सुरयुवतयः स्वप्रतिच्छन्दलक्ष्याद्**
**गाहन्ते त्वां प्रणतिसमये पादुके! साभिमानाः।**
**स्त्रीरत्नानां परिभवविधौ सृष्टिमात्रेण दक्षां**
**नीचैःकर्तुं नरसखमुनेरुर्वशीमूरुजाताम्॥१६॥**

हे पादुके! देवों की युवतियाँ गर्व से युक्त हुईं श्रेष्ठ नारियों के पराजय के लिए उत्पत्तिमात्र से निपुण तथा श्रीनारायण-ऊरुभाग से उत्पन्न उर्वशीनामक देवाङ्गना को नीचे करने के लिए प्रणाम के समय विमल शरीर वाली तुझमें अपने प्रतिबिम्बों के बहाने अवगाहन करने लगती हैं। तात्पर्य यही है कि श्रीभगवान् के ऊरु (कटिमूल) भाग से सम्बन्ध रखने के कारण उत्कर्षवती उर्वशी को तिरस्कृत करने के लिए देवों की नारियाँ पादुका में समाहित होती हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।.१६॥

**स्वेच्छाकेलिप्रियसहचरीं स्वच्छरत्नाभिरामां**
**स्थाने स्थाने निहितचरणो निर्विशन् रङ्गनाथः।**
**संचारान्ते सह कमलया शेषशय्याधिरूढे**
**त्यक्त्वापि त्वां त्यजति न पुनः स्वप्रतिच्छन्दलक्ष्यात्॥१७॥**

हे पादुके! तुझमें अपने चरणों को स्थापित किये हुए और अपनी स्वच्छन्द लीला की प्रियसखी तथा स्वच्छ रत्नों से रमणीय हुई तुम्हारा स्थान-स्थान पर अनुभव करते हुए श्रीरङ्गनाथ जी विहार के अन्त में तुमको छोड़कर जब कमला (लक्ष्मी) के साथ शेषशय्या पर आरूढ़ हो जाते हैं तब भी अपने प्रतिबिम्ब के बहाने तुम्हारा त्याग नहीं करते। श्रीलक्ष्मीजी का त्याग हो जाता है विहार के समय किन्तु शयन के समय पादुका का त्याग भगवान् नहीं करते, इस प्रकार पादुकामाहात्म्यातिशय ध्वनित होने से व्यतिरेकालङ्कारध्वनि उत्प्रेक्षालङ्कार से है स्वतःसंभवी॥१७॥

**त्वामेवैकामधिगतवतः केलिसंचारकाले**
**पार्श्वे स्थित्वा विनिहितदृशोः पादुकेऽनन्यलक्ष्यम्।**
**त्वद्रत्नेषु प्रतिफलितयोर्नित्यलक्ष्यप्रसादा**
**पद्माभूम्योर्दिशति भवती पादसेवां मुरारेः॥१८॥**

हे पादुके! लीलाविहार के समय एक मात्र तुम्हारे ही साथ रहने वाले श्रीमुरमथन के पास स्थित रहकर आप उन लक्ष्मी और भूमि को भगवान् की चरणसेवा का आदेश देती हो जो अन्य विषयों से अपनी दृष्टि हटाकर तुम्हारे रत्नों में प्रतिबिम्बत रहती हैं तथा जिनके कारण तुम्हारा प्रसाद (प्रसन्नता, स्वच्छता) नित्य ही अभिलक्षित होता है। लक्ष्मी और भूमि के प्रतिबिम्बन से पादुका की निर्मलता का अनुमान होता है क्योंकि निर्मल वस्तु में ही प्रतिबिम्ब झलकता है॥१८॥

**एकामेकः किल निरविशत् पादुके! द्वारकायां**
**क्रीडायोगी कृतबहुतनुः षोडशस्त्रीसहस्रे।**
**शुद्धे देवि! त्वदुपनिहिते बिम्बितो रत्नजाले**
**भुङ्क्ते नित्यं स खलु भवतीं भूमिकानां सहस्रैः॥१९॥**

हे देवि! पादुके! लीलायोगी श्रीकृष्ण जी द्वारकापुरी में नाना शरीर को धारण करके सोलह हजार स्त्रियों में अकेले एक का ही

उपभोग किये थे अर्थात् जितनी रानियाँ उतना शरीर धारण करके गार्हस्थ्य धर्म का निर्वाह भगवान् ने किया था। वे ही भगवान् इस समय तुझमें विन्यस्त स्वच्छ रत्नसमुदाय में प्रतिबिम्बित होकर हजारों भूमिकाओं में अर्थात् अनेक शरीरों को स्वीकार करके तुम्हारा उपभोग करते हैं। इस उत्प्रेक्षा अलङ्कार से रानियों की अपेक्षा पादुके में व्यतिरेकालङ्कार ध्वनि है॥१९॥

**हरिपदनखेषु भवती प्रतिफलति तवैतदपि रत्नेषु।**
**उचिता मिथः पदावनि! बिम्बप्रतिबिम्बता युवयोः॥२०॥**

हे पादुके! तुम श्रीहरि के चरणों के नखों में प्रतिबिम्बित होती हो और उनका पद भी तुम्हारे रत्नों में प्रतिबिम्बित होता है। इस प्रकार तुम दोनों का बिम्बप्रतिबिम्बभाव उचित ही है। परस्पर बिम्बप्रतिबिम्बभाव का अनुरूपतया वर्णन होने से 'सम' अलङ्कार है। जैसा कि लक्षण है—

समः स्याद् वर्णनं यत्र द्वयोरप्यनुरूपयोः। इति॥२०॥



## अथ काञ्चनपद्धति द्वाविंशी

इस पद्धति में सुवर्णमयी पादुका का वर्णन है—

**कल्याणप्रकृतिं वन्दे भजन्तीं काञ्चनश्रियम्।**
**पदार्हां पादुकां शौरेः पद एव निवेशिताम्॥१॥**

जिसकी प्रकृति = उपादानकारण कल्याण = सुवर्ण है तथा जिसका स्वभाव (प्रकृति) कल्याणमय है तथा जो किसी लोकोत्तर शोभा को और सुवर्ण की शोभा को धारण कर रही है ऐसी चरणयोग्य और सिंहासन (पद) के योग्य श्रीकृष्णपादुका की वन्दना मैं करता हूँ जो भगवान् के चरणों और साकेतसिंहासन पर निवेशित (स्थापित) है। श्लेष की महिमा से सार्वभौम महिषी के वृत्तान्त की प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार है॥१॥

**मधुजित्तनुकान्तितस्कराणां जलदानामभयं विधातुकामा।**
**चपलेव तदङ्घ्रिमाश्रयन्ती भवती काञ्चनपादुके! विभाति॥२॥**

हे काञ्चनपादुके! श्रीमधुमथन की शरीरकान्तियों को चुराने वाले मेघों को अभय प्रदान करने की इच्छावाली तुम श्रीभगवान् के चरण को बिजली की तरह स्वीकार करती हुई सुशोभित हो रही हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२॥

**निकषीकृतरम्यकृष्णरत्ना भवती काञ्चनसंपदं व्यनक्ति।**
**परिपुष्यति पादुके! यदीक्षा सहसा नः समलोष्टकाञ्चनत्वम्॥३॥**

हे पादुके! रमणीय कृष्णरूपी रत्न को या श्रीकृष्णरूपी 'इन्द्रनील' मणि को सुवर्णादि धातुओं की परीक्षा के लिए निकष (कसौटी) बना लेने वाली आप सुवर्ण की शोभा और कोई लोकोत्तर

शोभा को प्रकट कर रही हैं जिस शोभा का अवलोकन हम लोगों में सुवर्ण-लोष्ट (मिट्टी का टुकड़ा)-समानता को ही परिपुष्ट करता है। सर्वथा वैराग्य को परिपुष्ट करता है, यह अभिप्राय है। तात्पर्य यही निश्चित होता है कि पादुका जब कृष्णरत्न में निविष्ट हो जाती है तो लौकिक सुवर्ण ढेले जैसा ही दिखने लगता है। श्लेष से अनुप्राणित काव्यलिङ्ग और रूपक अलङ्कार।।३।।

**सुरभिर्निगमैः समग्रकामा कनकोत्कर्षवती पदावनि! त्वम्।**
**दिशसि प्रतिपन्नमाधवश्रीरनिशोन्निद्रमशोकवैभवं नः।।४।।**

हे पादुके! तुम निगम = वेदरूपी कोकिलों से सुगन्धरूपी वसन्त हो गयी हो तथा समग्र कामनाओं और कल्याणगुणों से संपृक्त होती हुई कनक = सुवर्ण और चम्पक वृक्ष से उत्कर्ष प्राप्त करके तथा माधव = श्रीकृष्णरूपी वैशाख की शोभा को स्वीकार करके हमारे अशोकवृक्षरूप शोकराहित्य के वैभव को प्रकट करती हो। श्लिष्ट परम्परितरूपक अलङ्कार।।४।।

**सति वर्णगुणे सुवर्णजातेर्जगति ख्यातमसौरभादवर्णम्।**
**श्रुतिसौरभशालिना स्वहेम्ना भवती शौरिपदावनि! व्युदस्थात्।।५।।**

हे श्रीशौरि भगवान् की पादुके! संसार में सुवर्णत्व जाति का भास्वररूप वर्णोत्कर्ष होने पर भी सुगन्ध न होने के कारण लोक में प्रसिद्ध अवर्ण अर्थात् गन्धाभावप्रयुक्त आक्षेप से वेदात्मक सुगन्ध वाले तुम्हारे शरीरमय सुवर्ण से तुम्हारे द्वारा ही दूर कर दिया जाता है। सौरभहेतु के साथ अपवादनिरास कार्य का वर्णन होने से हेतु अलङ्कार है। वर्णगुण होने पर भी सुवर्ण अवर्ण है, इस अंश में विरोधाभास अलङ्कार है। इससे माहात्म्यातिशय पादुका का द्योतित है।।५।।

**प्रतिपन्नमयूरकण्ठधाम्ना परिशुद्धेन पदावनि! स्वकेन।**
**कमलास्तनभूषणोचितं तद्भवती रत्नमलङ्करोति हेम्ना।।६।।**

हे पादुके! इन्द्रनीलमणि से जटित होने के कारण मयूर के कण्ठ के तेज को प्राप्त कर लेने वाले पूर्णतः शुद्ध अपने सुवर्ण से तुम श्रीलक्ष्मी जी के स्तनों के अलङ्करण के योग्य श्रीरङ्गनाथरूप श्रेष्ठ वस्तु का परिष्कार करती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥६॥

**कान्त्या परं पुरुषमाप्रणखात् सुवर्णं**
**कर्तुं क्षमा त्वमसि काञ्चनपादरक्षे।**
**अन्यादृशीं दिशसि या विनतस्य दूरा-**
**दारग्वधस्तबकसम्पदमिन्दुमौलेः॥७॥**

हे सुवर्णपादुके! तुम अपनी कान्ति से परम पुरुष श्रीरङ्गनाथ जी को नख से लेकर शिखापर्यन्त सुवर्ण = शोभनवर्णों से युक्त और कनकमय बना देने में समर्थ हो क्योंकि तुम ही दूरतः प्रणत चन्द्रमौलि भगवान् शिव को अन्य प्रकार की अर्थात् प्रसिद्ध राजवृक्ष के पुष्पगुच्छों से भी अत्युकृष्ट राजवृक्षपुष्प के गुच्छों की शोभा प्रदान करती हो। पादुका के सुवर्णों की कान्ति से शिवमस्तक का चन्द्रमा राजवृक्षपुष्पों के गुच्छों जैसा हो जाता है, यह अभिप्राय है। दूरस्थित शिवचन्द्र की शोभा पादुका से होती है तो समीपस्थित भगवान् की शोभा कैमुतिकन्याय से सिद्ध है। अर्थापत्ति से संकीर्ण उत्प्रेक्षालङ्कार॥७॥

**चन्द्राकृतिः कथमकल्पयथास्तदानीं**
**वैमानिकप्रणयिनीवदनाम्बुजानाम्।**
**विक्रान्तिकालवितितेन निजेन धाम्ना**
**बालातपं बलिविमर्दनपादुके! त्वम्॥८॥**

हे बलिविमर्दन श्रीत्रिविक्रम की पादुके! चन्द्र = सुवर्ण की आकृति वाली चद्ररूपा तुम उस समय वामनावतार में त्रिभुवन को नापने के समय ऊपर फैले हुए अपने तेज से देवताओं की स्त्रियों के मुखकमलों की शोभा बढ़ाने के लिए तात्कालिक सूर्यप्रभा को कैसे धारण कर ली थी? यहाँ मुखों के विकास का हेतु होने के

कारण पादुका की सुवर्णकान्ति ही बालातप के रूप में अभेदतः अध्यवसित है। चन्द्र के द्वारा कमलों का विकास विरुद्ध है तथापि कार्यदर्शन होने से विभावना अलङ्कार श्लेष से अनुप्राणित है॥८॥

**लेभे तदाप्रभृति नूनमियं भवत्याः**
**कान्त्या कवेरतनया कनकापगात्वम्।**
**यावन्मुकुन्दपदहेमपदावनि! त्वं**
**पुण्यं विभूषितवती पुलिनं तदीयम्॥९॥**

हे श्रीमुकुन्द की सुवर्णपादुके! मुझे तो ऐसा लग रहा है कि आपकी कान्ति से ही उसी समय से कवेरपुत्री कावेरी नदी कनकनदी = सुवर्णनदी के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी थी जब तुमने उसके पुण्य (कल्याणकारी) तट को अलङ्कृत किया था। कावेरी की 'कनकनदी' संज्ञा पादुका की कान्ति से सम्बन्धित होने के कारण हुई थी, ऐसा हेतु के उद्भावित होने से हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार है, जिसका निरुक्ति अलङ्कार से साङ्कर्य है॥९॥

**चित्रं सरोजनिलयासहितस्य शौरे-**
**र्वासोचितानि चरणावनि! संविधित्सोः।**
**सद्यो विकासमुपयान्ति समाधिभाजां**
**चन्द्रातपेन तव मानसपङ्कजानि॥१०॥**

हे पादुके! समाधि लगाने वाले योगियों के मानसकमल कमलनिलया कमला के साथ रहने वाले श्रीरङ्गनाथ जी के निवास के योग्य स्थान का निर्माण चाहने वाली तुम्हारी सुवर्णकान्ति (चन्द्रातप, चन्द्र=सुवर्ण) रूपिणी चन्द्रिका (चाँदनी) से तत्काल खिल जाते हैं, यह आश्चर्य नहीं तो क्या है? चन्द्रातप से योगिमानसकमल का विकास वर्णित होने से विभावना अलङ्कार है॥१०॥

**त्वय्येव पादमधिरोप्य नवं प्रवाहं**
**नाथे पदावनि! निशामयितुं प्रवृत्ते।**

आत्मीयकाञ्चनरुचा भवती विधत्ते
हेमारविन्दभरितामिव हेमसिन्धुम्॥११॥

हे पादुके! जब श्रीरङ्गनाथ जी तुझमें अपने चरण को रखकर नये कावेरी के प्रवाह को देखने के लिए प्रवृत्त होते हैं तब तुम कावेरी (हेमसिन्धु) को अपनी सुवर्णकान्ति से मानो स्वर्ण के कमलों से परिपूर्ण कर देती हो। पादुका श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए कावेरी में सुवर्णकमलों का निर्माण कर देती है, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा॥११॥

विहरति पुलिनेषु त्वत्सखे रङ्गनाथे
कनकसरिदियं ते पादुके! हेमधाम्ना।
वहति सलिलकेलीस्रस्तचोलावरोध-
स्तनकलशहरिद्रापङ्कपिङ्गामवस्थाम्॥१२॥

हे पादुके! जब तुम्हारे सखा श्रीरङ्गनाथ जी तटों पर विचरण करने लगते हैं तब यह कावेरी नदी तुम्हारी सुवर्णकान्ति से जलक्रीडा से प्रक्षालित, चोलदेश में उत्पन्न गोदा के कमल जैसे स्तनों में विद्यमान हरिद्रा के पङ्को से पीतवर्णों वाली अवस्था को धारण कर लेती है। जलक्रीडा से प्रक्षलित स्तनों की हरिद्रा से कावेरी पीली हो जाती है, यह अभिप्राय है। निदर्शना अलङ्कार॥१२॥

सुरभिनिगमगन्धा सौम्यपद्माकरस्था
कनककमलिनीव प्रेक्ष्यसे पादुके! त्वम्।
भ्रमर इव सदा त्वां प्राप्तनानाविहारः
शतमखमणिनीलः सेवते शार्ङ्गधन्वा॥१३॥

हे पादुके! सुगन्धित वेद ही जिसका गन्ध है ऐसी तथा लक्ष्मी के सुन्दर हाथ में स्थित तुम कमलिनी (सनाल कमल) की तरह दिखायी देती हो। कमलिनी भी नगरयोग्य-सौरभयुक्त तथा चन्द्रसरसी में स्थित रहती है। इस प्रकार शार्ङ्गधन्वा श्रीरङ्गनाथ जी भी

इन्द्रनीलमणि के समान नील विग्रह वाले हुए नाना प्रकार के विहारों को प्राप्त करके तुम्हारा सेवन करते हैं।।१३।।

**कनकरुचिरवर्णां पादुके! सह्यसिन्धुः**
**श्रियमिव महनीयां सिन्धुराजस्य पत्नी।**
**स्वयमिह सविधस्था सौम्यजामातृयुक्ता-**
**मुपचरति रसेन त्वामपत्याभिमानात्।।१४।।**

हे पादुके! समुद्र की पत्नी, सह्य पर्वत से उत्पन्न कावेरी नदी श्रीरङ्गक्षेत्र के समीप स्थित होकर सुवर्ण के समान मनोहर वर्ण वाली सौम्यजामातृनामक श्रीरङ्गनाथ जी से युक्त लक्ष्मी के समान महनीय (पूज्य) सुवर्ण से रुचिर वर्णों वाली तुम्हारा पुत्रीत्व के अभिमान से सम्मान करती है। श्लिष्टोपमा अलङ्कार।।१४।।

**अनुकलमुपजीव्या दृश्यसे निर्जराणां**
**त्रिपुरमथनमौलौ शेखरत्वं दधाना।**
**प्रतिपदमधिगम्यप्राप्तशृङ्गासि शौरे-**
**स्तदपि चरणरक्षे! पूर्णचन्द्राकृतिस्त्वम्।।१५।।**

हे श्रीकृष्ण की चरणपादुके! तुम प्रतिक्षण देवों की उपजीव्य = आश्रयणी, सेव्य हो और श्रीशिव के मस्तक में अलङ्कार हो। तुम पग-पग पर प्राप्य श्रीभगवान् से प्राप्त प्रभुत्व वाली होकर भी सुवर्णमय शरीर वाली हो। प्रतिपदम् अर्थात् प्रतिपदा तिथि को प्राप्त करके शिखर को प्राप्त की हो तथापि पूर्ण चन्द्र की आकृति वाली हो, यह विरोध है जिसका समाधान पूर्वोक्त अर्थ से हो जाता है। एवञ्च, विरोधाभास अलङ्कार है, जो श्लेष से अनुप्राणित है। पूर्णचन्द्र की आकृति भी अनुकलम् = कला में आहार के लिए आश्रयणीय दिखायी देती है और शिव के मस्तक में अलङ्कार है।।१५।।

**कनकमपि तृणं ये मन्वते वीतरागा-**
**स्तृणमपि कनकं ते जानते त्वत्प्रकाशैः।**

**मधुरिपुपदरक्षे! यत्त्वदर्थोपनीतान्**
**परिणमयसि हैमान् देवि! दूर्वाङ्कुरादीन्॥१६॥**

हे श्रीमधुरिपु की पादुके! जो वीतराग = विरागी पुरुष सुवर्ण को भी तिनके जैसा मानते हैं वे तिनकों को भी तुम्हारे प्रकाश से सुवर्ण ही जानते हैं अर्थात् तिनके में उनको सुवर्ण का भ्रम हो जाता है। ऐसा इसलिए है कि तुम्हारी पूजा के लिए पूजकों के द्वारा लाये गये दूर्वा के अङ्कुरों को तुम हैम अर्थात् = सुवर्ण के रूप में परिणत कर देती हो। उत्तर पादद्वय के अर्थ के पूर्व पादद्वय अर्थ में हेतु होने से 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार है जिसमें भ्रान्तिमान् विषम और व्याघात अलङ्कारों का साङ्कर्य है॥१६॥

**विशुद्धिमधिगच्छति ज्वलनसंगमात् काञ्चनं**
**विदन्ति च जगन्ति तन्न खलु तद्विपर्यस्यति।**
**कथं कनकपादुके! कमललोचने साक्षिणि**
**त्वयैव परिशुद्धता हुतभुजोऽपि जाघट्यते॥१७॥**

हे कनकपादुके! काञ्चन = सुवर्ण अग्नि के संयोग से विशुद्ध होता है जिसे लौकिक पुरुष जानते हैं। उनका यह ज्ञान कभी भी विपरीत नहीं होता। कमलनयन श्रीरङ्गनाथ जी के साक्षी के रूप में उपस्थित रहने पर भी सेवा के समय मस्तक पर स्थापित तुमसे अग्नि की विशुद्धि कैसे सङ्गत हो सकती है? श्रीभगवान् की सुवर्णमय पादुका के सम्बन्ध से अग्नि भी शुद्ध होता है, इस प्रकार प्रसिद्ध कार्यकारणभाव के विपरीत वर्णन होने 'विभावना' अलङ्कार है॥१७॥

**तारासङ्गप्रथितविभवां चारुजाम्बूनदाभां**
**त्वामारूढस्त्रिदशमहितां पादुके! रङ्गनाथः।**
**संचारिण्यां सुरशिखरिणस्तस्थुषा मेखलायां**
**धत्ते मत्तद्विरदपतिना साम्यकक्ष्यां समीक्ष्याम्॥१८॥**

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी तार = ओङ्कार-शुद्ध मोती और नक्षत्रों के आसङ्ग = तात्पर्य और सम्बन्ध से प्रख्यात विभवों वाली और रमणीय सुवर्ण की आभा वाली, देवताओं से पूजित तुम्हारे ऊपर आरूढ होकर सुमेरु पर्वत की चलने वाली मेखला = नितम्ब, मध्यभाग पर स्थित मतवाले गजेन्द्र की दर्शनीय समता को धारण करते हैं। उपमा॥१८॥

**कनकरुचिरा काव्याख्याता शनैश्चरणोचिता**
**श्रितगुरुबुधा भास्वद्रूपा द्विजाधिपसेविता।**
**विहितविभवा नित्यं विष्णोः पदे मणिपादुके!**
**त्वमसि महती विश्वेषां नः शुभा ग्रहमण्डली॥१९॥**

हे मणिपादुके! तुम हम सभी आश्रित जनों के लिए शुभ ग्रहों का समुदाय हो। जैसे शुभ स्थानों में पड़ने वाले ग्रह अभीष्ट फल देते हैं वैसे पादुका भी अभीष्ट फल देने वाली है, यह अभिप्राय है। आदितः तीनों चरणों से पादुका और ग्रहमण्डली का श्लेष के माध्यम से प्रतिपादन है।

पादुकापक्ष में—सुवर्ण से मनोहर, रामायण आदि काव्यों में प्रतिपादित, शनैः अर्थात् धीरे-धीरे चरण = विहार के योग्य, जिसके आश्रय में नाथ, यामुन आदि गुरु तथा व्यास आदि बुध = तत्त्वज्ञ पुरुष रहते हैं, तेजस्वी रूप वाली, ब्राह्मणों से सेवित तथा नित्य ही श्रीविष्णु के पद = चरण में नित्य ही विभुता को सम्पादित करने वाली।

ग्रहमण्डलीपक्ष में—कनक के समान मनोहर मङ्गल ग्रह वाली, काव्य = शुक्र से प्रतिपादित, राशियों में अधिक समय तक रहने वाले शनैश्चर ग्रह के योग्य, गुरु (बृहस्पति) और बुध ग्रहों को स्वीकार करने वाली, भास्वत् = सूर्य का भी रूप हो जिसमें, द्विजाधिप = चन्द्र से सेवित, श्रीविष्णु के पद = स्थानभूत आकाश

में नित्य ही विभवों का सम्पादन करने वाली। श्लिष्टरूपक अलङ्कार॥१९॥

**प्रज्वलितपञ्चहेतिर्हिरण्मयीं त्वां हिरण्यविलयार्हः।**
**आवहतु जातवेदाः श्रियमिव नः पादुके! नित्यम्॥२०॥**

हे पादुके! जिसकी पञ्च = विस्तृत हेति = वह्निज्वालायें प्रज्वलित हों तथा जो हिरण्य = सुवर्ण को गलाने के योग्य है ऐसे जातवेदाः (यो जातानि भूतानि वेद = जानाति) = अग्नि जैसे हम लोगों को सुवर्णप्रचुर श्री = लक्ष्मी प्रदान करते हैं वैसे ही जिनके शङ्ख-चक्र आदि दिव्य आयुध (हेति) दीप्त हों और हिरण्य = 'हिरण्याक्ष' नामक दैत्य का नाश करने में समर्थ जातवेदाः (यत्प्रतिपादनयजनाद्याय वेदा जाताः सन्ति अर्थात् जिनके महिमगान आदि के लिए वेद प्रकट हैं) = श्रीरङ्गनाथ जी सुवर्ण की विग्रह वाली तुम्हें हमें प्रदान करें॥ श्लिष्टोपमा॥२०॥



# अथ शेषपद्धतिस्त्रयोविंशी

इस पद्धति में विपश्चितों के द्वारा पादुका की अन्य शेष (दास)-मूर्ति के रूप में उद्भावन करके स्तुति की गयी है—

**सृष्टां भूमावनन्तेन नित्यं शेषसमाधिना।**
**अहं संभावयामि त्वामात्मानमिव पादुके।।१।।**

हे पादुके! अनन्त श्रीशेष के द्वारा सदा 'शेष', इस समर्थन के साथ भूमि में उत्पादित तुमको मैं अनन्त = श्रीरङ्गनाथ जी के द्वारा (अनन्तः शेषविष्ण्वोरिति विश्वकोषः) नित्य ही दासत्वसमर्थन के साथ भूमि में सृष्ट (तोयेन जीवान् व्यससर्ज भूम्याम् इति श्रुतिः) जीवात्मा की तरह ही समझता हूँ। अनन्त ने श्रीभगवान् के चरणों की सेवा के लिए अपने अन्य आकार को ही पादुका के रूप में रचा है, यह अभिप्राय है। इसी अर्थ को लेकर श्लेष के माध्यम से पादुका जीवात्मा के रूप में उद्भावित है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।।१।।

**पद्माभोगात् पादुके! रङ्गभर्तुः पादस्पर्शाद्भोगमन्यं प्रपित्सोः।**
**शेषस्यैकां भूमिकामब्रवीत्तामाचार्याणामग्रणीर्यामुनेयः।।२।।**

हे पादुके! आचार्यों में अग्रणी श्रीयामुनाचार्य जी लक्ष्मी के भोग से भिन्न भोग (सुख) को प्राप्त करने की इच्छा वाले शेष की एक अन्य भूमिका के रूप में तुमको कहे हैं। जैसा कि उनका स्तोत्र है—

निवासशय्यासनपादुकांशुकोपधानवर्षातपवारणादिभिः।
शरीरभेदैस्तव शेषतां गतैर्यथोचितं शेष इतीर्यते जनैः।। इति।

शय्या के रूप में भगवान् की सेवा करते हुए श्रीशेष लक्ष्मी के द्वारा किये जाने वाले पादसंवाहन से अनुमेय भगवान् के चरणों के स्पर्श से जायमान सुख की इच्छा से पादुका का रूप ग्रहण किये हैं, ऐसा यामुनाचार्य जी ने कहा है। शब्दप्रमाण के उपन्यास से शब्दालङ्कार यहाँ है॥२॥

**शेषत्वमम्ब! यदि संश्रयति प्रकामं**
**त्वद्भूमिकां समधिगम्य भुजङ्गराजः।**
**त्वामेव भक्तिविनतैर्वहतां शिरोभिः**
**काष्ठां गतं तदिह केशवपादरक्षे॥३॥**

हे मातः। श्रीकेशव की पादुके! भुजङ्गराज शेषजी तुम्हारी भूमिका को स्वीकार करके यदि पूर्णतः शेषत्व (दासत्व) स्वीकार करते हैं तो भक्ति से विनम्र हुए मस्तकों से जो तुम्हारा वहन करते हैं उनका शेषत्व पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ ही माना जायेगा। पादुकारूप अनन्त का शेषत्व यदि उत्कृष्ट है तो उनके शेषत्व की अपेक्षा उनके दासों का शेषत्व उत्कृष्ट होगा ही, यह अभिप्राय है। अर्थापत्ति–अलङ्कार॥३॥

**मा भूदियं मयि निषण्णपदस्य नित्यं**
**विश्वम्भरस्य वहनाद् व्यथितेति मत्वा।**
**धत्से बलाभ्यधिकया मणिपादुके! त्वं**
**शेषात्मना वसुमतीं निजयैव मूर्त्या॥४॥**

हे पादुके! मुझ पर अपने चरणों को रखने वाले विश्वम्भर श्रीरङ्गनाथ जी को धारण करके पृथ्वी देवी व्यथित न हों, ऐसा मान करके ही बल में उत्कृष्ट शेष की मूर्ति से तुम इस पृथ्वी को धारण करती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४॥

**तत्तादृशा निजबलेन निरूढकीर्तिः**
**शेषस्तवैव परिणामविशेष एषः।**

**रामेण सत्यवचसा यदनन्यवाह्यां**
**वोढुं पुरा वसुमतीं भवती नियुक्ता॥५॥**

हे मणिपादुके! अनिर्वचनीय वैसे अपने बल से प्रसिद्ध यश वाले ये शेष तुम्हारे शरीर के ही प्रकार हैं क्योंकि सत्यवादी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी उस वसुमती (पृथ्वी) के वहन में आप को नियुक्त किये थे जिसका वहन कोई अन्य कर ही नहीं सकता। श्रीभगवान् के द्वारा धारणीय पृथ्वी का वहन करने से शेष पादुका के परिणाम—प्रकार ही हैं, ऐसा समर्थन होने से 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार है॥५॥

**शेषत्वसीमनियतां मणिपादरक्षे!**
**त्वामागमाः कुलवधूमिव बालपुत्राः।**
**त्वद्रूपभेदशयितस्य परस्य पुंसः**
**पादोपधानशयितामुपधानयन्ति॥६॥**

हे मणिपादुके! आगम अर्थात् वेद शेषत्व (पारतन्त्र्य, पारार्थ्य) की सीमा में नियमतः स्थित तथा 'शेष' नामक तुम्हारे दूसरे प्रभेद में शयन करने वाले परम पुरुष श्रीरङ्गनाथ जी के चरणरूपी उपबर्हण (तकिया) में सोयी हुई तुमको वैसे ही उपबर्हण बना लेते हैं जैसे शिशु कुलवधू अर्थात् पतिव्रता नारी को उपबर्हण बनाते हैं। भर्तृशुश्रूषा में तत्पर कुलस्त्रियों को जैसे बालक स्वीकार करते हैं वैसे ही पादुका को वेद, यह अभिप्राय है। उपमा अलङ्कार॥६॥

**भरतशिरसि लग्नां पादुके! दूरतस्त्वां**
**स्वतनुमपि ववन्दे लक्ष्मणः शेषभूतः।**
**किमिदमिह विचित्रं नित्ययुक्तः सिषेवे**
**दशरथतनयः सन् रङ्गनाथः स्वमेव॥७॥**

हे पादुके! शेषावतार श्रीलक्ष्मणजी भरत के मस्तक पर संलग्न स्वशरीरभूत होती हुई भी तुमको दूर से ही वन्दन किये थे। (पादुका

इस पद्धति में शेषरूप है तथा लक्ष्मणजी भी शेष ही है, इस प्रकार स्वयं के द्वारा स्वयं की स्तुति कही गयी है) अतः नित्य ही समीपवर्ती श्रीरङ्गनाथजी दशरथ के पुत्र के रूप में स्वयं की सेवा यहाँ श्रीरङ्गक्षेत्र में किये थे, यह क्या विचित्र लगता है? अर्थात् आश्चर्यजनक नहीं है। अर्थापत्ति अलङ्कार।।७।।

**भूयोभूयः स्तिमितचलिते यस्य संकल्पसिन्धौ**
**ब्रह्मेशानप्रभृतय इमे बुद्बुदत्वं भजन्ति।**
**तस्यानादेर्युगपरिणतौ योगनिद्रानुरूपं**
**क्रीडातल्पं किमपि तनुते पादुके! भूमिकान्या।।८।।**

हे पादुके! जिस भगवान् श्रीरङ्गनाथ जी के बार-बार स्तिमित (निश्चल) और चलित संकल्प-समुद्र में ये ब्रह्मा और शिव आदि देवेश्वर बुद्बुद (बुदबुदा) ही हो जाते हैं उसी अनादि और अनन्त श्रीभगवान् के युगान्त में योगनिद्रानुकूल किसी लोकोत्तर लीलाशयन (वटपत्र) का वितान तुम करती हो, यह तुम्हारी वट के पत्ते के रूप में कोई और ही भूमिका है। युगान्त में पादुका भगवान् के शयन के लिए वटपत्र के रूप में परिणत हो जाती है, यह अभिप्राय है। रूपक-उदात्त-अलङ्कार।।८।।

**अहीनात्मा रङ्गक्षितिरमणपादावनि! सदा**
**सतामित्थं त्राणात् प्रथितनिजसत्रत्वविभवा।**
**अविद्यायामिन्याः स्पृशसि पुनरेकाहपदवीं**
**क्रतूनामाराध्या क्रतुरपि च सर्वस्त्वमसि नः।।९।।**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! तुम क्रतुओं = समस्त यज्ञों की आराध्या होकर भी हमारे लिए सारे यागों का स्वरूप भी हो। क्यों? इसके उत्तर में ही आद्यतः तीनों चरणों से पादुका का श्लेष से प्रतिपादन है। अहीनात्मा सदैव तुम हो। यहाँ तीन अर्थ प्रतीत हो रहे हैं—नहीं है हीन = न्यून आत्मा = स्वरूप जिसका अर्थात्

श्रेष्ठ हो। अहि = सर्पों के इन = स्वामी श्रीशेष ही जिसका स्वरूप हैं और 'अहीन' नामक यज्ञ हो।

[अह्नः खः क्रतौ, इस पाणिनिसूत्र से 'यज्ञ' अर्थ में 'ख' प्रत्यय होने से 'अहीन' शब्द बनता है। यह एक गणयाग है जो द्वादशाह, जामदग्न्यचतूरात्र, गर्गत्रिरात्र आदि अनेक प्रकारों से वेदों में विहित है। द्वादशाह सत्र भी है। सारे गणयागों की प्रकृति अहीन है जिसे 'गणेषु द्वादशाहस्य', इस सूत्र से भगवान् जैमिनि ने निर्देशित किया है।] पुनः कैसी हो? सत्पुरुषों की इस प्रकार रक्षा करने से जिसका 'सत्त्रत्व' वैभव विख्यात है। सत् = सत्पुरुषों के त्रत्व = रक्षा का वैभव और सत्त्रत्व = 'सत्र' नामक यागों का वैभव। 'आसीरन्, उपेयुः', इस चोदना से चोदित (उपदिष्ट) यागों को सत्र कहते हैं जिसमें आहिताग्नि ब्राह्मण यजमान ही ऋत्विज होते हैं और सभी फल के स्वामी होते हैं। न्यूनतम संख्या सत्रह होती है। हजारों दिनों तक किये जाने वाले सत्रों का विधान वेदों में है।

पुनः कैसी? हमारी अविद्या = अज्ञान रूपी रात्रि की एकाहपदवी का स्पर्श करती हो। एक अर्थात् अद्वितीय दिन की भङ्गिमा का स्पर्श करती हो। ज्ञानप्रकाश रूपी दिवस की तरह प्रत्युपस्थित होती हो, यह अभिप्राय है। 'एकाह' ज्योतिष्टोम के विकार के रूप में प्रतिष्ठित एक ही दिन में सम्पादित होने वाले यज्ञ होते हैं। इनकी संज्ञा अनेक है। इस प्रकार पादुका एकाहयागीय पद्धति का भी रूप धारण कर लेती है। टीकाकार ने यहाँ उत्प्रेक्षा ही स्वीकार की है। श्लिष्टपरम्परित रूपक हमें प्रतीत होता है। अन्तिम पाद को देखने से विरोधाभास की भी प्रतीति होती है जिसका श्लेषभङ्गी से समाधान हो जाता है। इस प्रकार तो वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार के साङ्कर्य से इनकार नहीं किया जा सकता। टीकाकार की श्लेषानुप्राणितक्रत्वात्मत्वमुत्प्रेक्ष्यते उद्भाव्यते आरोप्यते, इस रूप से रूपक के पक्ष में भी योजना की जा सकती है।।९।।

**बहुमुखभोगसमेतैर्निर्मुक्ततया विशुद्धिमापन्नैः।**
**शेषात्मिका पदावनि! निषेव्यसे शेषभूतैस्त्वम्।।१०।।**

हे पादुके! शेषात्मिका अर्थात् अनन्तनामक नागराज की स्वरूपाकृति तुम अनेक प्रकार के भोगों = सुख और फणों से युक्त तथा मोक्ष प्राप्त कर लेने से दोषशून्यता को प्राप्त कर लेने वाले और केंचुल छोड़ देने से धवलता को प्राप्त कर लेने वाले शेषभूत अर्थात् उन दासजनों से सेवित होती हो जो अनन्त के स्वरूप को प्राप्त कर लिए हैं। श्लेष से अनुप्राणित 'सम' अलङ्कार।।१०।।

# अथ द्वन्द्वपद्धतिश्चतुर्विंशी

इस पद्धति में पादुका के युगलभाव को लेकर स्तुति की गयी है—

**प्रपद्ये पादुकारूपं प्रणवस्य कलाद्वयम्।**
**ओतं मितमिदं यस्मिन्ननन्तस्यापि तत्पदम्।।१।।**

श्रीभगवान् के पादुकात्मक तथा ओङ्कारात्मक मात्रायुगल की मैं शरण ग्रहण करता हूँ जिसमें अनन्त अर्थात् परिच्छेदातीत श्रीभगवान् का प्रसिद्ध चरण और प्रणवरूप शब्द ओतम् = ओंकारात्मक होता हुआ मित = परिच्छिन्न और मकारयुक्त होकर अनुस्यूत है। श्लिष्टरूपक अलङ्कार। कलाद्वय से अकार और उकार का ग्रहण है तथा 'मितम्' से मकार का समावेश है। कलाद्वय को ही 'ओतम्', इस पद से व्यक्त किया गया है। ओकार में मकार का प्रश्लेष कर देने से भगवान् के वाचक प्रणव शब्द की निष्पत्ति होती है।।१।।

**मणिपादुकयोर्युगं मुरारेस्तव नित्यं विदधातु मङ्गलानि।**
**अधिकृत्य चराचरस्य रक्षामनुकम्पाक्षमयोरिवावतारः।।२।।**

श्रीमुरमथन की दोनों वे पादुकायें मेरे मङ्गल का नित्य ही सम्पादन करें जो चराचरात्मक संसार की रक्षा को लेकर श्रीभगवान् की दया और क्षमा के अवतार के रूप में स्थित हैं। उत्प्रेक्षा तथा मतान्तर से अभूतोपमा अलङ्कार। वस्तुस्तु उत्प्रेक्षा ही है।।२।।

**चरणौ मणिपादुके! मुरारेः प्रणतान् पालयितुं प्रपद्यमानम्।**
**विपदामिह देवमानुषीणां प्रतिकारं युवयोर्द्वयं प्रतीमः।।३।।**

हे मणिपादुके! (द्विवचन में सम्बोधन) आश्रितजनों का पालन करने के लिए श्रीमुरारि के चरणों को स्वीकार करने वाली तुम दोनों को हम दैव और मानुषी विपत्तियों के प्रतिकारनिराकरण के रूप में देखते हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३॥

**मुरभिन्मणिपादुके! भवत्योर्विहितो नूनमसौ मिथो विभागः।**
**भजतामपरस्परप्रियाणामविरोधाय सुरासुरेश्वराणाम्॥४॥**

हे मुरभेदक श्रीभगवान् की पादुके! तुम दोनों का वह दृश्यमान पारस्परिक दो भागों में विभाग निश्चय ही परस्पर प्रेम न रखने वाले तथा भजन करने वाले देवेश्वरों और असुरेश्वरों के अविरोध अर्थात् कलह को रोकने के लिए ही हुआ है। यदि विभाग न होता तो एक पादुका को लेकर दोनों में भीषण कलह होता, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४॥

**अहितोन्मथनाय संश्रितानामलमालोकवशेन शब्दतो वा।**
**करयोश्च रथाङ्गपाञ्चजन्यौ मधुहन्तुः पदयोश्च पादुके ये॥५॥**

श्रीमधुमथन के हाथों में विद्यमान चक्र और पाञ्चजन्य शङ्ख तथा चरणों में विद्यमान जो दोनों पादुकायें हैं वे आलोक (दर्शन और प्रकाश) के बल से और शब्द से आश्रितजनों के शत्रु अनिष्ट के ध्वंस में समर्थ हैं। सुदर्शन-शङ्खों से शत्रुध्वंस तथा पादुकाओं के दर्शन-कीर्तन से अनिष्टनिवारण की विवक्षा है। प्राकरिण और अप्राकरणिक दोनों का एक साधारण धर्म से सम्बन्ध होने से दीपक अलङ्कार जिससे पादुका में सुदर्शनपाञ्चजन्य का सादृश्य ध्वनित है॥५॥

**अवधीरितसाधुपद्धतीनामलसानां मधुवैरिपादुके! द्वे।**
**इतरेतरसाहचर्यमित्थं प्रतिपन्ने इव दैवपौरुषे नः॥६॥**

हे मधुवैरी श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! साधुओं के मार्ग का अतिक्रमण कर देने वाले हम आलसियों के लिए भाग्य और पौरुष

जैसे ही आप दोनों ने मानो इस तरह का साहचर्य प्राप्त किया है। उत्प्रेक्षा और परिकर अलङ्कार॥६॥

**पार्श्वयोः सरसिजावसुन्धरे पादयोश्च मणिपादुके! युवाम्।**
**संनिकर्षथ न चेन्मधुद्विषः किं करिष्यति कृतागसां गणः॥७॥**

हे मणिपादुके! मधुरिपु श्रीरङ्गनाथ जी के पास में लक्ष्मी और भूदेवी तथा चरणों में तुम दोनों, इस प्रकार चारों उनके समीप नहीं होतीं तो अपराधी क्या करते? अपराधियों के प्रति हुए भगवान् के कोप को दूर करने के लिए ही आप सभी का उनसे सन्निकर्ष है, यह अभिप्राय है। दीपकसंकीर्ण सम्भावना अलङ्कार से उपमा-अलङ्कार ध्वनि॥७॥

**पादुके! भवभयप्रतीपयोर्भावयामि युवयोः समागमम्।**
**सक्तयोर्दनुजवैरिणः पदे विद्ययोरिव परावरात्मनोः॥८॥**

हे पादुके! संसार के भय की विरोधिनी (दूर करने वाली) तथा दैत्यारि श्रीभगवान् के चरण में संसक्त रहने वाली परावरात्मस्वरूप अर्थात् परा और अपरा विद्या के समागम के समान तुम दोनों के समागम को मैं अपने हृदय में भावित करता हूँ। विद्या के दोनों प्रभेदों का उपबृहण श्रीविष्णुपुराण में किया गया है—

द्वे विद्ये वेदितव्ये वै इति चाहाथर्वणी श्रुतिः।
परया त्वक्षरप्राप्तिः ऋग्वेदादिमयाऽपरा॥ इति।

उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥८॥

**रङ्गसीमनि रथाङ्गलक्ष्मणश्चिन्तयामि तपनीयपादुके।**
**शापदोषशमनाय तत्पदे चक्रवाकमिथुनं कृतास्पदम्॥९॥**

श्रीरङ्गनगर में विद्यमान रथाङ्ग (चक्र) चिह्न वाले श्रीरङ्गनाथ जी की सुवर्णमयी पादुकाओं का मैं चिन्तन करता हूँ। वे पादुकाये मानों श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा दिये गये शाप को दूर करने के लिए

श्रीरङ्गनाथजी के चरण में चक्रवाकों (पक्षी) के युगल के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥९॥

**मानयामि जगतस्तमोपहे माधवस्य मणिपादुके! युवाम्।**
**दक्षिणोत्तरगतिक्रमोचिते पद्धती इव मयूखमालिनः॥१०॥**

हे श्रीमाधव की मणिपादुके! पूरे संसार के शोकमय अन्धकार को दूर करने वाली तुम दोनों को मैं दक्षिण और उत्तर दिशाओं में संचार के क्रम में अभ्यस्त मयूखमाली सूर्य के मार्ग की तरह ही मानता हूँ। सूर्य की पद्धति (मार्ग) दक्षिणायन और उत्तरायण के रूप में प्रतिष्ठित है। उपमा अलङ्कार॥१०॥

**रङ्गनाथपदयोरलङ्क्रिया राजते कनकपादुकाद्वयी।**
**तद्विभूतियुगलीव तादृशी छन्दतः समविभागमाश्रिता॥११॥**

श्रीरङ्गनाथजी के चरणों में अलङ्कारभूत दोनों सुवर्ण की पादुकायें स्वेच्छा से वैसे ही समान रूप से विभक्त हैं जैसे श्रीभगवान् की लीला और मुक्ति के स्थानों में अलङ्कार के रूप में व्यवस्थित उनकी दोनों विभूतियाँ (लीला और योग की सम्पदायें) समानरूप से विभक्त हैं। एवम्भूत पादुकायें सुशोभित हो रही हैं। उपमा अलङ्कार॥११॥

**साक्षात् पदं मधुभिदः प्रतिपादयन्त्यौ**
**मानोपपत्तिनियते मणिपादुके द्वे।**
**अन्योन्यसंगतिवशादुपपन्नचर्या-**
**माज्ञां श्रुतिस्मृतिमयीमवधारयामि॥१२॥**

मधुनामक दैत्य का भेदन करने वाले श्रीरङ्गनाथजी के चरण और स्वरूप का साक्षात् (प्रत्यक्ष और अभिधावृत्ति से) प्रतिपादन करने वाली दोनों पादुकायें परिमाण और उपपत्ति (मुक्ति) से परिव्याप्त हैं। उन दोनों को मैं श्रुति-स्मृति रूप भगवदाज्ञा की तरह ही समझता हूँ जो पारस्परिक समागम से चर्या अर्थात् अनुष्ठानपद्धति को स्वीकार की हुई हैं। वैष्णवसिद्धान्त में वेदादि शास्त्र को भगवान्

का ही अनुशासन माना गया है। उनमें प्रमाण और तर्क (मानोपपत्ति) अनुग्राहक हैं। पादुकापक्ष में 'प्रतिपादन' का 'दान' अर्थ है अर्थात् पादुकायें भक्तों को श्रीभगवच्चरणों में लगाती हैं।।१२।।

**विश्वोपकारमधिकृत्य विहारकाले-**
**ष्वन्योन्यतः प्रथममेव परिस्फुरन्त्योः।**
**दृष्टान्तयन्ति युवयोर्मणिपादरक्षे!**
**दिव्यं तदेव मिथुनं दिविषन्निषेव्यम्।।१३।।**

हे मणिपादुके! श्रीभगवान् के विहार के समय सारे संसार के उपकार को लेकर पहले ही परस्पर परिस्फुरित होती हुईं अर्थात् 'पहले मैं पहले मैं' इस प्रकार से प्रकाशित होती हुईं आप दोनों की भङ्गिमायें उसी दिव्य श्रीलक्ष्मीनारायणरूप युगल को निदर्शित करती हैं जो देवताओं के द्वारा सेवित है।।१३।।

**द्वावेव यत्र चरणौ परमस्य पुंस-**
**स्तत्र द्विधा स्थितवती मणिपादुके! त्वम्।**
**यत्रैव दर्शयति देवि! सहस्त्रपात्त्वं**
**तत्रापि नूनमसि दर्शिततावदात्मा।।१४।।**

हे देवि! मणिपादुके! परम पुरुष श्रीरङ्गनाथजी जिस परव्यूह आदि में दोनों चरणों को रखते हैं उसी अवतार में दो रूपों में विराजमान तुम रहती हो और जहाँ पर श्रीभगवान् विराट्पुरुष आदि अवतारों में अपने 'सहस्त्रपाद' आदि रूपों को प्रदर्शित करते हैं वहाँ भी तुम अपने उन्हीं संख्याओं में स्वरूपों को प्रकट कर देती हो। तात्पर्य यह है कि असंख्य चरणों के लिए पादुका भी असंख्य रूप धारण कर लेती है। पर्याय-अलङ्कार एक में अनेक के कथन से।।१४।।

**पर्यायतो मणिवशान्मणिपादरक्षे!**
**पूर्वापरत्वनियमं व्यतिवर्तयन्त्यौ।**

मन्ये युवां महति विष्णुपदे स्फुरन्त्यौ
सन्ध्ये समस्तजगतामभिवन्दनीये॥१५॥

हे मणिपादुके! क्रमशः गति के बल से (कालगति और पादविक्षेप) पूर्व और पश्चाद्भाव के नियम को परिवर्तित करती हुईं तथा उत्कृष्ट विष्णुपद (चरण और आकाश) में प्रकाशमान आप दोनों को मैं सारे संसार के द्वारा नमस्करणीय प्रातः और सायं काल की संध्या समझता हूँ। जैसे दोनों सन्ध्याओं का काल की गति के कारण पूर्वापरत्व का व्यतिवर्तन होता है वैसे ही पादुकाओं का भी श्रीभगवच्चरणों के विक्षेप के बल से पौर्वापर्य का व्यतिवर्त होता है, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१५॥

अश्रान्तसंचरणयोर्निजसंप्रयोगा-
दम्लानतां चरणपङ्कजयोर्दिशन्त्यौ।
मान्ये युवां रघुपतेर्मणिपादरक्षे!
विद्ये बलामतिबलां च विवेचयामि॥१६॥

हे श्रीरघुनाथजी की मणिपादुके! अपने सम्यक् प्रयोग से श्रमशून्य होकर संचरण करने वाले चरणकमलों में ग्लानिशून्यता को प्रदान करती तुम दोनों को मैं श्रीरघुनाथजी की मान्य बला और अतिबला नामक विद्या के रूप में ही देखता हूँ। विश्वामित्र जी ने श्रीराम को 'बला-अतिबला' विद्या प्रदान की थी जिसके प्रभाव से श्रम, ज्वर और रूप का विपर्यय नहीं होता था। उत्प्रेक्षा और परिकर अलङ्कार॥१६॥

अन्तर्मोहादविदितवतामात्मतत्त्वं यथावत्
पद्यामित्थं परिचितवतां पादुके! पापलोक्याम्।
नित्यं भक्तेरनुगुणतया नाथपादं भजन्त्यौ
निष्ठे साक्षात् स्वयमिह युवां ज्ञानकर्मात्मिके नः॥१७॥

हे पादुके! भक्ति = भगवान् में प्रीतिरूप स्मृति की धारा की अनुकूलता के कारण श्रीरङ्गनाथजी के चरणों का भजन करती तुम दोनों आभ्यन्तरिक अज्ञान से जीव और ईश्वर के साधर्म्य को यथोचित न जानने वाले तथा नरक की प्राप्ति में सहायक कार्यों को करने वाले हम लोगों के लिए इस संसार में ज्ञान और कर्म की निष्ठा (चर्या) के रूप में प्रतिष्ठित हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१७॥

**न्यस्तं विष्णोः पदमिह महत् स्वेन भूम्ना वहन्त्यो-**
**राम्नायाख्यामविहतगतिं वर्तयन्त्योर्निजाज्ञाम्।**
**आसन्नानां प्रणयपदवीमात्मना पूरयन्त्यो-**
**र्द्वैराज्यश्रीर्भवति जगतामेकराज्ये भवत्योः॥१८॥**

हे पादुके! इस श्रीरङ्गक्षेत्र में स्थापित अत्युत्कृष्ट जो श्रीविष्णु का पद (चरण और स्थान) है उसे अपने माहात्म्य से ढोती हुईं तथा वेदनामक अपने शासन को अप्रतिरुद्ध प्रवृत्ति से युक्त करती हुईं और समीप में स्थित भक्तजनों के प्रेममार्ग को स्वयं ही पूर्ण करती हुईं आप दोनों की द्वैराज्यश्री संसार के एक राज्य में ही सम्पन्न होती है। एक राज्य में दो राज्यों की शोभा होती है, यह अभिप्राय है। पादुका के एक होने पर भी श्रीभगवान् के चरणों के अनुरोध से दो रूपों में हो जाने से देखने वालों को दो सहभागी राजाओं की प्रतीति होती है। समासोक्ति और विरोधाभास अलङ्कार॥१८॥

**अप्राप्तानामुपजनयथः संपदां प्राप्तिमेवं**
**संप्राप्तानां स्वयमिह पुनः पालनार्थं यतेथे।**
**साक्षाद्रङ्गक्षितिपतिपदं पादुके! साधयन्त्यौ**
**योगक्षेमौ सुचरितवशान्मूर्तिमन्तौ युवां नः॥१९॥**

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी के पद (चरण और स्थान) का प्रत्यक्ष रूप में बोध करातीं आप दोनों ही हम लोगों की उन सम्पत्तियों

का उत्पादन करती हैं जो हमें प्राप्त नहीं हुई हैं तथा जो सम्पत्तियाँ प्राप्त हो गयी हैं उनकी रक्षा में पूरा प्रयत्न करती हैं। इस प्रकार से तो आप दोनों हमारे पुण्यों के परिपाक के कारण ही हमारे योग और क्षेम हैं। अलब्ध लाभ को योग और उसके परिरक्षण को क्षेम कहते हैं। काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥१९॥

**बद्धहरिपादयुगलं युगलं तपनीयपादुके! युवयोः।**
**मोचयति संश्रितानां पुण्यापुण्यमयशृङ्खलायुगलम्॥२०॥**

हे तपनीय अर्थात् सुवर्ण की पादुके! श्रीहरि के चरणयुगल से सम्बद्ध रहने वाली तुम दोनों का युगल आश्रितजनों के पाप और पुण्यों की शृङ्खलाओं के युगल को नष्ट कर देता है। पादुका आश्रितजनों के संसारबन्धन को ध्वस्त कर देती है, यह अभिप्राय है। व्याघात अलङ्कार॥२०॥



# अथ पादुकासन्निवेशपद्धतिः पञ्चविंशी

इस पद्धति में पादुका के सन्निवेश (अवयवसंस्थान) के माध्यम से स्तुति की गयी है—

**अणोरणीयसीं विष्णोर्महतोऽपि महीयसीम्।**
**प्रपद्ये पादुकां नित्यं तत्पदेनैव संमिताम्॥१॥**

श्रीविष्णु भगवान् जब अन्तर्यामी के रूप में और वामन आदि अवतारों में छोटा शरीर धारण कर लेते हैं तो पादुका भी अणीयसी अर्थात् अल्प आकार वाली हो जाती है तथा जब वे विशाल (त्रिविक्रम-विराट्-शरीर) आकार वाले होते हैं तो उनके आकार के अनुरूप विशाल हो जाती है। इस प्रकार श्रीभगवान् के चरणों से ही सम परिमाण वाली बनी पादुका की शरण में मैं हूँ। 'अणोरणीयान् महतो महीयान्', इस श्रुति के अनुसार यहाँ पर पादुका का भी श्रीभगवान् की ही तरह प्रभावातिशय रूप वस्तु ध्वनि व्यङ्ग्य है जो कविनिष्ठ पादुकाविषयक रत्याख्य भाव का परिपोषक है। काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥१॥

**प्रतितिष्ठति पादसंमितायां त्वयि नित्यं मणिपादुके! मुकुन्दः।**
**इतरे तु परिच्छदास्त एते विभवव्यञ्जनहेतवो भवन्ति॥२॥**

हे पादुके! श्रीमुकुन्द भगवान् नित्य ही अपने चरणों के अनुरूप हुई तुझमें ही गमन और स्थिति के समय प्रतिष्ठित होते हैं। तुमसे अन्य जो उनके छत्र-चामर आदि परिच्छद हैं वे केवल उनकी विभुता को प्रकट करने में निमित्त होते हैं। व्यतिरेक अलङ्कार॥२॥

**तव रङ्गनरेन्द्रपादरक्षे! प्रकृतिः सन्नपि भक्तिपारतन्त्र्यात्।**
**भवतीं वहतीव पन्नगेन्द्रः प्रथितस्वस्तिकलक्षणैः शिरोभिः॥३॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! भुजङ्गों के ईश श्रीशेषजी तुम्हारे उपादान कारण होते हुए भी मानो भक्ति के पराधीन हुए अपने स्वस्तिक आदि चिह्नों वाले फणों से तुमको धारण करते हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३॥

**परस्य पुंसः पदसंनिवेशान् प्रयुञ्जते भावितपञ्चरात्राः।**
**अघप्रतीपानपदिश्य पुण्ड्रानङ्गेषु रङ्गेशयपादुके! त्वाम्॥४॥**

हे श्रीरङ्गशायी भगवान् की पादुके! नारदपञ्चरात्र आदि आगमों का अनुशीलन करने वाले पुरुष परम पुरुष श्रीभगवान् के चरणों के संनिवेश (संस्थान) के समान संस्थान वाले तथा पापों के प्रतिकूल अर्थात् विनाशक पुण्ड्रों के बहाने तुमको ही अपने अङ्गों में तिलक के रूप में धारण करते हैं। बारह ऊर्ध्व पुण्ड्रों का प्रतिपादन भगवच्छास्त्रों में है जो भगवान् के चरणों की आकृति के रूप में ही व्यवस्थित हैं। अपह्नुति अलङ्कार॥४॥

**विमृश्य रङ्गेन्द्रपतिंवरायाः श्रुतेः स्थितां मूर्धनि पादुके त्वाम्।**
**बध्नन्ति वृद्धाः समये वधूनां त्वन्मुद्रितान्याभरणानि मौलौ॥५॥**

हे पादुके! ज्ञानवृद्ध प्रपन्नजन तुमको श्रीरङ्गनाथजी की पतिम्वरा वधू के रूप में व्यवस्थित श्रुति (वेद) के मस्तक में स्थित समझकर ही विवाह के समय वधु अर्थात् पतिम्वरा कन्याओं के मस्तक पर तुमसे मुद्रित चिह्नों वाले आभूषणों को लगाते हैं। तुझमें अङ्कित उपनिषदों का सौमङ्गल्य देखकर अपनी बहुओं के मस्तक पर भी उसी माङ्गल्य की आशा से पादुका को स्थापित करते हैं, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥५॥

**वहन्ति रङ्गेश्वरपादरक्षे! दीर्घायुषां दर्शितभक्तिबन्धाः।**
**आशाधिपानामवरोधनार्यस्त्वन्मुद्रिकां मङ्गलहेमसूत्रैः॥६॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! चिर काल तक जीवित रहने वाले (यह मङ्गलाभरण का फल है) दिक्पतियों के अन्तःपुर की नारियाँ प्रेमोत्कर्ष को प्रकट करती हुईं मङ्गल सुवर्णसूत्रों (मङ्गलसूत्र) से मानो तुम्हारे आकार की रेखा धारण करती हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥६॥

**व्यूहक्रमेण प्रथितारमग्रे संदर्शयन्तीं मणिपादुके! त्वाम्।**
**पातुं त्रिलोकीं पदपद्मभाजं सौदर्शनीं शक्तिमवैमि शौरेः॥७॥**

हे मणिपादुके! ऊपर भाग में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप व्यूहों के क्रम से प्रसिद्ध हुई और तीनों लोकों की रक्षा के लिए श्रीभगवान् के चरणकमलों को भजने वाली तुमको मैं श्रीशौरि (वासुदेव) का वह सुदर्शन यन्त्र ही समझता हूँ जो समूह की परिपाटी से ऊपर की ओर प्रख्यात अरों (सुदर्शन के अवयवों की विशेष रेखा) को प्रदर्शित करता है तथा स्थान में पद्मरेखा के मध्य में स्थित रहता है। यन्त्रविन्यास को परम्परा से समझा जा सकता है। श्लेष से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥७॥

**बद्धासिका कनकपङ्कजकर्णिकायां**
**मध्ये कृशा मुररिपोर्मणिपादुके! त्वम्।**
**संदृश्यसे सरसिजासनया गृहीतं**
**रूपान्तरं किमपि रङ्गविहारयोग्यम्॥८॥**

हे श्रीमुरारि की मणिपादुके! स्वर्णमय कमल की कर्णिका (मध्य भाग) अर्थात् पद्मपीठ पर आसीन हुई तथा मध्य में कृश (पतली) तुम कमलासना श्रीलक्ष्मीजी से गृहीत एवं श्रीरङ्ग में संचार के योग्य कोई अन्य रूप ही दिखायी देती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥८॥

**मानोचितस्य मदधीनजनस्य नित्यं**
**मा भूदतः कृपणतेति विचिन्तयन्त्या।**
**बन्दीकृतं ध्रुवमवैमि वलग्नदेशे**
**कार्श्यं त्वया कमललोचनपादरक्षे॥९॥**

हे कमलनयन श्रीभगवान् की पादुके! मेरे अधीन रहने वाले सम्मान के योग्य भक्त की दीनता प्रकट न हो, इस बात का विचार करती तुम मानो अपने मध्य भाग (वलग्नदेश) में दारिद्र्य को बन्दी बना ली हो। पादुका मध्य भाग में पतली रहती है जिससे यह उद्भावित है कि कृशता अर्थात् दरिद्रता ही निरुद्ध कर ली गयी है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥९॥

**मध्ये कृशामुभयतः प्रतिपन्नवृद्धिं**
**मन्ये समीक्ष्य भवतीं मणिपादरक्षे।**
**नित्यं मुकुन्दपदसंगमविप्रयोगौ**
**निश्चिन्वते कृतधियः सुखदुःखकाष्ठाम्॥१०॥**

हे मणिपादुके! मध्य भाग में कृश और दोनों भागों में वृद्धि को स्वीकार करने वाली आप को देखकर पुण्यात्मा जन अर्थात् विद्वत्पुरुष श्रीभगवान् के चरण के साथ समागम को सुख की परा काष्ठा और वियोग को दुःख की परा काष्ठा का निश्चय करते हैं, ऐसा मैं मानता हूँ। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१०॥

**रङ्गेशितुश्चरणपङ्कजयोर्भजन्तीं**
**रक्षाप्रसाधनविकल्पसहामवस्थाम्।**
**मान्याकृतिर्निर्विशसे मणिपादरक्षे!**
**मध्ये परिच्छदविभूषणवर्गयोस्त्वम्॥११॥**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों में रक्षा और प्रसाधन कर्मों के पाक्षिक साधनत्व को सहन करने वाली दशा को स्वीकार करती हुई तथा रमणीय आकार वाली तुम श्रीभगवान् के परिच्छद और भूषण-वर्ग के मध्य में निविष्ट होती हो। तात्पर्य यह है कि छत्र आदि के समान पादुका श्रीभगवान् के शरीर की रक्षा करती है तथा वही अपने अतिशय सौन्दर्य से चरणों का अलङ्कार भी होती है। एक ही पादुका का अलङ्कार और परिच्छद के मध्य में अनेकत्र वर्णन से 'विशेष' नामक अलङ्कार है॥११॥

**अङ्गान्तरेषु निहितान्यखिलानि कामं**
**पर्यायकल्पनसहानि विभूषणानि।**
**नित्यं मुकुन्दपदपद्मतलानुरूपं**
**नैपथ्यमम्ब! भवती नयनाभिरामम्॥१२॥**

हे मात:! पादुके! श्रीभगवान् के चूडा-कण्ठ आदि अन्य अङ्गों में स्थित अन्य मुकुट आदि आभूषण पर्याप्त विजातीय अलङ्कारों के संनिवेश को सह लेते हैं किन्तु आप श्रीमुकुन्द के चरणकमलों के तलों में उनके अनुगुण ही नयनों में अच्छे लगने वाले अन्य के सन्निवेश को न सहने वाले भूषण के रूप में विराजमान रहती हैं। व्यतिरेक अलङ्कार॥१२॥

**ये नाम भक्तिनियतैस्तव संनिवेशं**
**निर्विश्य नेत्रयुगलैर्न भजन्ति तृप्तिम्।**
**कालक्रमेण कमलेक्षणपादरक्षे!**
**प्रायेण ते परिणमन्ति सहस्रनेत्राः॥१३॥**

हे श्रीकमलनयन भगवान् की पादुके! जो पुरुष अपनी भक्ति के परवश हुए नयनों से आपका अनुभव करके तृप्त नहीं होते वे ही कुछ कालों के बाद सहस्र नयनों वाले इन्द्र के रूप में परिणत हो जाते हैं ताकि अपने हजारों नयनों से आपको निहार कर तृप्त हो सकें। यहाँ सहस्रनयनत्व में पादुका के सन्निवेश को देखकर दो नयनों का तृप्तिजनकत्वाभाव हेतु है, अत: काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥१३॥

**पदमप्रमाणमिति वादिनां मतं**
**मधुजित्पदे! महति मा स्म भूदिति।**
**व्युदपादि तस्य चरणावनि! त्वया**
**निगमात्मनस्तव समप्रमाणता॥१४॥**

हे पादुके! सुबन्त-तिङन्त रूप पद पदार्थों के स्मारक होने के कारण अनुभवरूप यथार्थ अनधिगत ज्ञान के जनक नहीं होते, ऐसा मानने वाले तार्किक-मीमांसकों का मत श्रीमुरमथन के महान् = पूज्य पदरूपी चरण में प्रसक्त न हो, इसीलिए वेदस्वरूप आप ने तुल्यप्रमाणता = समानपरिमाणवत्ता रूप तुल्यप्रमाजनकता का व्युत्पादन किया है। तात्पर्य यह है कि यदि पद मात्र को अप्रमाण मान लिया जायेगा तो श्रीभगवान् का चरण भी पद' होने से अप्रमाण हो जायेगा (अप्रमाण्य से अभेदतया अध्यस्त इयत्ताशून्य हो जायेगा), इस बुद्धि से पादुका ने भगवान् के चरण को अपने समान परिमाण वाला बना दिया है क्योंकि वह वेद के समान प्रमाण वाली है। श्लिष्टपरम्परिजरूपक से संकीर्ण हेतूत्प्रेक्षा॥१४॥

**अप्रभूतमभवज्जगत्त्रयं यस्य मातुमुदितस्य पादुके।**
**अप्रमेयममितस्य तत्पदं नित्यमेव ननु संमितं त्वया॥१५॥**

हे पादुके! अतिक्रान्त करने के लिए त्रिविक्रम भगवान् का जो पद तत्पर हुआ उसके लिए तीनों लोक अपर्याप्त ही रहे अर्थात् वामन के पदक्रमण के आगे तीनों लोक छोटे ही रह गये। अनन्त अपरिच्छिन्न भगवान् के उसी अपरिच्छिन्न चरण को तुम अपने में परिच्छिन्न कर लेती हो। असीमित श्रीभगवच्चरण पादुका में सीमित हो जाता है, यह अभिप्राय है। उत्तरोत्तर उत्कर्ष का वर्णन होने से 'सार' नामक अलङ्कार है॥१५॥

**आलवालमिव भाति पादुके! पादपस्य भवती मधुद्विषः।**
**यत्समीपविनतस्य शूलिनः सारिणी भवति मौलिनिम्नगा॥१६॥**

हे पादुके! श्रीमुरारिरूप कल्पवृक्ष के आलवाल (वृक्षों के मूल में जलावरोध के लिए बनायी गयी कुण्डलना) जैसी सुशोभित हो रही हो जिसके समीप प्रणत भगवान् शिव के मस्तक में विद्यमान गङ्गा सारिणी अर्थात् कुल्या (नाली) होती है। रूपकसंकीर्ण उत्प्रेक्षा॥१६॥

मोदमानमुनिवृन्दषट्पदा भाति मुक्तिमकरन्दवर्षिणी।
कापि रङ्गनृपतेः पदाम्बुजे कर्णिका कनकपादुकामयी॥१७॥

जिसमें प्रसन्न रहने वाले मुनिसमुदाय रूपी भ्रमर विद्यमान हैं और जो मोक्ष रूपी मकरन्द की वर्षा करती है ऐसी विलक्षण श्रीरङ्गनाथ जी की सुवर्णपादुकामयी कर्णिका उनके चरणकमलों में सुशोभित हो रही है। रूपक अलङ्कार॥१७॥

युगपदनुविधास्यन् यौवतं तुल्यरागं
यदुपतिरधिचक्रे यावतो रूपभेदान्।
तदिदमतिविकल्पं बिभ्रती संनिवेशं
तव खलु पदरक्षे! तावती मूर्तिरासीत्॥१८॥

हे पादुके! यदुपति श्रीभगवान् कृष्णजी समान प्रेम वाले युवतियों के सोलह हजार रूप समुदाय का एक साथ अनुसरण करते हुए जितने रूपों को स्वीकार किये थे उनके द्वारा इस रूपस्वीकार को बहुत प्रकारों वाले संनिवेश को धारण करती हुई तुम्हारी मूर्ति (आकार) भी उतनी ही संख्या में प्रतिष्ठित हो गयी थी। पादुका में श्रीभगवान् के चरणों की अनुरूपता का वर्णन होने से 'सम' नामक अलङ्कार यहाँ है॥१८॥

तत्तद्वृत्तेरनुगुणतया वामनीं व्यापिनीं वा
प्राप्ते रङ्गप्रथितविभवे भूमिकां सूत्रधारे।
मन्ये विश्वस्थितिमयमहानाटिकां नेतुकामा
नानासंस्था भवति भवती पादुके! नर्तकीव॥१९॥

हे पादुके! श्रीरङ्गक्षेत्ररूपी रङ्गमञ्च पर जिसका विभव (ऐश्वर्य) विख्यात है ऐसे श्रीरङ्गनाथरूपी सूत्रधार जब पदक्रमण रूप कैशिकी आदि नाट्यशास्त्र में प्रसिद्ध वृत्तियों के अनुकूल वामनी (अल्प) या व्यापिनी (विशाल) अपनी भूमिका का वहन करने लगते हैं तब मैं यही मानता हूँ कि संसार की पालनात्मिका महती नाटिका के

मञ्चन की कामना वाली तुम नर्तकी के समान ही नाना प्रकारों के सन्निवेशों से युक्त हो जाती हो। श्लिष्टरूपक से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१९॥

**माने परं समाने प्रत्यक्षेणागमेनापि।**
**हरिचरणस्य तवापि तु वैषम्यं रक्ष्यरक्षकत्वाभ्याम्॥२०॥**

हे पादुके! प्रत्यक्ष और आगम प्रमाणों से श्रीहरि के चरण का और तुम्हारा परिमाण अत्यन्त समान होने पर भी रक्ष्य और रक्षकत्व से वैषम्य ही झलकता है। हरि का चरण रक्ष्य (रक्षायोग्य) और तुम रक्षक होती हो, यह अभिप्राय है। व्यतिरेक अलङ्कार॥२०॥

•

# अथ यन्त्रिकापद्धतिः षड्विंशी

इस पद्धति में श्रीभगवान् के चरणों की अङ्गुलियों के अवलम्बन के लिए यान्त्रिका को अभिलक्षित करके पादुका की स्तुति की गयी है—

**उदग्रयन्त्रिकां वन्दे पादुकां यन्निवेशनात्।**
**उपर्यपि पदं विष्णोः प्रत्यादिष्टप्रसाधनम्॥१॥**

ऊपर की ओर अग्र भागों वाली यन्त्रिका (अङ्गुलियों के अवलम्बनार्थ शङ्कु) हो जिसमें ऐसी पादुका की मैं वन्दना करता हूँ जिसमें निवेश करने से श्रीविष्णु का चरण ऊर्ध्व भाग में भी तिरस्कृत अलङ्कारों वाला हो जाता है। पादुका भगवान् के चरणतल को स्वयं में स्थापित करके परिष्कार करती है तथा यन्त्रिका ऊपर के भाग का परिष्कार करती है, यह अभिप्राय है। उपमानभूत भूषण का उपमेय यन्त्रिका से तिरस्कार का वर्णन होने से प्रतीप अलङ्कार है॥१॥

**प्रसभं प्रतिरुध्य कण्टकादीन् भवती शौरिपदाम्बुजादधस्तात्।**
**चरणावनि! धारयत्यमुष्मिन्नुचितच्छायमुपर्यपि प्रतीकम्॥२॥**

हे पादुके! श्रीकृष्ण के चरणकमलों के नीचे आप काँटों को बलपूर्वक अवरुद्ध करके उन चरणकमलों में ही उचित छाया (छाँव और शोभा) वाले प्रतीक (पादुकावयवभूत यन्त्रिका) को ऊपर भी धारण करती हो। यन्त्रिका से छत्रत्व की प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार॥२॥

**मुरभिन्मणिपादुके! त्वदीयामनघामङ्गुलियन्त्रिकामवैमि।**
**स्वयमुन्नमितां प्रदेशिनीं ते परमं दैवतमेकमित्यृचन्तीम्॥३॥**

हे श्रीमुरमथन की मणिपादुके! अङ्गुली के अवलम्बन के लिए विद्यमान मनोज्ञ जो तुम्हारी यन्त्रिका है उसे मैं स्वयं ऊपर की ओर उठी हुई तथा अपने एकमात्र अद्वितीय परम दैवत श्रीभगवान् की स्तुति करती हुई तुम्हारी तर्जनी अङ्गुली ही मानता हूँ। लोक में जैसे कोई उत्कृष्ट गुणों वालों की स्तुति तर्जनी अङ्गुली उठाकर करते हैं वैसे ही पादुका मानो भगवान् की स्तुति करती है, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३॥

**स्वदते मणिपादुके! त्वदीया पदशाखायुगयन्त्रिका विचित्रा।**
**परमं पुरुषं प्रकाशयन्ती प्रणवस्येव परेयमर्धमात्रा॥४॥**

हे मणिपादुके! आश्चर्य का वहन करने वाली तुम्हारी यह अङ्गुष्ठ और प्रदेशिनी अङ्गुली के अवलम्बन के लिए दिखायी देती यन्त्रिका परम पुरुष श्रीभगवान् को प्रकाशित करती हुई ओङ्कार की अर्धमात्रा (मकार) जैसी ही प्रेक्षकों के हृदय को आकृष्ट करती है॥४॥

**अनुयातमनोरथा मुरारेर्भवती केलिरथश्रियं दधाति।**
**चरणावनि! यन्त्रिका तवैषा तनुते कूबरसंपदं पुरस्तात्॥५॥**

हे पादुके! आश्रित भक्तों की फलाकाङ्क्षा का अनुसरण करने वाली आप श्रीमुरमथन के पुष्परथ की शोभा को धारण कर रही हैं तथा आपकी यह यन्त्रिका आगे के भाग में युगन्धर नामक कील की शोभा का विस्तार कर रही है। उपमा अलङ्कार॥५॥

**शङ्के भवत्या सुभगं प्रतीकं रङ्गेशपादाङ्गुलिसंग्रहार्थम्।**
**त्राणाय पादावनि! विष्टपानामाज्ञाकरीमङ्गुलिमुद्रिकां ते॥६॥**

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथजी के चरणों की अङ्गुलियों का अवलम्बन ही जिसका प्रयोजन है ऐसी आप की सुन्दर यन्त्रिका हमारी दृष्टि

में संसार की रक्षा करने के लिए आज्ञा में तत्पर अङ्गुलीमुद्रा ही है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥६॥

**अलङ्कृतं कर्णिकयोपरिष्टादुदग्रनालं तव यन्त्रिकांशम्।**
**पद्मापतेः पादसरोजलक्ष्म्याः प्रत्येमि पादावनि! केलिपद्मम्॥७॥**

हे पादुके! कर्णिका अर्थात् वराटक जैसे अवयव से अलङ्कृत तथा ऊपर की ओर उठे हुए नाल वाला तुम्हारा यह यन्त्रिका रूप अङ्ग श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों में विराजमान शोभामयी लक्ष्मी के लीलाकमल जैसा ही मुझे प्रतीत होता है। उत्प्रेक्षा॥७॥

**उपरि विनिहितस्य केशवाङ्घ्रेरुपरि पदावनि! यन्त्रिकात्मिका त्वम्।**
**इति तव महिमा लघूकरोति प्रणतसुरेश्वरशेखराधिरोहम्॥८॥**

हे पादुके! तुम्हारे ऊर्ध्व भाग में श्रीरङ्गनाथ जी का चरण स्थित है जिसके ऊपर तुम यन्त्रिका के रूप में विराजमान रहती हो। खड़ाऊ में लगी दण्डिका चरणाङ्गुलियों के ऊपर दिखायी देती है इसलिए ऐसा कथन है। इस प्रकार तुम्हारी महिमा नीचे स्थित इन्द्र आदि देवों के मस्तक में होने वाले आरोहण को अल्प कर देती है। तात्पर्य यह है कि ऊपर विराजमान चरणों के भी ऊपर रहने वाली पादुका यदि नीचे बैठे देवताओं के मस्तकों पर आरूढ होती है तो कोई आश्चर्य नहीं। वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार यहाँ है॥८॥

**नित्यं पदावनि! निबद्धकिरीटशोभं**
**पद्मालयापरिचितं पदमुद्वहन्त्याः।**
**अङ्गीकरोति रुचिमङ्गुलियन्त्रिका ते**
**साम्राज्यसंपदनुरूपमिवातपत्रम्॥९॥**

हे पादुके! नित्य ही मुकुट की तरह वर्तमान तथा श्रीलक्ष्मी जी से सेवित भगवत्पद का वहन करने वाली तुम्हारी अङ्गुलीयन्त्रिका सार्वभौम ऐश्वर्य के अनुरूप ही छत्र की तरह कान्ति को धारण कर रही है। उपमा अलङ्कार॥९॥

**प्रथमा कलेव भवती चरणावनि! भाति रङ्गचन्द्रमसः।**
**शृङ्गोन्नतिरिव यत्र श्रियं विभावयति यन्त्रिकायोगः॥१०॥**

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथरूपी चन्द्रमा की आद्य कला की तरह तुम सुशोभित हो रही हो जहाँ पर यन्त्रिकाओं का योग शृङ्गोन्नति (चन्द्रकला के अग्रभागों में उन्नति = उत्थान) की तरह शोभा प्रकट कर रहा है। रूपक-उपमा अलङ्कार॥१०॥



# अथ रेखापद्धतिः सप्तविंशी

इस पद्धति में पादुका में स्थित रेखाओं के प्रभेदों को लेकर स्तुति की गयी है—

**सूचयन्तीं स्वरेखाभिरनालेख्यसरस्वतीम्।**
**अलेखनीयसौन्दर्यामाश्रये शौरिपादुकाम्॥१॥**

अपनी रेखाओं के द्वारा लेखन के अयोग्य अर्थात् केवल अध्ययन से ही ग्राह्य वेदात्मक सरस्वती की सूचना देने वाली भगवान् श्रीकृष्ण की पादुका की शरण में मैं हूँ जिसका सौन्दर्य अलेखनीय है अर्थात् वर्णनातीत है॥१॥

**मणिमौलिनिघर्षणात् सुराणां वहसे काञ्चनपादुके! विचित्रम्।**
**कमलापतिपादपद्मयोगादपरं लक्षणमाधिराज्यसारम्॥२॥**

हे काञ्चनपादुके! देवताओं के मणिमय मुकुट के संघर्षण के कारण विचित्र हुए अर्थात् नाना प्रकार के आकारों को ग्रहण कर लेने वाले तथा कमलापति के चरणकमलों के साथ संपृक्त होने से अन्य ही चिह्न को तुम धारण करती हो जिसका साम्राज्य ही परम प्रयोजन है। श्रीहरि के चरणकमल के योग के समान ही यह चिह्न भी साम्राज्य का सूचक है, यह अभिप्राय है॥२॥

**अभितो मणिपादुके! स्फुरन्त्यास्तव रेखाविततेस्तथाविधायाः।**
**मुरवैरिपदारविन्दरूढैरनुकल्पायितमाधिराज्यचिह्नैः॥३॥**

हे मणिपादुके! दोनों तरफ परिस्फुरित होने वाली तुम्हारी उस प्रकार की अनिर्वचनीय रेखाओं की वितति (आनन्तर्यसमुदाय) के वे साम्राज्यसूचक चिह्न (वज्र, अङ्कुश आदि) प्रतिनिधि के समान

स्थित रहते हैं जो श्रीमुरमथन के चरणकमलों में रूढ (उद्भूत) हो गये हैं। श्रीभगवान् के चरणचिह्नों से भी अधिक पादुका की रेखायें उनके चरणों में अङ्कित होकर साम्राज्य की सूचना देती हैं, यह आकूत है॥३॥

**रेखया विनमतां दिवौकसां मौलिरत्नमकरीमुखोत्थया।**
**पादुके! वहसि नूनमद्भुतं शौरिपादपरिभोगलक्षणम्॥४॥**

हे पादुके! तुम नीचे झुकने वाले देवताओं के मस्तक पर विद्यमान रत्ननिर्मित मकरीप्रतिमा के अग्रभाग से उत्पन्न रेखा से मानो श्रीभगवान् रङ्गनाथ जी के चरणों के परिभोग अर्थात् रमण के अद्भुत चिह्न को धारण करती हो। 'पाद' शब्द किसी के नाम के आगे पूजनीयता को प्रकट करने के लिए भी प्रयुक्त होता है। इस प्रकार यह भी प्रतीत होता है कि पादुका रेखा के द्वारा श्रीभगवान् के साथ हुए बाह्य रमण के चुम्बन, नखक्षत आदि चिह्न को धारण करती है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४॥

**त्रिदशमुकुटरत्नोल्लेखरेखापदेशात्**
**परिणमयसि पुंसां पादुके! मूर्ध्नि लग्ना।**
**नरकमथनसेवासंपदं साधयित्री**
**नियतिविलिखितानां निष्कृतिं दुर्लिपीनाम्॥५॥**

हे पादुके! पुरुषों के मस्तक पर संलग्न तुम नरकरिपु श्रीहरि की सेवासम्पत्ति (मोक्ष) का सम्पादन करती हुई देवताओं के मुकुटरत्नों के संघर्षण से उत्पन्न रेखा के बहाने भाग्य के द्वारा लिखी हुई दुर्लिपियों (पापों को प्रकट करने वाले अक्षर) को प्रतिरेखा से दूर कर देती हो। यहाँ अपह्नुति अलङ्कार है क्योंकि ऊपर विद्यमान पादुकारेखा से तत्त्व का अपह्नव करके मस्तक में विद्यमान दुर्लिपियों का तिरस्कार किया गया है॥५॥

**पदकमलतलान्तः संश्रितान्यातपत्र-**
**ध्वजसरसिजमुख्यान्यैश्वरीलक्षणानि।**

**अवगमयसि शौरेः पादुके! मादृशाना-**
**मुपरि परिणतैः स्वैर्देवि! रेखाविशेषैः॥६॥**

हे देवि! पादुके! तुम ऊपरी भागों में परिणत अपने रेखाविशेषों से अर्थात् श्रीमद्भगवच्चरणकमलों के तल के संसर्ग से उत्पन्न विभिन्न प्रकार की रेखाओं से भगवान् के चरणकमलतलों के मध्य में स्थित छत्र-ध्वज-कमल आदि मुख्य ऐश्वर्यचिह्नों का अनुमान हम जैसे लोगों को भी करा देती हो। श्रीभगवान् के चरणतलगत रेखा का अनुमान पादुकागत छत्रादिसदृश रेखाभेदों से होने से अनुमानालङ्कार है॥६॥

**स्नाता पदावनि! चिरं परिभुज्य मुक्ता**
**पादेन रङ्गनृपतेः शुभलक्षणेन।**
**रेखान्तरैर्नवनवैरुपशोभसे त्वं**
**संस्कारचन्दनविलेपनपङ्कलग्नैः॥७॥**

हे पादुके! स्नान की हुई तथा श्रीरङ्गनाथजी के शुभ लक्षण वाले चरण से चिर काल तक उपभुक्त होकर मुक्त (त्यक्त) हुई तुम संस्कारार्थ चन्दनविलेपनपङ्कों से संश्लिष्ट अपने नये-नये रेखाभेदों से सुशोभित होती हो।नखक्षत आदि से सुशोभित नायिका की प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार है॥७॥

**भक्त्या मुहुः प्रणमतां त्रिदशेश्वराणां**
**कोटीरकोटिकषणादुपजायमानैः।**
**आभाति शौरिचरणादधिकानुभावा**
**रेखाशतैस्तव पदावनि! कापि रेखा॥८॥**

हे पादुके! भक्ति से परिपूर्ण होने के कारण बार-बार प्रणाम करने वाले देवेन्द्रों के मुकुटों के अग्रभागों के संघर्षण से उत्पन्न हुईं अनेकों रेखाओं से श्रीभगवान् के चरणों से भी अधिक प्रभाव वाली कोई विलक्षण शास्त्रैकगम्य तुम्हारी रेखा सुशोभित हो रही है। सामुद्रिक ग्रन्थों से ज्ञेय श्रीभगवान् के चरणतलों में विद्यमान

छत्रादि रेखाओं से भी अधिक प्रभावों वाली बहुत सी रेखाओं से उपलक्षित साम्राज्यलक्ष्मी को सूचित करने वाली रेखा पादुका के राज्यलाभ से प्रतीत हो रही है जो श्रीभगवान् के चरणों में प्रतीत नहीं हो रही है, यह आकूत है। इससे पादुका का प्रभावातिशय ध्वनित है। व्यतिरेक अलङ्कार॥८॥

**पादावनि! प्रतिपदं परमस्य पुंसः**
**पादारविन्दपरिभोगविशेषयोग्या।**
**स्वाभाविकान् सुभगभक्तिविशेषदृश्यान्**
**रेखात्मकान् वहसि पत्रलताविशेषान्॥९॥**

हे पादुके! पग-पग पर परम पुरुष श्रीनारायण के चरणारविन्द के भोगविशेष के योग्य तुम रेखाओं के रूप में विद्यमान स्वाभाविक पत्रलताविशेषों को धारण करती हो जो परम भागवतों को उत्कट भक्ति से ही दिखायी देते हैं॥९॥

**रेखापदेशतस्त्वं प्रशमयितुं प्रलयविप्लवाशङ्काम्।**
**वहसि मधुजित्पदावनि! मन्ये निगमस्य मातृकालेख्यम्॥१०॥**

हे श्रीमधुमथन की पादुके! प्रलयकाल में नाश की आशङ्का को दूर करने के लिए रेखाओं के व्याज से तुम वेद के मातृकारूप अक्षरविन्यास को धारण करती हो। उत्प्रेक्षा। प्रलय में अध्येतृ-पुरुषों के अभाव में वेदों का उच्छेद हो जायेगा, इस आशङ्का से श्रीभगवान् के द्वारा लिखित ग्रन्थ के समान पादुका विराजमान रहती है, यह उद्भावन है॥१०॥

•

# अथ सुभाषितपद्धतिरष्टाविंशी

इस पद्धति में वर्णनीय पादुका को अभिलक्षित करके प्रसङ्गोचित सुभाषित श्लोकों को प्रस्तुत किया गया है—

**कलासु काष्ठामातिष्ठन् भूम्ने सम्बन्धिनामपि।**
**पादुका रङ्गधुर्यस्य भरताराध्यतां गता।।१।।**

कलाओं में परा काष्ठा (उत्कर्ष) को प्राप्त हुआ पुरुष अपने सम्बन्धियों के अभ्युदय के लिए भी होता है क्योंकि श्रीरङ्गनाथ जी की पादुका भरत की आराध्य हुई। पक्षान्तर में—रङ्गधुर्य अर्थात् रङ्गमञ्च की धुरा (कार्यभार) को वहन करने वाले की पादुका भरत = नटों की आराधनीया होती है, यह अर्थ भी है। पूर्वार्ध से यह भी प्रतीत होता है कि पूर्णचन्द्र अपने सम्बन्धी सागर, कुमुद आदि के विकास के लिए होता है। इस पक्ष में प्रतिवस्तूपमालङ्कार हो सकता है। वैसे सामान्य का विशेष से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।।१।।

**सन्तः स्वदेशपरदेशविभागशून्यं**
**हन्त! स्ववृत्तिमनघां न परित्यजन्ति।**
**राज्ये वने च रघुपुङ्गवपादरक्षा**
**नैजं जहौ न खलु कण्टकशोधनं तत्।।२।।**

महापुरुष लोग अपनी निष्कल्मष (निष्पाप) वृत्ति को नहीं छोड़ते जिसमें स्वदेश और परदेश की विभागशून्यता ही परिलक्षित होती है। इसीलिए तो श्रीरघुनाथजी की पादुका राज्य में या वन में दोनों जगहों पर अपने कण्टकशोधन धर्म का त्याग नहीं करती। वन में

काँटों का शोधन करके श्रीभगवान् के चरणों की रक्षा करती है और राज्य में कण्टकों अर्थात् शत्रुओं को दूर करके राज्य की रक्षा करती है। यहाँ भी अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

दूसरा वर्णक = सत्पुरुष अर्थात् तत्त्वज्ञान के इच्छुक जन स्वपक्ष और परपक्ष के वैषम्य का अनादर करके अनघा अर्थात् विजिगीषा (विजय की इच्छा) आदि व्यसनों से शून्य अपनी वृत्ति का परित्याग नहीं करते। जैसा कि पादुका राज्य = दूसरे के सिद्धान्त में और वन = अपने सिद्धान्त में भी उस अपने कण्टकशोधन धर्म को नहीं त्यागती॥२॥

**ब्रह्मास्त्रतामधिजगाम तृणं प्रयुक्तं**
**पुण्यं शरव्यमभवत् पयसां निधिर्वा।**
**पृथ्वीं शशास परिमुक्तपदं पदत्रं**
**किं वा न किं भवति केलिविधौ विभूनाम्॥३॥**

श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा प्रयुक्त तृण (कुश) भी ब्रह्मास्त्र हो गया था। ब्रह्मास्त्र होकर काक को दौड़ाया था, यह रामायण में प्रसिद्ध है। श्रीपरशुराम का पुण्य और समुद्र भी भगवान् के बाणों के लक्ष्य हो गये थे। श्रीभगवान् के चरणों से मुक्त हुई पादुका पूरी पृथ्वी पर शासन की थी। निश्चय ही समर्थशालियों की लीलाक्रिया में क्या नहीं होता? अर्थात् हर कार्य सम्भव है। विशेष का सामान्य से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है॥३॥

**अन्येषु सत्स्वपि नरेन्द्रसुतेषु दैवाद्**
**भ्रष्टः पदादधिकरोति पदं पदार्हः।**
**प्रायो निदर्शयति तत् प्रथमो रघूणां**
**तत्पादयोः प्रतिनिधी मणिपादुके वा॥४॥**

भाग्य के खराब होने पर किसी पद (स्थान) से भ्रष्ट होकर भी पद के योग्य पुरुष अन्य राजपुत्रों के रहने पर भी किसी पद

को अपने अधिकार में कर लेता है, इस तथ्य को रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी और उनके चरणों की प्रतिनिधि मणिपादुकायें भी दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत कर देती हैं। कैकेयी के वचन से राज्य से च्युत होकर भी श्रीभगवान् चौदह वर्षों के बाद पुनः अपना पद प्राप्त कर लेते हैं और पादुकायें भी श्रीराम के चरणों से च्युत हुईं भरत आदि के विद्यमान रहने पर भी कोशलराज्य के पद को प्राप्त कर ली हैं। निदर्शना और विकल्प अलङ्कार।।४।।

**चरणमनघवृत्तेः कस्यचित् प्राप्य नित्यं**
**सकलभुवनगुप्त्यै सत्पथे वर्तते यः।**
**नरपतिबहुमानं पादुके! वाधिगच्छन्**
**स भवति समयेषु प्रेक्षितज्ञैरुपास्यः।।५।।**

जो कोई पुरुष किसी शुभ चरित्र वाले महापुरुष के चरण को प्राप्त करके सारे संसार की रक्षा के लिए और लोकसंग्रह के लिए सन्मार्ग में लगा रहता है वह पादुका के समान ही कार्य के समय राजाओं के समान सम्मान प्राप्त करता हुआ प्रेक्षितज्ञ = भृत्यों के द्वारा उपास्य हो जाता है। जैसे पादुका श्रीराम के चरणों के आश्रय से लोकरक्षा के लिए सन्मार्ग में संचरण से कोसलदेश के आधिपत्य को प्राप्त करके वहाँ के निवासियों के लिए मान्य हो गयी थी वैसे ही राजा की सेवा में तत्पर कोई सेवक पुत्रस्थान प्राप्त करके भृत्यों के लिए मान्य हो जाता है। इसी तरह अच्छा शिष्य भी अन्य शिष्यों से उपास्य हो जाता है, यह अभिप्राय है। श्लिष्टोपमा अलङ्कार।।५।।

**रामे राज्यं पितुरभिमतं संमतं च प्रजानां**
**माता वव्रे तदिह भरते सत्यवादी ददौ च।**
**चिन्तातीतः समजनि तदा पादुकाग्र्याभिषेको**
**दुर्विज्ञानस्वहृदयमहो दैवमत्र प्रमाणम्।।६।।**

पिता दशरथ को अपना राज्य श्रीराम के लिए ही अभीष्ट था और प्रजा भी वैसा ही चाहती थी तथापि माता कैकेयी ने उसे भरत के लिए वरण किया तथा सत्यवादी राजा ने दे भी दिया। उसी समय अतर्कित पादुका का साम्राज्याभिषेक हो गया, इस अर्थ में वह दैव (भाग्य) ही प्रमाण है जिसके संकल्प को जानना बहुत कठिन है। असम्भव अलङ्कार॥६॥

**नातिक्रामेच्चरणवहनात् पादुका पादपीठं**
**यद्वाऽऽसन्नं परमिह सदा भाति राजासनस्य।**
**पूर्वत्रैव प्रणिहितमभूद्धन्त! रामेण राज्यं**
**शङ्के भर्तुर्बहुमतिपदं विक्रमे साहचर्यम्॥७॥**

पादुका श्रीभगवान् के चरणकमलों का ही वहन करती है अतः पादपीठ (सिंहासन पर बैठ कर भगवान् जिस पर चरण रखते हैं) का अतिक्रमण नहीं करती। दोनों ही भगवान् के चरणों का वहन करते हैं अतः दोनों की इस अंश में समानता है। अथवा वह पादपीठ ही राजासन के पास सदा सुशोभित रहता है अतः संचारकाल में पादुका का राजासन से सन्निकर्ष न होने से पादपीठ का ही उत्कर्ष प्रतीत होता है। ऐसा होने पर भी श्रीरामचन्द्रजी ने राज्य का भार पादुका के ऊपर ही सौंपा। हन्त! खेद है कि पादुका की अपेक्षा राजासन के निकट होने पर भी पादपीठ को सिंहासनाधिरूढ होने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। ऐसी अवस्था में यही कहना उचित है कि विक्रम (पादक्रमणरूप पराक्रम) में जिसका साहचर्य होता है वही स्वामी के बहुमान का पात्र होता है। राजा शूर की ही प्रतिष्ठा करते हैं, यह भाव है। यहाँ पर पादपीठ की अपेक्षा न्यून पादुका का सिंहासनाधिरोहण अनुचित है, ऐसा कह कर पुनः विचार करके प्रतिषेध होने से आक्षेप अलङ्कार है। जैसा कि लक्षण है—

आक्षेपःस्वयमुक्तस्य प्रतिषेधो विचारणात्॥७॥

**प्रतिपदचपलापि पादुका रघुपतिना स्वपदे निवेशिता।**
**समजनि निभृतस्थितिस्तदा भवति गुणः श्रियमभ्युपेयुषाम्॥८॥**

पग-पग पर चञ्चल अर्थात् चलायमान पादुका को श्रीरामचन्द्र जी ने अपने पद अर्थात् साकेत के सिंहासन पर स्थापित कर दिया और वह पादुका भी वहाँ निश्चल अवस्थान वाली अर्थात् स्थिर हो गयी। यह यथार्थ ही है कि ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले गुणवान् हो जाते हैं। पद प्राप्त होने पर तदनुरूप गुणों का आविर्भाव हो जाता है, यह अभिप्राय है। अर्थान्तरन्यास अलङ्कार॥८॥

**गतिहेतुरभूत् क्वचित् पदे स्थितिहेतुर्मणिपादुका क्वचित्।**
**नहि वस्तुषु शक्तिनिश्चयो नियतिः केवलमीश्वरेच्छया॥९॥**

मणिपादुका कहीं पर अर्थात् श्रीभगवान् के चरणों में गति का कारण हुई और वही कहीं पर अर्थात् साकेत के सिंहासन पर स्थिति अर्थात् गतिनिवृत्ति और रक्षा का कारण हो गयी। इसीलिए तो वस्तुओं में सामर्थ्य का निश्चय नहीं होता। व्यवस्था (नियति) केवल ईश्वर के संकल्प के अधीन ही होती है। यहाँ विशेष से सामान्य के समर्थन में पुनः विशेष के कथन के कारण विकस्वर अलङ्कार है॥९॥

**अधरीकृतोऽपि महता तमेव सेवेत सादरं भूष्णुः।**
**अलभत समये रामात् पादाक्रान्तापि पादुका राज्यम्॥१०॥**

भूष्णु अर्थात् वृद्धि के स्वभाव वाला पुरुष अपने बड़े से तिरस्कृत होकर भी सादर उसी का सेवन करता है। पादुका श्रीभगवान् के चरणों से आक्रान्त होकर भी समय आने पर उन्हीं से राज्य प्राप्त की। विशेष से सामान्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है॥१०॥



# अथ प्रकीर्णपद्धतिरेकोनत्रिंशी

इस पद्धति में किसी एक अर्थ को स्वीकार न करके यथासम्भव रूप से पादुका की स्तुति की गयी है—

**विधौ प्रवृत्ते यद्द्रव्यं गुणसंस्कारनामभिः।**
**श्रेयःसाधनमाम्नातं तत् पदत्रं तथास्तु मे॥१॥**

जो पादुका द्रव्य विधि अर्थात् श्रीभगवान् के प्रवृत्त अर्थात् संचार में तत्पर होने पर दया-दाक्षिण्यादि गुणों से अधिवासन-अर्चन आदि संस्कारों से और श्रीशठकोप-शेष-अनन्त आदि नामों से उपलक्षित श्रेष्ठ साधन (गतिहेतु) कही गयी है वह मेरे मोक्ष का साधन हो। दूसरे पक्ष में—विधि अर्थात् विधियों से बोधित कर्म के अनुष्ठानयोग्य होने पर जो व्रीहि, यव, पशु आदि यागीय द्रव्य श्वेत आदि गुणों से (वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः, इत्यादि विधियों से गम्य) प्रोक्षण आदि संस्कारों से तथा चित्रा, उद्भिद्, ज्योतिष्टोम आदि नामों से उपलक्षित होकर स्वर्गादि श्रेय का साधन हो जाता है वह मेरे कल्याण का भी साधन बने। श्लेष अलङ्कार॥१॥

**मधुरस्मितरम्यमौक्तिकश्रीर्विशसि व्यञ्जितमञ्जुलप्रणादा।**
**सह रङ्गनृपेण वासगेहं तनुमध्या मणिपादुके! त्वमेका॥२॥**

हे मणिपादुके! मधुर हास के समान मोतियों की शोभा वाली तथा मनोहर नादों को प्रकट करने वाली और मध्य भाग में कृशता से युक्त एक मात्र तुम श्रीरङ्गनाथजी के साथ शय्यागृह में प्रवेश करती हो। रिरंसु नायिका की प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार॥२॥

शुभशब्दविशेषसंश्रिताभिर्भवती शौरिपदावनि! क्रियाभिः।
अनुतिष्ठति नूनमाश्रितानामखिलोपद्रवशान्तिकं नवीनम्॥३॥

हे श्रीशौरि की पादुके! शुभ शब्दप्रकारों को स्वीकार करने वाली क्रियाओं से आप अपने आश्रितों के लिए सारे उपद्रवों के शमनकारक नवीन कर्म का अनुष्ठान करती हैं॥३॥

मणिभिर्मधुवैरिपादरक्षे! भवती विक्रमणे प्रवर्धमाना।
युगपद्भवतां युगान्तकाले दिवि लक्ष्मीं विदधे दिवाकराणाम्॥४॥

हे श्रीमधुरिपु की पादुके! त्रिविक्रम के अवतार के समय वृद्धि को प्राप्त होने वाली आप अपनी मणियों से आकाश में प्रलय के समय एक साथ उत्पन्न होने वाले सूर्यों की शोभा को धारण करती हैं। उपमा अलङ्कार॥४॥

मञ्जुस्वनां मणिमयूखकलापिनीं त्वां
दृष्ट्वा कपर्दसविधे विनिवेश्यमानाम्।
गूढीभवन्ति गरुडध्वजपादरक्षे!
फूत्कारवन्ति पुरवैरिविभूषणानि॥५॥

हे श्रीगरुडध्वज भगवान् नारायण की पादुके! मणियों के किरणसमूहों वाली तथा शिव के जटाजूट के समीप स्थापित की जाती हुई मनोहर ध्वनि वाली आपको देखकर रुद्र के अलङ्कार बने सर्प फूत्कार करते हुए छिपने लगते हैं। पादुका को पिच्छवती मयूरी समझ कर सर्प डर जाते हैं, यह अभिप्राय है। भ्रान्तिमान् और स्वभावोक्ति अलङ्कार॥५॥

मध्ये परिस्फुरितनिर्मलचन्द्रतारा
प्रान्तेषु रत्ननिकरेण विचित्रवर्णा।
पुष्णासि रङ्गनृपतेर्मणिपादुके! त्वं
चक्षुर्वशीकरणयन्त्रविशेषशङ्काम्॥६॥

हे श्रीरङ्गनाथजी की मणिपादुके! अपने मध्य भाग में सर्वतः स्फुरित विशुद्ध कनकमौक्तिकों वाली तथा किनारों के भागों में रत्न-समुदाय से नाना रूपों वाली तुम प्रेक्षकों की आँखों को वश में करने के लिए यन्त्रविशेष की शङ्का को परिपुष्ट करती हो। यन्त्र भी प्रकाशमान निर्मल = 'अभ्रक' धातुविशेष के मध्य में चन्द्र = चन्द्रमण्डलाकार वर्तुल रेखा में तार = प्रणव वाला और प्रान्त भाग में अनेक प्रकार के वर्णों से संपृक्त रहता है जिसे ललाट में तिलक के रूप में धारण करने पर वशीकरण होता है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।।६।।

**पादेन रङ्गनृपतेः परिभुज्यमाना**
**मुक्ताफलप्रकटितश्रमवारिबिन्दुः।**
**उत्कण्टका मणिमयूखशतैरुदग्रैः**
**सीत्कारिणीव चरणावनि! शिञ्जितैस्त्वम्।।७।।**

हे पादुके! श्रीरङ्गनाथ जी के चरण से उपभुक्त होती हुई तथा मोतियों के व्याज से स्वेद-बिन्दुओं को प्रकट करती हुई एवं ऊपर पसरती मणिकिरणों से रोमाञ्च वाली तुम अपने नादों से मानो सीत्कार करती हो। उत्प्रेक्षा और समासोक्ति अलङ्कार का सङ्कर।।७।।

**दूरप्रसारितकरा निनदैर्मणीना-**
**मायाति दैत्यरिपुरित्यसकृद् ब्रुवाणा।**
**दैत्येश्वरानभिमुखाञ्जनितानुकम्पा**
**मन्ये निवारयसि माधवपादुके! त्वम्।।८।।**

हे श्रीमाधव की पादुके! दूर तक अपने किरणरूपी हाथों को फैलाने वाली, दयायुक्त तुम 'दैत्यों के शत्रु श्रीभगवान् आ रहे हैं, ऐसा अनेक बार बोलती हुई मानो सामने आते असुरेन्द्रों को दूर करती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार।।८।।

**अच्छेद्यरश्मिनियतक्रमरत्नधुर्या**
**निष्कम्पकूबरनिभं दधती प्रतीकम्।**

**क्रीडागतेषु मधुजितपदपद्मलक्ष्म्याः**
**कर्णीरथस्त्वमसि काञ्चनपादरक्षे॥९॥**

हे सुवर्णपादुके! अभेद्य किरणों और असङ्कीर्ण पङ्क्तियों वाली, श्रेष्ठ मणियों से युक्त तुम स्थिर युगन्धर (कूबर) के समान प्रतीक (यन्त्रिकारूप अवयव) को धारण करती हुई श्रीमधुमथन के चरणकमलों की शोभारूपिणी लक्ष्मी के लीलासंचारों में यात्रारथ हो। यात्रारथ (कर्णीरथ) के पक्ष में अच्छेद्य अर्थात् अशिथिल रश्मि = लगामों से नियन्त्रित श्रेष्ठ युग्य (वहन करने वाले घोड़े) वाली, यह व्याख्या होगी। श्लेष से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा॥९॥

**मञ्जुस्वना मरकतोपलमेचकाङ्गी**
**शोणाश्मतुण्डरुचिरा मणिपादुके! त्वम्।**
**पद्माविहाररसिकस्य परस्य यूनः**
**पर्यायतां भजसि पञ्जरशारिकाणाम्॥१०॥**

हे मंणिपादुके! मनोहर ध्वनियों से युक्त तथा मरकतमणियों से श्यामल अङ्गों वाली एवं रक्तमणियों के खण्ड के समान मुख से रमणीय हुई तुम श्रीलक्ष्मीजी के साथ विचरण करने में रसिक श्रीरङ्गनाथजी की पञ्जरशारिकाओं (पिंजरों में स्थित शारिका) के सादृश्य को प्राप्त होती हो अर्थात् वैसी ही लगती हो। उपमा अलङ्कार॥१०॥

**शोणोपलैश्चरणरक्षिणि! संश्रितेषु**
**छायात्मना मरकतेषु तवावगाढः।**
**अन्वेति शौरिरभितः फलपङ्क्तिशोभि-**
**न्यात्मानमेव शयितं वटपत्रमध्ये॥११॥**

हे पादुके! 'पद्मराग' मणियों से संसेवित तुम्हारे 'मरकत' मणियों में प्रतिबिम्ब के रूप में स्थित श्रीरङ्गनाथजी अपने दोनों ओर फलों

की श्रेणी से सुशोभित वटपत्र के मध्य में प्रसुप्त स्वयं का अनुकरण करते हैं। उपमा अलङ्कार॥११॥

स्फीतं पदावनि! तव स्नपनार्द्रमूर्ते-
रासागरं ततमभून्मणिरश्मिजालम्।
लीलोचितं रघुसुतस्य शरव्यमासन्
यातूनि यस्य वलयेन विवेष्टितानि॥१२॥

हे पादुके! साकेत राज्य में अभिषेक (स्नपन) से गीली आकृति वाली तेरी मणिकिरणों का जाल समुद्र को पूरा व्याप्त करके विस्तृत हो गया था जिस जाल के वलय (मण्डल) से क्रोडीकृत (आच्छादित) रावण आदि राक्षस रघुनायक श्रीरामचन्द्रजी के आखेट-क्रीडा के योग्य शरव्य (बाणों के लक्ष्य) हो गये थे। श्लिष्टरूपक, उदात्त और समासोक्ति अलङ्कार॥१२॥

रत्नांशुभिस्तव तदा मणिपादरक्षे!
संरज्यमानवपुषां रजनीमुखेषु।
आकस्मिकागतमदर्शि महौषधित्वं
साकेतपत्तनसमीपरुहां द्रुमाणाम्॥१३॥

हे मणिपादुके! जब तुम कोसलराज्य के अधिकार को प्राप्त हुई थी तब तुम्हारी मणिकिरणों से अनुरञ्जित आकार वाले अयोध्यानगर के समीप उत्पन्न होने वाले वृक्षों के भीतर रात के आगमनकाल में अकस्मात् आये महौषधित्व को लोगों ने देखा था। महौषधियाँ रात में प्रज्वलित हो उठती हैं अतः ऐसा उद्भावन है। दिन में जो वृक्ष महौषधि नहीं है उनका ही रात में महौषधि के रूप में कथन होने से 'पर्याय' नामक अलङ्कार है॥१३॥

रामे वनं दशरथे च दिवं प्रयाते
निर्धूतविश्वतिमिरा सहसा बभूव।

**भूयिष्ठरत्नकिरणा भवती रघूणां**
**भूयःप्रतापतपनोदयपूर्वसंध्या॥१४॥**

हे पादुके! श्रीरामचन्द्र जी जब वन में चले जाते हैं और जब दशरथ जी स्वर्ग में चले जाते हैं तब पर्याप्त रत्नकिरणों वाली आप रघुवंशियों के दीर्घ प्रतापरूपी सूर्य के उदय में पूर्व दिशा की सन्ध्या होकर विश्व के सारे अन्धकारों को सहसा ध्वस्त कर देती हो। रूपक अलङ्कार॥१४॥

**प्रीतेन देवि! विभुना प्रतिपादनीयां**
**पादावनि! प्रतिपदोदितमञ्जुनादाम्।**
**विद्यां विदुर्भगवतः प्रतिपादनार्हां**
**पारायणागमपयोनिधिपारगास्त्वाम्॥१५॥**

हे देवि पादुके! पारायणागम अर्थात् सारे वेदों के पारगामी विद्वान् प्रसन्न प्रभु और समर्थ गुरु से ही जानने योग्य तथा प्रत्येक चरणविक्षेप और प्रत्येक सुबन्त-तिङन्तरूप पदों में मनोहर ध्वनि वाली श्रीभगवान् के संचार के योग्य आपको श्रीभगवान् की बोधिका विद्या ही जानते हैं। श्लेष से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१५॥

**मुक्तांशुकेसरवती स्थिरवज्रदंष्ट्रा**
**प्रह्लादसम्पदनुरूपहिरण्यभेदा।**
**मूर्तिः श्रियो भवसि माधवपादरक्षे!**
**नाथस्य नूनमुचिता नरसिंहमूर्तेः॥१६॥**

हे श्रीमाधव की पादुके! नरसिंह के आकार को धारण करने वाले श्रीरङ्गनाथ जी की लक्ष्मी (शोभा) की आप उचित मूर्ति ही हैं क्योंकि आप मोतियों की प्रभा से केसरों (सिंह के गर्दन के केश) वाली हैं तथा स्थिर वज्रमणि (हीरा) रूपी मूल दाँतों वाली हैं और प्रह्लाद = अतिशय आनन्दरूप सम्पत्ति के अनुरूप सुवर्णप्रकारों वाली

तथा 'प्रह्लाद' नामक भक्तराज की सम्पत्ति के योग्य हिरण्यकशिपु के शरीर के भेदन वाली हैं। रूपक अलङ्कार॥१६॥

संभावयन्ति कवयश्चतुरप्रचारां
मञ्जुस्वनां महितमौक्तिकपत्रलाङ्गीम्।
स्वाधीनसर्वभुवनां मणिपादुके! त्वां
रङ्गाधिराजपदपङ्कजराजहंसीम्॥१७॥

हे मणिपादुके! कवि = क्रान्तदर्शीविद्वान् रूपी कवि = जल के वि = पक्षी रमणीय संचरण वाली, मनोहर नादों वाली, प्रशस्त मोतियों से पत्रल अर्थात् पंखों से युक्त शरीर वाली तथा सारे भुवनों को अपने अधीन कर लेने वाली आपको श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों में विराजमान राजहंसी ही मानते हैं जो सारे जलों को अपने अधीन कर ली है। यहाँ 'भुवन' शब्द का प्रयोग लोक और जल दोनों अर्थों में है। श्लेष-उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१७॥

मुक्तामयूखरुचिरां मणिपादरक्षे!
मञ्जुस्वनां मणिभिराहितवर्णवर्गाम्।
मन्ये मुकुन्दपदपद्ममधुव्रतीना-
मन्यामकृत्रिमगिरामधिदेवतां त्वाम्॥१८॥

हे मणिपादुके! अपनी मौक्तिकप्रभाओं से रम्य, रम्य रवों वाली तथा मणियों के द्वारा शुक्लादि वर्णसमुदाय और अक्षर समूहों को प्रकट करने वाली आपको मैं श्रीरङ्गनाथ जी के चरणकमलों में भ्रमरी की तरह समासक्त वेदवाणियों की कोई अन्य ही अधिष्ठातृदेवता मानता हूँ। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१८॥

आसाद्य केकयसुतावरदानमूलं
कालं प्रदोषमनिरीक्ष्य रमासहायम्।
मञ्जुप्रणादरहिता मणिपादरक्षे!
मौनव्रतं किमपि नूनमवर्तयस्त्वम्॥१९॥

हे मणिपादुके! केकय की पुत्री कैकेयी के वरदान के मूल में स्थित तथा जिसमें सीता के साथ 'श्रीरामचन्द्रजी' अयोध्या में न दिखायी देते हों, ऐसे प्रदोष (प्रकृष्ट रामनिर्वासन रूप दोष हो जिसमें तथा रजनीमुख) काल को प्राप्त करके निश्चय ही तुमने मनोहर नादों से शून्य हुई किसी मौनव्रत को धारण कर लिया था। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥१९॥

वैदूर्यरम्यसलिला महिता मरुद्भि-
श्छायावती मरकतोपलरश्मिजालैः।
अश्रान्तमोहपदवीपथिकस्य जन्तो-
र्विश्रान्तिभूमिरिव शौरिपदावनि! त्वम्॥२०॥

हे श्रीकृष्ण की पादुके! अपने वैदूर्य रत्नों के रम्य जल वाली, देवों से पूजित तथा 'मरकत' मणियों के कान्तिसमुदाय से छाया वाली तुम अविरत मोहमार्ग के पथिक हुए जन्तु के लिए विश्राम-हेतु भूमि हो। विश्रामभूमि के पक्ष में 'वैदूर्यरम्यसलिला का वैदूर्यमिव रम्यं सलिलं यस्याः, यह विग्रह होगा अर्थात् वह भूमि वैदूर्य के समान स्वच्छ जल वाली है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२०॥

आद्यो रघुक्षितिभुजामभिषेकदीप्तै-
राप्यायितस्तव पदावनि! रश्मिजालैः।
मन्दीचकार तपनो व्यपनीतभीति-
र्मन्दोदरीवदनचन्द्रमसो मयूखान्॥२१॥

हे पादुके! रघुवंशी राजाओं के आद्य पुरुष तपन = विवस्वान् सूर्य अभिषेक से दीप्त हुई तुम्हारी मणिकिरणों से परिपुष्ट होकर निर्भय हुए मन्दोदरी के मुखचन्द्र की किरणों को धूमिल कर देते हैं॥२१॥

मान्या समस्तजगतां मणिभङ्गनीला
पादे निसर्गघटिता मणिपादुके! त्वम्।

**अन्तःपुरेषु ललितानि गतागतानि**
**छायेव रङ्गनृपतेरनुवर्तसे त्वम्॥२२॥**

हे मणिपादुके! सारे संसार की मान्य तथा इन्द्रनीलमणियों के खण्डों से नीले वर्ण की हुई एवं स्वभाव से ही श्रीरङ्गनाथजी के चरणों में स्थित तुम श्रीभगवान् के अन्तःपुरों में उनके रमणीय गमन और आगमन का छाया की तरह अनुवर्तन करती हो। उपमालङ्कार।

छायापक्ष में 'मणिभङ्गनीला' पद में मणिभङ्ग इव नीला, यह समास अभीष्ट है॥२२॥

**रङ्गाधिराजपदपङ्कजमाश्रयन्ती**
**हैमी स्वयं परिगता हरिनीलरत्नैः।**
**संभाव्यसे सुकृतिभिर्मणिपादुके! त्वं**
**सामान्यमूर्तिरिव सिन्धुसुताधरण्योः॥२३॥**

हे मणिपादुके! श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमल को स्वीकार करती हुई और स्वयं में सुवर्णमयी तुम श्रीलक्ष्मी और धरिणी (पृथ्वी) के सामान्य आकार जैसी ही पुण्यात्माओं के द्वारा उद्भावित होती हो अर्थात् वे लक्ष्मी और पृथ्वी के मिश्रित शरीर के समान पादुका को देखते हैं क्योंकि उसमें गौर और श्याम कान्तियाँ समायी हुई हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२३॥

**अभ्यर्चिता सुमनसां निवहैरजस्रं**
**मुक्तारुणोपलनखाङ्गुलिपल्लवश्रीः।**
**श्रेयस्करीं मुरभिदश्चरणद्वयीव**
**कान्तिं समाश्रयसि काञ्चनपादुके! त्वम्॥२४॥**

हे सुवर्णपादुके! देवों और फूलों के समूहों द्वारा सदा पूजित तथा मोतियों और 'पद्मराग' मणियों से नख और अङ्गुलिपल्लवों की शोभा वाली तुम मोती और पद्मराग के समान अङ्गुलि-नखों

की शोभा वाली श्रीमुरमथन की चरणद्वयी के समान कल्याणकारिणी कान्ति को धारण करती हो। उपमा अलङ्कार॥२४॥

**निर्मृष्टरागरुचिरा मणिपादुके! त्वं**
**स्नातानुलेपसुरभिर्नवमाल्यचित्रा।**
**प्राप्ते विहारसमये भजसे मुरारेः**
**पादारविन्दपरिभोगमनन्यलभ्यम्॥२५॥**

हे मणिपादुके! शोधित निर्मल शरीर से रम्य लगने वाली अभिषिक्त हुई तथा चन्दनादि के अनुलेपन से सुगन्धित एवं नूतन माल्यों से आश्चर्य पैदा करने वाली तुम श्रीमुरमथन के संचार के समय उनके चरणकमलों के स्पर्शजन्य उस सुख को प्राप्त करती हो जो अन्यों के लिए दुर्लभ है। यहाँ विशेषणों की महिमा से रमणासक्त नायिका की प्रतीति होने के कारण समासोक्ति अलङ्कार है॥२५॥

**नादे पदावनि! तथा तव संनिवेशे**
**निर्वेशनक्रममसह्यमपाचिकीर्षुः।**
**यैरेव लोचनशतैरभिवीक्षते त्वां**
**तैरेव पन्नगपतिः श्रुतिमान् बभूव॥२६॥**

हे पादुके! तुम्हारी भीतरी मणियों के कलरव और सन्निवेश (अवयवसंस्थान) के विषय में असह्य अनुभव की परिपाटी (कालव्यवधान) को दूर करने की इच्छा वाले शेषनाग अपने जिन हजारों नयनों से तुमको देखते हैं उन्हीं नयनों से कानों वाले भी हो जाते हैं। सर्प की आँखें ही कान होती हैं अतः उन्हें चक्षुश्रवाः भी कहते हैं। श्रीशेष का स्वयंसिद्ध चक्षुःश्रवस्त्व यहाँ पादुका के नादों और सन्निवेश के कारण उद्भावित है अतः हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥२६॥

**पादावनि! स्फुटमयूखसहस्रदृश्या**
**विष्णोः पदेन भवती विहितप्रचारा।**
**त्वद्भक्तियन्त्रितजनप्रथमस्य शम्भो-**
**र्वैकर्तनीमनुकरोति विहारमूर्तिम्॥२७॥**

हे पादुके! विकसित हजारों किरणों से अवलोकनीय तथा श्रीविष्णु के पद (चरण और आकाश) से संचरण करने वाली आप अपनी भक्ति से नियन्त्रित प्रथम भागवत श्रीशिवजी की सूर्य सम्बन्धिनी विहारमूर्ति (लीलाविग्रह) का अनुकरण करती हैं। शिव की आठ मूर्तियों में विकर्तन (सूर्यमण्डल) का अन्तर्भाव है और वे श्रीभगवान् के आद्य भक्त हैं, ऐसा श्रीरङ्गमाहात्म्य और भागवतादि पुराणों में प्रसिद्ध है। उपमा अलङ्कार॥२७॥

**राज्ये वनेऽपि रघुवीरपदोचितायाः**
**संस्मृत्य गौतमवधूपरिरक्षणं ते।**
**मन्ये समाहितधियो मणिपादुके! त्वां**
**मूर्ध्ना भजन्त्यनुदिनं मुनिधर्मदाराः॥२८॥**

हे मणिपादुके! तुम राज्य और वन दोनों जगह श्रीरघुवीर के चरणों के योग्य हो। तुम्हारे द्वारा गौतम की पत्नी अहल्या की रक्षा का स्मरण करके ही मानो सारे मुनियों की पत्नियाँ समाहित बुद्धि वाली होकर प्रतिदिन मस्तक से तुम्हारी सेवा करती हैं। उत्प्रेक्षा॥२८॥

**त्वामाश्रितो मणिमयूखसहस्रदृश्यां**
**त्वच्छिञ्जितेन सह रङ्गपतिः समुद्यन्।**
**आशङ्क्यते सुमतिभिर्मणिपादरक्षे!**
**विद्यासखः सवितृमण्डलमध्यवर्ती॥२९॥**

हे मणिपादुके! हजारों मणिकिरणों से विलोकनीय आपके आश्रित रहने वाले तथा आपके शिञ्जान रवों के साथ प्रकट होने वाले श्रीरङ्गनाथजी को देखकर पुण्यात्मा लोग उन्हें वेदों के साथ

सविता के मध्य में विद्यमान हिरण्मय पुरुष की आशङ्का करते हैं। तथा च, छन्दोगों का भी आम्नान है—'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते'। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥२९॥

**रत्नाश्रितैर्हरिपदं मणिपादुके! त्वं**
**स्पृष्ट्वा करैः श्रुतिरसायनमञ्जुनादा।**
**तत्त्वं तदेतदिति बोधयसीव सम्यक्**
**वेदान् प्रतारितवतो विविधान् कुदृष्टीन्॥३०॥**

हे मणिपादुके! तुम रत्नों के आश्रित अपने किरणरूपी हाथों से श्रीभगवान् के पदकमल का स्पर्श करके तथा कानों में रसायन की तरह तृप्तिदायक मनोहर नादों से युक्त तुम वेदों को प्रतारित करने वाले बौद्ध आदि कुत्सित दृष्टि वाले पुरुषों को प्रबोधित करती हो कि श्रीरङ्गनाथ जी ही वेदों के प्रतिपाद्य परम तत्त्व हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३०॥

**आनन्दसूः प्रणयिनामनघप्रसादा**
**रङ्गाधिराजपदरक्षिणि! रत्नभासा।**
**न्यस्ते मुहुर्निजभरे स्थिरतां भजन्त्या**
**वर्णांशुकं वितरसीव वसुन्धरायाः॥३१॥**

हे श्रीरङ्गाधिराज की पादुके! भक्तजनों के आनन्द का सम्पादन करने वाली तथा रमणीय स्वच्छतागुण से सम्पन्न तुम अपने रत्नों की कान्ति से उस समय पृथ्वी को मानो पारितोषिक के रूप में चित्रपट प्रदान करती हो जब वह तुम्हारे भार का वहन करने लगती है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३१॥

**त्वं चित्रभानुरसि रत्नविशेषयोगाद्**
**भूम्ना निजेन परिपुष्यसि पावकत्वम्।**
**स्वेनैव शौरिचरणावनि! चन्द्ररूपा**
**तेजस्त्रयीव मिलितासि तमोपहा नः॥३२॥**

हे श्रीकृष्णचन्द्र की पादुके! तुम पद्मराग-मरकत आदि रत्नविशेषों के योग से चित्रविचित्र किरणों वाली चित्रभानु = सूर्य हो और अपनी पर्याप्त महिमा से पावनता एवं अग्नित्व को परिपुष्ट करती हो तथा स्वयं में चन्द्ररूपा = सुवर्णमयी एवं चन्द्रमा हो। इस प्रकार एक होती हुई तुम सूर्य-अग्नि-चन्द्र रूप तीनों तेज वाली होकर हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करती हो। श्लेषानुप्राणित रूपक अलङ्कार॥३२॥

**प्रौढप्रवालरुचिरा भुवनैकवन्द्या**
**रङ्गाधिराजचरणावनि! रम्यचन्द्रा।**
**संभिन्नमौक्तिकरुचिः सततं प्रजानां**
**तापात्ययं दिशसि तारकितेव संध्या॥३३॥**

हे श्रीरङ्गाधिराज की चरणपादुके! प्रौढ 'प्रवाल' मणियों से मनोरम तथा सारे संसार के लिए वन्दनीय (स्तुत्य) एवं रमणीय सुवर्ण वाली और फैलती मौक्तिक-कान्तियों वाली तुम ताराओं से युक्त सन्ध्या की तरह प्रज़ाओं के तीनों तापों का शमन करती हो। सन्ध्या भी प्रवालों के समान रमणीय, भुवनवन्द्य, रमणीय चन्द्रमावाली और मोतियों के समान कान्ति से युक्त है। उपमा अलङ्कार॥३३॥

**रङ्गेश्वरस्य पुरतो मणिपादुके! त्वं**
**रत्नांशुभिर्विकिरसि स्फुटभक्तिबन्धा।**
**पादौ विहारयितुमद्भुतसौकुमार्यौ**
**प्रायः सरोजकुमुदोत्पलपत्रपङ्क्तिम्॥३४॥**

हे मणिपादुके! विकसित है भक्ति = भगवत्सेवा और संरचना का बन्ध जिसका ऐसी तुम श्रीरङ्गनाथजी के अद्भुत सुकुमार चरणों को संचालित करने के लिए अपनी मणिकिरणों से सरोज, कुमुद और नीलकमलों के दलों की पङ्क्ति प्रायः विखेर देती हो क्योंकि

श्रीभगवान् के चरण कठिन भूमि में संचरण कर सकें। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३४॥

**आसन्नवृत्तिरवरोधगृहेषु शौरे-**
**रापादयस्यनुपदं वरवर्णिनीनाम्।**
**आलग्नरत्नकिरणा मणिपादुके! त्वं**
**मञ्जुस्वना मदनबाणनिघर्षशङ्काम्॥३५॥**

हे मणिपादुके! श्रीकृष्ण के अन्त:पुर गृहों में समीपस्थित तुम संसक्त रत्नकिरणों वाली तथा मनोहर ध्वनि करती हुई श्रीरङ्गनाथ जी की दिव्य रानियों के हर चरण-विक्षेपों में काम के बाणों में शाण की शङ्का को उत्पन्न करती हो। मानो बाणों को शाण देकर उनको नुकीला बनाती हो, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३५॥

**पर्याप्तमौक्तिकनखा स्फुटपद्मरागा**
**रेखाविशेषरुचिरा ललितप्रचारा।**
**रङ्गाधिराजपदयोर्मणिपादुके! त्वं**
**सायुज्यमाश्रितवतीव समस्तवन्द्या॥३६॥**

हे मणिपादुके! पर्याप्त अर्थात् परिपूर्ण मोतियों रूप नखों वाली तथा विकसित 'पद्मराग' मणिरूप कमलों की लालिमा से युक्त एवं वज्र-अङ्कुश आदि रेखाप्रकारों से मनोहर हुई सुन्दर विहार करने वाली तुम सारे लोकों की वन्दनीय होकर श्रीरङ्गनाथजी के चरणों में सायुज्य = परम साम्य मानो प्राप्त कर ली हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३६॥

**प्राप्ताभिषेका मणिपादुके! त्वं प्रदीप्तरत्ना रघुराजधान्याः।**
**प्रदक्षिणप्रक्रमणादकार्षीः प्राकारमाग्नेयमिव प्रभाभिः॥३७॥**

हे मणिपादुके! सम्पन्न अभिषेक वाली तुम प्रदीप्त मणियों वाली होकर रघु की राजधानी अयोध्या की परिक्रमा को प्रारम्भ करने से

अपनी कान्तियों के द्वारा मानो अग्नि की दीवार बना दी थी। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३७॥

**रत्नासने राघवपादरक्षे! प्रदीप्यमानास्तव पद्मरागाः।**
**प्रायो नरेन्द्रान् भरतस्य जेतुः प्रतापवह्नेरभवन् प्ररोहाः॥३८॥**

हे श्रीरामचन्द्रजी की पादुके! तुम्हारे रत्नासन में प्रदीप्त होने वाले पद्मराग प्रायः शत्रु राजाओं को जीतने वाले श्रीभरतजी के प्रतापानल के मानो प्ररोह हो गये थे। यहाँ पादुका के पद्मराग श्रीभरत के प्रतापरूपी अग्नि के अङ्कुर के रूप में उद्भावित हैं। उत्प्रेक्षा॥३८॥

**शुभप्रणादा भवती श्रुतीनां कण्ठेषु वैकुण्ठपतिंवराणाम्।**
**बध्नासि नूनं मणिपादरक्षे! माङ्गल्यसूत्रं मणिरश्मिजालैः॥३९॥**

हे मणिपादुके! कल्याणकारी नादों वाली आप श्रीरङ्गनाथजी की श्रुतिरूप स्वयम्वरवधुओं के कण्ठों में मानो माङ्गल्यसूत्र पिरोती हो अपने मणियों की किरणों के समुदाय से। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥३९॥

**विचित्रवर्णा श्रुतिरम्यशब्दा निषेव्यसे नाकसदां शिरोभिः।**
**मधुद्विषस्त्वन्मणिपादरक्षे! श्रेयस्करी शासनपत्रिकेव॥४०॥**

हे मणिपादुके! चित्र-विचित्र वर्णों (रूप और अक्षर) वाली तथा कानों में मनोहर लगने वाले शब्दों से युक्त और वेदों के समान रम्य शब्दों वाली तुम श्रेयस्करी = मोक्ष का कारण और श्रेष्ठ कार्यों की ज्ञापिका होकर तुम श्रीमधुमथन की शासनपत्रिका के समान देवताओं के मस्तकों से सेवित होती हो। उपमा अलङ्कार॥४०॥

**स्थिरा स्वभावान्मणिपादुके! त्वं सर्वंसहा स्वादुफलप्रसूतिः।**
**पृथ्वीव पद्भ्यां परमस्य पुंसः संसृज्यसे देवि! विभज्यसे च॥४१॥**

हे देवि! मणिपादुके! स्वभाव से ही स्थिर रहने वाली तुम आश्रितों के सारे अपराधों को सहन करती हो और स्वादु फलों का निष्पादन करती हो अर्थात् स्वर्गापवर्गादि प्रयोजनों को पूरा करती

हो। इस प्रकार से तुम पृथ्वी देवी के समान ही परम पुरुष श्रीरङ्गनाथ जी के चरणों से कभी संपृक्त होती हो और कभी वियुक्त होती हो। उपमा अलङ्कार॥४१॥

**पश्यन्ति रङ्गेश्वरपादरक्षे! पूजासु ते संहितपुष्पजालाम्।**
**मृगीदृशो वासवरत्नरेखां सचित्रपुङ्खामिव मन्मथज्याम्॥४२॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! मृगी के नयनों के समान नयन वाली लक्ष्मी आदि देवियाँ पूजा के समय तेरी श्लिष्ट पुष्पजालों वाली, इन्द्रनीलमणियों की पङ्क्ति को सचित्र पुङ्खों वाली कामदेव की प्रत्यञ्चा ही मानती हैं। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४२॥

**करैरुदग्रैः स्फुरतां मणीनां मञ्जुस्वना माधवपादुके! त्वम्।**
**अनूपदेशे कनकापगायाः कलेः प्रवेशं प्रतिषेधसीव॥४३॥**

हे श्रीमाधव की पादुके! स्फुरित होने वाले मणिकिरणरूपी उद्‌गत हाथों से मनोहर रवों वाली तुम मानो कनकापगा = कावेरी नदी की कच्छसीमा में कलि के प्रवेश को वर्जित करती हो। श्रीरङ्ग में सत्ययुग के धर्म का प्रवर्तन करती हो, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४३॥

**आक्रान्तवेद्रिर्भवती तदानीमदर्शि मुक्तान्वितशोणरत्ना।**
**करग्रहार्थं भरतेन भूम्या लाजोत्करैर्वह्निशिखेव कीर्णा॥४४॥**

हे पादुके! वेदि अर्थात् सिंहासन रूप तेज को आक्रान्त कर लेने वाली और मोतियों से युक्त 'पद्मराग' मणियों वाली आपको अधिकारग्रहण के समय लोगों ने श्रीभरतजी के द्वारा भूमि के कर-ग्रहण (बलिग्रहण रूप पाणिग्रहण) के लिए लाजाओं के समुदाय से विखरी अग्नि की शिखा (अर्चि) की तरह देखा था। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥४४॥

**पत्रला मणिगणैर्हिरण्मयी भासि रङ्गपतिरत्नपादुके।**
**केलिमण्डपगतागतोचिता भूमिकेव गरुडेन कल्पिता॥४५॥**

हे मणिपादुके! मणिगणों से पक्षयुक्त (पाँखों से युक्त) सुवर्णमयी तुम श्रीगरुड के द्वारा कल्पित श्रीभगवान् के क्रीडामण्डप में आने-जाने के योग्य वेशरचना (भूमिका) की तरह सुशोभित होती हो॥४५॥

**उन्नतं बलिविरोधिनस्तदा पादुके! पदसरोजमाश्रिता।**
**मौक्तिकस्तबकमध्यसंमितं व्योमषट्पदतुलामलम्भयः॥४६॥**

हे पादुके! बलि के विरोधी श्रीत्रिविक्रम के चरणकमल के आश्रित रहने वाली तुम उस समय जब ऊर्ध्व देश में स्थित हो गयी थी तब मोतियों के समूह के बीच परिच्छिन्न आकाश को भ्रमर के समान बना दी थी। उपमा अलङ्कार॥४६॥

**कोमलाङ्गुलिनिवेशयन्त्रिका न्यस्तमौक्तिकमयूखदन्तुरा।**
**मङ्गलानि वमसीव देहिनां रङ्गराजमणिपादुके! स्वयम्॥४७॥**

हे श्रीरङ्गनाथ जी की मणिपादुके! श्री भगवान् की कोमल अङ्गुलियों के निवेश के लिए बनी यन्त्रिका (खूँटी) में विन्यस्त मोतियों की किरण से दन्तुर (ऊपर की ओर उन्मुख) हुई तुम स्वयं प्राणियों के लिए मङ्गल का उद्वमन करती हो। मङ्गल सत्त्वमूलक होता है अतः ऐसी उत्प्रेक्षा की गयी है॥४७॥

**पङ्कजासहचरस्य रङ्गिणः पादुके! निजपदादनन्तरम्।**
**न्यस्यतस्त्वयि जगन्ति जायते नागभोगशयनं निरङ्कुशम्॥४८॥**

हे पादुके! पङ्कजा अर्थात् लक्ष्मी के सहित संचरण करने वाले तथा बाद में अपने चरण से हटाकर तुझमें संसार का भार रखने वाले श्रीरङ्गनाथजी का शेषशय्या में शयन निरङ्कुश हो जाता है। श्रीरङ्गनाथजी पादुका में पहले चरण रखकर विचरण करते हैं उसके बाद संसार की रक्षा का भार उसके ऊपर सौप कर लक्ष्मी के साथ शेषशय्या में सुखपूर्वक सोते हैं, यह अभिप्राय है। पर्याय अलङ्कार॥४८॥

**साधयन्ति मधुवैरिपादुके! साधवः स्थिरमुपायमन्तिमम्।**
**त्वत्प्रवृत्तिविनिवर्तनोचितस्वप्रवृत्तिविनिवर्तनान्वितम्।।४९।।**

हे श्रीमधुरिपु की पादुके! साधु पुरुष उस अन्तिम और स्थिर प्रपत्तिरूप मोक्षोपाय का अनुष्ठान करते हैं जो तुम्हारे रक्षाव्यापार को दूर करने में समर्थ अपने रक्षाव्यापार की निवृत्ति से युक्त हैं। तात्पर्य यह है कि पादुका तभी लोगों की रक्षा करती है जब वे अपनी रक्षा में अपने उद्योग का परित्याग कर देते हैं, अपनी रक्षा हम स्वयं कर लेंगे, ऐसे स्वाभिमानियों की रक्षा पादुका नहीं करती इसलिए साधु पुरुष पूर्णरूप से पादुका के आश्रित होकर प्रपत्तिमार्ग में लगे रहते हैं। उदात्त अलङ्कार।।४९।।

**नन्दसूनुपदपद्ममिन्दिरापाणिपल्लवनिपीडनासहम्।**
**पादुके! तव बलेन पर्यभूदूष्मलामुरगमौलिशर्कराम्।।५०।।**

हे पादुके! नन्दसूनु भगवान् श्रीकृष्ण का जो चरणकमल लक्ष्मी जी के करपल्लव के संवाहन को भी सहन करने में असमर्थ था वही तुम्हारी शक्ति से कालियनाग के मस्तक पर विद्यमान शर्करा = मणिविशेष को अभिभूत (पराजित) करने में समर्थ हो गया था। काव्यलिङ्ग अलङ्कार।।५०।।

**मणिनिकरसमुत्थैः सर्ववर्णा मयूखैः**
**प्रकटितशुभनादा पादुके! रङ्गभर्तुः।**
**निखिलनिगमसूतेर्ब्रह्मणस्तत्सनाथा-**
**मवगमयसि हृद्यामर्धमात्रां चतुर्थीम्।।५१।।**

हे सकल वेदों के प्रवक्ता ब्रह्म अर्थात् अनवधिक वृद्धि से सम्पन्न श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! मणियों के समुदाय से निकलने वाली किरणों से शुक्ल आदि सारे रूपों वाली और मङ्गलमय नादों को प्रकट करने वाली तुम उस परम पुरुष से विद्यमान देवता वाली हृद्य = रमणीय और हृदय देश से उत्पन्न सारे वेदों के कारण ब्रह्म

= ओङ्कार की नादात्मिका चौथी मात्रा का स्मरण कराती हो। स्मृति अलङ्कार॥५१॥

**श्रुतिविषयगुणा त्वं पादुके! दैत्यहन्तुः**
**सततगतिमनोज्ञा स्वेन धाम्ना ज्वलन्ती।**
**जनितभुवनवृद्धिर्दृश्यसे स्थैर्ययुक्ता**
**विधृतनिखिलभूता वैजयन्तीव माला॥५२॥**

हे दैत्यों के विनाशक श्रीभगवान् की पादुके! श्रुतियों अर्थात् वेदों के प्रतिपाद्य विषय ज्ञान-शक्ति वाली तथा निरन्तर संचार से मनोज्ञ एवं अपने तेज से प्रज्ज्वलित होती हुई, संसार की संपत् को उत्पन्न करने वाली, स्थिरता से युक्त तुम सारे भूतों (प्राणियों और पञ्चमहाभूतों) को धारण करती हुई 'वैजयन्ती' नाम भगवान् की माला जैसी दिखायी देती हो। सारे विशेषणों से पृथ्वी आदि महाभूतों की भी व्यञ्जना यहाँ की गयी है। श्रीविष्णुपुराण में भूतहेतुभूत तन्मात्राओं और भूतों को 'वैजयन्ती' माला के रूप में प्रतिपादित किया गया है। उपमा अलङ्कार॥५२॥

**रघुपतिपदसङ्गाद्राज्यखेदं त्यजन्ती**
**पुनरपि भवती स्वान् दर्शयन्ती विहारान्।**
**अभिसमधित वृद्धिं हर्षकोलाहलानां**
**जनपदजनितानां ज्यायसा शिञ्जितेन॥५३॥**

हे पादुके! श्रीरामचन्द्रजी के वनवास से लौटने पर उनके चरणों के संसर्ग से राज्य के भारजनित खेद को त्यागती हुई तथा पुनः अपने संचारों को प्रदर्शित करती हुई आप अपने दीर्घ 'शिञ्जान' रव से कोसल जनपद में होने वाले आनन्द के कोलाहलों को बढ़ा दी थीं। पूर्वसिद्ध कोलाहलों के शिञ्जानरवों से वृद्धि के कथन से अनुगुण-अलङ्कार है॥५३॥

हरिचरणमुपघ्नं पादुके! संश्रिताया-
मधिगतबहुशाखा(खं) वैभवं दर्शयन्त्याम्।
अभजत विधिहस्तन्यस्तधर्मद्रवायां
त्वयि मुकुलसमृद्धिं मौक्तिकश्रीस्तदानीम्॥५४॥

हे पादुके! भगवान् वामन के चरणों के अधीन होकर जब आप वेदों की अनेक शाखाओं वाले वैभव को प्रदर्शित करने लगती हैं तब ब्रह्मा के हाथ से स्थापित पुण्यद्रव वाली आप में मोतियों की शोभा मुकुलों (कुड्मल, कली) की समृद्धि को प्राप्त कर ली थी। कल्पलता के व्यापार की प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार जिसके आलम्बन से मोतियों में मुकुलत्व उद्भावित है अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार के साथ साङ्कर्य है॥५४॥

कनकरुचिरकान्तिः कल्पिताशोकभारा
कृतपदकमलश्रीः क्रीडता माधवेन।
दिशि दिशि सुमनोभिर्दर्शनीयानुभावा
सुरभिसमयलक्ष्मीं पादुके! पुष्यसि त्वम्॥५५॥

हे पादुके! सुवर्ण से रम्य कान्ति वाली, शोक के अभाव के भार का सम्पादन करने वाली, क्रीड़ा करने वाले माधव के द्वारा उत्पादित चरणकमलों की शोभा वाली तथा विद्वानों और देवताओं के द्वारा विलोकनीय प्रभाव वाली तुम वसन्तकाल की शोभा का प्रत्येक दिशाओं में पोषण करती हो। वसन्तलक्ष्मी भी सुवर्ण के समान रम्य कान्ति वाली, अशोक वृक्षों के पुष्पगुच्छ का सम्पादन करने वाली, विकसित माधव = वैशाखमास से कमलों की शोभा से युक्त और फूलों से दर्शनीय होती है। श्लिष्टोपमा अलङ्कार॥५५॥

प्रणिहितपदपद्मा पादुके! रङ्गभर्तुः
शुभतरगतिहेतुश्चारुमुक्ताप्रवाला।

स्थिरपरिणतरागा शुद्धबोधानुबद्धां
स्वजनयसि मुनीनां त्वन्मयीं चित्तवृत्तिम्॥५६॥

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! सावधानी से अपने ऊपर श्रीभगवच्चरणारविन्द को स्थापित करने वाली, अत्यन्त कल्याणमय संचार का कारण और रम्य मोतियों और 'प्रवाल' मणियों वाली तुम मुनियों की उस चित्तवृत्ति (भक्तिप्रपत्त्यात्मक मनोव्यापार) को अपना स्वजन बना लेती हो जो त्वद्विषयिणी होकर स्थिर प्रेम वाली और विशुद्ध ज्ञान से सम्बद्ध है। सारे विशेषण चित्तवृत्तिपक्ष में भी हैं। श्लेषानुप्राणित उपमा अलङ्कार॥५६॥

विरचितनवभागा रत्नभेदैर्विचित्रै-
र्विविधविततरेखा व्यक्तसीमाविभागा।
हरिचरणसरोजं प्रेप्सतामर्चनीयं
प्रथयसि नवनाभं मण्डलं पादुके! त्वम्॥५७॥

हे पादुके! नाना रूपों वाले पद्मराग आदि रत्नप्रकारों से 'नव' संख्या वाले अंशों की रचना करने वाली तथा नाना प्रकार की विस्तृत रेखाओं से सीमाविभाग = अपृथग्भाव को प्रकाशित करने वाली तुम श्रीहरि के चरणकमल की इच्छा वाले भक्तों के द्वारा अर्चनीय 'नाभि' नामक चक्रवर्ती के गोत्र में उत्पन्न पुरुषों से नौ भागों में विभक्त भारत के भू-भाग (मण्डलं) को प्रख्यापित करती हो। इन्द्रद्वीप, केशभू, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण, भारतवर्ष (सागरयुक्त) नव द्वीप कहे गये हैं। उपमा अलङ्कार॥५७॥

परिणतगुणजाला पङ्क्तिभिर्मौक्तिकानां
बहुविधमणिरश्मिग्रन्थबन्धाभिरामा।
रघुपतिपदरक्षे! राजवाह्यस्य कुम्भे
कलितरुचिरभूस्त्वं कापि नक्षत्रमाला॥५८॥

हे श्रीरघुपति की पादुके! मोतियों की श्रेणी से उत्कर्षबाहुल्य रूप सूत्रसमूह वाली और नाना प्रकार की मणियों की किरणों के ग्रन्थिबन्धन से मनोरम हुई तुम राजवाह्य अर्थात् शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त कर लेने वाले गज के कुम्भ = मस्तक पर विस्तृत कान्ति वाली कोई विलक्षण नक्षत्रमाला (हारभेद) हो। रूपक अलङ्कार॥५८॥

**चरितनिखिलवृत्तिश्चारुपद्मासनस्था**
**गुणनिबिडितमुक्तापङ्क्तिबद्धाक्षमाला।**
**सविधमधिवसन्ती पादुके! रङ्गभर्तु-**
**श्चरणकमलमन्तर्बिम्बितं ध्यायसीव॥५९॥**

हे पादुके! सारे प्राणियों की वृत्ति का सम्पादन करने वाली और मैत्री-ऋतम्भरा आदि मनोवृत्तियों को धारण करने वाली, मनोहर पद्मपीठ पर स्थित तथा गुणों (उत्कर्ष और सूत्र) से ग्रथित मोतियों की पङ्क्ति से सेवकों की इन्द्रिय रूपी अक्षमाला को वश में रखने वाली तुम श्रीरङ्गनाथजी के समीप निवास करती हुई अपने भीतर प्रतिबिम्बित चरणकमल का मानो ध्यान करती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥५९॥

**अनुपधि परिरक्षन्नेकपुत्राभिमानाद्**
**भुवनमिदमशेषं पादुके! रङ्गनाथः।**
**निजपदनिहितायां देवि! तिष्ठन् व्रजन् वा**
**त्वयि निहितभरोऽभूत् किं पुनः स्वापमृच्छन्॥६०॥**

हे पादुके! इस सारे संसार की एक पुत्र में होने वाले स्नेह जैसे निष्कपट रक्षा करते हुए श्रीरङ्गनाथजी निवृत्त गति वाले होकर या गमन करते हुए अपने चरण में लगायी गयी और अपने सिंहासन पर स्थापित तुम्हारे ऊपर अपने भार और राज्यभार को निद्रा चाहते हुए स्थापित कर देते हैं, यह बात कैमुतिकन्याय से सिद्ध है। जब

जागते हुए भी अपना सारा भार तुम्हारे ऊपर रखते हैं तो सो जाने पर कहना ही क्या है, यह अभिप्राय है। काव्यार्थापत्ति अलङ्कार॥६०॥

त्वरितमुपगतानां श्रीमतो रङ्गभर्तु-
स्त्वदुपहितपदस्य स्वैरयात्रोत्सवेषु।
मुखरयति दिगन्तान् मुह्यतां त्वत्प्रशस्तौ
विहितकुसुमवृष्टिर्व्यावघोषी सुराणाम्॥६१॥

हे पादुके! तुम्हारे ऊपर अपने चरणों को रखने वाले श्रीरङ्गनाथ जी स्वेच्छापूर्वक होने वाले विचरण के उत्सवों में शीघ्र आये हुए तथा तुम्हारी प्रशंसा करने में अत्यन्त आसक्त देवताओं का सम्पादित फूलों की वर्षा वाला पारस्परिक उद्घोष दिगन्तभागों को भी मुखरित (शब्दायमान) कर देता है॥६१॥

मनसि नियमयुक्ते वर्तमाना मुनीनां
प्रतिपदमुपयान्ती भावनीयक्रमत्वम्।
श्रुतिरिव निजशब्दैः पादुके! रङ्गभर्तुः
पदमनितरगम्यं व्यङ्क्तुमर्हा त्वमेव॥६२॥

हे पादुके! मुनियों के नियमयुक्त अर्थात् सावधान मन में विराजमान होती हुई प्रति चरणविक्षेप और प्रति सुबन्ततिङन्त रूपों में दर्शनीय क्रम (आनुपूर्वी) और अध्ययनभेद को स्वीकार करती हुई तुम ही श्रुति (वेद) के समान श्रीरङ्गनाथजी के उस चरण और स्वरूप को प्रकट करने में समर्थ हो जिसका प्राकट्य अन्य उपायों से सम्भव नहीं है। श्लेष से अनुप्राणित उपमा अलङ्कार॥६२॥

अविकलनिजचन्द्रालोकसंदर्शनीया
प्रतिकलमुपभोग्या पादुके! रङ्गभर्तुः।
मुकुलयितुमशेषं मौक्तिकज्योत्स्नया नः
प्रभवसि तिमिरौघं पौर्णमासी निशेव॥६३॥

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! परिपूर्ण अपने सुवर्ण (चन्द्र) के आलोक (द्युति) से दर्शनीय तथा प्रतिक्षण अनुभव से सुखों को देने वाली तुम पूर्णिमा की रात के समान मोतियों की चन्द्रिका से हमारे सकल अज्ञानसमूह को क्षीण करने में समर्थ हो। पौर्णमासी भी अपने अविकल चन्द्रमा के प्रकाश से दर्शनीय, प्रत्येक चन्द्रकलाओं से उपभोगयोग्य और मोतियों के समान चाँदनी से अन्धकार-समुदाय को मुकुलित (संकुचित) करने में समर्थ होती है। उपमा अलङ्कार।।६३।।

**हंसश्रेणीपरिचितगतिर्हारिणी कल्मषाणां**
**मौलौ शम्भोः स्थितिमधिगता मुग्धचन्द्रानुबद्धा।**
**राज्ञामेका रघुकुलभुवां सम्यगुत्तारिका त्वं**
**काले तस्मिन् क्षितिमधिगता पादुके! जाह्नवीव।।६४।।**

हे पादुके! हंसों और योगियों की पङ्क्ति से सेवित गति वाली तथा पापों को दूर करने वाली और श्रीशङ्कर के मस्तक पर अपने अवस्थानं को प्राप्त कर लेने वाली मुग्ध सुवर्ण (चन्द्र) से युक्त तुम रघुकुल में उत्पन्न होने वाले राजाओं को ठीक से तारने वाली गङ्गा के समान ही उस समय (सत्यलोक से अयोध्या में आगमन के समय तथा भगीरथ की तपस्या के समय) भूमि में आ गयी थी। सारे विशेषण गङ्गा के प्रति भी हैं जिनका उन्मीलन सहृदय अपनी मेधा से कर लें। उपमा अलङ्कार।।६४।।

**स्वच्छाकारां श्रुतिसुरभितां स्वादुभावोपपन्नां**
**मार्गे मार्गे महितविभवां पादुके! तीर्थभेदैः।**
**शीतस्पर्शां श्रमविनयिनीं गाहते मन्दमन्दं**
**क्रीडालोलः कमलनिलयादत्तहस्तो युवा त्वाम्।।६५।।**

हे पादुके! लक्ष्मीजी जिसको अपना हाथ समर्पित कर दी हैं ऐसे तरुण श्रीरङ्गनाथजी क्रीडा में चञ्चल हुए स्वच्छ आकार वाली,

वेदों से सुगन्धवती अर्थात् वेदगम्य, स्वादुता से पूर्ण, तीर्थों के प्रभेदों से हर मार्ग पर पूजित सम्पत्ति वाली, शीतल स्पर्श वाली और संसार से जनित श्रम को दूर करने वाली आपका अवगाहन धीरे-धीरे करते हैं। विशेषणों के सामर्थ्य से महानदी में अवगाहन की प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार है॥६५॥

**अभ्यस्यन्त्योः क्रममनुपमं रङ्गभर्तुर्विहारे**
**स्थाने स्थाने स्वरपरिणतिं लम्भितस्तत्तदर्हाम्।**
**पर्यायेण प्रहितपदयोः पादुके! श्रुत्युदारः**
**शिञ्जानादः स्फुरति युवयोः शृङ्खलाबन्धरम्यः॥६६॥**

हे पादुके! (द्विवचनान्त सम्बोधन) श्रीरङ्गनाथजी के संचार में अनुपम क्रम का अभ्यास करने वाली तथा आनुपूर्वी क्रम से सुबन्त और तिङन्त रूप पदों का प्रयोग करने वाली तुम दोनों का उन-उन प्रदेशों में तत्तद्योग्य नादपरिणाम को प्राप्त कराया गया एवं कानों में उदार और वेदों में उत्कृष्ट, शृङ्खलाबन्ध के समान रमणीय शिञ्जानरव स्फुरित हो रहा है। उत्सव के समय दो कर्ताओं के द्वारा वेदाध्ययन की प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार है॥६६॥

**आसन्नानां दिवसमपुनर्नक्तमापादयन्ती**
**स्फीतालोका मणिभिरभितः प्राणिनामस्तदोषा।**
**प्रह्वैर्जुष्टा विबुधनिवहैः पादुके! रङ्गभर्तुः**
**पादाम्भोजे दिशति भवती पूर्वसंध्येव कान्तिम्॥६७॥**

हे पादुके! समीपस्थित (सुमेरुभूभाग के मध्य में स्थित) प्राणियों (सेवक) के रात्रि-आगमन से शून्य दिन का सम्पादन करती हुई तथा मणियों से चारों ओर पूर्ण प्रकाश वाली अस्तदोषा (दोषों से रहित और सन्ध्यापक्ष में दोषा = रात्रि को प्रक्षिप्त कर देने वाली) और विनम्र देव-विद्वद्गणों से सेवित तुम श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमल

में पूर्वसन्ध्या के समान कान्ति प्रदान करती हो। श्लेष से अनुप्राणित उपमा अलङ्कार॥६७॥

**रम्यालोका ललितगमना पद्मरागाधरोष्ठी**
**मध्ये क्षामा मणिवलयिनी मौक्तिकव्यक्तहासा।**
**श्यामा नित्यं हरितमणिभिः शार्ङ्गिणः पादरक्षे!**
**मन्ये धातुर्भवसि महिलानिर्मितौ मातृका त्वम्॥६८॥**

हे शार्ङ्गधन्वा श्रीभगवान् की पादुके! रमणीय आलोक (प्रकाश और अवलोकन) वाली, ललित गति से युक्त, पद्मरागमणि रूपी अधरोष्ठ वाली, मोतियों के द्वारा सुस्पष्ट हासों वाली, मध्यभाग में कृश, मणिसमुदाय वाली, मरकतमणियों से श्यामवर्ण से युक्त तुम ब्रह्मा की स्त्रीसृष्टि में मातृका = प्रथम प्रकृति हो, ऐसा मैं मानता हूँ। कुछ समास में परिवर्तन करके मातृकापक्ष में भी विशेषणों की योजना हो जाती है। श्लेष से अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥६८॥

**स्थित्वा पूर्वं क्वचन भवती भद्रपीठस्य मध्ये**
**रत्नोदञ्चत्किरणनिकरा रङ्गिणः पादरक्षे।**
**व्याकीर्णानां नृपतिविरहाद्देवि! वर्णाश्रमाणां**
**नूनं सीमाविभजनसहं निर्ममे सूत्रपातम्॥६९॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! रत्नों से उद्गत किरणसमुदाय वाली तुम पहले कहीं भद्रपीठ (सिंहासन, कुशासन, स्थिर उन्नत प्रदेश) पर स्थित नृपति (राजा और श्रेष्ठ पुरुष) के अभाव में व्याकीर्ण = परस्पर संकीर्ण वर्णों (ब्राह्मणादि और शुक्लत्वादि) तथा आश्रमों (ब्रह्मचर्यादि और ब्राह्मणादि का घर) की सीमा = मर्यादा और अवधि के विभाग को सहने योग्य सूत्रपात (व्यवस्था, शास्त्रनिर्माण और तन्तुनिवेश) का निर्माण की थी। यहाँ राज्ञी, ऋषि और शिल्पी, इन तीनों अर्थों की विवक्षा मानकर समासोक्ति अलङ्कार होगा। राजा सिंहासन पर आसीन होकर वर्णाश्रमव्यवस्था कायम करता है, ऋषि कुशासन पर बैठकर वर्णाश्रमव्यवस्था के विषय में

सूत्रों का निर्माण करते हैं और शिल्पी किसी दृढ़ आसन पर बैठ कर परस्पर असंकीर्ण वर्ण (रङ्ग) की संरचना से संकीर्ण तन्तुओं का निवेश करता है॥६९॥

**मातर्मञ्जुस्वनपरिणतप्रार्थनावाक्यपूर्वं**
**निक्षिप्तायां त्वयि चरणयोः पादुके! रङ्गभर्तुः।**
**त्वय्यायत्तं किमपि कुशलं जानतीनां प्रजानां**
**पर्याप्तं तन्न खलु न भवत्यात्मनिक्षेपकृत्यम्॥७०॥**

हे मातः पादुके! मनोहर नाद से प्रयुक्त 'हे स्वामिन्! आप पादुका में आरूढ होइये, इस तरह के सविनय वाक्य से अर्चक द्वारा जब आप श्रीरङ्गनाथजी के चरणों में समर्पित हो जाती हैं तब कोई विलक्षण कुशल (चरण और संसारनिवृत्ति) आपके ही अधीन है, ऐसा समझने वाली प्रजाओं का स्वात्मसमर्पण कार्य (प्रपत्ति) होता ही है॥७०॥

**नित्यं रङ्गक्षितिपतिपदन्यासधन्यात्मनस्ते**
**शिञ्जानादं श्रवणमधुरं पादुके! दीर्घयन्तः।**
**काले तस्मिन् करणविगमक्लेशजातं विहन्युः**
**संतापं नस्तरुणतुलसीगन्धिनो गन्धवाहाः॥७१॥**

हे पादुके! नित्य ही श्रीरङ्गनाथजी के चरण के विन्यास (स्थापन) से कृतार्थ शरीर वाली आपके कानों में मधुर लगने वाले भीतरी मणियों के कलरव का विस्तार करने वाले तथा तरुण (सुकुमार) तुलसी के गन्ध वाले मन्द पवन हमारे अन्तिम काल में होने वाले इन्द्रियों के नाश से जायमान सन्ताप को शान्त करें॥७१॥

**संसाराध्वश्रमपरिणतं संश्रितानां जनानां**
**तापं सद्यः शमयितुमलं शार्ङ्गिणः पादुके! त्वम्।**
**चन्द्रापीडे प्रणमति नवां चन्द्रिकामापिबद्भि-**
**र्धारानिर्यत्सलिलकणिकाशीकरैश्चन्द्रकान्तैः॥७२॥**

हे शार्ङ्गधन्वा श्रीभगवान् की पादुके! जब चन्द्रापीड अर्थात् भगवान् शिव आपको प्रणाम करते हैं तब उनके मस्तक में विद्यमान चन्द्र की नयी चन्द्रिका का पान करने वाले तथा धारारूप से निकलने वाले जलबिन्दुओं से रमणीय हुए 'चन्द्रकान्त' मणियों से आप अपने आश्रितजनों के संसारमार्ग में जायमान श्रम से उत्पन्न आध्यात्मिकादि ताप को तत्काल शान्त कर देने में समर्थ हैं। यहाँ जलकणिका के संसर्ग का तापापनोदन में हेतु होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥७२॥

**वज्रोपेतां बलभिदुपलश्यामलां मञ्जुघोषां**
**मुक्तासारां मधुरचपलां वीक्ष्य विष्णोः पदे त्वाम्।**
**हर्षोत्कर्षादुपरि चलयन् पादुके! चन्द्रकान्तं**
**धत्ते नित्यं धृतघनरुचिस्ताण्डवं नीलकण्ठः॥७३॥**

हे पादुके! घन = परिपूर्ण कान्ति को धारण करने वाले शिवरूपी मेघ में प्रीति रखने वाला मयूर हीरे (वज्र) से युक्त, इन्द्रनीलमणि से श्यामवर्ण वाली, मधुर कलकलों से युक्त, मोतियों से उत्कृष्ट, रमणीय और चञ्चल श्रीविष्णु के चरणों में तुझ पादुकारूपिणी अशनि (वज्र) से युक्त, इन्द्रनील के समान श्यामल, मधुर गर्जना से युक्त, वर्षा करने वाली (मुक्तासारा), मधुर चपलाओं = विजुलियों वाली श्रीविष्णु के पद = आकाश में मेघमाला को देखकर अपार हर्ष के कारण अपने ऊपर चन्द्रक = बालचन्द्र के अग्रभाग रूपी बर्ह (पिच्छ) के अग्रभाग को धीरे-धीरे हिलाता हुआ नित्य ताण्डव = नर्तन करता है। यहाँ श्लेष के माध्यम से शिव और मयूर तथा पादुका और मेघमाला का अभेदाध्यवसाय है अतः श्लेषानुप्राणित एकदेशविवर्ति रूपक अलङ्कार है क्योंकि 'मेघमाला' के वाचक पद का अभाव है॥७३॥

**श्रीरङ्गेन्दोश्चरणकमलं तादृशं धारयन्ती**
**काले काले सह कमलया क्लृप्तयात्रोत्सवश्रीः।**

**गत्वा गत्वा स्वयमनुगृहं द्वारमुन्निद्रनादा**
**पौरान्नित्यं किमपि कुशलं पादुके! पृच्छसीव॥७४॥**

हे पादुके! समय-समय पर कमला (लक्ष्मी) के साथ यात्रोत्सव की शोभा का सम्पादन करने वाली तथा श्रीरङ्गनाथजी के उस लोकोत्तर चरणकमल को धारण करती हुई तुम हर भवनों के दरवाजे पर जा-जाकर प्रबुद्ध नादों से संपृक्त हुई मानो पुर में रहने वाले जनों से नित्य ही कोई कुशल-क्षेम पूछा करती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥७४॥

**चतुरविहारिणीं रुचिरपक्षरुचिं भवतीं**
**मनसिजसायकासनगुणोचितमञ्जुरवाम्।**
**अनुपदमाद्रियेमहि महेन्द्रशिलामहितां**
**हरिचरणारविन्दमकरन्दमधुव्रतिकाम्॥७५॥**

हे पादुके! चमत्कार से पूर्ण लीलासंचार करने वाली, मनोरम पक्षों (पार्श्वभाग और पंख) की कान्ति से युक्त, काम के धनुष की प्रत्यञ्चा (डोरी) के योग्य मञ्जुल नादों वाली, 'इन्द्रनील' मणियों से अभ्यर्हित और श्रीहरि के चरणाविन्द के मकरन्द (सार) को ग्रहण करने वाली आप भ्रमरी ही है, अतः हम आप का बहुत आदर करते हैं। यहाँ 'मकरन्द' पद से श्रीभगवच्चरणों का सुखस्पर्शादि गुण ही अभेदरूप से अध्यवसित है। रूपक अलङ्कार॥७५॥

**कनकरुचा जटामुरगमौलिमणीन् मणिभि-**
**स्त्रिदिवतरङ्गिणीं सरलमौक्तिकदीधितिभिः।**
**कुटिलतया क्वचिच्छशिकलामधरीकुरुषे**
**मुररिपुपादुके! पुरभिदः शिरसा विधृता॥७६॥**

हे श्रीमुरारि की पादुके! तुम त्रिपुरारि के मस्तक से धारण की हुई अपनी सुवर्णकान्ति से उनकी जटा को मणियों के द्वारा उनके साँपों की मणियों को, अपनी सरल मोतियों की कान्तियों से उनकी

गङ्गाजी को तथा कहीं पर अपनी कुटिलता (वक्रता) से चन्द्रकला को नीचे कर देती हो। अनेकों प्राकरणिक पदार्थों का एक धर्म से सम्बन्ध होने के कारण तुल्ययोगिता अलङ्कार तथा उपमानों का उपमेयों से तिरस्कार होने से प्रतीप-अलङ्कार का साङ्कर्य है। तथा च, एक ही पादुका सारे भूषणों के रूपों में व्यवस्थित होती है, अतः शिव के अलङ्कारों से आधिक्य होने के कारण व्यतिरेकालङ्कार भी है।।७६।।

**काले तल्पभुजङ्गमस्य भजतः काष्ठां गतां शेषतां**
**मूर्तिं कामपि वेद्मि रङ्गनृपतेश्चित्रां पदत्रद्वयीम्।**
**सेवानम्रसुरासुरेन्द्रमकुटीशेषापटीसंगमे**
**मुक्ताचन्द्रिकयेव या प्रथयते निर्मोकयोगं पुनः।।७७।।**

श्रीरङ्गनाथजी की आश्चर्य पैदा करने वाली दोनों पादुकाओं को मैं संचार के समय परम अवधि को प्राप्त शेषता (दासत्व और शेषनागत्व) को स्वीकार करने वाले शय्याभुजङ्ग (शेष) की कोई लोकोत्तर मूर्त्ति की समझता हूँ। वे दोनों पादुकायें सेवा के कार्य में विनम्र श्रेष्ठ देवताओं और असुरों के मुकुट बनी शेषापटी (पगड़ी) के सङ्गम में मानो मोतियों की चन्द्रिका से पुनः निर्मोक (केचुल) के संसर्ग को प्रख्यापित करती हैं। मौक्तिकप्रभा के निचय से पहले निर्मोक की प्रतीति हुई तथा शेषापटी के संसर्ग से पुनः अन्य निर्मोक का संसर्ग प्रतीत होता है, यह अभिप्राय है। उत्प्रेक्षा से संसृष्ट अनुमान अलङ्कार।।७७।।

**चन्द्रापीडशिखण्डचन्द्रशिखरच्योतत्सुधानिर्झर-**
**स्तोकाश्लिष्टसुरेन्द्रशेखररजःस्त्यानां स्तुमः पादुकाम्।**
**ब्रह्मस्तम्बविभक्तसीमविविधक्षेत्रज्ञ सर्गस्थिति-**
**ध्वंसानुग्रहनिग्रहप्रणयिनी या सा क्रिया रङ्गिणः।।७८।।**

चन्द्रापीड अर्थात् भगवान् शिव के शिखागत चन्द्र के अग्रभाग से निकलने वाले अमृतप्रवाह के लेश (अल्पता) से संसक्त

देवमस्तकमालापरागों से घनीभूत हुई उस पादुका की हम स्तुति करते हैं जो पादुका श्रीरङ्गनाथजी की वह प्रसिद्ध क्रिया (लीलासंकल्प) है जो ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब (तृणभेद) तक के उत्कर्ष-अपकर्ष से युक्त पूर्व पुण्य-पापों के तारतम्य से नाना प्रकारों वाले क्षेत्रज्ञ = जीवात्मा के सर्ग, पालन और प्रलय तथा अनुग्रह (पुण्यफलों का दान और निग्रह (पापफलों का दान) करती है॥७८॥

**लक्ष्मीनूपुरशिञ्जितेन गुणितं नादं तवाकर्णय-**
**न्नाजिघ्रन्निगमान्तगन्धतुलसीदामोत्थितं सौरभम्।**
**काले कुत्रचिदागतं करुणया सार्धं त्वया चाग्रतः**
**पश्येयं मणिपादुके! परतरं पद्मेक्षणं दैवतम्॥७९॥**

हे मणिपादुके! लक्ष्मीजी के नूपुर के कलकल नाद से परिपुष्ट तेरे नाद को सुनता हुआ और वेदान्त के सौरभ के समान सौरभ वाली तुलसीमाला से निकलने वाले तेरे उस गन्ध को सूँघता हुआ मैं अपने अन्तिम समय में दया और तुम्हारे साथ आये हुए कमलनयन परमदैवत श्रीरङ्गनाथजी को अपने सामने देखना चाहता हूँ॥७९॥

**वहति क्षितिव्यवहिता सोऽपि त्वां गतिषु पादुके! रङ्गी।**
**कमठपतिभुजगपरिवृढकरिवरकुलशिखरिभूमिकाभेदैः॥८०॥**

हे पादुके! तुम्हारे द्वारा धारित होते हुए भी वे श्रीरङ्गनाथजी संचारों में भूमि से व्यवधानयुक्त तुम्हारा ही वहन कूर्म, शेष, दिग्गज, कुलपर्वत रूप अन्यान्य मूर्तियों से करते हैं। परस्पर के धारण के कारण पारस्परिक उपकार का वर्णन होने से 'अन्योन्य' नामक अलङ्कार है। जैसा कि लक्षण है—

'अन्योन्यं नाम यत्र स्यादुपकारः परस्परम्'॥८०॥

●

# अथ चित्रपद्धतिस्त्रिंशी

इस पद्धति में पादुका को अभिलक्षित करके शब्दचित्रप्रधान श्लोक हैं। अर्थचमत्कार के अभाव में ऐसे काव्यों को कुछ आचार्य काव्य ही नहीं मानते तथापि भारवि-माघ आदि महाकवियों के काव्यों में ऐसे श्लोक भी दिखायी देते हैं। उसी अनुरोध से यहाँ भी चित्रकाव्यों की झाँकी प्रस्तुत कर दी गयी है।

**प्रतिष्ठां सर्वचित्राणां प्रपद्ये मणिपादुकाम्।**
**विचित्रजगदाधारो विष्णुर्यत्र प्रतिष्ठितः॥१॥**

सारे चित्रों ('चित्र' शब्द से यहाँ चित्रवर्णों वाले रत्न, पादुका में रचित शङ्ख, पद्म आदि आलेख्य, अनुप्रासादि शब्दालङ्कार, उपमा आदि अर्थचित्रात्मक अर्थालङ्कार तथा अन्य आश्चर्यकृत्य भी विवक्षित हैं) की प्रतिष्ठा के रूप में विद्यमान मणिपादुका की शरण में मैं हूँ जिसके ऊपर विचित्र संसार के आधार श्रीविष्णु प्रतिष्ठित हैं। जो पादुका विचित्र प्रपञ्च के आधार श्रीविष्णु का भी आधार है वह सारे चित्रों का आधार होगी ही। इस श्लोक से यह सूचित कर दिया गया है कि इस पद्धति में चित्रता ही विराजमान रहेगी। इसीलिए मुद्रालङ्कार है। सम और अनुप्रास तो है ही॥१॥

**शृणु ते पादुके! चित्रं चित्राभिर्मणिभिर्विभोः।**
**युगक्रमभुवो वर्णान् युगपद्वहसे स्वयम्॥२॥**

हे पादुके! तुम अपने चित्र = शब्दचित्र-अर्थचित्र आश्चर्यकृत्य आदि को स्वयं देखो! जो तुम नाना वर्णों वाली मणियों से श्रीरङ्गनाथजी के सत्य-त्रेता-द्वापर और कलियुगों के क्रम से होने वाले शुक्ल आदि वर्णों को स्वयं एक साथ धारण करती हो। अपि

च, युग अर्थात् यमक आदि में आवृत्ति से युक्त (युगल) क्रम से जायमान अक्षरों को धारण करती हो। हर युग में भगवान् भिन्न-भिन्न वर्णों को धारण करते हैं जैसा कि श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः।
शुक्लोरक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥

यहाँ शृणु और ते को मिला देंगे तो 'शृणुते', इस आत्मनेपदी क्रिया का भ्रम होगा अतः अपशब्दाभास नामक शब्दचित्र अलङ्कार है॥२॥

**सुरासुरार्चिता धन्या तुङ्गमङ्गलपालिका।**
**चराचराश्रिता मान्या रङ्गपुङ्गवपादुका॥३॥**

देवों और असुरों से पूजित, धन्य अर्थात् धन को प्राप्त कर लेने वाली, उत्कृष्ट श्रेय का पालन करने वाली, चराचर जगत् से आश्रित और मान्य श्रीरङ्गनाथ जी की पादुका है। गोमूत्रिका के समान वक्र गति से वाचन होने के कारण यहाँ गोमूत्रिकाबन्ध है॥३॥

**पद्मेव मङ्गलसरित् पारं संसारसंततेः।**
**दुरितक्षेपिका भूयात् पादुका रङ्गभूपतेः॥४॥**

श्रीरङ्गनाथजी की वह पादुका पापों को दूर करने वाली हो जो लक्ष्मी के समान माङ्गल्य की तरङ्गिणी (नदी) और संसारसागर की तारिका है। यहाँ आदितः तीनों पादों में चतुर्थ पाद के अक्षर छिपे हुए हैं अतः गूढचतुर्थ नामक शब्दचित्र है। तथा हि—परम् का पा, दुरित का टु, क्षेपिका का का, पारम् का रम्, मङ्गल का ग, भूयात् का भू, पद्मा का प और संततेः का तेः लेकर चौथे पाद का उद्धार हो जायेगा॥४॥

**अनन्यशरणः सीदन्ननन्तक्लेशसागरे।**
**शरणं चरणत्राणं रङ्गनाथस्य संश्रये॥५॥**

अनन्त दुःखों के समुद्र में क्लेश पाता हुआ और अन्य उपायों से शून्य मैं श्रीरङ्गनाथजी की पादुका की शरण में हूँ। औष्ठ्य वर्णों से शून्य यह श्लोक है।।५।।

**प्रतिभायाः परं तत्त्वं बिभ्रती पद्मलोचनम्।**
**पश्चिमायामवस्थायां पादुके! मुह्यतो मम।।६।।**

हे पादुके! पुण्डरीकाक्ष श्रीनारायण रूप परम तत्त्व को धारण करने वाली तुम अन्तिम अवस्था में मोहग्रस्त हुए मेरे सामने प्रतिभासित होना! क्रियावञ्चन नामक प्रहेलिका यहाँ है क्योंकि 'प्रतिभायाः' यह पद षष्ठ्यन्त और प्रतिपूर्वक 'भा दीप्तौ धातु का लोट्मध्यमैकवचनान्त है।।६।।

**यामः श्रयति यां धत्ते यैन यात्याय याच्च या।**
**यास्य मानाय यै वान्या सा मामवतु पादुका।।७।।**

पदच्छेद—याम् अः श्रयति। या अम् धत्ते। या एन याति। आय या। आत् च या। या अस्य मानाय। या ए वान्या। श्रीविष्णु (अ) जिस पादुका को और जो पादुका विष्णु को धारण करती है तथा जो विष्णु से गमन करती है एवं जो विष्णु के लिए है एवं विष्णु से ही जायमान है तथा जो विष्णु की पूजा के लिए है तथा जो विष्णु के विषय में पूजार्थ है वह पादुका मेरी रक्षा करे! यहाँ 'अ' शब्द की सातों विभक्तियों का प्रयोग है।।७।।

**चर्या नः शौरिपादु त्वं प्रायश्चित्तेष्वनुत्तमा।**
**निवेश्यसे ततः सद्भिः प्रायश्चित्तेष्वनुत्तमा।।८।।**

हे श्रीकृष्ण की पादुके! तुम हम जैसे लोगों के प्रायश्चित्तों में अत्युत्कृष्ट क्रिया हो, इसलिए प्रायः अनिरस्त लक्ष्मी वाली होकर साधुजनों के द्वारा चित्तों में निवेशित होती हो। अनुत्ता मा लक्ष्मीर्यया सा अनुत्तमा, अनिरस्तलक्ष्मी का और न विद्यते उत्तमं यस्याः सा, यह दो अर्थ 'अनुत्तमा' पद का यहाँ है। पादावृत्तियमक अलङ्कार।।८।।

**रामपादगता भासा साभातागदपामरा।**
**कादुपानञ्चकासह्या ह्यास काञ्चनपादुका॥९॥**

अन्वय—रामपादगता अगदपामरा भासा कासह्या सा काञ्चनपादुका कात् उपानञ्च भाता आस हि।

श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में समर्पित हुई, विरोधियों से शून्य देवताओं वाली (अगदपा अविरोधिनः अमरा यस्याः) दीप्ति से क = सूर्य के लिए भी असह्य वह प्रसिद्ध सुवर्णमयी पादुका ब्रह्मा के पास से आयी (उपानञ्च = उपपूर्वक 'अञ्च' धातु के लिट् का रूप) तथा विदित हुई। यमक अलङ्कार॥९॥

**बाढाघालीझाटतुच्छे गाथाभानाय फुल्लखे।**
**समाधौ शठजिच्चूडां वृणोषि हरिपादुके॥१०॥**

हे श्रीहरि की पादुके! दृढ़ अघों अर्थात् व्यसनों की श्रेणी के संसर्ग (झाट) से शून्य अथवा दृढ़ पापों के समुदाय रूपी वन (झाट) से शून्य अर्थात् अनिवर्तनीय पापों से रहित तथा द्राविडोपनिषत् की गाथाओं (पद्य) के भान के लिए विकसित मानस (उत्फुल्लख) वाली तुम समाधि में श्रीशठकोप मुनि की शिखा का वरण करती हो। योगनिष्ठ श्रीशठकोपमुनि पादुका को मस्तक से धारण करते हैं, यह अभिप्राय है। यहाँ अपुनरुक्तव्यञ्जन नामक शब्दचित्र है॥१०॥

**सा भूपा रामपारस्था विभूपास्तिसपारता।**
**तारपा सकृपा दुष्टिपूरपा रामपादुका॥११॥**

वह श्रीरामचन्द्र की पादुका भूपा = भू की रक्षा करने वाली, रामरूप मर्यादास्थापक (पार) में स्थित, विभु श्रीभगवान् की उपास्ति = उपासना की उत्तरावधिसम्बन्धभूता अर्थात् भगवान् की उपासना का फल, कण्टकनिवृत्ति के द्वारा तारपा = प्रणव (तार) से प्रतिपाद्य परब्रह्म की रक्षिका, कृपा से युक्त तथा दोष के प्रवाह का पान करने वाली (दुष्टिपूरपा) है। मुरजबन्ध॥११॥

**कारिका न न यात्राया या गेयास्यस्य भानुभा।**
**पादपा हह सिद्धासि यज्ञाय मम साञ्जसा॥१२॥**

यात्रा अर्थात् संचार की कारिका नहीं हो, ऐसी बात नहीं अर्थात् कारिका ही तुम इस विष्णु की पादुका हो तथा सूर्य की कान्ति की तरह ही गान के योग्य हो एवं मेरे यज्ञ अर्थात् आराधन के लिए मुझे शीघ्र प्राप्त हुई हो। यह अनतिरिक्तपदपदार्थानुलोम-प्रतिलोम नामक शब्दचित्र है अर्थात्—

साञ्जसा मम यज्ञाय सिद्धासि हह पादपा।
भानुभास्यस्य या गेया यात्राया न न कारिका॥

इस विपरीतक्रम से पढ़ने पर वही अर्थ निकलता है॥१२॥

**सराघवा श्रुतौ दृष्टा पादुका सनृपासना।**
**सलाघवा गतौ श्लिष्टा स्वादुर्मे सदुपासना॥१३॥**

राघव के सहित, वेद में दृष्ट = ज्ञात, राम के वनगमन के समय राजासन वाली, गति अर्थात् श्रीभगवान् के संचार के समय शीघ्रता करने वाली (सराघवा, र-ल के अभेद से सलाघवा), परस्पर संश्लिष्ट और सत्पुरुषों की उपास्य वह पादुका मेरे लिए स्वादु है। 'शरबन्ध' नामक शब्दचित्र यहाँ पर है॥१३॥

**काव्यायास्थित मावर्गव्याजयातगमार्गका।**
**कामदा जगतः स्थित्यै रङ्गपुङ्गवपादुका॥१४॥**

मा अर्थात् लक्ष्मी के आवर्ग = आवर्जन में व्याज (निमित्त) होने वाले संचार (यात) को प्राप्त होने वाले अल्प मार्ग वाली, कामनाओं को प्रदान करने वाली (कामदा) श्रीरङ्गनाथजी की पादुका जगत् की रक्षा के लिए और रामायण-पादुकासहस्र आदि काव्य के लिए स्थित रही। गरुडगतिचक्रबन्ध॥१४॥

**सुरकार्यकरी देवी रङ्गधुर्यस्य (सु)पादुका।**
**कामदा कलितादेशा चरन्ती साधुवर्त्मसु॥१५॥**

वह श्रीरङ्गनाथजी की पादुका देवताओं के यावत् कार्यों को करती है। वह दीप्ति से पूर्ण, कामनाओं को देने वाली, श्रुतिस्मृति रूप भगवदाज्ञा को धारण करने वाली तथा सन्मार्ग में ही चलती रहती है। द्विशृङ्गाटकचक्रबन्ध नामक शब्दचित्र॥१५॥

**भरताराधितां तारां वन्दे राघवपादुकाम्।**
**भवतापाधितान्तानां वन्द्यां राजीवमेदुराम्॥१६॥**

श्रीभरतजी के द्वारा आराध्य, तारा अर्थात् उत्कृष्ट, सांसारिक ताप और आधि = मनोव्यया से तान्त = खिन्न पुरुषों की वन्दनीय तथा पूजा में समर्पित कमलों से सघन हुई श्रीराघव की पादुका की मैं स्तुति करता हूँ। द्विचतुष्कचक्रबन्ध॥१६॥

**कादुपास्यसदालोका कालोदाहृतदामका।**
**कामदाध्वरिरंसाकाकासा रङ्गेशपादुका॥१७॥**

कं जलमत्तीति कात् ऋषिः। ऋषियों की आराध्य, विद्यमान प्रकाश वाली, समय पर समर्प्यमाण पुष्पमालाओं वाली, सेवकों के अभीष्ट को देने वाली, मार्ग में रिरंसा (रमण की इच्छा) से पूर्ण तथा अ = श्रीविष्णु के कास = गति के समान गति वाली श्रीरङ्गनाथजी की वह पादुका है। चतुररचक्रबन्ध॥१७॥

**पापाकूपारपालीपा त्रीपादीपादपादपा।**
**कृपारूपाजपालापास्वापामापान्नृपाधिपा॥१८॥**

पापों के अकूपार = समुद्र की श्रेणी का पान कर लेने वाली, त्रिपादी = परमपद प्राप्त हुए श्रीविष्णु के पादों (चरण) की रक्षा करने वाली, कृपामयी, जप के समान आलाप = कीर्तन का विषय, सुखपूर्वक प्राप्त कर लेने योग्य, राजाओं की स्वामिनी वह पादुका मेरी रक्षा की है। सकर्णिकषोडशदलपद्म॥१८॥

**स्थिरागसां सदाराध्या विहताकततामता।**
**सत्पादुके सरासा मा रङ्गराजपदं नय॥१९॥**

हे सत् अर्थात् पर ब्रह्म की पादुके! दृढ़ अपराध वालों के लिए सदैव आराध्य (ऐसे लोग यदि पादुका से भी विमुख हो जाँय तो कैसे उद्धार संभव है?), अक-तत = दुःखसमुदाय और अमत = अनिष्ट को नष्ट कर देने वाली और रास के सहित अर्थात् शब्दों से युक्त वह पादुका मुझे श्रीरङ्गनाथजी के चरणपङ्कज की प्राप्ति कराये!।।१९।।

**स्थिता समयराजत्यागतरा मादके गवि।**
**दुरंहसां सन्नतादा साध्यातापकरासरा।।२०।।**

शिष्टाचार रूप समय से सुशोभित लोगों की रक्षा करने वाली, आगतरा अर्थात् प्राप्त सुवर्णादि ऐश्वर्य वाली, मादक = सन्तोषदायक किरणों में स्थित, दुष्ट पापों से संबद्ध जनों की सन्नता = अवसाद (पीडा) का खण्डन करने वाली, उत्पाद्य अताप = तापाभाव वाली किरणों से युक्त और आसरा = सारे लोकों में स्वेच्छापूर्वक विचरण करने वाली वह पादुका श्रीहरि के चरणों की प्राप्ति कराये!।। चतुरङ्गतुरङ्गपदबन्ध नामक चित्रबन्ध।।२०।।

**लोकताराकामचारा कविराजदुरावचा।**
**तारागतेपादराम राजते रामपादुका।।२१।।**

लोकों को तारने वाले और आकाम् = सर्वजनाभिलषणीय संचार से सम्पन्न, वाल्मीकि-व्यास आदि श्रेष्ठकवियों के द्वारा भी पूर्णतः वर्णन के अयोग्य, गमन में (गते) तारा = दीर्घनादों से युक्त, किरणों का प्रसार करने वाली (पादरा), ऐसी है (आम) श्रीराम की पादुका।। अर्धभ्रमक नामक चित्रबन्ध।।२१।।

**जयामपापामयाजयामहे दुदुहे मया।**
**महेशकाकाशहेमपादुकाममकादुपा।।२२।।**

जयामपा = अपरिपक्व उत्कर्ष वाले मुमुक्षुओं की रक्षा करने वाली, अपामया = अपगत आमयो यया अर्थात् आश्रितों के तापत्रय

को दूर कर देने वाली, अजया = अजं विष्णुं यातीति अर्थात् श्रीविष्णु के समीप जाने वाली अथवा जिसके ऊपर विजय प्राप्त करना संभव न हो ऐसी, ममत्व से शून्य पुरुषों के पास सतत गमन करने वाली (अममकात्), रुद्र (उ) की रक्षा करने वाली (उपा), महेशकाकाशहेमपादुका = महेशों के अक = असुख का नाश करने वाले श्रीविष्णु की हेमपादुका (सुवर्णपादुका) वसन्तादि-उत्सव में (महे) मेरे दोहन का विषय है अर्थात् अभीष्ट है। सर्वतोभद्रनामक शब्दचित्र॥२२॥

**पापादपापादपापापादपाददपादपा।**
**दपादपापादपादपादपा ददपादपा॥२३॥**

पदच्छेद—पापात्, अपापात्, अपापा, अपादपाददपादपा, दपादपापादपादपादपा, ददपादपा। वह पादुका अपापा = पापों से रहित, अ = विष्णु के पादों में पादों = किरणों को प्रदान करने वालों की किरणों की रक्षा करती है, दपाद (द=रक्षण के सम्पादक दं पादयतीति) और पापाद (पापों के अपनोदक पापमादयतीति) पाद (चरण) हों जिसके ऐसे विष्णु के पादों की रक्षा करने वाली तथा ददपादपा = दद अर्थात् पादुकासमर्पकों के विषय में पात् = रक्षा करते अप् = अभिषेक जल हों जिसके ऐसी पादुका मुझे पाप से रक्षा की थी (अपापात्, 'पा' धातु का यङ्लुगन्तरूप) द्व्यज्झल्विषम-यमकसर्वतोभद्रनामक चित्रबन्ध॥२३॥

**कोपोद्दीपकपापेऽपि कृपापाकोपपादिका।**
**पूदपादोदकापादोद्दीपिका कापि पादुका॥२४॥**

श्रीभगवान् के क्रोध को उद्दीप्त करने वाले पापों से युक्त जन में भी कृपापाक = श्रीभगवान् के अनुग्रह के फल का सम्पादन करने वाली तथा पूद = 'पूञ् पवने' धातु के अर्थ पावनत्व को देने वाला पादोदक = गङ्गाजल वाले श्रीहरि के पाद = चरण की उद्दीपिका कोई लोकोत्तर पादुका है। त्र्यक्षरश्लोक॥२४॥

**ततातत्तातितत्तेता तातत्तीतेतितातितुत्।**
**तत्तत्तत्ताततितता ततेतातेततातुता॥२५॥**

पदच्छेद—ततातत्ता, अतितत्तेता, तातति, इतेतितातितुत्, तत्तत्ताततितता, तता, इतातेततातुता।

विस्तृत है अतत्ता = सतत गमन जिसकी ऐसी पादुका। पुनः अतितत्ता से सङ्गत (इता) अर्थात् अतिक्रान्तब्रह्मत्व से सङ्गत, प्राप्त ईति (पीडा) वालों की पीडा को समाप्त करने वाली, उन उन वस्तुओं के तत्ता अर्थात् तद्भाव की तति (विस्तार) से तता अर्थात् व्याप्त अर्थात् सारे वस्तुओं की सत्ता को अपने अधीन कर लेने वाली, विस्तृत (तता), इ = काम के तात = जनक विष्णु से संगत तातुता = पादुका पिता की तरह आचरण करती है (तातति)॥ एकव्यञ्जनक श्लोक॥२५॥

**यायायायायायायायायायायायायायायाया।**
**यायायायायायायायाया यायायायायायाया॥२६॥**

पदच्छेद = यायाया, आय, आयाय, अयाय, अयाय, अयाय, अयाया, यायाय, आयायाय, आयाया, या, या, या, या, या, या, या, या।

यायाया = अन्य देश की प्राप्ति कराने वाली पादुका आय = विष्णु के लिए है। जो पादुका आयाय = स्वामी के ग्राह्य भाग के लिए है। जो पादुका अयाय = शुभकारी भविष्य के लिए है। जो पादुका अयाय = ज्ञान के लिए है। जो पादुका अयाय = इच्छा के लिए है। जो पादुका अयाय = विरोधियों को समाप्त करने के लिए है और जो अयाया = विष्णु को प्राप्त हुई है। जो पादुका यायाय = गमन के लिए है तथा जो पादुका आयायाय = आगमन के लिए है। जो पादुका आयाया अर्थात् आय (द्रव्यलाभ) की आया = प्राप्तिस्वरूप है वही पादुका विष्णु के लिए है, ऐसा पूर्व से

ही अन्वय है। चौथे पाद के सारे 'या-या' पद सर्वत्र अन्वित हैं। एकस्वरव्यञ्जनरूप बन्ध तथा विद्युन्माला छन्द है।।२६।।

**रघुपतिचरणावनी तदा विरचितसंचरणा वनीपथे।**
**कृतपरिचरणावनीपकैर्निगममुखैश्च रणावनीं गता।।२७।।**

विश्वामित्रजी के साथ सिद्धाश्रम में जाते समय वनमार्ग में संचार का सम्पादन करने वाली तथा युद्धभूमि में गयी श्रीरघुनाथजी की पादुका वनीपक अर्थात् याचकों और वेदों को धारण करने वाले गौतम आदि मुनियों के द्वारा पूजित हुई थी। प्रतिपाद भागावृत्तिनामक यमक है क्यों 'चरणावनी' हर पादों में आया है।।२७।।

**दत्तकेलिं जगत्कल्पनानाटिकारङ्गिणारङ्गिणा रङ्गिणारङ्गिणा।**
**तादृशे गाधिपुत्राध्वरे त्वां विनापादुका पादुका पादुकापादुका।।२८।।**

पदच्छेद—दत्तकेलिम्, जगत्कल्पनानाटिकारङ्गिणा, अरङ्गिणा रङ्गिणा, अरङ्गिणा। तादृशे गाधिपुत्राध्वरे, त्वां, विना, अपात्, उ, का, पादुका, पादुकापादुका।

हे पादु अर्थात् पादुके! संसार की कल्पना = सृष्टि रूप नाटिका के रङ्गी = प्रवर्तक, अरङ्गी = अविद्यमान नट वाले श्रीरङ्गनाथरूप रङ्गी = नट के द्वारा प्रदत्त केलि=लीला वाली तुम्हारे विना उस प्रकार के प्रसिद्ध विश्वामित्र के यज्ञ में क = सुख की आपादुका = संपादन करने वाली पादुका कौन पादुका रक्षा की थी? अर्थात् तुम ही विश्वामित्र और उनके यज्ञ की मारीच आदि से रक्षा की थी। पादभागचतुरावृत्ति यमकों की संसृष्टि।।२८।।

**पादपापादपापादपापादपा पादपा पादपापादपापादपा।**
**पादपापादपापादपापादपापाद्पापादपापादपापादपा।।२९।।**

पदच्छेद—पादपापादपापादपापाद्पा पादपा, अपादपा, पादपापादपा, पादपापादपापादपा पादपापात्, अपापादपापा, आदपापादपा।

पादपान् स्थावरान् अपादपान् जङ्गमान् प्राणिन आपद्यत इति पादपापादपापादम्, तच्च पापम्, तदन्तीति पापादः आपो यस्याः सा पादपापादपापादपापादपा अर्थात् स्थावर-जङ्गम प्राणियों के पापों का नाश करने वाले अभिषेक जल से युक्त और पाद = त्रिपाद्भूति की अपेक्षा चतुर्थांश की रक्षा करने वाली (पादपा), अपाद अर्थात् पादभिन्न नित्यविभूति की रक्षा करने वाली (अपादपा), पद = इन्द्रादि के स्थान में अधिकृत इन्द्र आदि की रक्षा करने वाले पादप अ = श्रीविष्णु के पादों की रक्षा करने वाली (पादपापादपा), पद = रक्षण के सम्बन्धी पाद (पिता आदि) के पापात् = अत्यन्त रक्षक और अपापात् = अत्यन्त अरक्षक अर्थात् माता-पिता-गुरु आदि के विषय में रक्षकों और अरक्षकों में क्रमशः अपापात् = शुभ संकल्पवाली (पापमततीति पापात् तद्भिन्ना अपापात्) और अपापात् अपाप अर्थात् पुष्प की नाशिका (अपापमत्तीति) तात्पर्य यह है कि वृद्ध सेवकों का कल्याण और वृद्धों के असेवकों का अकल्याण पादुका करती है—पादपापादपापादपापादपापात्। अ=विष्णु का अत्यधिक पान करने वाले भगवदनुभवशील पुरुष अपापास्तान् दायन्ति शोधयन्तीति अपापादाः = शमदम आदि गुणों की पुनः पुनः रक्षा करने वाली (पापाति)-अपापाद पापा। आद्यन्ति खण्डयन्तीति आदाः = आश्रितों के विरोधी जिनको शोषित करने वाली (पान्ति) = आदपा अर्थात् विरोधियों को दूर करने वाले। आदपा एव पादाः किरणास्तान् पाति रक्षति अर्थात् अपनी किरणों के प्रसार से पादुका विरोधियों को पराभूत कर देती है आदपापादपा। स्रग्विणी छन्द और षोडशावृत्ति यमक द्व्यज्झल्कश्लोक अष्टदलपद्मादिबन्ध की संसृष्टि॥२९॥

**साकेतत्राणवेलाजनिततनिजप्राङ्क्णश्रीप्रभासा**
**साभा प्रश्रीरटव्यामियममयमिव्यापदुच्छेदिलासा।**
**सालादिच्छेदतिग्माहवरुरुरुवहह्लीकरस्यामरासा**
**सा रामस्याङ्घ्रिमभ्याजति न न नतिजस्थूलमुत्त्रातके सा॥३०॥**

साकेत = अयोध्या की रक्षा के समय अपने प्राङ्गण में विस्तृत सम्पत्तिप्रकाश को उत्पादित करने वाली, आभा (कान्ति) के सहित, त्रयीरूप प्रकृष्ट लक्ष्मी वाली (प्रश्रीः) अर्थात् वेदत्रयी की प्रतिपाद्य, अटवी = ताटकावन में अमम = ममत्वशून्य यमी = मुनियों के विविध विपत्तियों का छेदन करने वाले विलासों से युक्त, अपक्व रास (शब्द) को निरस्त करने वाली (आमरासासा आमरासमस्यतीति), अर्थात् अपने सेवकों के अपक्व शब्दों को दूर करती हुई सारस्वत सम्पत्ति देने वाली वह प्रसिद्ध यह पादुका सार (रत्न के अभेद होने के कारण) अर्थात् बल और 'आदि' पद से धनुष के भङ्ग में तिग्म = तीक्ष्ण युद्धप्रवृत्तहुङ्कार शब्द (आहव-रु) से रुरुवह = मृग को धारण करने वाले हर के ह्रीकर = लज्जोत्पादक (शिव के बल और धनुष के भङ्ग के लिए श्रीविष्णु के हुङ्कार से शिव लज्जित हो गये थे, ऐसा रामायण में प्रसिद्ध है) श्रीरामचन्द्रजी के उत्कर्ष से अनुकम्पनीय विषय (उत्त्रातक) में होने वाले नमस्कार से उत्पन्न स्थूलता वाले चरण को प्रेरित नहीं करती, ऐसा नहीं है अर्थात् प्रेरित करती ही है। उनके चरण में पादुका नित्य संश्लिष्ट रहती है, यह अभिप्राय है। कविनामाङ्किताष्टदलपद्मचित्रबन्ध है क्योंकि दलों के अग्रभाग में 'वेङ्कटपतिकमलम्', यह कवि का नाम निर्दिष्ट है॥३०॥

**रम्ये वेश्मनि पापराक्षसभिदास्वासत्तधीनायिका**
**नन्तुं कर्मजदुर्मदालसधियां सा हन्त नाथीकृता।**
**सद्वाटभ्रमिकासु तापसतपोविस्त्रम्भभूयन्त्रिका**
**काचित् स्वैरगमेन केलिसमये कामव्रता पादुका॥३१॥**

पापी राक्षसों के भेदन में अत्यन्त आसक्त बुद्धि वाले श्रीरामचन्द्रजी की प्राप्ति कराने वाली (नायिका), उनके लीलासंचार में स्वेच्छापूर्वक गमन से काम्य व्रत वाली, साधुओं के आश्रमों में पुनः पुनः विहारों के विषय में तपस्वियों की तपस्या में होने वाली

एकाग्रता की भूमि (स्थान) की आश्रय यन्त्रिका वाली अतः कोई अनिर्वचनीय वैभव वाली वह पादुका रमणीय श्रीरङ्गविमान में पापों से उत्पन्न दुष्टमदों से युक्त और आलस्य से युक्त बुद्धि वाले पुरुषों के सेवन के लिए स्वामिनी बना दी गयी है। तात्पर्य यह है कि श्रीभगवान् के ज्ञान से जो शून्य हैं वे श्रीरङ्गम् में पादुका का सेवन करते हैं। वेङ्कटनाथीयं पादुकासहस्रम्', इस कविकाव्य के नाम से अङ्कित यहाँ महाचक्रनामक चित्रबन्ध है।।३१।।

**श्रीसंवेदनकर्मकृद्वसु! तव स्यामृद्धधैर्यस्फुटः**
**श्रीपादावनि! विस्तृतासि सुखिनी त्वं गेययातायना।**
**वेदान्तानुभवातिपातिसुतनुः सान्द्रेड्यभावप्रथे-**
**ऽङ्कस्था चाच्युतदिव्यदास्यसुमतिः प्राणस्थसीताधन!।।३२।।**

हे श्री = वेदत्रयी से बोध्य कर्मों को करने वालों की धन, घनी स्तुतियों की प्रसिद्धि से युक्त, प्राणों में बसी सीताजी के लिए धन की तरह उपादेय (ग्राह्य) श्रीमति! पादुके! ज्ञेय = ज्ञान के योग्य गतिमार्ग वाली (यातायनं = यातस्य अयनम्), वेदान्त के अनुभवों से भी ऊपर सुन्दर शरीर वाली, हरि के अङ्क के समान स्थित, श्रीहरि के दिव्य दास्य में शोभमान शोभन मति वाली, अत्यन्त सुखों से परिपूर्ण तुम विस्तृत अर्थात् नाना अवतारों में बहुत सी रूपों वाली हो। इसीलिए समृद्ध धैर्य से विकसित बुद्धिवाला मैं तुम्हारा दास ही रहूँ। चतुरङ्क अष्टारचक्रनामक चित्रबन्ध। यहाँ पर—

श्रीश्रीवेङ्कटनाथेन वेदान्ताचार्यतावता।
कविवादिमृगेन्द्रेण कृता पादावनीनुतिः।।

यह चारों पादों से अङ्कचतुष्टय निष्पन्न होता है।।३२।।

**कनकपीठनिविष्टतनुस्तदा सुमतिदायिनिजानुभवस्मृता।**
**विधिशिवप्रमुखैरभिवन्दिता विजयते रघुपुङ्गवपादुका।।३३।।**

उस समय (अधिकार के समय) सुवर्ण सिंहासन पर निविष्ट शरीर वाली, अपने साक्षात्कार और स्मरण से भव्य बुद्धि प्रदान करने वाली, ब्रह्मा-शिव आदि से पूजित वह श्रीरघुनाथजी की पादुका सर्वोत्कृष्ट है। भिन्नवृत्तानुलोमगोमुत्रिकाबन्ध का प्रथम श्लोक॥३३॥

**दीनगोपीजनिक्लिष्टभीनुत् सदा रामपादावनि! स्वानुभावस्थिता।**
**एधि मेऽवश्यमुत्तारभावश्रिता तेजसा तेन घुष्टिं गता पालिका॥३४॥**

हे श्रीरामचन्द्रजी की पादुके! दीन गोपियों की उत्पत्ति और क्लेश से जायमान पीड़ा को दूर करने वाली, अपनी महिमा में प्रतिष्ठित रहने वाली, संसार-सागर से पार उतारने में तत्पर, अपने प्रसिद्ध तेज से घुष्टि = प्रसिद्धि को प्राप्त हुई तुम सदा अवश्य ही मेरी रक्षिका रहो। पूर्वश्लोक के समान ही बन्ध॥३४॥

**धामनिराकृतताामसलोका धातृमुखैर्विनता निजदासैः।**
**पापमशेषमपाकुरुषे मे पादु! विभूषितराघवपादा॥३५॥**

हे पादुके! अपने तेज से आसुर स्वभाव वाले लोगों को दूर करने वाली, ब्रह्मा आदि अपने दासों से पूजित तथा श्रीरामचन्द्रजी के चरणों को अलङ्कृत करने वाली तुम मेरे सारे पापों को दूर करती रहती हो। भिन्नवृत्तिप्रतिलोमगोमुत्रिकाबन्ध का प्रथम श्लोक॥३५॥

**कृपानघत्रातसुभूरदुष्टा मेध्या रुचा पारिषदाम भूपा।**
**पदावनि स्त्यानसुखैर्नतृप्ता कान्त्या समेताधिकृतानिरोधा॥३६॥**

हे पादुके! तुम कृपापूर्वक निर्दुःखतया शुभ भूमि की रक्षा करती हो तथा दोषरहित, किरण से परिशुद्ध, जनसमाज में साधुता से सम्पन्न अर्थात् साधुओं की सभा को परिष्कृत करने वाली, पृथिवी की रक्षिका (भूपा), घने सुखों से तृप्त न होने वाली, कान्ति से युक्त, कोसल की रक्षा में अधिकृत अप्रतिहत संचारों वाली हो अतः मेरे पास आओ! (आम, आङ्पूर्वक अम गतौ धातु का लोट्मध्यमैकवचन॥३६॥

**सारससौख्यसमेता ख्याता पदपा भुवि स्वाज्ञा।**
**साहसकार्यवनाशा धीरा वसुदा नवन्यासा॥३७॥**

सारस अर्थात् पूजा में लाये गये कमलों से सुख वाली, शोभन आज्ञा वाली, साहस से पूर्ण कार्य करने वाले श्रीभरतजी की रक्षा में आशा से सम्पृक्त, धैर्ययुक्त, धन प्रदान करने वाली, नूतन न्यासों (संनिवेश) वाली पदपा = पादुका भूमि में प्रसिद्ध है। भिन्नवृत्तानुलोमप्रतिलोम का प्रथम श्लोक॥३७॥

**सान्यावनदा सुवराधीशाना वर्यका सहसा।**
**ज्ञा स्वा विभुपादपताख्याता मे सख्यसौ सरसा॥३८॥**

सान्या = सम्यक् भजन के योग्य (षण संभक्तौ = ण्यत्), अवनदा = रक्षाप्रदात्री, शीघ्र ही सुवरा = सुखपूर्वक वरण के योग्य, स्वामिनी, श्रेष्ठ सुख वाली (वर्यका), ज्ञा = ज्ञानवती, श्रीरङ्गनाथजी के चरणों की रक्षा करने से विख्यात, श्रीविष्णु को अपने अधीन रखने वाली (स्व + अ = स्वा) वह पादुका मेरी सरस सखी है। यह पूर्व श्लोक का ही प्रतिलोमतया पठनीय श्लोक है॥३८॥

**तारस्फारतरस्वररसभररा सा पदावनी सारा।**
**धीरस्वैरचरस्थिररघुपुरवासरतिरामसवा॥३९॥**

धीर, स्वैरचर = स्वच्छन्द विचरण करने वाले, स्थिर अयोध्या के निवास में प्रीति से युक्त श्रीरामचन्द्रजी प्रेर्य (सव, षूङ् प्रेरणे = अप्) हों जिसके ऐसी और तार = ऊँचे तथा स्फार = दीर्घ स्वर से अत्यधिक प्रीति प्रदान करने वाली यह प्रसिद्ध पादुका सारा अर्थात् गमन के सहित है अर्थात् आश्रितों की रक्षा हेतु गमनवती है॥ यह पादुकायुगलगर्भ कर्णिका वाला अष्टदलपद्मरूप चित्रबन्ध आचार्य के द्वारा प्रथमतः दृष्ट है॥३९॥

**चरमचरं च नियन्तुश्चरणावनिदम्परेतरा शौरेः।**
**चरमपुरुषार्थचित्त्रौ चरणावनि! दिशसि चत्वरेषु सताम्॥४०॥**

हे चरणावनि पादुके! तुम अनिदम्परेतरा = इदम्परा अर्थात् श्रीरङ्गनाथजी के चरणों को प्रदान करने में तात्पर्य वाली होती हुई चराचर जगत् = स्थावरजङ्गमात्मक संसार का नियमन करने वाले श्रीरङ्गनाथजी के उन चरणों को साधुजनों के प्राङ्गणों में सुस्थापित करती हो जो चरण चरम पुरुषार्थ मोक्ष के ज्ञान के त्राता = रक्षक हैं। यहाँ पर पादद्वयभागद्वयावृत्ति यमक है क्योंकि प्रथम-तृतीय पादों में 'चरम' तथा द्वितीय-चतुर्थ पादों में 'चरण' की आवृत्ति है॥४०॥



# अथ निर्वेदपद्धतिरेकत्रिंशी

इस पद्धति में दूसरे आलम्बन के भ्रम से जायमान अपने अपराध को पादुका के प्रति निवेदनार्थ स्तुति की गयी है। अत एव इसका नाम निर्वेदपद्धति है।

**प्रपद्ये पादुकां देवीं परविद्यामिव स्वयम्।**
**यामर्पयति दीनानां दयमानो जगद्गुरुः॥१॥**

उस देवी पादुका की शरण मैं ग्रहण करता हूँ जिसे पराविद्या की तरह दीनों पर कृपा करने वाले जगद्गुरु श्रीरङ्गनाथजी स्वयम् अर्पित करते हैं। काव्यलिङ्ग से संकीर्ण उपमा अलङ्कार॥१॥

**अपि जन्मनि पादुके! परस्मिन्ननघैः कर्मभिरीदृशो भवेयम्।**
**य इमे विनयेन रङ्गभर्तुः समये त्वां पदयोः समर्पयन्ति॥२॥**

हे पादुके! मैं अपने अनघ अर्थात् निष्कल्मष, प्रतिबन्ध रहित कर्मों से अन्य जन्म में भी इस प्रकार का ही अर्थात् तुम्हारे सेवकों के समान होना चाहता हूँ। ऐसा होना चाहता हूँ कि जैसे ये श्रीभगवत्सेवापरायण पुरुष लीलासंचार के समय विनयपूर्वक श्रीरङ्गनाथजी के चरणों में तुम्हें समर्पित करते हैं वैसा मुझे भी करें॥२॥

**परिवर्तयिता पितामहादीन् त्वमिवानन्तमसौ वहत्यनेहा।**
**अधुनापि न शौरिपादुके! त्वामनघालम्बनमभ्युपैति चित्तम्॥३॥**

हे श्रीशौरि की पादुके! तुम जैसे पितामह अर्थात् ब्रह्मा आदि को कल्पों के भेद से प्रतिष्ठापित करती हुई अनन्त अर्थात् श्रीभगवान् का वहन करती हो वैसे ही पितामह-प्रपितामह आदि का क्रमशः

निराकरण करने वाला वह अनेहा = काल भी अनन्त रूप से निरवधिक चलता रहता है। इस समय भी मेरा चित्त रमणीय आलम्बन अर्थात् ध्येयरूप से व्यवस्थित तुझे प्राप्त नहीं कर पा रहा है, यह निर्वेद ध्वनित है। पूर्वार्ध में श्लेष से अनुप्राणित उपमा।।३।।

**कमलाध्युषिते निधौ निरीहे सुलभे तिष्ठति रङ्गकोशमध्ये।**
**त्वयि तत्प्रतिलम्भने स्थितायां परमन्विच्छति पादुके! मनो मे।।४।।**

हे पादुके! कमला अर्थात् लक्ष्मी जी से अधिष्ठित, निरीह = आप्तकाम, भक्ति के द्वारा सुलभ, निधि अर्थात् निःसीमपुरुषार्थभूत श्रीरङ्गनाथजी श्रीरङ्गविमान के मध्य में विराजमान हैं और प्रत्यक्षतया उनका बोध कराने के लिए तुम भी विद्यमान हो तथापि मेरा मन पर अर्थात् अन्य क्षुद्र वस्तु की ओर दौड़ता है, इससे अधिक कष्ट की क्या बात हो सकती है? यहाँ पर श्लेष की महिमा से कमल = ताम्रपात्र में स्थित, अभिलाषाधिक्य से युक्त, गुप्तप्रदेश में स्थित और सुलभ निधि (खजाना) है तो भी किसी का मन क्षुद्रवस्तु की ओर दौड़ रहा है, इस अप्राकरणिक अर्थ की प्रतीति होने से समासोक्ति-अलङ्कार है। विषादन अलङ्कार तो है ही। जैसा कि लक्षण है—

'इष्यमाणविरुद्धार्थसंसिद्धिस्तु विषादनम्'।।४।।

**यद्यप्यहं तरलधीस्तव न स्मरेयं**
**न स्मर्तुमर्हति कथं भवती स्वयं मे।**
**वत्से विहारकुतुकं कलयत्यवस्था**
**का नाम केशवपदावनि! वत्सलायाः।।५।।**

हे श्रीकेशव की पादुके! चञ्चल बुद्धि वाला मैं यद्यपि आप का स्मरण नहीं करता। आप तो मेरा स्मरण कैसे नहीं कर सकतीं? अर्थात् अवश्य कर सकती हैं। बछड़ा इधर-उधर जब उछल-कूद करने लगता है तो पुत्रस्नेह से परिपूर्ण धेनु की क्या अवस्था होती

है? अर्थात् वह धेनु ही अनिर्वचनीय छटपटाहट वाली हो जाती है। दृष्टान्त अलङ्कार॥५॥

मातर्मुकुन्दकरुणामपि निह्नुवानात्
किं वापरं किमपि किल्बिषतो मदीयात्।
गाढं गृहीतचरणा गमनापदेशात्
तत्प्रेरणप्रणयिनी तव चेन्न लीला॥६॥

हे मातः पादुके! श्रीमुकुन्द की करुणा का भी अपलाप करने वाले मेरे पाप से ऊपर भी कोई चीज क्या हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती। कब? यदि संचार के बहाने सुदृढ़रूप से श्रीभगवान् के चरणों को पकड़ी हुई उनको प्रेरित करने में तत्पर तुम्हारी लीला नहीं होती। यदि पादुका लीलापूर्वक भगवान् के चरणों को पकड़ उन्हें सान्त्वना न देती तो पाप ही विजृम्भृत शक्ति वाला होकर सर्वोपरि रहता, यह अभिप्राय है। संभावना अलङ्कार॥६॥

क्षीबासि काञ्चनपदावनि! कैटभारेः
पादारविन्दमकरन्दनिषेवणेन।
देवि! त्वदन्तिकजुषः कथमन्यथा मे
दीनाक्षराणि न शृणोषि दयाधिका त्वम्॥७॥

हे देवि सुवर्णपादुके! कैटभ के शत्रु श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों के मकरन्द-रस का सेवन करके तुम मतवाली हो गयी हो। यदि ऐसा नहीं होता तो तुम्हारे ही पास रहने वाले मेरे दीनता से परिपूर्ण वचनों को अत्यधिक दया वाली होकर भी क्यों नहीं सुनती? अर्थापत्ति अलङ्कार॥७॥

मातस्त्वदर्पितभरस्य मुकुन्दपादे
भद्रेतराणि यदि नाम भवन्ति भूयः।
कीर्तिः प्रपन्नपरिरक्षणदीक्षितायाः
किं न त्रपेत तव काञ्चनपादरक्षे॥८॥

हे मातः सुवर्णपादुके! मेरा सारा भार तुमने श्रीकृष्ण के चरण में ही अर्पित कर दिया है उसके बाद भी बार-बार मेरे अभद्र (अशुभ) ही यदि होते हैं तो प्रपन्नों के परिपालन में नियम को स्वीकार कर लेने वाली तुम्हारी कीर्ति क्या लज्जित नहीं होगी? अर्थात् होगी ही। यहाँ अशुभोत्पत्तिरूप दोष का पादुका के दोष के रूप में वर्णन होने से उल्लास अलङ्कार है॥८॥

**दौवारिकद्विरसनप्रबलान्तरायै-**
**र्दूये पदावनि! दुराढ्यबिलप्रवेशैः।**
**तद्रङ्गधामनिरपायधनोत्तरायां**
**त्वय्येव विश्रमय मङ्क्षु मनोरथं मे॥९॥**

हे पादुके! मैं द्वारपाल रूपी द्विरसन = सर्पों के द्वारा उत्पादित प्रबल विघ्नों से युक्त, दुष्ट धनिकों के बिलों में प्रवेशों से दुःख पाता हूँ इसलिए तुम श्रीरङ्गक्षेत्र के तेज अर्थात् वहाँ निवास करने वाले भगवान् रूपी अक्षय धन से उत्कृष्ट (उत्तरा) स्वयम् में ही मेरे मनोरथ को शीघ्र विश्राम दो! क्षुद्र पुरुषार्थों से मेरे मन को हटाकर अपने श्रीविग्रह में लगाओ, यह अभिप्राय है। एकदेशविवर्तिरूपक से अनुप्राणित काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥९॥

**व्यामुह्यतां त्रिविधतापमये निदाघे**
**मायाविशेषजनितासु मरीचिकासु।**
**संस्पृष्टशौरिचरणा चरणावनि! त्वं**
**स्थेया स्वयं भवसि नश्वरमे पुमर्थे॥१०॥**

हे पादुके! आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक रूप तीनों तापों की प्रचुरता से युक्त निदाघ अर्थात् संसाररूपी धूप में मायाविशेष से जनित (उत्पन्न) मृगतृष्णाओं में मोहग्रस्त हुए हमारे चरम (अन्तिम) पुरुषार्थ में श्रीकृष्णजी के चरणों का स्पर्श करने वाली तुम स्वयम् स्थित रहो! रूपक अलङ्कार॥१०॥

अच्छेद्यया विषयवागुरया निबद्धान्
दीनाञ्जनार्दनपदावनि! सत्पथस्था।
प्राय: क्रमेण भवती परिगृह्य मौलौ
कालेन मोचयति न: कृपया सनाथा॥११॥

हे श्रीजनार्दन की पादुके! कृपा से युक्त और समीचीन (साधु) मार्ग में स्थित आप छेदन के अयोग्य अर्थात् सदृढ़ विषयों के जाल से बँधे हम दीन जनों को मस्तक पकड़ कर समय आने पर मानो क्रमश: छुड़ाती रहती हो। उत्प्रेक्षा अलङ्कार॥११॥

संवाहिका चरणयोर्मणिपादरक्षे!
देवस्य रङ्गवसतेर्दयिता ननु त्वम्।
कस्त्वां निवारयितुमर्हति योजयन्तीं
मात:! सुतद्गुणगणेषु ममापराधान्॥१२॥

हे मात: मणिपादुके! श्रीरङ्गनामक स्थान में निवास करने वाले देव श्रीरङ्गनाथजी के चरणों को धारण करने वाली तुम निश्चय ही उनकी वल्लभा (दयिता) हो। उस श्रीभगवान् के दया-क्षान्ति आदि कल्याणगुणगणों में मेरे अपराधों को लगाने वाली आप को रोकने में कौन समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई भी नहीं। वाक्यार्थ-हेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥१२॥

किं वा भविष्यति परं कलुषैकवृत्ते-
रेतावताप्यनुपजातमनेहसा मे।
एकं तदस्ति यदि पश्यसि पादुके! ते
पद्मासहायपदपङ्कजभोगसाम्यम्॥१३॥

हे पादुके! पापों में ही लगे रहने वाले मेरा इतने काल से उत्पन्न न होने वाला दु:ख क्या अलग हो सकता है? अर्थात् अनुभूत के समान ही होगा। तुम मुझे यदि देखती हो तो तेरे लक्ष्मीपति श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों के भोग अर्थात् स्पर्शजन्य सुख से

साम्य = ऐक्य ही वह एक मात्र वस्तु है। श्रीरङ्गनाथजी के चरणों का जो तुम्हारा भोग है उससे साम्य केवल तुम्हारे कटाक्ष से हीं होगा, अन्यथा नहीं, यह अभिप्राय है। आक्षेप अलङ्कार॥१३॥

**विविधविषयचिन्तासंततामिश्चिरं मां**
**जनितकलुषमित्थं देवि! दुर्वासनाभिः।**
**पदसरसिजयोस्त्वं पादुके! रङ्गभर्तुः**
**परिमलपरिवाहैः पावनैर्वासयेथाः॥१४॥**

हे देवि पादुके! नाना प्रकार के विषयों के परिचिन्तन से व्याप्त दुर्वासनाओं से उद्भूत पापों वाले मुझे तुम श्रीरङ्गनाथजी के चरणकमलों के पावन सौरभप्रवाहों से वासित करती रहो! प्रकृति के सम्बन्ध से छुड़ाकर मुझे मुक्त करो, यह अभिप्राय है। तद्गुण अलङ्कार॥१४॥

**शरणमधिगतस्त्वां शार्ङ्गिणः पादरक्षे!**
**सकृदपि विनियुक्तं त्वत्सपर्याधिकारे।**
**पुनरपि कथमेनं हस्तमुत्तानयेयं**
**धनमदमुदितानां मानवानां समाजे॥१५॥**

हे शार्ङ्गधन्वा श्रीहरि की पादुके! तुमको रक्षक के रूप में प्राप्त मैं तेरी पूजा के अधिकार में एक बार भी विनियुक्त (संसक्त) इस हाथ को धनमद से प्रसन्न मानवों के समाज में पुनः कैसे फैलाऊँ? जो हाथ तेरी समर्या में लग गया उसे धनिकों के आगे कैसे फैलाऊ? यह आकूत है। काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥१५॥

**यदि किमपि समीहे कर्म कर्तुं यथावत्**
**प्रतिपदमुपजातैः प्रत्यवेयां निमित्तैः।**
**अवधिरसि यदि त्वं तत्र नैमित्तिकानां**
**शरणमिह न किं मे शौरिपादावनि! स्याः॥१६॥**

हे भगवान् श्रीकृष्ण की पादुके! मैं यदि किसी शास्त्रविहित कर्म को करना चाहता हूँ तो क्षण-क्षण पर उत्पन्न मन्त्र-तन्त्रों में स्खलन आदि निमित्तों से विघ्नग्रस्त हो जाता हूँ। उन निमित्तों के विषय में तुम नैमित्तिक प्रायश्चित्तों की अवधि (सीमा) यदि हो तो इस कर्मभूमि में तुम क्या मेरी रक्षा नहीं करोगी? अर्थात् अवश्य करोगी। सम्भावना अलङ्कार॥१६॥

**अन्तर्लीनैरघपरिकरैराविला चित्तवृत्तिः**
**शब्दादीनां परवशतया दुर्जयानीन्द्रियाणि।**
**विष्णोःपादप्रणयिनि! चिरादस्य मे दुःखसिन्धोः**
**पारं प्राप्यं भवति परया विद्यया वा त्वया वा॥१७॥**

हे श्रीविष्णुभगवान् के चरणों की प्रेयसि! मेरी चित्तवृत्ति भीतर लीन पापसमुदायों से दूषित (आविल) हो गयी है और मेरी श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ शब्द आदि विषयों में संसक्त हो जाने के कारण दुर्जय हैं। इस प्रकार चिरकालिक मेरे इस संसारसागर के ऊपर की वस्तु(निःश्रेयस) की प्राप्ति पराविद्या से या तुमसे ही संभव है। तुम ही संसारार्णव से पार उतारने में समर्थ हो, यह अभिप्राय है। काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥१७॥

**गोमायूनां मलयपवने तस्कराणां हिमांशौ**
**दुर्वृत्तानां सुचरितमये सत्पथे त्वत्सनाथे।**
**तत्त्वज्ञाने तरलमनसां शार्ङ्गिणः पादरक्षे!**
**नित्योद्वेगो भवति नियतेरीदृशी दुर्विनीतिः॥१८॥**

हे शार्ङ्गधन्वा श्रीभगवान् की पादुके! जो तुमसे युक्त सत्पथ = सन्मार्ग (प्रपत्ति) सियारों के लिए भी मलयपवन = वसन्त का पवन है, चोरों के लिए भी चन्द्रमा है, पापों के लिए भी पुण्यात्मक है तथा चञ्चल मन वाले पुरुषों के लिए भी तत्त्वज्ञान रूप है उसमें भी नित्य उद्वेग होता है। क्या कहा जाय? भाग्य की ऐसी

उद्दण्डता होती ही है कि जहाँ सभी की गति है उससे भी भय होने लगता है। दीपक से अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है क्योंकि सामान्य से विशेष का समर्थन है॥१८॥

**काले जन्तून् कलुषकरणे क्षिप्रमाकारयन्त्या**
**घोरं नाहं यमपरिषदो घोषमाकर्णयेयम्।**
**श्रीमद्रङ्गेश्वरचरणयोरन्तरङ्गैः प्रयुक्तं**
**सेवाह्वानं सपदि शृणुयां पादुकासेवकेति॥१९॥**

हे पादुके! इन्द्रियाँ विह्वल जिस काल में हो जाती हैं उस अन्तकाल में जन्तुओं का शीघ्र आह्वान करने वाली यमराज की सेना का मैं घोर (भयङ्कर) घोष न सुनूँ! अपि तु श्रीरङ्गनाथजी के चरणों में लगे रहने वाले अन्तरङ्ग परिजनों से प्रयुक्त 'पादुकासेवक' के रूप में सेवार्थ आह्वान ही सुनूँ॥१९॥

**पाषाणकल्पमन्ते परिचितगौतमपरिग्रहन्यायात्।**
**पतिपदपरिचरणार्हं परिणमय मुकुन्दपादरक्षिणि! माम्॥२०॥**

हे श्रीमुकुन्द की पादुके! अन्तकाल में पाषाण के समान हुए अर्थात् परवशेन्द्रिय मुझे परिचित गौतमपत्नी अहल्या के दृष्टान्त से पति अर्थात् शेषी (स्वामी) के चरणों की सेवा के योग्य बना दो! पाषाण हुई अहल्या जैसे पति की सेवा करने के योग्य शरीर वाली कर दी गयी वैसे ही अवश शरीर वाले पाषाणतुल्य मुझे भी भगवान् की सेवा के योग्य बना दो, यह अभिप्राय है॥ उपमा अलङ्कार॥२०॥



# अथ फलपद्धतिर्द्वात्रिंशी

इस पद्धति में पादुका मुमुक्षुओं को प्राप्त होती है, इसी तथ्य का प्रपञ्च है।

**उपाख्यातां तथात्वेन वसिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः।**
**उपायफलयोः काष्ठामुपासे रामपादुकाम्।।१।।**

वशिष्ठ आदि महर्षियों के द्वारा तथाभाव से अर्थात् उपाय और फल के परम अवधि के रूप से उपाख्यात = रामायण आदि उपाख्यानों का विषय जो पादुका है उसी प्रपत्ति और मोक्ष की परम अवधिभूत श्रीरामपादुका की मैं उपासना करता हूँ। दोनों विशेषणों के उपासना के प्रति हेतु होने से पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।।१।।

**निविशेय निरन्तरं प्रतीतस्त्रिदशानां विभवं तृणाय मत्त्वा।**
**सविधे तव देवि! रङ्गभर्तुः पदलीलाकमलं समुद्वहन्त्याः।।२।।**

हे देवि! मैं प्रतीत अर्थात् पादुकोपासक के रूप में प्रसिद्ध होता हुआ देवों के विभव = स्वर्ग आदि सुख को तिनकों के समान समझ कर श्रीरङ्गनाथजी के चरणरूप लीलाकमल को धारण करने वाली आप के पास ही निरन्तर रहना चाहता हूँ। विशेषण से ऐश्वर्य देवता की सेवा की प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार है।।२।।

**किमहं मणिपादुके! त्वया मे सुलभे रङ्गनिधौ श्रिया सनाथे।**
**करणानि पुनः कदर्थयेयं कृपणद्वारदुरासिकादिदुःखैः।।३।।**

हे मणिपादुके! करणरूप में स्थित तुम्हारे द्वारा मुझे लक्ष्मी के साथ श्रीरङ्गविमान में विराजमान निधि के समान सकलफलों के

साधन श्रीरङ्गनाथजी के सुलभ होने पर भी क्या मैं कृपणों के दरवाजों पर दुष्टस्थिति (दुरासिका) आदि दुःखों से पुनः अपनी इन्द्रियों को पीड़ित करूँगा? रङ्गनिधि के लाभ से पीड़ा का समर्थन होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥३॥

**सकृदप्यनुभूय रङ्गभर्तुस्त्वदुपश्लेषमनोहरं पदाब्जम्।**
**अपुनर्भवकौतुकं तदेव प्रशमं गच्छति पादुके! मुनीनाम्॥४॥**

हे पादुके! पुनर्जन्म की निवृत्ति के विषय में मुनियों का कौतूहल अर्थात् उनकी मोक्षेच्छा तुम्हारे आलिङ्गन से मनोहर हुए श्रीरङ्गनाथचरणकमलों का एक बार भी अनुभव करके उसी समय शान्त-शान्त हो जाती है, क्योंकि एक बार की प्रपत्ति से ही मुक्ति का लाभ हो जाने से उसकी इच्छा नहीं रह पाती। कार्यकारण का एक साथ वर्णन होने से 'हेतु' अलङ्कार है॥४॥

**अपरस्परपातिनाममीषामनिदम्पूर्वनिरूढसन्ततीनाम्।**
**भरतव्यसनादनूनसीम्नां दुरितानां मम निष्कृतिस्तदासीः॥५॥**

हे पादुके! अपरस्पर = निरन्तर पतनशील, अनादितः दृढ़ सन्तानों (प्रवाह का अविच्छेद) वाले श्रीभरतजी के दुःखों की अपेक्षा अनून = अधिक सीमा वाले जो मेरे दुष्कर्म हैं उनकी तुम ही निष्कृति = प्रायश्चित्त हो। भरतजी के श्रीरामवियोग से उत्पन्न दुःखों का पादुका जैसे स्वलाभ से शान्त कर दी थी वैसे ही मेरे दुःखों को भी शान्त करे, यह अभिप्राय है। रूपक और उपमा की संसृष्टि॥५॥

**त्वदुपासनसंप्रदायविद्भिः समये सात्वतसेविते नियुक्ताः।**
**भरतव्रतिनो भवाम्बुराशिं कतिचित् काञ्चनपादुके! तरन्ति॥६॥**

हे सुवर्णपादुके! तुम्हारे अर्चन के सम्प्रदाय को जानने वालों के द्वारा सात्त्वतों = भगवच्छास्त्रों के विद्वानों से सेवित दर्शन (समय) में नियुक्त भरत की तरह पादुका की उपासना का व्रत ग्रहण कर

लेने वाले कुछ लोग संसारसागर को पार कर जाते हैं। परिणाम अलङ्कार॥६॥

**अलमच्युतपादुके! यथावद्भवती यच्च पदं त्वदेकधार्यम्।**
**इतरेतरभूषितं तदेतद्द्वितयं संवननाय चेतसो नः॥७॥**

हे श्रीअच्युत की पादुके! आप और आप के द्वारा धारण किया जाने वाला जो श्रीभगवान् का चरण है, ये दोनों ही परस्पर अलङ्कृत हुए हमारे चित्त के वशीकरण के लिए हों यथावत् पर्याप्त॥ पादुका और वशीकरण रूप कारण-कार्य का एक साथ वर्णन होने से हेतुमान् अलङ्कार है॥७॥

**अनन्यसामान्यतया मुरारेरङ्गेष्ववाप्तेषु किरीटमुख्यैः।**
**पादावनि! त्वं निजमेव भागं सर्वात्मसाधारणतामनैषीः॥८॥**

हे पादुके! श्रीमुरमथन के अङ्गों में मुकुट आदि अलङ्कार जब अनन्यसाधारणरूप से अर्थात् अपनी-अपनी जगह पर व्यवस्थित हो जाते हैं तब तुम ही अपने भाग (भगवान् के दोनों चरण) को सारी आत्माओं के लिए साधारण बना देती हो। पादुका का औदार्य्यातिशय व्यङ्ग्य यहाँ है। उदात्त अलङ्कार॥८॥

**समाश्रितानां मणिपादुके! त्वां विपश्चितां विष्णुपदेऽप्यनास्था।**
**कथं पुनस्ते कृतिनो भजेरन् वासादरं वासवराजधान्याम्॥९॥**

हे मणिपादुके! तुम्हारे आश्रय में जो चले जाते हैं उनकी श्रीविष्णु के पद (चरण और परमपद) में भी अनास्था हो जाती है। वे कृती अर्थात् पुण्यात्मा वासव = इन्द्र की राजधानी अमरावती में निवास के प्रति भला आदरवान् कैसे हो सकते हैं? अर्थापत्ति अलङ्कार॥९॥

**विमृश्य रङ्गेश्वरपादरक्षे! वारक्रमं नूनमवारणीयम्।**
**पद्माग्रहेऽपि स्पृशती प्रतीता स्थलेन रूपेण वसुन्धरा त्वाम्॥१०॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! वसुन्धरा = पृथ्वी देवी अवारणीय 'लक्ष्मी-भूमि-नीला देवियों में, यह इस दिन पादुका का स्पर्श करेगी, इस प्रकार अनतिक्रमणीय वारक्रम का विचार करके लक्ष्मी के ग्रहण में भी स्थूल रूप से मानो तुम्हारा स्पर्श करती हुई प्रसिद्ध है। स्थूलरूप से पृथ्वी के द्वारा पादुकास्पर्श के विषय में लक्ष्मी आदि के दिन में अलाभविमर्श के हेतु की उत्प्रेक्षा की गयी है॥१०॥

**अभिरक्षसि त्वमनपायनिधिं मणिपादुके! मधुभिदश्चरणम्।**
**अत एव देवि! तदनन्यधनाः शिरसा वहन्ति भवतीं कृतिनः॥११॥**

हे देवि! मणिपादुके! तुम श्रीमधुमथन के निर्विघ्न निधि के रूप में व्यवस्थित चरण की रक्षा करती हो, इसलिए जो पादुका या भगवच्चरण से अन्य वस्तुओं को धन के रूप में स्वीकार न करने वाले पुण्यात्मा मस्तक से आप का वहन करते हैं। वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥११॥

**पदयुगमिव पादुके! मुरारेर्भवति विभूतिरकण्टका त्वयैव।**
**कथमिव हृदयानि भावुकानां त्वदनुभवादुपजातकण्टकानि॥१२॥**

हे पादुके! श्रीमुरमथन के चरणकमलयुगल के समान ही उनकी लीलाविभूति तुमसे ही कण्टकों (काँटें और शत्रु) से रहित रहती है। जैसे पादुका श्रीभगवच्चरणों को काँटों की व्यथा से दूर करती है वैसे ही उनकी विभूति को भी शत्रुओं से रहित बनाती है, यह अभिप्राय है। इतना सब होने पर भी भावुक लोगों के हृदय तुम्हारे ध्यानादि अनुभव से कण्टक वाले हो जाते हैं? यहाँ 'कण्टक' का रोमाञ्च अर्थ स्वीकार करने पर विरोध की शान्ति होती है। श्लेष, उपमा और विरोधाभास अलङ्कार॥१२॥

**ज्ञानक्रियाभजनसीमविदूरवृत्ते-**
**वैदेशिकस्य तदवाप्तिकृतां गुणानाम्।**

**मौलौ ममासि मधुसूदनपादुके! त्वं**
**गङ्गेव हन्त! पतिता विधिनैव पङ्गोः॥१३॥**

हे श्रीमधुसूदन की पादुके! ज्ञानयोग-कर्मयोग-भक्तियोगों की सीमा से दूर वृत्ति वाले तथा ज्ञान-क्रिया और भक्ति की प्राप्ति कराने वाले शम-दम आदि गुणों से शून्य (वैदेशिक) मेरे मस्तक पर तुम भाग्य से वैसे ही आ गिरी हो जैसे किसी लँगड़े के मस्तक पर गङ्गा गिर गयी हों॥ उपमा अलङ्कार॥१३॥

**रङ्गेश्वरस्य यदिदं मणिपादरक्षे!**
**पादारविन्दयुगलं भवतीसमेतम्।**
**पुंसामुपोषितविलोचनपारणार्हं**
**क्षीरं तदेतदिह शर्करया समेतम्॥१४॥**

हे मणिपादुके! आप से युक्त यह जो श्रीरङ्गनाथजी का चरणारविन्दयुगल है वह विषयों का लाभ न होने से पुरुषों के उपवास किये हुए नयनों के पारण के लिए शर्करा (खाँड) से युक्त दूध ही है। बिम्बप्रतिबिम्बभाव से समान वाक्यार्थों के ऐक्य का आरोप होने से निदर्शना अलङ्कार है। जैसा कि लक्षण है—

वाक्यार्थयोः सदृशयोरैक्यारोपो निदर्शनम्।

इससे उत्प्रेक्षा अलङ्कार ध्वनि भी समझना चाहिये॥१४॥

**कामादिदोषरहितं तदनन्यकामाः**
**कर्म त्रयोदशविधं परिशीलयन्तः।**
**पादावनि! त्वदनुषङ्गविशेषदृश्य-**
**मेकान्तिनः परिचरन्ति पदं मुरारेः॥१५॥**

हे पादुके! तुमसे अतिरिक्त अन्य फलों की जो इच्छा नहीं करते अर्थात् तुम्हारी प्राप्ति ही जिनके जीवन का परमलक्ष्य है ऐसे तुम्हारे एकान्त भक्त काम आदि दोषों से शून्य बारह प्रकार के कर्म का

अनुशीलन करते हुए श्रीमुरमथन के उस चरण की पूजा करते हैं जो तुम्हारे सम्बन्ध से ही विशेषतः दृश्य है। देवादिपूजन, शौच, ऋजुता, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अनुग्रहप्रधान वाक्य, भूतोपकारक सत्य, स्वाध्यायाभ्यास, सन्तोष, ब्रह्मचिन्तन, मनोनिग्रह, भावशुद्धि, सौम्यता ये सभी कर्मों के प्रकार हैं जो भगवत्प्राप्ति में सहायक हैं॥१५॥

**मौलौ स्थिता मखभुजामथवा श्रुतीनां**
**तद्रङ्गराजचरणावनि! वैभवं ते।**
**अस्मादृशामपि यदि प्रथितं ततः स्यात्**
**सौलभ्यमम्ब! तदिदं तव सार्वभौमम्॥१६॥**

हे मातः! श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! देवताओं अथवा वेदों के मस्तक पर विराजमान जो तुम हुई वह तुम्हारा वैभव ही है। हम जैसे लोगों के मस्तक पर भी प्रसिद्ध वह सौभाग्य प्राप्त हो जाय तो तुम्हारा यह वैभव सारी भूमि पर विदित हो जाता। सम्भावना अलङ्कार॥१६॥

**स्वप्नेऽपि चेत्त्वमसि मूर्धनि संनिविष्टा**
**नम्रस्य मे नरकमर्दनपादरक्षे।**
**स्थाने तदेतदिह देवि! यतः समाधौ**
**सन्तो विदुस्तमपि तादृशबुद्धिगम्यम्॥१७॥**

हे नरकासुर के विनाशक श्रीभगवान् की पादुके! प्रणत मेरे मस्तक पर यदि तुम स्वप्न में भी आरूढ हो जाती तो यह तुम्हारा स्वाप्निक मस्तकावस्थान यहाँ श्रीभगवान् की सहचारिणी तुझमें युक्त ही होता क्योंकि मनु-पराशर आदि साधु पुरुष योगकाल में तुझसे सनाथ श्रीभगवान् को भी उस प्रकार की यौगिक बुद्धि से गम्य मानते हैं। वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥१७॥

**बद्धाञ्जलिः परिचरन् नियमेन रङ्गे**
**विश्राणिताच्युतनिधिं मणिपादुके! त्वाम्।**
**कस्यापि कूणितदृशो धनिनः पुरस्ता-**
**दुत्तानयेय न कदापि करं विकोशम्॥१८॥**

हे मणिपादुके! अञ्जलिबद्ध होकर मैं श्रीरङ्गनाथरूपी निधि को प्रदान करने वाली तुम्हारी सेवा श्रीरङ्गक्षेत्र में नियमतः करता हुआ मद से संकुचित नयनों वाले किसी भी धनिक के सामने अपनी हथेली नहीं फैलाऊँगा। यहाँ पादुकासेवा से निधि का लाभ ही धनियों के सामने हाथ न फैलाने में हेतु है अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥१८॥

**त्वय्यर्पितेन चरणेन सदध्वभाजः**
**पादावनि! प्रथितसात्त्विकभावदृश्याः।**
**रङ्गेशवद्विदधते मुहुरङ्गहारान्**
**रङ्गे महीयसि नटा इव भावुकास्ते॥१९॥**

हे पादुके! तुझमें अर्पित आचार (चरण) से साधुमर्यादा का सेवन करने वाले तथा विख्यात सात्त्विकभाव से दृश्य रसिकगण महत्तर श्रीरङ्गभूमि में श्रीरङ्गेश के योग्य ही बार-बार अङ्गविक्षेपों को वैसे ही करते हैं जैसे विविध भागों में गमन करने वाले चरण से नटयोग्य देश का सेवन करने वाले और प्रसिद्ध सात्त्विक अभिनयों से दृश्य नट रङ्गमञ्च पर अङ्गों का विक्षेप करते हैं। श्रीभगवान् से परिष्कृत आप को प्राप्त करके हर्षोल्लास में नृत्य करते हैं, यह अभिप्राय है। श्लेषमूलक उपमा अलङ्कार॥१९॥

**येन स्थिता शिरसि मे विधिनाधुना त्वं**
**तेनैव देवि! नियतं मम साम्पराये।**
**लक्षीकरिष्यसि पदावनि! रङ्गनाथं**
**लक्ष्मीपदाम्बुरुहयावकपङ्कलक्ष्यम्॥२०॥**

हे देवि! पादुके! तुम जिस भाग्य (विधि) से मेरे मस्तक में इस समय स्थित हो उसी भाग्य से मेरी अन्तिम दशा में निश्चित रूप से श्रीलक्ष्मी के चरणकमलों में लगे महावर से अभिलक्षित होने वाले श्रीरङ्गनाथजी को भी दिखला देना।। काव्यलिङ्ग अलङ्कार।।२०।।

**हरिचरणसरोजे भक्तिभाजां जनाना-**
**मनुकरणविशेषैरात्मनैवोपहास्यम्।**
**परिणमय दयार्द्रा पादुके! तादृशं मां**
**भरतपरिषदन्तर्वर्तिभिः प्रेक्षणीयम्।।२१।।**

हे पादुके! श्रीहरि के चरणकमलों में भक्तिसम्पन्न पुरुषों का अनुकरण करने के कारण स्वयमेव उपहास के पात्र हुए मुझको तुम दया से आर्द्र होकर श्रीभरतजी की गोष्ठी के मध्य सुशोभित होने वाले पुरुषों के द्वारा देखने योग्य बना दो! कोसल जनपद के निवासी जैसे पादुका की उपासना से मुक्त हो गये हैं वैसे मुझे भी मुक्त कर दो, इस अभिप्राय को प्रकारान्तर से व्यक्त करने के कारण पयार्योक्त अलङ्कार है।।२१।।

**दुरितमपनयन्ती दूरतः पादुके! त्वं**
**दनुजमथनलीलादेवतामानयन्ती।**
**अनितरशरणानामग्रिमस्यास्य जन्तो-**
**रवशकरणवृत्तेरग्रतः संनिधेयाः।।२२।।**

हे पादुके! तुम मेरे पापों को दूर से ही दूर करती हुई तथा अनितरशरण अर्थात् ज्ञान-कर्म-भजन से शून्य पुरुषों के मध्य में श्रेष्ठ अर्थात् अत्यन्त अकिञ्चन एवम् अवश = अस्वाधीन (विकल) इन्द्रियव्यापार वाले मुझ इस जन्तु के आगे दैत्यों की विनाशलीला को करने वाले देव श्रीरङ्गनाथजी को लाती हुई पास ही रहना! पर्यायोक्त अलङ्कार।।२२।।

**चरमनिगमगीते सप्ततन्तौ समाप्ते**
**निजसदनसमीपे प्रापयिष्यन् विहारम्।**
**ज्वलनमिव भवत्योः सम्यगारोपयेन् मां**
**प्रथमवरणवश्यः पादुके! रङ्गनाथः।।२३।।**

हे पादुके! (द्विवचन) प्रथमवरण अर्थात् प्रपत्ति के वश में रहने वाले श्रीरङ्गनाथजी चरमनिगम = वेदान्त से प्रतिपादित सप्ततन्तु = जीवरूप यज्ञ के समाप्त होने पर अर्थात् मरणरूपी अवभृतस्नान हो जाने पर ('तस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः, यन्मरणं तदवभृथः', इस श्रौत वचन से यजमान का मरण 'अवभृथ' के रूप में व्यवस्थित है) अपने गृह के समीप मुझे ऐच्छिक संचार रूपी वेदिसमीप स्थान में पहुँचाते हुए वैतान अग्नि की तरह मुझे पूर्वापर अरणिरूप आप दोनों के ऊपर आरूढ़ करें! अर्चिरादिमार्ग के समान तुम मेरे लिए गति हो जाओ, यह अभिप्राय है। जैसे कोई यजमान अग्नियों का आधान करके सोमयाग के बाद अग्निहोत्रशाला में वेदि के समीप अरणियों को स्थापित करता है वैसे ही श्रीरङ्गनाथ मुझे तुम दोनों के ऊपर स्थापित करें, यह तात्पर्य है। एकदेशविवर्तिरूपक से अनुप्राणित उपमा अलङ्कार॥२३॥

**पुनरुदरनिवासच्छेदनं सह्यसिन्धोः**
**पुलिनमधिवसेयं पुण्यमाब्रह्मलाभात्।**
**परिणमति शरीरे पादुके! यत्र पुंसां**
**त्वमसि निगमगीता शाश्वतं मौलिरत्नम्।।२४।।**

हे पादुके! जब तक परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक मैं उस कावेरी नदी के पुण्य तट पर निवास करूँगा जो जननी के जठर में निवास का छेदन कर देता है और जहाँ पुरुषों के शरीर का त्याग होने पर वेदों से प्रतिपादित अर्थात् वेदगम्य तुम शाश्वत मस्तकालङ्कार होती हो। मरे लोगों को मुक्ति के बाद पादुका-

सेवारूप कैङ्कर्य की प्राप्ति होती है जहाँ वहीं मैं निवास करना चाहता हूँ, यह अभिप्राय है। यहाँ पादुकाकैङ्कर्य का लाभ निवासप्रार्थना में हेतु है अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥२४॥

**बहुविधपुरुषार्थग्रामसीमान्तरेखां**
**हरिचरणसरोजन्यासधन्यामनन्यः।**
**भरतसमयसिद्धां पादुके! भावयंस्त्वां**
**शतमिह शरदस्ते श्रावयेयं समृद्धिम्॥२५॥**

हे पादुके! नाना प्रकार के पुरुषार्थसमूह की सीमान्तरेखा अर्थात् चरम अवधि के रूप में व्यवस्थित तथा श्रीहरि के चरणकमलों में निक्षेप से धन्य हुई और श्रीभरतजी के समय में प्राप्त आप को अपने हृदय में विभावित करता हुआ मैं अनन्य भाव से यहाँ श्रीरङ्गक्षेत्र में सैंकड़ों वर्षों तक आपकी समृद्धि सुनना चाहता हूँ। विशेषणों के सामर्थ्य से उर्वरभूमि की प्रतीति होने से समासोक्ति अलङ्कार है॥२५॥

**तिलकयसि शिरो मे शौरिपादावनि! त्वं**
**भजसि मनसि नित्यं भूमिकां भावनाख्याम्।**
**वचसि च विभवैः स्वैर्व्यक्तिमित्थं प्रयाता**
**तदिह परिणतं मे तादृशं भागधेयम्॥२६॥**

हे श्रीकृष्ण की पादुके! तुम मेरे मस्तक को तिलकयुक्त अर्थात् अलङ्कृत करती हो तथा मन में अनुभवप्रकर्ष से जायमान दृढ़ संस्कार रूप 'भावना' नामक भूमिका स्वीकार करती हो और अपनी विभूतियों से वाणी में इस प्रकार हजार पद्यों से प्रतिपाद्य रूप से अभिव्यक्त हुई हो। इस प्रकार से मेरा पूर्णप्रपत्ति रूप भाग्य ही परिणत अर्थात् फलोन्मुख हुआ है। अनुमान अलङ्कार॥२६॥

**अजनिषि चिरमादौ हन्त! देहेन्द्रियादि-**
**स्तदनु तदधिकः सन्नीश्वरोऽहं बभूव।**

**अथ भगवत एवाभूवमर्थादिदानीं**
**तव पुनरहमासं पादुके! धन्यजन्मा॥२७॥**

हे पादुके! मैं पहले चिरकाल तक शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण आदि में ही आत्माभिमान वाला पैदा हुआ। तात्पर्य यह है कि शरीर-इन्द्रिय आदि ही आत्मा है, इस प्रकार से अज्ञान के वशीभूत रहा। इसके बाद वेदाध्ययन के अनन्तर कर्मों का विचार करके शरीरादि से अतिरिक्त कर्मफलों का भोक्ता स्वामी के रूप में व्यवस्थित हुआ। इसके अनन्तर आचार्यों की कृपा से वेदान्ताधिगम से श्रीभगवान् का दास ही हो गया अर्थात् शेषत्व के रूप में स्वस्वरूपज्ञान से सम्पन्न हो गया। इस समय पुनः धन्य जन्म वाला मैं तुम्हारा भी शेष (दास) हुआ। यहाँ पादुका का व्यतिरेक झलकता है क्योंकि उसके सम्बन्ध से ही धन्यता प्रतिपादित है। पूर्व-पूर्व धर्म का त्याग करके उत्तर उत्तर धर्मत्व को स्वीकार करने से 'पर्याय' अलङ्कार है जिसका 'सार' अलङ्कार से साङ्कर्य है॥२७॥

**त्वय्यायत्तौ भगवति शिलाभस्मनोः प्राणदाना-**
**दास्त्रीबालं प्रथितविभवौ पादपद्मौ मुरारेः।**
**तामेवाहं शिरसि निहितामद्य पश्यामि दैवा-**
**दात्माधारां जननि! भवतीमात्मलाभप्रसूतिम्॥२८॥**

हे भगवति मातः पादुके! शिला (अहल्या) और भस्म (परीक्षित) को जीवनदान करने से स्त्री और बालक को अभिव्याप्त करके प्रसिद्ध वैभव वाले जो श्रीमुरमथन के चरणकमल हैं वे तुम्हारे ही आश्रित रहते हैं अर्थात् तुम्हारे ऊपर आरूढ़ होकर ही गमनव्यापार में लगते हैं। उसी श्रीभगवान् को धारण करने वाली, स्वयम् की आधारभूत (पादुका को कोई धारण नहीं करता इसलिए) आत्मलाभ अर्थात् मोक्ष की उत्पादिका पादुका को मैं दैव के बल से अपने मस्तक पर विराजमान देखता हूँ। प्रयासपूर्वक प्राप्त होने

वाली पादुका का विना प्रयास से लाभ होने के कारण 'समाधि' अलङ्कार है जैसा कि लक्षण है—

समाधिः कार्यसौकर्यम्॥२८॥

**कथङ्कारं लक्ष्मीकरकमलयोग्यं निजपदं**
**निदध्याद्रङ्गेशः कुलिशकठिनेऽस्मिन् मनसि नः।**
**न चेदेवं मध्ये विशति दयया देवि! भवती**
**निजाक्रान्तिक्षुण्णस्मरशरशिखाकण्टकततिः॥२९॥**

हे देवि पादुके! श्रीरङ्गनाथजी वज्र की तरह कठोर मेरे मन में श्रीलक्ष्मीजी के करकमलों के संवाहन (मर्दन) के योग्य अपने चरण को कैसे रखते यदि बीच में आप दयापूर्वक अपने आक्रमण से काम के बाणों के अग्रभाग के काँटों की श्रेणी को ध्वस्त करती हुई इस तरह प्रवेश नहीं करती। पादुका की स्थिति मध्य में नहीं होती तो श्रीभगवच्चरणों की प्राप्ति मन में नहीं होती, ऐसी सम्भावना करने से संभावना अलङ्कार है॥२९॥

**क्रीडालौल्यं किमपि समये पादुके! वर्जयन्ती**
**निर्वेशं स्वं दिशसि भवतीनाथयोः श्रीधरण्योः।**
**मामप्येवं जनय मधुजित्पादयोरन्तरङ्गं**
**रङ्गं यासौ जनयसि गुणैर्भारतीनृत्तरङ्गम्॥३०॥**

हे पादुके! तुम पृथ्वी के दिन के समय अर्थात् जब श्रीरङ्गनाथजी के साहचर्य में पृथ्वी देवी का समय आता है तब किसी अनिर्वचनीयक्रीड़ाप्रयुक्त चञ्चलता का वर्जन करती हुई लक्ष्मी और पृथ्वी की भी स्वामिनी होकर उन दोनों को निर्वेश अर्थात् श्रीभगवच्चरणसेवारूप सुख प्रदान करती हो। इसी प्रकार तुम मेरे लिए भी श्रीमधुविजय के चरणों में अन्तरङ्ग सेवा के योग्य मुझे बना दो क्योंकि तुम अपने गुणों से श्रीरङ्गक्षेत्र को सरस्वती के लिए नृत्तरङ्ग = नाट्यक्षेत्र बनाती हो। अपने गुणों को प्रकाशित करके

हम जैसे लोगों के द्वारा स्तुत होती हो, यह अभिप्राय है। उपमा और रूपक अलङ्कारों की संसृष्टि॥३०॥

**इति रङ्गधुरीणपादुके! त्वं स्तुतिलक्ष्येण सहस्रशो विमृष्टा।**
**सफलं मम जन्म तावदेतद् यदिहाशास्यमतः परं किमेतत्॥३१॥**

इतने वर्णनप्रकारों से हजार पद्यों का अनुसन्धान करके अपने जन्म की सफलता का अनुसन्धान यहाँ पर कवि ने किया है। हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! इस प्रकार स्तुति के बहाने तुम हजारों बार संकीर्तित हुई हो अतः मेरे इस जन्म को सार्थक कर दो तो इस जन्म में इससे ज्यादा प्रार्थनीय क्या हो सकता है। वाक्यार्थ-हेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार॥३१॥

**मातः! स्वरूपमिव रङ्गपतेर्निविष्टं**
**वाचामसीमनि पदावनि! वैभवं ते।**
**मोहादभिष्टुतवतो मम मन्दबुद्धे-**
**र्बालस्य साहसमिदं दयया सहेथाः॥३२॥**

हे मातः पादुके! श्रीरङ्गनाथजी के अनन्तगुणों से संपृक्त स्वरूप के समान ही वाणी के अविषय में निविष्ट तेरा वैभव है जिसकी स्तुति में अज्ञान से प्रवृत्त मुझ मन्दबुद्धि बालक के इस साहस को दया करके सहन करना! उपमा अलङ्कार की विषम-अलङ्कार से संसृष्टि है क्योंकि क्षमाप्रार्थना के लिए प्रवृत्त कवि के विषय में विरुद्ध कोपप्रसक्ति का वर्णन है॥३२॥

**ये नाम भक्तिनियताः कवयो मदन्ये**
**मातः! स्तुवन्ति मधुसूदनपादुके! त्वाम्।**
**लप्स्ये गुणांशविनिवेशितमानसानां**
**तेषामहं सबहुमानविलोकितानि॥३३॥**

हे मातः श्रीमधुमथन की पादुके! जो कोई मुझसे अन्य कवि भक्ति से नियन्त्रित होकर तुम्हारी स्तुति करते हैं उन गुणांश =

ग्राह्यभाग में अपने मन को लगाये रहने वाले कवियों के बहुमानयुक्त अवलोकनव्यापार को मैं प्राप्त करूँगा। अर्थात् वे सत्कवि भी मेरे ऊपर अपनी कृपादृष्टि का निक्षेप करेंगे। यहाँ बहुमानपूर्वक अवलोकन में गुणग्राह्यत्व के हेतु होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है वह भी पदार्थहेतुक॥३३॥

**संघर्षयन्ति हृदयान्यसतां गुणांशे**
**सन्तस्तु सन्तमपि न प्रथयन्ति दोषम्।**
**तद्रङ्गनाथचरणावनि! ते स्तुतीना-**
**मेका परं सदसतोरिह साक्षिणी त्वम्॥३४॥**

हे श्रीरङ्गनाथजी की पादुके! असत् अर्थात् आसुरी प्रकृति वाले पुरुषों के हृदय गुणपक्ष में भी दोषों के निरूपण में तत्पर रहते हैं। सन्तपुरुष तो दोषों के रहने पर भी उनका ख्यापन नहीं करते। इसीलिए सन्देह के कारण तुम्हारी स्तुतियों के गुण और दोष में यहाँ पर एक मात्र तुम ही साक्षिणी हो। तुम ही दोषों की उपेक्षा करके गुणों को स्वीकार करो, यह अभिप्राय है। पादुकातिरिक्त साक्षी के अलाभ में पूर्व दोनों वाक्यार्थ हेतु हैं अतः वाक्यार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥३४॥

**इत्थं त्वमेव निजकेलिवशादकार्षी-**
**रिक्ष्वाकुनाथपदपङ्कजयोरनन्या।**
**स्वीयं पदावनि! मया सुमहच्चरित्रं**
**सीतेव देवि! सहजेन कवीश्वरेण॥३५॥**

हे देवि पादुके! इक्ष्वाकुकुल के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमलों में अनन्य भाव रखने वाली तुम ही अपनी लीला के बल से अर्थात् स्वच्छन्द रूप से मुझसे अपने शोभन और महान् चरित्र का वर्णन वैसे ही करायी हो जैसे सीताजी अपने सहजात

वाल्मीकि मुनि के द्वारा अपना ही वर्णन करायी थीं। उपमा अलङ्कार॥३५॥

**पृथुकवदनशङ्खस्पर्शनीत्या कदाचि-**
**च्छिरसि विनिहितायाः स्वेन भूम्ना तवैव।**
**स्तुतिरियमुपजाता मन्मुखेनेत्यधीयुः**
**परिचरणपरास्ते पादुकेऽपास्तदोषाः॥३६॥**

हे पादुके! राग और द्वेष से असंस्पृष्ट रहने वाले तथा तुम्हारी दासता में ही तत्पर सत्पुरुष बालक के मुख में पाञ्चजन्यशङ्खस्पर्शन्याय से (इस प्रकार शङ्ख के स्पर्श से ध्रुव के वाणीविलास का प्रादुर्भाव हुआ था) स्तोत्र की अनुज्ञा के समय मस्तक पर स्थापित तुम्हारी ही निज महिमा से मेरे मुख से यह स्तुति प्रादुर्भूत हुई है, ऐसा मानकर अध्ययन करें। सहोक्ति अलङ्कार॥३६॥

**यदि स्फीता भक्तिः प्रणयमुखवाणीपरिपणं**
**पदत्राणस्तोत्रं हृदि बिभृथ रङ्गक्षितिभृतः।**
**निरुन्मादो यद्वा निरवधिसुधानिर्झरमुचो**
**वचोभङ्गीरेता न कथमनुरुन्धे सहृदयः॥३७॥**

हे जनों! यदि निर्मल और परिपूर्ण भक्ति है तो श्रीरङ्गनाथजी की प्रणयप्रधान वाणीरूप वेद के परिपण = मूलधन के रूप में स्थित इस पादुकास्तोत्र को हृदय में धारण करें! स्तोत्र में दोष होने पर भी पादुका में भक्ति के कारण इस स्तोत्र को ग्रहण करें, यह अभिप्राय है। अथवा उन्माद से शून्य सहृदय (काव्यतत्त्वज्ञ) असीमित अमृत के झरने को बहाने वाली इन वाणी की भङ्गियों (शोभा, विच्छित्ति) का कैसे अनुसन्धान नहीं करेगा। अर्थात् करेगा ही। सहृदयों के लिए काव्य की ग्राह्यता सौन्दर्य ही कारण है न कि उपदेश अतः काव्यसौन्दर्य की दृष्टि से सहृदय इस ग्रन्थ का

अनुसन्धान करेंगे ही, यह अभिप्राय है। स्वयम् उक्त का प्रतिषेध होने से आक्षेप अलङ्कार है।।३७।।

**जयति यतिराजसूक्तिर्जयति मुकुन्दस्य पादुकायुगली।**
**तदुभयधनास्त्रिवेदीमवन्ध्ययन्तो जयन्ति भुवि सन्तः।।३८।।**

**।।इति श्रीकवितार्किकसिंहस्य सर्वतन्त्रस्वतन्त्रस्य श्रीमद्वेङ्कटनाथस्य वेदान्ताचार्यस्य कृतिषु श्रीरङ्गनाथपादुकासहस्रं सम्पूर्णम्।।**



श्रीयतीन्द्र की श्रीमद्भगवच्चरणों से अभिन्न पादुका के उपायोपेयभाव का प्रतिपादन करने वाली सूक्ति सर्वोत्कृष्ट है तथा श्रीमुकुन्द की दोनों पादुकायें भी सर्वोत्कृष्ट हैं। ये दोनों ही जिनके धन हैं ऐसे सत्पुरुष भी पृथ्वी पर सर्वोत्कृष्ट हैं जो तीनों वेदों को निष्फल नहीं करते अर्थात् सफल कर देते हैं। आवृत्तिदीपक अलङ्कार है क्योंकि उत्कर्षरूप एक धर्म का एक ही शब्द से आवृत्ति है।।३८।।

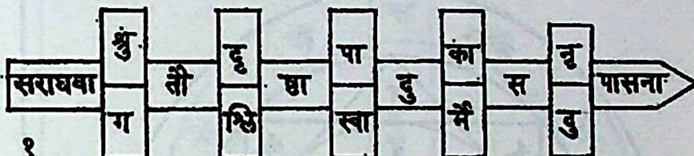
।।इति श्रीभार्गवगोत्रीयोमाशङ्करतनयजगद्गुरुश्रीरामानुजाचार्यस्वामिवर्यवासुदेवाचार्य-विद्याभास्करमहाराजसच्छिष्यकृष्णनारायणाचार्योपनामकमलाकान्तत्रिपाठिप्रणीता श्रीमद्भगवत्पादुकासहस्रव्याख्या सुधाख्या सम्पूर्णा।।



# चित्रपद्धति के चित्रबन्धों के विन्यास

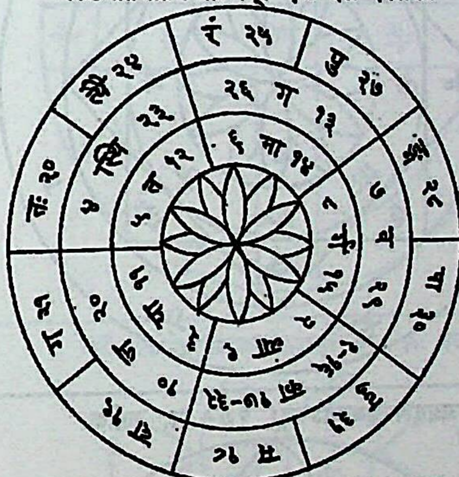
- श्रीः -

शरबन्धोऽयम् = १३-शः श्लोकः




१

गरुडगतिचक्रबन्धोऽयम्। १४-शः श्लोकः



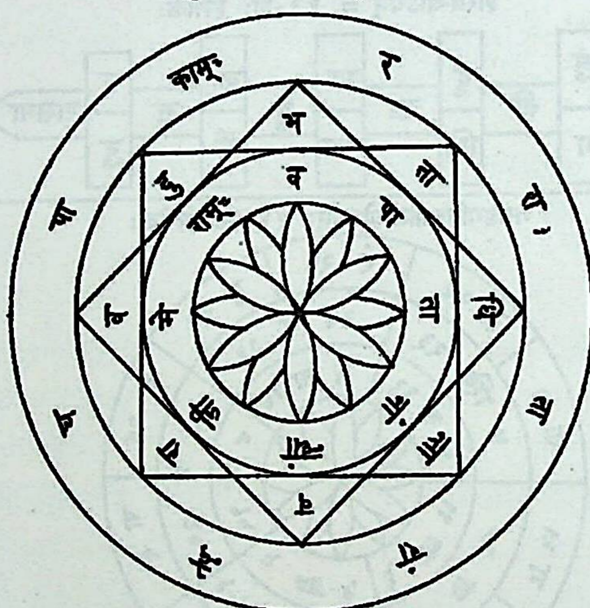
२

द्विशृङ्गाटकचक्रबन्धोऽयम्। १५-शः श्लोकः



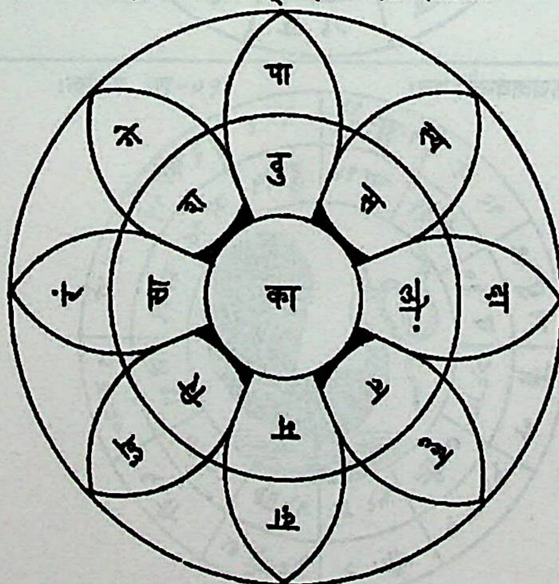
३

श्री द्विचतुष्कचक्रबन्धोऽयम्। १६-श्लोकः



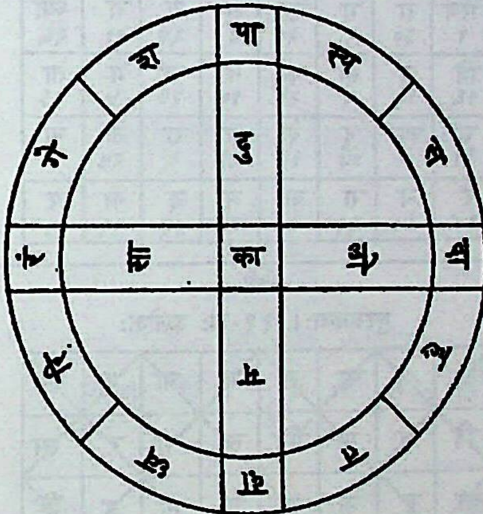

४

अष्टदलपद्मबन्धोऽयम्। १७- शः श्लोकः



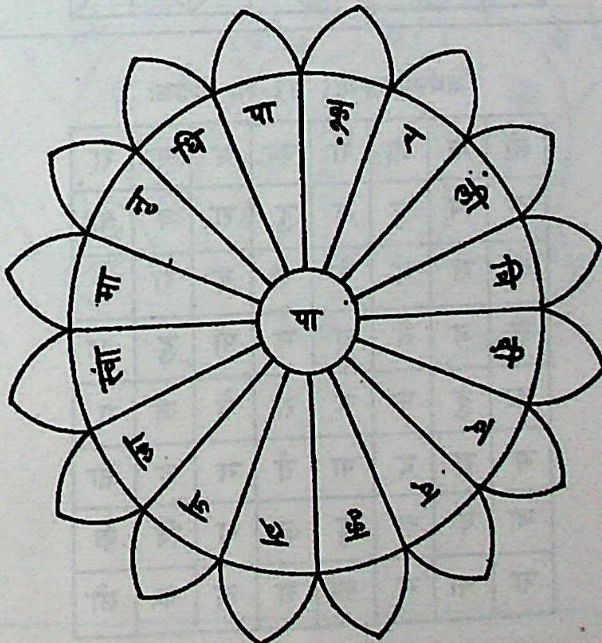

५

श्री चतुररचक्रबन्धोऽयम्। १७-शः श्लोकः



८

श्री षोडशदलपद्मबन्धोऽयम्। १८-शः श्लोकः



७

चतुरङ्गतुरङ्गबन्धोऽयम्। १९-२०-शौ श्लोकौ

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| स्थि १ | रा ३० | ग ९ | सां २० | स ३ | दा २४ | रा ११ | ध्या २६ |
| वि १६ | ह १९ | ता २ | क २९ | त १० | ता २७ | म ४ | ता २३ |
| स ३१ | त्या ८ | डु १७ | कें १४ | स २१ | रा ६ | सा २५ | मा १२ |
| रं १८ | ग १५ | रा ३२ | ज ७ | प २८ | द १३ | म्न २२ | य ५ |

८

श्री

मुरजबन्धः। ११-शः श्लोकः

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सा | भूं | भा | स | म | प्रा | र | स्या |
| वि | भू | प्रा | प्ति | स | भा | र | ला |
| ता | र | भा | स | कृ | प्रा | हू | ष्टि |
| पू | र | प्र | स | म | पा | दु | का |

९

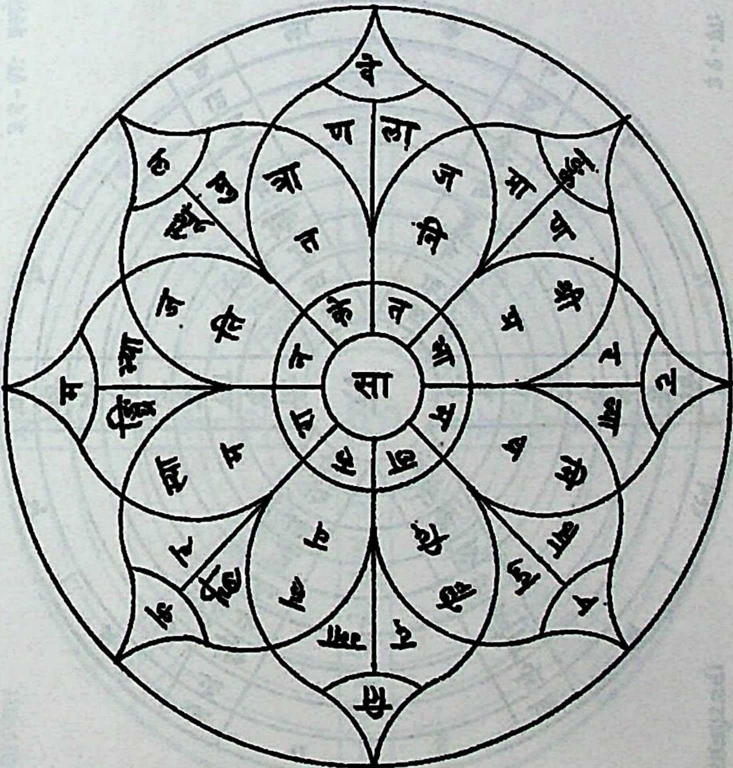
श्री

अर्धभ्रमकबन्धः। २१-शः श्लोकः

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| लो | क | ता | रां | का | म | चा | रा |
| क | वि | रा | ज | दु | रा | व | चा |
| ता | रा | ग | ते | पा | द | रा | म |
| रा | ज | ते | रा | म | पा | दु | का |
| का | दु | पा | म | रा | ते | ज | रा |
| म | रा | द | पा | ते | ग | रा | ता |
| चा | व | रा | दु | ज | रा | वि | क |
| रा | चा | म | का | रा | ता | क | लो |

श्री

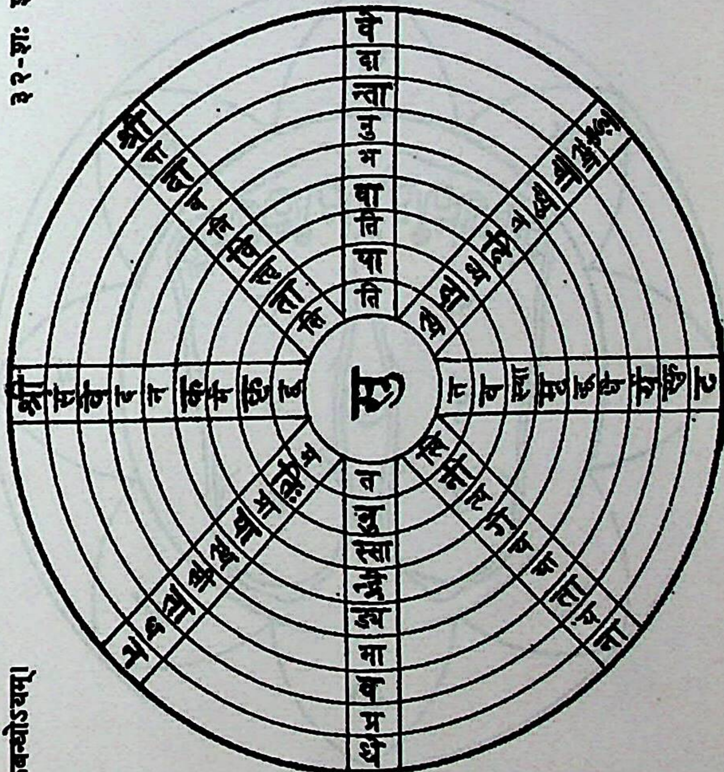
अष्टदलपद्मबन्धोऽयम्। ३०-शः श्लोकः



३९-शः श्लोकः

षडरचक्रबन्धोऽयम्।

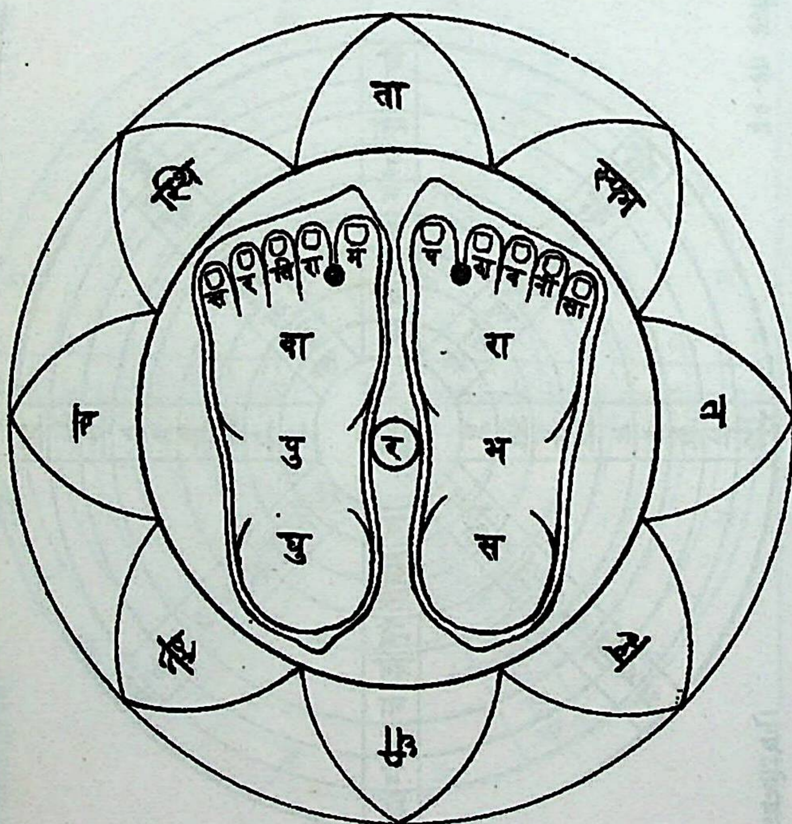
११



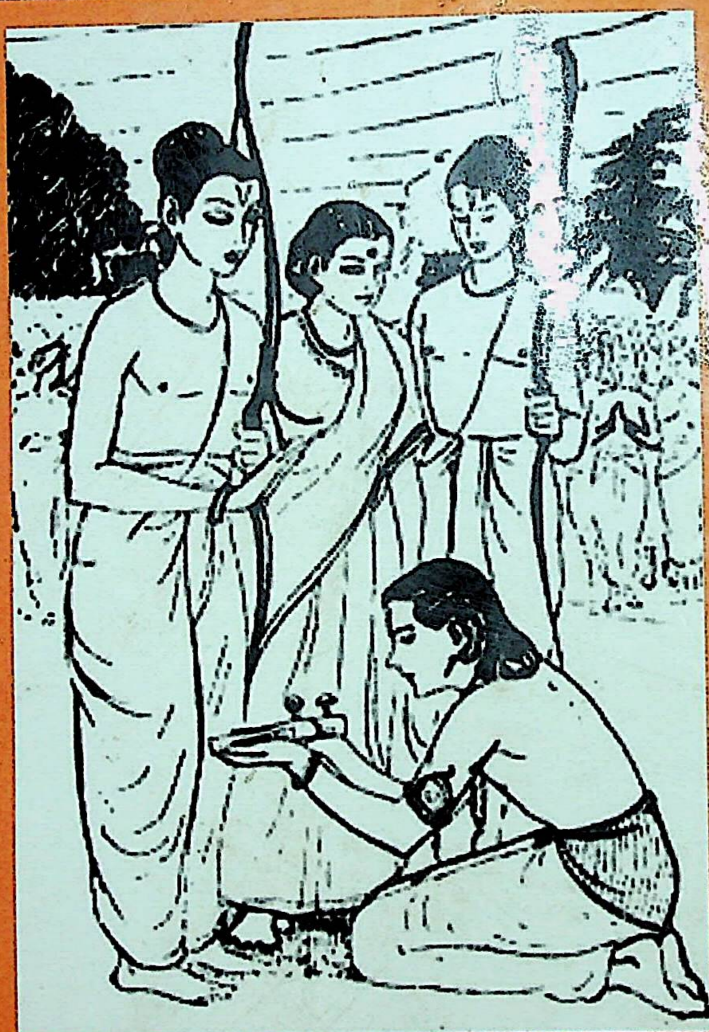
अथारचक्रबन्धोऽयम्।

३२-शः श्लोकः

श्री
पादुकाबन्धोऽयम्। ३९-शः श्लोकः







PAADHUKAS TO BHARATHA

भजामः पादुके याभ्यां भरतस्याग्रजस्तदा।
प्रायः प्रतिप्रयाणाय प्रास्थानिकमकल्पयत्॥

प्रकाशक :
श्री कोसलेश सदन
कटरा, अयोध्या, फैजाबाद